ॐ तत्सत्

राजस्थान साहित्य-रत्न-माला—मणि—१

सुन्दर-ग्रन्थावली

[महात्मा कविवर स्वामी श्री सुन्दरदासजी रचित
समस्त ग्रन्थों का संग्रह]

[द्वितीय खण्ड]

सपादक,
पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, विद्याभूषण

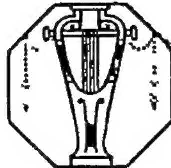
प्रकाशक,
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी
कलकत्ता ।

प्रथमावृत्ति | मकरसंक्रान्ति १९९२ | मूल्य—३॥)

 प्रथमवार—१५०० प्रतियां

मुद्रक—
भगवतीप्रसाद सिंह
न्यू राजस्थान प्रेस,
७३ ए, चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

द्वितीय खण्ड



तृतीय विभाग

सवैया (सुन्दर विलास) ३८१-६६२

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३५		१५	अपने	अनेक
४३७		४	वारस	वा रस
४४१		२	त्यौ	ज्यौं
४४१		५	कं	कै
४४१		१०	काटत	काठत
४४५		१४	कोई	जोई
४४६		१	नकु	नैंकु
४५०		६	फेरि	फेरी
४६०		९	कर	करैं
४६०	टीका	४	बिल्व बिल्व के आगे से बिल्वकेश्वर, नील पर्वत कनखल, हरिद्वार पढ़ कर वित्त गड्यो आदिक पढ़ैं।	
४६५		१६	मकरी	मछरी
४६८		१०	आक	आक
४७५		८	वूठि	वूडि
४७५	टीका	८	पक्ष	पद्म
४७६	„	१	सघारौ	सवारौ
४७८	मूल	१	प्रिय	पिय
४७९		१३	बन	बैंन
४७९		१३	सन	सैंन
४८०		१३	जज	जजै
४८७		५	बीतै	बीचै
४८९		५	सथ	साथ
४८९		१५	पुि	पुनि

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९०		७	रिङ्गा	रङ्गा
४९१		३	क्षद्र	क्षुद्र
४९२		५	वश्य	वैश्य
४९२		६	छह	छाह
४९२		१२	अवर	अवर
४९७		२	कीजिये	दीजिये
५७७		३	लागौ	लागै
५८६		१५	हात	हाथ
६४०		३	चूच	चुच
६४२	टीका	८	६	८
६४६	„	२	के आगे छपने से रह गया।	इसका आख्यान साधु रामदासजी दूवलधनिया ने यों बताया है कि—

(४) साषी

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६६		२	विल	विलै
६६८		२	क	कै
६९५		१२	सुन्द	सुन्दर
६९६		३	सुन्द	सुन्दर
७०५		१	ब्रह्म	ब्रह्मा
७०६		४	पाडुवा	पंडुवा
७११		१२	होइ	कोइ
७२७		७	है लुभइ	रहै लुभाइ
७३५		६	गये	भये
७६२		७	घौले	धौलै

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७२		२६	ऐस	ऐसैं
७७६		६	हात	होत
८०७		२	नृप्त	तृप्त
८०७		४	साघै	साधै
८११		१०	वघन	वंधन
८१२		१२	हस	हसै
८१२		१६	कम	कर्म
८१६		८	सुददर	सुन्दर
८१६		१२	काइ	कोइ

(५) (पद भजन)

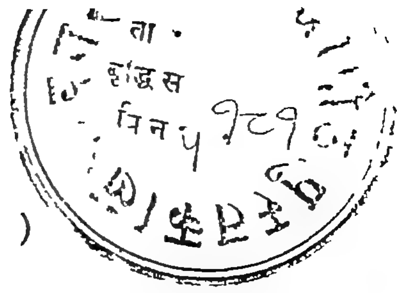
पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२१		३	दूत	दूध
८२६		१०	वरे	वारे
८३२		५	बिचारा	विचारा रे
८३२		६	नहीं	नाहीं
८३३		१	मथुन	मैथुन
८३४		७।८	घी। घी	धी। घी
८३४		१०	गुप्ता	गुप्त
८४१		२	भ्र दूरि सव मकरिये	भ्रम सव दूरि करिये
८४५		३	पसा	पासा
८४७		७	ससुझावै	संमुझावै
८४७		१५	सुन्न	सुन्दर
८६१		१२	दासिन	दासनि
८७०		४	नि	तिन
८७६		११	सीवै	सोवै

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८७६		८	(टक)	(टेक)
८८६		१५	माते	माने
९०२		१७	तहा	नह
९३७		२	रूप ममेदं	रूप ममेद

(६) फुटकर काव्य

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७०	टीका	४	दो।१३।	दो।१।
९७२		११	तारक	तारक्क
९७६		१	कका	कक्का
९७८		२	दिशि	दिशा
९८७		३	नरक	गरक
९८९		८	वश्य	वैश्य
९८९		१५	निमल	निर्मल
९८९		१६	अतात	अतीत
९९२		५	लका	लक्क
१००२			शादूल	शार्दूल





(इति सवैया के अगों की सूची)।

चतुर्थ विभाग

साखी ६६३-८१८

पांचवां विभाग

पद (भजन) **८१९–९३८**

(इति पदों की सूची)।

छठा विभाग

फुटकर काव्य संग्रह

(इति फुटकर काव्य-संग्रह की सूची ।)



सवैया

(सुन्दर विलास)

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

अथ सवैया (सुन्दरविलास)

॥ अथ गुरुदेव को अंग (१) ॥

इन्दव

मौज करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ कह्यौ हरि नेरौ ।
ज्यों रवि कैं प्रगट्यें निशि जात सु दूरि कियौ भ्रम भानि अधेरौ ॥
काइक वाइक मानस हू करि है गुरुदेव हि वंदन मेरौ ।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल कौ हूं नित चेरौ ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्त्ता श्री सुन्दरदासजी ने इस ग्रन्थ का नाम "सवईया" (सवैया) ही रक्खा था ऐसा ही प्रतीत होता है । "सुन्दरविलास" यह नाम पीछे से किसी ने धरा है इस पर और सवैया छन्द पर भूमिका और परिशिष्ट "छन्दतालिका" में विस्तार से लिख दिया है ।

इन्दव छन्द—इसका दूसरा नाम मत्तगयन्द है—२३ अक्षर का—७ भगण+२ गुरु—११, १२ पर यति होती है । यह सवैया का प्रधान भेद है । जब आठ भगण= २४ अक्षर हो तो किरीट सवैया कहाता है ।

(१) मौज (फा०) लहर, आनन्द । हरि नेरौ=परमात्मा को अत्यन्त निकट वा पास बता दिया अर्थात् अपने भीतर ही । वा जीव अपना ही ईश्वर है । यह 'तत्वमसि' और 'अहम्ब्रह्मास्मि' के तात्पर्य का द्योतक पद है । भानि अन्धेरौ=भ्रम-रूपी अन्धकार को हटा कर । ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानरूपी अन्धेरा नाश हो जाता है । काइक वाइक=कायिक, दण्डवत, प्रणाम । वाचिक वा वचन द्वारा, स्तुति आदि

पूरण ब्रह्म विचार निरन्तर काम न क्रोध न लोभ न मोहै ।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राण सु देषि कछू कहु नैन न मोहै ।।
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जास गिरा सुनि मोहन मोहै ।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल हि मोर नमो है ।। २ ।।
धीरजवत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ आदू ।
शील संतोष क्षमा जिनकैं घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू ।।
भेष न पक्ष निरन्तर लक्ष जु और नहीं कछु वाद विवादू ।
ये सब लक्षन हैं जिन माहिं सु सुन्दर कै उर है गुरु दादू ।। ३ ।।
भौ जल मैं वहि जात हुते जिनि काढि लिये अपने करि आदू ।
और संदेह मिटाइ दियौ सब काननि टेरि सुनाइ कैं नादू ।।
पूरण ब्रह्म प्रकाश कियौ पुनि छूटि गयौ यह वाद विवादू ।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू ।। ४ ।।

उच्चारण से । मानस=मन से वा अन्तःकरण में विचार द्वारा भावना से । वन्दन= प्रणाम । नित चेरौ=सदा सर्वदा ऐसे परम दयालु सच्चे गुरु का शिष्य रहना सौभाग्य है । सदा दास ।

(२) मोहै=मोह (मोहादिक उनमे नहीं है) । नैन न मोहै=श्रोत्रादि इन्द्रियों के विषय उनको मोहित नहीं कर सकते । जितेन्द्रिय । मोहन मोहै=अत्यन्त मनोहर मन को लुभानेवाली, वा मोह भी नीचा वा लज्जित हो जाता है, मोहादिक उस वाणी से नहीं रहते । नमो=नमस्कार ।

(३) आदू=सनातन । अनाहद नादू=अनाहत नाद (योगवृत्ति में—ॐकार स्वयम्भू शब्द । विना आहत वा टक्कर के स्वयम् ही जो शब्द अन्दर आत्मा मे होता है । यह योगीगम्य है ।

(४) अपने करि आदू=अपने निज के कर लिये । गुरु ने शिष्य को साधन और उपदेश द्वारा आप जैसा आदू=ठेठ वैसा ही, कर लिया । 'कीया आप समान' । वाद विवादू=द्वैतभाव, तर्कना, ऊहापोह ।

कोउक गोरष कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कवीर कोउ रापत नादू॥
कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत वाद विवादू।
और तौ संत सवै सिर ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ५॥
कोउ बिभूति जटा नख धारि कहैं यह भेप हमारौ हि आदू।
कोउक कांन फराइ फिरै पुनि कोउक सींग बजावत नादू॥
कोउक केश लुचाइ करै व्रत कोउक जंगम कै शिव वादू।
ये सब भूलि परै जित ही तित सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ६॥
जोगि कहैं गुरु जैन कहैं गुरु बोध कहैं गुरु जगम मांनैं।
भक्त कहैं गुरु न्यासी कहैं वनवासि कहैं गुरु और वषानैं॥
शेप कहै गुरु सोफि कहैं गुरु याही तें सुन्दर होत हरानै।
वाहु कहैं गुरु वाहु कहैं गुरु है गुरु सोइ सवै भ्रम भानें॥ ७॥
सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी।
इंद्रिय देह मृषा करि जानत शीतलता समता उर धारी॥
व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित द्वैत उपाधि सवै जिनि टारी।
शब्द सुनाइ सदेह मिटावत "सुंदर वा गुरु की वलिहारी"॥ ८॥

---

(५) दत्त=दत्तात्रेय महामुनि। दिगम्बर=नग्न, नाथ। कथर=महायोगी नवनाथों में से। भरथर=भर्तृहरि मत्स्येन्द्र का शिष्य। हरदास=हरिदास निरंजनी।

(६) कांन फराई=कानीफ के सम्प्रदाय में मुद्रा कानों में धारनेवाले योगी। केश लुचाइ=केश लुञ्चन जैन साधुओं में होता है। जङ्गम=योगियों की एक शाखा जो स्थिर नहीं रहते, भ्रमते हैं।

(७) वोध=वौद्ध लोग। न्यासी=संन्यासी, वा न्यास ध्यान करनेवाले। सोफि=सूफी, मुसलमानों में भक्ति मिश्रित वेदान्ती।

(८) मृषा=असत्य, मिथ्या। शीतलता=शीतव्रत, धैर्यमय शान्ति। अक्रोधता। समता=सव को समान जानना। समदर्शीपना। व्यापक=सर्व में अन्त-

पूरण ब्रह्म बताइ दियौ जिनि एक अखण्डित व्यापक सार
रागरु दोष करैं अब कौन सौं जोइ है मूल सोइ सब डार ॥
संशय शोक मिट्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधार।
सुंदर शुद्ध किये मल धोइ "सु है गुरु कौ उर ध्यान हमार ॥ ९ ॥
ज्यौं कपरा दरजी गहि ब्यौंतत काष्ट हि कौं बढई कसि आनैं।
कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह कौ घाट लुहार हि जानैं ॥
पाहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार कै हाथ निपानैं।
तैसेंहि शिष्य कसै गुरुदेव जु "सुंदरदास तवै मन मानैं" ॥ १० ॥

मनहर

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकै सब है समान
देह की ममत्व छाडै आतमा ही राम है।
और ऊ उपाधि जाकै कबहू न देषियत
सुखके समुद्र मैं रहत आठौं जाम है ॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाकै हाथ जौरि आगै परी
सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम है।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं
"ऐसै गुरुदेव कौं हमारे जु प्रनाम है ॥ ११ ॥

र्यामी। अखण्डित=अखण्ड, पूर्ण, एकरस। द्वैत उपाधि=माया को मन्य मानना तथा जीव ब्रह्म को भिन्न स्वतन्त्र मानना द्वैत कहाता है। माया को मिथ्या मानना और जीव ब्रह्म को एक मानना अद्वैत कहाता है।

(९) संशय=सन्देह। जीव ब्रह्म है, वा भिन्न है, ईश्वर से माया उत्पन्न है वा स्वतन्त्र ? ऐसे सन्देह। शोक=फिक्र करना कि जीव की कैसे मोक्ष होगी। दुःख की निवृत्ति क्यों कर हो सकै इत्यादि। मल=पाप, मल, विक्षेप, आवरण।

(१०) कसै=कसोटी पर लगा कर जाँचै वा ताव देकर साफ करै। निपानै=घड़ा जाय, बनै।

ज्ञान कौ प्रकाश जाकै अधकार भयौ नाश
देह् अभिमान जिनि तज्यौ जानि सार धी।
सोई सुख सागर उजागर वैरागर ज्यौं
जाकै वैन सुनत विलात है विकार धी॥
अगम अगाध अति कोऊ नहिं जानें गति
आतमा कौ अनुभव अधिक अपार धी।
ऐसौ गुरुदेव वदनीक तिहु लोक मांहि
सुदर विराजमान शोभत उदार धी॥ १२॥

काहू सौं न रोप तोप काहू सौं न राग दोष
काहू सौं न वैरभाव काहू की न घात है।
काहू सौं न वकवाद काहू सौं नहीं विषाद
काहू सौं न सग न तौ कोउ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है।
सुन्दर कहत सोई ईशनि कौ महाईश
"सोई गुरुदेव जाकै दूसरी न वात है"॥ १३॥

---

(१२) सारधी=सारग्राही वुद्धि द्वारा। विवेक बल से। वैरागर=हीरा। हीरा मणि के समान उजागर=शुद्ध कान्तिधारी और प्रशस्त वहुमूल्य। विलात=मिट जाय। बिकार धी=कलुषता की वुद्धि, कुत्सित वुद्धि।

मनहर छन्द=इसको कवित्त वा घनाक्षरी भी कहते हैं। ३१ अक्षर का, १६+१५ पर विराम, अन्त में एक गुरु। ('सवैया' नाम के ग्रन्थ मे यह छन्द आया सो कोई दोष नहीं क्योंकि ग्रन्थ में इन्दव से प्रारम्भ और उस ही सवैया की प्रधानता है। (देखिये भूमिका सवैया प्रकरण) (तथा परिशिष्ट "सवैया छन्द"।)

(१२) वन्दनीक=वन्दनीय, सेवायोग्य। उदार धी=सव पर कृपा की दृष्टि से सब पर परोपकार करने की वुद्धिवाला।

(१३) घात=हानि पहुचानेकी दाव-घात, वैरभाव। विषाद=क्लेश, मन का खिचाव।

लोह कौं ज्यौं पारस पषान हू पलटि लेत
कंचन छुवत होइ जग में प्रवानिये।
द्रुम कौं ज्यौं चन्दन हूं पलटि लगाइ वास
आपुके समान ताके शीतलता आनिये॥
कीट कौं ज्यौं भृङ्ग हू पलटि कै करत भृङ्ग
सोउ उडि जाइ ताकौ अचिरज मानियें।
सुन्दर कहत यह सगरे प्रसिद्ध बात
"सद्य शिष्य पलटै सु सत्य गुरु जानिये"॥ १४॥

गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहिं
गुरु बिन आतमा विचार न लहतु है।
गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु बिन प्रीति नाहिं
गुरु बिन शील हू सतोष न गहतु है॥
गुरु बिन प्यास नाहिं बुद्धि कौं प्रकाश नाहिं
भ्रम हू कौ नाश नाहिं संशय रहतु है।
गुरु बिन बाट नाहिं कौडा बिन हाट नाहिं
सुंदर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है॥ १५॥

---

(१४) पषान=पाषान, पत्थर। पलटि लेत=बदल कर सोना बना देता है। द्रुम=वृक्ष। भृङ्ग=कुम्हारी भौंरा जिसका ऐसा विश्वास है कि शब्द गुंजार से लटका भौंरा बनाता है। परन्तु यह बात मिथ्या है यह तो अण्डा गुञ्जाले में रख कर लट को उसमें घुसा कर मुह बन्द कर देती है अण्डा पक कर फूट कर बच्चा निकल कर उस लट को खा-पी कर मिट्टी की पापड़ी को सिर से फोड़ कर बाहर निकल आता है।

(१५) बाट=रस्ता, मार्ग। कौडा बिन हाट=न्यांणा पास हुये बिना दुकानदारी चल नहीं सकती, वैसे ही सच्चे ज्ञानोपदेश देनेवाले गुरु बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। यह मुहाविरा है। "आचार्यवान् भव" (श्रुति)—"गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुदेव महेश्वरः"—इत्यादि सहस्रों वचन हैं।

पढे के न बैठो पास आपिर न बाँचि सकै
बिन हिं पढे तें कैसें आवत है फारसी।
जौहरी के मिलै बिन परष न जानै कोइ
हाथ नग लिये फिरै संशै नहिं टारसी॥
वैद्यऊ मिल्यौ न कोऊ बूटी कौ बताइ देत
भेद बिनु पाये वाकै औषध है छारसी।
सुंदर कहत मुख रंच हू न देष्यौ जाइ
"गुरु बिन ज्ञान ज्यौं अंधेरै माहिं आरसी"॥ १६॥

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा कौं ग्रहै
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढै
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानें
गुरु के प्रसाद शून्य में समाधि लाइये।
सुन्दर कहत गुरुदेव जौ कृपाल होहि
तिन के प्रसाद तत्त्व ज्ञान पुनि पाइये॥ १७॥

---

(१६) बैठौ=बैठा। पास बैठना=संगति करना। आपिर=अक्षर। अक्षर वाचना=पढना। फारसी आवतन=फारसी भाषा प्राप्त नहीं हो सकती। अर्थात् अनजान पदार्थ का ज्ञान गुरु के बताने से ही आ सकता है। टारसी=कोई पुरुष (सन्देह) को नहीं मिटावैगा। बूटी=औषधि। छार सी=मिट्टी सी। वृथा। 'अन्धेरे मे आरसी'—कितना उत्तम उदाहरण है। वही ज्ञान सार्थक और सिद्ध-शुद्ध है जो गुरु द्वारा मिलै। गुरु प्रकाश के समान है। ज्ञान दर्पण समान है।

(१७) प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा। प्रेम प्रीति=भक्ति। युगति=युक्ति, साधन विधि। तिनके प्रसाद —प्रसन्न हुए गुरु से—'जो' का सम्बन्ध 'तिनके' से है, और इसका अर्थ तो भी हो सकेगा।

वूडत भौ सागर में आइकें वधावै धीर
पारऊ लघाइ देत नाव कौ ज्यौं पेवसौ।
पर उपकारी सव जीवनि के सारै काज
कवहू न आवै जाके गुननि कौ छेव सौ॥
वचन सुनाइ भय भ्रम सव दूर करै
सुदर दिपाइ देत अलप अभेव सौ।
औरऊ सनेही हम नीकै करि देवे सोधि
"जग मे न कोऊ हितकारी गुरुदेव सौ"॥ १८॥
गुरु तात गुरु मात गुरु वधु निज गात
गुरुदेव नख शिख सकल संवार्‌यौ है।
गुरु दिये दिव्य नैन गुरु दिये मुख वैन
गुरुदेव श्रवन दे शब्द हू उच्चार्‌यौ है॥
गुरु दिये हाथ पांव गुरु दियौ शीस भाव
गुरुदेव पिड माहि प्रान आइ डार्‌यौ है।
सुदर कहत गुरुदेव जू कृपाल होइ
फेरि घाट घरि करि मोहि निस्तार्‌यौ है॥ १९॥
कोऊ देत पुत्र धन कोऊ दल वल घन
कोऊ देत राज साज देव ऋषि मुन्यौ है।

---

(१८) लघाइ=तिरादे, पार उतार दे। पेवसौ=केवट की तरह। छेव=अन्त। भय=ससार का। भ्रम=सशय, अज्ञान। अलप=ईश्वर जो बुद्धि वा इन्द्रियों से जाना नहीं जाय। अभेव=अभेद। अखण्ड। वा बेपता, जिसका भेद न जाना जा सके, गुह्य, गुप्त। (अनन्य अक्षर कवि का "अभेद एकादशा" इसकी व्याख्या करता है)।

(१९) नख शिख सवार्‌यो=इस मानव देह को सुफल कर दिया। दिव्यनैन=अज्ञान की धुन्ध मिट कर ज्ञान का प्रकाश होने से दिव्यदृष्टि हो गया। श्रवन दे=उपदेश के मर्म को समझने की आन्तरिक बुद्धि वा शक्ति देकर।

कोऊ देत जस मान कोऊ देत रस आन
कोऊ देत विद्या ज्ञान जगत मे गुन्यौ है ॥
कोऊ देत ऋद्धि सिद्धि कोऊ देत नव निद्धि
कोऊ देत और कछु तातैं शीस धुन्यौ है।
सुन्दर कहत एक दियौ जिनि राम नाम
गुरु सौ उदार कोउ देष्यौ है न सुन्यौ है ॥ २० ॥
भूमि हू की रेनु की तौ सख्या कोऊ कहत हैं
भार हू अठारा द्रुम तिन के जो पात हैं।
मेघनि की सख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि
बूदनि की सख्या तेऊ आइ कें विलात है ॥
तारनि की संख्या सोऊ कही है पुरान माहि
रोमनि की संख्या पुनि जितनेक गात हैं।
सुन्दर जहा लौं जत सब ही कौ होइ अन्त
"गुरु के अनंत गुन कापै कहे जात हैं" ॥ २१ ॥

---

(१९) हाथ पाव=ज्ञान के उच्च लोक मे चढ़ने की शक्ति दी और सामग्री प्रदान की। शीस भाव=मस्तिष्क मे ईश्वर की भावना धारने को शक्ति दी। पिंड मांहि प्राण=गुरु के उपदेश से पूर्व अन्यथा ज्ञान के कारण मानो यह शरीर वा अत करण निर्जीव ही था। सत्यज्ञान के सचार से सजीव सा हो उठा। फेरि घाट घरि करि=इस देह (वा अन्त करणादि के ग्राम) को मानों फिर से बना कर सुडोल और योग्य बनाया, जैसे द्विजों में द्विजन्मा बनाने का वैदिक विधान है उस ही प्रकार दीक्षा देकर। निस्तार्यो=मोक्षमार्गी बना कर ससार से तार दिया।

(२०) घन=घना, बहुत। मुन्यौ=मुनिगण। आन=आतङ्क, प्रभाव। गुन्यौ है=गुना गया, क्रिया द्वारा सिद्ध हुआ, गुणगण। शीस धुन्यौ=सिर हिलाया, अफसोस करना (कि गुरु होकर यह क्या हुआ)। रामनाम=परमात्मा का नाम जिससे बढ कर और कोई पदार्थ उभय लोक मे नहीं। (२१) आइके विलाव=आकाश से पड़ कर नष्ट हो जाती हैं तो भी बुद्धिमानों ने उनकी गणना कर ली है।

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु उपदेशे सुतौ छूटै जम फदतें।
गोविन्द के किये जीव वस परे कर्मनि कैं
गुरु के निवाजे सो फिरत है स्वच्छद तें॥
गोविंद के किये जीव बूडत भौसागर मैं
सुन्दर कहत गुरु काढे दुख द्वंद तें।
और ऊ कहा लौं कछु मुख तें कहै वनाइ
"गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें"॥ २२॥

चितामनि पारस कलपतरु कामधेनु
और ऊ अनेक निधि वारि वारि नापिये।
जोई कछु देपिये सु सकल विनाशवंत
वुद्धि मैं विचार करि वहु अभिलापिये॥
तातें अव मन वच क्रम करि कर जोरि
सुन्दर कहत सीस मेलि दीन भापिये।
वहुत प्रकार तीनौं लोक सव सोधे हम
"ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगें रापिये"॥ २३॥

---

(२२) अधिक गोविन्द तें="गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागों पाइ। वलिहारी गुरुदेव की सतगुर दिया मिलाइ।"—सुन्दरदासजी ने गुरु की महिमा गोविन्द से भी वढा दी है।

(२३) वहु अभिलाषिये=यह उत्कृष्ट लालसा करें कि गुरु के लायक भेंट करने को कोई पदार्थ मिलें। रापिये=धरिये, अर्पण कीजे।

(२४) दासभाव=भक्ति के अनेक भावों में से प्रभु के चरणों का चाकर (हनुमानजी की तरह) वना रहना दृढ़ता से। तैंसे=उनके समान। अर्थात् प्रसिद्ध भगवद्भक्तों के समान वड़े पहुचवान महात्मा।

महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव
व्यासदेव शुक हू जैदेव नामदेव जू।
रामानन्द सुषानन्द कहिये अनंतानन्द
सुरसुरानन्द हू कै आनन्द अछेव जू॥
रैदास कवीरदास सोझादास पीपादास
धनादास हू कै दासभाव ही की टेव जू।
सुन्दर सकल संत प्रगट जगत माहिं
तैसैं गुरु दादूदास लागे हरि सेव जू॥ २४॥

गुरुदेव सर्वोपरि अधिक विराजमान
गुरुदेव सब ही तें अधिक गरिष्ट हैं।
गुरुदेव दत्तात्रय नारद शुकादि मुनि
गुरुदेव ज्ञान घन प्रगट वशिष्ट हैं॥
गुरुदेव परम आनन्दमय देपियत
गुरुदेव वर वरियान हूं वरिष्ट हैं।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे सिर इष्ट है॥ २५॥

योगी जैंन जंगम सन्यासी वनवासी वौध
और कोऊ भेष पक्ष सब भ्रम भान्यौ है।

---

(२५) वरिष्ट=(जैसे गुरु गरियान, गरिष्ट वैसे) अत्यन्त श्रेष्ठ।

(२६) भ्रम भान्यौं=उन मतों में जो भ्रम वा असत्य बातें थीं उनको मिटा दिया। तत=तत्व, तथ्य, वास्तविक पना। ऋषिसुर —मूल पुस्तकमें ऋपिसुर, मुनिसुर, कविसुर, पाठ है। परन्तु लय' और शुद्धताके कारण यह पाठ किया गया है। यद्यपि छंद उसही पाठ से ठीक था—"तापस ऋ—पिसुरमु—निसुर क — विसुर ऊ" ॥ छंद-भंग दोनों ही तरह नहीं है, कि अक्षर वे ही १६ वर्ण रहते हैं। शुद्ध शब्द हैं—ऋषीश्वर, मुनीश्वर, कवीश्वर। ऊ=भी (जैसे 'तेऊ' में)

तापस ऋषीसुर मुनीसुर कवीसुर ऊ
सवनि कौ मत देपि तत पहिचान्यौ है ॥
वेदसार तंत्रसार स्मृतिरु पुरान सार
ग्रन्थनि कौ सार सोई हृदै माहि आन्यौ है ।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है ॥ २६ ॥
जीते है जु काम क्रोध लोभ मोह दूरि किये
और सव गुननि कौ मद जिन भान्यौं है ।
उपजै न कोउ ताप शीतल सुभाव जाकौ
सव ही में समता सतोप उर आन्यौं है ॥
काहू सौं न राग दोप देत सव ही कौ पोप
जीवत ही पायौ मोप एक ब्रह्म जान्यौ है ।

---

(२६) —वेदसार=वेदोंका सार, वेदात (उपनिपद आदि)। तत्रशास्त्रों का सार-तन्त्र=आत्मवल की वृद्धि और मत्र द्वारा अनुष्ठान से व्यवहारिक और पार-मार्थिक सिद्धि की प्राप्ति का विधान। स्मृति=धर्मशास्त्र, व्यवहारिक और परमार्थिक कर्म्मों की विधियोंका ऋपियों द्वारा प्रतिपादन किया विधान संग्रह। पुराण=पाच लक्षणों वाला सृष्टि आदि का वर्णन व प्राचीन कथाओं का अनुक्रम इत्यादि का सग्रह। ग्र थनि=अन्य ग्रन्थ अन्य विद्याओ के (पट्शास्त्र, साहित्य, व्याकरण, कोप, काव्य इत्यादि शिल्प आदि के)।—एक आत्मा के अपरोक्ष, अनुभव से दिव्य दृष्टि हो जाती है तव सव जगत् और विद्याए हस्तामलक हो जाती है। इस ही को "अनुभव फुरना" कहते हैं। यही सिद्धि कहाती है जिससे वड़े २ चमत्कार प्रगट हो जाते हैं। आत्मा का वड़ा भारी लोक, आत्मा की वड़ी भारी ताकत और आत्मा का वड़ा-भारी खजाना है। वह अपार और अटूट है।

सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है॥ २७॥

॥ इति उपदेश गुरुदेवको अग ॥ १ ॥

॥ अथ उपदेश चितावनी को अंग (२) ॥

हसाल छन्द

(राम हरि राम हरि बोल सूवा)।

तौ सही चतुर तू जान परवीन अति परै जिनि पंजरै मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन गाइ गोविंद गुन जीति जूवा॥
आपु ही आपु अज्ञान नलनी बध्यौ बिना प्रभु विमुख कै वार मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥
नफ्स सैतान कौं आपुनी कैद करि क्या दुनी में पर्‍या पाइ गोता।
है गुनहगार भी गुनह हीं करत है पाइगा मार तब फिरै रोता॥
जिनि तुझै पाक सौं अजब पैदा किया तू उसै क्यौं फरामोस होता।
दास सुन्दर कहै सरम तबही रहै "हक्क तू हक तू बोलि तोता" ॥ २॥
आबकी बुन्द औजूद पैदा किया नैंन मुख नासिका करि सजूती।
ष्याल ऐसा करै उही लीये फिरै जागिकैं देषि क्या करै सूती॥

---

(२७) मद भान्यौ—जो गुणों का मिथ्या अभिमान करते थे उनका गर्व गजन किया। जीवतही पायो मोष=जीवन्मुक्त हो गये। दादूजी और उनके शिष्यों का जीवन्मुक्ति का सिद्धात था।

(उपदेश चितावनी) * हसाल छंद—३७ मात्राका छद जिसमे २० और १७ मात्रा पर विराम हो तथा अंत में यगण (।ऽऽ) हो। इसमें और कड़खा छद मे इतना ही भेद है कि कड़खा मे ८, १२, ८,९ पर विराम होता है, (१) पजरै=पिंजरे में। लाइ लै=पकड़ ले। जीति जूवा माया जाल का जूवा खेलमें जीत-वाले। नलनी=नली जिसको तोता पकड़े रहता है। कै वार मूवा=जन्म मरण पा चुका।

भूलि उस पसम कौं काम तें क्या किया वेगि दै यादि करि मरि निपूनीं ।
दास सुन्दर कहै सर्व सुख तौ लहै "भी तुही भी तुही बोलि तूतीं ॥ ३ ॥
अवल उस्ताद के कदम की पाक ह्वो हिरस वुगुजार सब छोडि फैना ।
यार दिल्दार दिल माहि तू याद कर है तुझी पास तू देषि नैंना ॥
जान का जान हैं जिदका जिंद है सपुनका सपुन कछु संमुझि सैंना ।
दास सुन्दर कहै सकल घट मैं रहे "एक तू एक तू बोलि मैंना ॥ ४ ॥

मनहर

कान के गये तें कहा कान ऐसौ होत मूढ
नैंन के गये तें कहा नैंन ऐस पाइहै ।
नासिका गये तें कहा नासिका सुगन्ध लेत
मुख के गये तें कहा मुख ऐसे गाइहै ॥
हाथ के गये तें कहा हाथ ऐसौ काम होत
पाव के गये तें ऐसै पाव कत धाइहै ।
याही तें बिचार देषि सुन्दर कहत तोहि
देह के गये तें ऐसी देह नहीं आइहै ॥ ५ ॥

बार बार कह्यौ तोहि सावधान क्यों न होहि
ममता को मोट सिर काहे कौं धरतु है ।
मेरौ धन मेरौ धाम मेरे सुत मेरी वांम
मेरे पशु मेरो ग्राम भूलौ यौं फिरतु है ॥

---

(३) वेगि दै=शीघ्र ।

(४) हिरस वुगुजार=कामना को छोड दे (फा०) । फैना । छल कपट । तुझी पास=तेरे अदरही । नैंना=ज्ञान चक्षु से । जान का जान=जीव का भी परम तत्व जीव-परमात्मा । जिंदका जिंद=जीवन का भी आदि कारण-परात्पर । सखुन का सखुन=सर्व उपदेशों का आदि कारण-महावाक्यों का परम तत्व । सैंना=गुरु की समझौती, इशारा । आत्मा के बारीक मर्म और रम्ज का भेद समझने के लिये प्रवचन

तू तौ भयौ बावरौ विकाइ गई बुद्धि तेरी
ऐसौ अन्धकूप गृह तामैं तू परतु है।
सुन्दर कहत तोहि नेंक हू न आवै लाज
काज कौ बिगारि कैं अकाज क्यौं करतु है ॥ ६ ॥

तेरें तौ कुपेच पर्‌यौ गाठि अति घुरि गई
ब्रह्मा आइ छोरै क्यौं ही छूटत न जबहू।
तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपेट राखै
कूकर की पूछ सूधी होइ नहीं तबहू॥
सासू देत सीष वहू कीरी कौं गनत जाइ
कहत कहत दिन बीत गयौ सबहू।
सुन्दर अज्ञान ऐसौ छाड्यौ नहिं अभिमान
निकसत प्रान लग चेत्यौ नहिं कबहू ॥ ७ ॥

बालू माहि तेल नहिं निकसत काहू विधि
पाथर न भीजै बहु बरषत घन है।
पानी के मथे तें कहुं घीव नहिं पाइयत
कूकस कैं कूटे नहिं निकसत कन है॥
शून्य कू मूठी भरे तें हाथ न परत कछु
ऊसर के बाहें कहा उपजत अन है।

और विवाह की आवश्यकता नहीं। कहने सुनने से क्या प्रयोजन। वहा तो ज्ञान का इशारा गुरु का आत्मा से शिष्य की आत्मा मे ज्ञान सचार कर देता है। सोवा, तोता, तूती और मैना यह प्यारा जीव है जो काया पिजरे मे रहता है।

(६) विकाइ गई बुद्धि=विषयादि हीन-मूल्य पदार्थों मे यह बुद्धि-हीरा वृथा खोया गया।

(७) कीरी कौं गनत=कीड़ी समान मानैं। निरादर करैं।

उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि
सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥
वैरी घर माहि तेरे जानत सनेही मेरे
दारा सुत वित्त तेरौ पोसि पोसि पाहिंगे।
और ऊ कुटंब लोग लूटैं चहुं वोरही तें
मीठी मीठी बात कहि तोसौं लपटाहिंगे॥
सकट परैगौ जब कोऊ नहिं तेरौ तब
अतिहि कठिन बाकी बेर वुटि जाहिंगे।
सुन्दर कहत तातैं झूठौ ही प्रपंच यह
सुपनै की नाहिं सब देपत विलाहिंगे ॥ ६ ॥
बारू कै मदिर मांहि वैठि रह्यौ थिर होइ
रापत है जीवने की आसा कैऊ दिन की।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी
विनसत वार कहा षवरि न छिन की॥
करत उपाइ झूठे लैन दैन पान पान
मूसा इन उत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूलौ शठ
"चञ्चल चपल माया भई किन किन की" ॥ १० ॥

---

(८) कूकस=थोथा घास। ऊसर=नहीं उपजाऊ भूमि। मन का पाठातर तन' भी है। परंतु मन शब्द से अर्थ का गौरव होता है।

(९) सनेही=प्रेम करने वाले, मित्र। जानत=तू यह जानता है कि ये (मेरे सनेही हैं ?) कठिन बाँकी बेर वुटि=सकट और टेढ़े मेढे अवसर आने पर पूठ फेर जांयगे। पाठांतर "कठिनता की बेर उठि"।

(१०) मिनकी=बिल्ली (काल, मृत्यु)। मूसा=चूहा (जीवात्मा, शरीरधारी प्राणी)। भई किन किन की=किसी की भी नहीं हुई।

श्रवनू लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि
नैंनवा लै जाइ करि रूप वसि कर्यौ है।
नथुवा लै जाइ करि वहुत सुघावै फूल
रसनू लैजाइ करि स्वाद मन हर्यौ है॥
चरनू लै जाइ करि नारी सौं सपर्श करै
सुन्दर कोउक साध ठगनि तें डर्यौ है।
"कांम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग
"ठगनि की नगरी में जीव आइ पर्यौ है" ॥ ११ ॥

पायौ है मनुप देह औसर बन्यौ है आइ
ऐसौ देह बार बार कहौ कहां पाइये।
भूलत है वावरे तू अवकै सयानौ होइ
रतन अमोल यह काहे कौ ठगाइये॥
समुझि विचार करि ठगनि कौ सग त्यागि
ठगावाजी देप कहु मन न डुलाइये।
सुन्दर कहत तोहि अव सावधान होइ
"हरि को भजन करि हरि में समाइये" ॥ १२ ॥

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन
भीजत ही गरि जात माटी कौ सौ ढेल है।
मुक्ति हु कै द्वारै आइ सावधान क्यौं न होहि
वार वार चढत न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुकृत हरि भजन अखड उर
याही मैं अतर परे या मैं ब्रह्म मेल है।

---

(११) श्रवनू=कान (इद्रिय) ऐसे नाम देकर पुरुष वभाव दिया है। नथुवा=नाक। रसनू=जीभ, कोउक साध=कई विशेष साधनसे सावधान जितेंद्रिय महापुरुष महात्मा।

(१२) ठगावाजी=ठगी, ठग विद्या। सयानौ=सयाना, सावधान समझदार।

मनुष जनम यह जोति भावै हारि अव
सुन्दर कहत यामैं जूवा कौ सौ पेल है ॥ १३ ॥
जोवन कौ गयौ राज और सब भयौ साज
आपुनि दुहाई फेरि दमामौ बजायौ है।
लकुटी हथ्यार लिये नैंननि को ढाल दीये
सेत बार भये ताकौ तबू सौ तनायौ है ॥
दसन गये सु मानौ दरबान दूरि कीये
जौगरी परी सु औरै बिछौना बिछायौ है।
सीस कर कपत सु सुन्दर निकार्‌यौ रिपु
"देषत ही देषत बुढापौ दौरि आयौ है" ॥ १४ ॥

इन्दव

षींच तुचा कटि है लटकी कचऊ पलटे अजहू रत बामी।
दंत भया मुख के उपरे नपरे न गये सुपरौ पर कामी ॥

---

(१३) त्रिया को सो तेल हैं=स्त्रीके विवाह में, कुमारी के, तेल जो चढाया जाता है, तब ही चढ़ता है दुबारा नहीं चढ़ता है, वैसे ही नरदेह बार २ नहीं मिलती। "तिरिया तेल हमीर हठ चढै न दूजी बार"। याही में=इस देह ही में-परमात्मा से दूर रह जाय और इस ही में उस की प्राप्ति हो जाय यह कर्म्म, ज्ञानके आधीन हैं।

(१४) गयो राज=दौर खतम हो गया। और सब भयो साज=रंग-ढग बदल गये, अवस्था और ही हो गई। दमामो बजायो=नक्कारा बजा चुका, जो कुछ करना था कर चुका। ढाल दीये=अधा हो गया, यही मानों आंखों पर ढकनी ही ढाल हो गई। तबू सो तनायो हैं=कूच की मजिल पर डेरा डाल दिया, चलने की निशानी है। जौगरी=शरीर की खाल ढीली होकर सिमट गई। बिछौना=विश्राम लेने का निशान है, अत समय की सामग्री है, यह यौवन की समय की सेज नहीं है। निकार्‌यो रिपु=काम क्रोधादि शरीरस्थ महान् रिपुओंने मार पीट कर राज्य छीन कर देश बाहर कर दिया। उनके डरसे कांपता है मानों।

कंपति देह सनेह सु दंपति संपति जंपति है निश जामी।
सुन्दर अंतहु भौन तज्यौ न भज्यौ भगवत सु लौन हरामी ॥१५॥
देह घटी पग भूमि मडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लईजू।
आपिहु नाक परै मुख तें जल सीस हलै कटि घींच नईजू॥
ईश्वर कौं कबहू न सभारत दुख परै तब आहि दई जू।
सुन्दर तौहु विषै सुख बंछत 'घोरे गये पै वगँ न गई जू' ॥ १६ ॥
पाई अमोलिक देह इहै नर क्यौं न विचार करै दिल अन्दर।
काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु लूटत हैं दस हू दिसि द्वन्दर॥
तू अब बछत है सुरलोकहि कालहु पाइ परै सु पुरदर।
छाडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि 'आतम राम भजै किन सुन्दर' ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मानत है शठ याहित तें बहुते दुख पावै।
ज्यौ जल में झष मांस हि लीलत स्वाद बध्यौ जल बाहरि आवै॥

---

(१५) घींच=गरदन । तुचा=त्वचा, खाल । कटि=कमर । कच=सिरके बाल । रतबामी=वामरत, स्त्री का प्रेमी । हत भया=हे भइया—तेरे । दांत अथवा दांत जो जन्म भर बहे, अर्थात् खाते चावते रहे सो । नपरे=नखरे, मिजाजीपन, हाव-भाव नजाकत । सुषरौ=असली, सचमुच, पक्का (खरा) षर=खर, गधा (गधेके समान कामी) दपति=स्त्री पुरुषों का बुड्ढा हो जाने पर भी प्रेम हैं । जपति=(धन दौलत का ही) स्मरण करता है , जिक्र होता है । बोलता है । निसजामी=यहां रात दिन, दिन दिन प्रति । अथवा सुखभोग में रात्रि एक (याम) पहर सी बीतती है । लौन हरामी=नमक हरामी स्वामी-विमुख । ईश्वर को कृतज्ञता न अर्पण करने वाला ।

(१६) नई=झुकी । आहि दई=हाय भगवान ! (पुकारना) वगँ=पशुओं पर एक दुष्ट मक्खी (मुहावरा है) ।

(१७) द्वद्वर=विषयादिक । परै सु पुरन्दर=इद्र भी गिरै, नाशै । (इसमें "किरीट" सवैया है) ।

ज्यौं कपि मूठि न छाडत है रसना वसि वदि पर्यौ विल्लावे।
सुन्दर क्यौं पहिल न सभारत 'जौ गुर पाइ सु कांन विधावे' ॥१८॥
कौंन कुबुद्धि भई घट अतर तू अपनौ प्रभु सौं मन चौरे।
भूलि गयौ विषया सुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थोरे॥
ज्यौं कोउ कचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फौरे।
सुन्दर या नर देह अमोलिक 'तीर लगी नवका कत बोरै' ॥ १९ ॥
देषत कै नर सोभित हैं जेसें आहि अनूपम केरि कौ षभा।
भीतरि तो कछु सार नहीं पुनि ऊपर छीलक अंवर दंभा॥
बोलत हैं परि नाहिं कछू सुधि ज्यौ ववयारि तें वाजत कुंभा।
रूसि रहै कपि ज्यौं छिन माँहिं सु याहि तें सुन्दर होत अचंभा ॥२०॥
देषत के नर दीसत हैं परि लक्षन तौ पसुके सब ही हैं।
बोलत चालत पीवत षात सु वै घरि वै वन जात सही हैं॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत सुन्दर यौं नित भार वही हैं।
और तौ लक्षन आइ मिलै सब एक कमी सिर शृंग नहीं हैं ॥२१॥
प्रेत भयौ कि पिशाच भयौ कि निशाचर सौ जित ही तित डोलै।
तू अपनी सुधि भूलि गयौ मुख तें कछु और की औरई बोलै॥
सोइ उपाइ करै जु मरै पचि बंधन तौ कबहूं नहि षोलै।
सुन्दर जा तन मैं हरि पावत सो तन नाश कियौ मति भौले ॥२२॥

---

(१८) गुर=गुड़ (मुहाविरा है)।

(१९) कत=क्यों, किस लिये।

(२०) अवर दभा=ढोंग का वेश। बवयारि=मुहकी फूक (घड़े में बोलने से।

(२१) भारवही=भार बाहने वाला, पशु। "यथा खरश्चन्दन भारवाही"।

(२२) मरै=अज्ञानवश ऐसे उपाय (काम) करता है जिन से उलटा मरता है—कुगति को पता है। भौलै=भूलकर भी।

पेट तें बाहिर होतहि बालक आइकैं मात पयोधर पीनौं।
मोह बढ्यौ दिन ही दिन और तरुन्न भयौ त्रिय कै रस भीनौं ॥
पुत्र पउत्र बंध्यौ परवार सु ऐसि हि भाति गये पन तीनौं।
सुन्दर राम कौ नाम बिसारिसु आपुहि आपु कौ बधन कीनौं ॥२३॥
मात पिता सुत भाई बंध्यौ जुवती के कहे कहा कान करै है।
चौरी करै बटपारी करै किरषी बनजी करि पेट भरै हैं ॥
शीत सहै सिर घाम सहै कहि सुन्दर सो रन माहि मरै है।
बांधि रह्यौ ममता सबसौं नर ताहि तें बांध्यौइ बाध्यौ फिरै है ॥२४॥
तू ठगि कै धन और कौ ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सबही जरि जाइ सु तूं दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकिम कौ डर नाहि न सूझत सुन्दर एक हि बार निचौरै।
तूं परचै नहि आपु न पाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि ले बौरै ॥२५॥

मनहर

करत प्रपंच इनि पंचनि कै बसि पर्‍यौ।
परदारा रत भै न आनत बुराई कौ।
पर धन हरै पर जीव की करत घात
मद्य मांस खाइ लव लेश न भलाई कौ ॥
होइगो हिसाब तब मुखतें न आवै ज्वाब।
सुन्दर कहत लेषा लेव राई राई कौ ॥

---

(२३) पयोधर=स्तन, बोबा। पीनौं=पीया, पान किया। पन तीनौं=तीन अवस्थाएं-बालपन, जवानी, बुढापा।

(२४) किरषी=कृषी, खेती। बांध्यौ=बधा हुआ। (ममता, मायाजाल से लिप्त) बधन में पड़ा है, फसा हुआ है।

(२५) एकहि बार निचौरै=(हाकिम लोग) मुकद्दमों में बड़ी घूसें लेकर बटोरे धन को सूत लेते हैं। डुबोरै=खावै।

इहा तें किये विलास-जम की न तोहि त्रास,
उहा तौ न ह्वै है कछु राज पोपावाई को ॥ २६ ॥
दुनिया कौ दौडता है औरति कौ लोडता है,
औजूद कौ मोडता है बटोही सराइ का।
मुरगी कौं मोसना है बकरी को रोसता है
गरीबौं कौं पोसता है बेमिहर गाइ का ॥
जुल्म कौ करता है धनी सौ न डरता है
दोगज कौं भरता है पजाना बलाइ का।
होइगा हिसाब तब आवैगा न ज्वाब कछु
सुन्दर कहत गुन्हगार है पुदाइ का ॥ २७ ॥
कर कर आयो जब पर पर काट्यौ नार
भर भर बाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दर दौर्‍यौ जाइ नर नर आगै दीन
बर बर बकत न नैक अलसान्यौ है ॥

---

(२६) भैं=भय, डर। उहां=ईश्वर के घर। पोपांवाई=प्रसिद्ध पोल्का राज्य "टके सेर भाजी टके सेर खाजा।" 'सब धान बाईस पसेरी'। यह कुम्हार की लड़की खडेले के राजा के यहा प्रधान हो गई थी सो उसने एसा राज्य जमाया और आप ही फांसी लटकी थी।

(२७) लोडता है=लड़ता है या लाड करता है। बटोही=राहगीर मुसाफिर। यह ससार सराय है। थोड़ी देर ठहरने का स्थान है। मोसता है=उसकी गर्दन मरोड़ कर मार डालता है। हिसा करता हैं। रोसता है=रोस (क्रोध) करके मारता है, जिवह करता है, काटता है,। (यह अप्रशस्त शब्द है) रोंधना का रूपान्तर हो सकता है। बेमिहर=निर्दयी (गाय के वास्तै) यह मुसलमानों के प्रति कहा गया है।

Engrav d & print d by   Ga a Art Pr ss Cal

सर्प बन्ध । (११)

मनहर छन्द

जनम सिरानो जाय भजन विमुख सठ,
काहेको भवन कूप विन मीच मरि है।
गहत अविद्या जानि शुकनलिनी ज्यौंमूढ़
करम विकरम करत नहिं डरि है॥
आपुही ते जात अध नरकन बार बार,
अजहूं न शंक मन माहिं अब करि है।
दुःख को समूह अवलोकि के न त्रास होइ,
सुंदर कहत नर नागपासि परि है॥११॥

नोट—यह नागबन्ध 'सवैया' ग्रन्थ के अंग उपदेश चितावनी का २० वां छन्द है।

पढ़ने की विधि—

सर्प के मुखके पास 'ज' अक्षर से आरम्भ करें कि जिस पर एक का अंक है। प्रथम चरण को सर्प के पहिले मरोड़े में होकर पढ़ते हुए दूसरे मरोड़े के आधे पर 'मरि है' पर पूर्ण करे। आगे 'ग' से प्रारंभ कर जिसपर २ का अंक लगा हुआ है, और तीसरे मरोड़े में होकर पढ़ते हुए चौथे के आधे में पूर्ण करे। इसही प्रकार तीसरे और चौथे चरणों को चौथे और छठे मरोड़ों के मध्य में पढ़ें जहां ३ और ४ के अंक लगे हुए हैं। चौथा चरण का भाग छन्द ही सर्प की पूंछ में समाप्त होता है॥

सर सर साधै धन तर तर तौरै पात
जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है।
फर फर फूल्यौ फिरै डर डरपै न मूढ
हर हर हंसत न सुन्दर सकान्यौ है ॥ २८ ॥

जनम सिरानौ जाइ भजन विमुख शठ
काहे कौ भवन कूप विन मीच मरिहै।
गहित अविद्या जानि शुक नलिनी ज्यौं मूढ
करम विकरम करत नहिं डरिहै॥
आपु ही तैं जात अध नरकनि बार बार
अजहु न शक मन मांहि अब करिहै।
दु:ख कौ समूह अवलोकिकें न त्रास होइ
सुन्दर कहत नर नागपासि परिहै ॥ २९ ॥

ऐसा चिन्ह जिन छन्दों के अंत में लगा है, वे चित्रकाव्य हैं। देखो चित्रकाव्यों के चित्रों को तथा सूची को।

(२७) दोजग=दोजख, (फारसी) नरक। पजाना बलाइ का=बलाओं (दोषों, पापों) का भंडार बनता है।

(२८) यह चित्रकाव्य है, देखो सूची और चित्रों में। कर कर=पूर्वजन्म के कर्म करके यहां आया, जन्मा। पर पर=खरड़ खरड़ भोंटे ओजार वा फरडे से रगड़ कर। नार=नाल (नाला नाभिका बच्चे का) भर भर=भड़ भड़ शब्द होकर। दर दर=दरवाजे दरवाजे। प्रत्येक मनुष्य के आगे। बर बर=बड़ बड़, बहुत वाचाल। अलसान्यौ=मुरझाया, थका, वा आलस्य किया। सर सरड़=सरड़ सड सृत कर लावे। वा आहिस्ता होले होले लावै। तर तर=तरु तरु, प्रत्येक वृक्ष के, अर्थात् जहां २ मिले वहीं से धन बटोरै। जर जर=जरड़ जरड़ शब्द के साथ। वृक्ष काटे। वा अन्य पुरुषों की जड़ काट अपना स्वार्थ करे। डर डरपै=भय के पदार्थ वा काल से भी। हर हर=हड़ हड़ शब्द से, जोर से।

(२९) यह भी चित्रकाव्य है। सिरानौ=बीता। गहित=गृहीत, पकड़ा

जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम
काम कौ न तन मन घेरि घेरि मारिये।
झूठ मूठ हठ त्यागि जागि भागि सुनि पुनि
गुनि ज्ञान आन आन वारि वारि डारिये॥
गहि ताहि जाहि शेष ईस सीस सुर नर
और वात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुन्दर दरद पोइ धोइ धोइ वार वार
सार सग रग अग हेरि हेरि धारिये॥ ३०॥—
झूठौ जग एन सुन नित्य गुरु वैंन देपै
आपुने हू नैंन तोऊ अध रहे ज्वानी मैं।

हुआ। जानि=जान वूझकर, वा तू जान ले। विकरम=विकर्म, वुरे काम। पाप। अज हू और अव-दोनों शब्द-मिलकर अर्थ का वल वढ़ाते हैं। अर्थात् शीघ्र, अव देर न कर। नागपास=एक प्रकार की तांत्रिक पाश व फंदा जिसमें प्रवल शत्रु को वांध लेते हैं। सुन्दरदासजी ने नागवध चित्रकाव्य रचा है और नागपाश ही नाम दिया हैं। यह ससार भी नागपास की तरह भयावक दृढ वधन है, विना प्रवल उपाय के छूट वा टूट नहीं सकता है।

(३० चित्रकाव्य) जगमग=जगत के मार्ग मैं। पग तजि=पग धरना, जाना छोड़, अर्थात् संसार त्याग दे। सजि=ऐसी सामग्री कर। तन=शरीर (यदि भजन नहीं हुआ इससे तो) काम का नहीं। घेरि २—जिधर मन डुलै उधर से पकड़ कर लावै। झूठ मूठ=मिथ्या माया में ससर्ग की धृष्टता मत कर। सुनि=श्रवण कर। गुनि=मनन कर। ज्ञान आन=निदिध्यासन कर। आन=ज्ञान से अन्य पृथक अज्ञान।

मिथ्या=अविद्या। वारि वारि डारिये=निछावर करके तकिये। गहि=ग्रहण कर। शेष=उस माया और गुण से अविशिष्ट ब्रह्म को जो देव और मनुष्यों का ईश्वर है उसे शिर पर धारो। बात हेत=माया में ससर्ग। फेरि २=वारवार। जारिये=नाश कीजे। मिटा दीजे।

केते राव राजा रंक भये रहे चलि गये,
मिलि गये धूर माही आये ते कहानी मैं।
सुन्दर कहत अव ताहि न सुरत आवै,
चेतै क्यौं न मूढ चित लाय हिरदानी मैं।
भूले जन दाव जात लोह कौ सौ ताव जात,
आप जात ऐसे जैसैं नाव जात पानी मैं॥ ३१ ॥*

डुमिला

हठ योग धरौ तन जात भिया हरि नाम विना मुख धूरि परै।
शठ सोग हरौ छन गात किया चरि चांम दिना भुप पूरि जरै॥
भठ भोग परौ गन पात धिया अरि काम किना सुख भूरि मरै।
मठ रोग करौ घन घात हिया परि राम तिना दुख दूरि करै॥ ३२ ॥

इस २ रे अग में मूल पुस्तक फतहपुरवाली (क) में जो छन्द १२ वां है वही अन्त में दो वारा लिखा हुआ था सो छोड़ दिया गया। और यह ३१ वां छद उस (क) पुस्तक में इस अग मे नहीं है, इससे लिखा गया।

(३१) एन=खास, तत्वत वा, जमाना। देषै=अपने स्थूल नेत्रोंसे व्यवहारिक वा चर्म दृष्टि से पदार्थों को देषे तो अज्ञानी ही रहै। हिरदानी=हृदय, मन (हिरदा + दानी) हृदय का स्थान, अतरात्मा। हरिदानीं भी पाठ है। दाव=यह मनुष्य देह निस्तार होनेका मोका वा अवसर है। ताव=ताता लोह ही कूटने से वढता वा बनता है ऐसे ही जवानी वा मनुष्य देह है। नाव=जमीन पर नाव नहीं चल सकती है। आव=आय। आयु वीती जाती है।

३२, ३३—"डुमिला छन्द"=दुमिल सवैया-आठ सगण (॥ऽ) का-२४ अक्षर का छद सवैया का भेद है। (देखो छद तालिका परिशिष्ट),

(३२)—(चित्रकाव्य)—भिया=हे भाई! अथवा वहता (वीतता) जाता है। 'भया' भी पाठ है। हठयोग के साधन से शरीर नीरोग और मन वश होता

गुरु ज्ञान गहै अति होइ सुखी मन मोह तजै सब काज सरै।
धुर ध्यान रहै पति षोइ मुखी रन लोह बजै तब लाज परै॥
सुरतान उहै हति दोइ रुपी तन छोह सजै अब आज मरै।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी जन वोह रजै जब राज करै॥३३॥ *

॥ इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ २ ॥

है, परन्तु योग साधन केवल करने से ही काम नहीं चलैगा। भगवान् का भक्तिपूर्वक भजन करो। धूरि परै=किरकिरी होय। तिरस्कार होवे। सठ सोग=हे मूर्ख! अथवा मूर्खों का सा (ससार को) शोक, हरो=निवारण करो। छन=क्षण–क्षण भर। वा क्षणिक, क्षणभंगुर। चरि=चरकर खाकर। वा चरच कर अलकृत करके, आभूषणों से सज्जित हुआ। चांम=गात्र, चमडे का शरीर भुष=भुक्त, भुगतने पर पूरि=पूरमें, काष्ठादि में, वा पूर्ण, पूरा हो जाने पर। जरै=(अग्नि में) जलै। भठ=भट्टी (भाड़, अग्निकुण्ड)

भोगादिक इस योग्य हैं कि जला दिये जांय तो कोई हानि नहीं। गन=गणना करो, हिसाब लगाओ। षात धिया=वुद्धि द्वारा आत्मा को खा जाते है अर्थात् बिगाड़ते हैं। भोग जिनका समाधान वुद्धि करती है वेजाने वूझे, हमारी आत्मा की वहुत हानि करते हैं। अरि काम किना=शत्रु का सा काम किया। झूरि=वहुत रो २ कर, अर्थात् सुखों और भोगों के लिये जो बहुत लालायित हुये वे अपने शत्रु आपही हुये और यों मरे, नाशको प्राप्त हुये। वे आत्मा-हत्यारे वने। मठ रोग=योगाश्रम में स्थित योग की विडवना झंझट भलेही करो। घन घात हिया परि=(हिया) मन पर वहुत ताड़ना देकर उसके ऊपर दवाव डालो। (परन्तु) उन विधानों से सिद्धि सदिग्ध है। केवल राम (ब्रह्म) ही संसार के दुःखों को मिटा सकते हैं। अथवा मठ शरीर, हिया,-मन, इन पर भले ही यम नियम व्रत तप आदिका प्रभाव डाल कर सताओ, परन्तु दुःख तो राम ही मिटावैगा।

* (३३)—(चित्र काव्य)—गुरु द्वारा सच्चा अद्वैत ज्ञान प्राप्त करके सत्यानन्द में मग्न हो जानेसे मन का ससार मोह मिट जानेसे मोक्ष प्राप्ति कर कार्य सिद्ध होता

॥ ३ ॥ अथ काल चितावनी को अंग ॥

इदव

मंदिर माल विलाइति हैं गज ऊंट दमामे दिना इक दोहै।
तात हु मात त्रिया सुत बंधव देषि धौं पामर होत विछोहै॥
झूठ प्रपंच सौं राचि रह्यौ शठ काठ की पूतरि ज्यौं कपि मोहै।
मेरि हि मेरि करै नित सुन्दर आप लगै कहि कौंनको को है॥ १ ॥
ये मेरे देश विलाइति हैं गज ये मेरे मंदिर या मेरी थाती।
ये मेरे मात पिता पुनि बंधव ये मेरे पूत सु ये मेरे नाती॥
ये मेरि कामिनि केलि करैं नित ये मेरे सेवक हैं दिन राती।
सुन्दर वैसैं हिं छाडि गयौ सब तेल जर्यौ रु बुझी जब बाती ॥ २ ॥

है। और ससार की कल्पित प्रतिष्ठा को त्याग कर भगवत् की ओर सन्मुख होनेवाला स्वामी धर्मपरायण, पुरुष ध्यानावस्थित होकर, इन्द्रिय और विषयादि शत्रुओं से युद्ध करेगा तब ही उस को अपने पन की रक्षा की लाज मनमें आवेगी। वही सुलतान। (बादशाह-सम्राट) है। जो पुरुष प्रतिष्ठा को त्याग देता है और शरीर मे शूरता का उत्साह करता है तब लड़ता है और मरने को तयार रहता है—'अबहि मृत्यु किन होई' ऐसा निश्चय दृढ़ रखता है परन्तु युद्ध से नहीं हटता है। तब ही वह 'पुर थान' (परम धाम, परम गति) राजनगर को पाता है, और अपनी बुद्धि के मल-विक्षेप आवरन दोषों को ज्ञान के पवित्र जलसे धोकर (निर्धूत-कल्मष) शुद्ध हो जाता है। ऐसे रजपूती करता है वही राज्य, (अक्षय-साम्राज्य) को पा सकता है।

(काल चितावनी) छन्द (१)—धौं=(देख) तो सही, कि। वा किस तरह, झट ही। पामर=हे पापी जीव। काठ की पूतरि=काठका बना हुआ बंदर—पुतली देख सच्चा बंदर उसको असली मानता है। वैसे इस माया के इन्द्रजाल को सच्चा ससार मान मनुष्य फसा है। आप लगै=मरजाने पर।

(२) थाती=धनकी धरोहर गाड़ी हुई। तेल जर्यो=शक्ति घटी, आयु बीती। बाती=बत्ती, शरीर। पल फेरी=एक पलक में पलटा खा जाता है।

तैं दिन च्यारि विराम लियौ सठ तेरे कहैं कछू है गइ तेरी ।
जैसैं हि बाप ददा गये छाडि सु तैसैं हि तू तजिहै पल फेरी ॥
मारि है काल चपेटि अचानक होइ घरीक मैं राप की टेरी ।
सुन्दर लै न चलै कछु संग सु "भूलि कहै नर मेरि हि मेरी" ॥ ३ ॥
कै यह देह जराइ कै छार किया कि किया कि किया कि किया है ।
कै यह देह जिमी महिं पोढ़ि दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ।
कै यह देह रहै दिन चारि जिया कि जिया कि जिया कि जिया है ।
सुन्दर काल अचानक आइ लिया कि लिया कि लिया कि लिया है ॥ ४ ॥
संत सदा उपदेश बतावत केश सबै सिर सेत भये हैं ।
तू ममता अजहू नहिं छाडत मौति हू आइ सदेश दये हैं ॥
आज कि काल्हि चलै उठि मूरप तेरे हि देषत केते गये हैं ।
सुन्दर क्यौ नहिं राम सभारत या जग मैं कहि कौन रहे हैं ॥ ५ ॥
देह सनेह न छाडत है नर जानत है सठ है थिर येहा ।
छीजत जाइ घटै दिन ही दिन दीसत है घट कौ नित छेहा ॥
काल अचानक आइ गहै कर ढाहि गिराइ करै तन पेहा ।
सुन्दर जानि यहै निहचै धरि एक निरजन सौं करि नेहा ॥ ६ ॥
तू कछु और विचारत है नर तेरौ विचार धर्यौ ई रहैगौ ।
कौटि उपाइ करै धन कै हित भाग लिष्यौ तितनौ ई लहैगौ ॥
भोर कि साझ घरी पल माझ सु काल अचानक आइ गहैगौ ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुन्दर यौं पछिताइ कहैगौ ॥ ७ ॥

---

(४) किया कि किया कि' (इत्यादि) क्रिया की वार वार उक्ति अर्थ को बलवान और भाव की दृढ़ता तथा काल के क्रम को दिखाती है—अर्थात् ऐसा होता ही रहता है, यह बात रीति जगत् में दृढ़ निश्चित है ।

(५) दये=दिया ।

(६) येहा=यह । छेहा=छेह, अत । पेहा=खेह, राख

(७) लहैगो=पावैगा, मिलैगा ।

भूलि गयौ हरि नाम कौ तू सठ देपि यौ कौन सयोग वन्यौं है।
काल अचानक आइहै या कठ पेपि धौ झूठौ सौ तानौ तन्यौ है॥
छार करै सव चाम कौ लूटै जु आदि कौ ऐसौहि जीव हन्यौ है।
कोउ न होत सहाइ कौं कूटै अनादि कौ सुन्दर यासौं सन्यौ है॥ ८॥
वीति गये पिछले सव ही दिन आवत हैं अगिलौ दिन नेरै।
काल महा वलवत वडौ रिपु साधि रह्यौ सिर ऊपर तेरै॥
एक घरी महिं मारि गिरावत लागत ताहि कछू नहि वेरै।
सुन्दर सत पुकारि कहै सवहूं पुनि तोहि कहू अव टेरै॥ ९॥
सोइ रह्यौ कहा गाफिल ह्वै करि तो सिर ऊपर काल दहारै।
धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै॥
ज्यौं वन मैं मृग कूदत फादत चित्रक लै नख सौं उर फारै।
सुन्दर काल डरै जिहिं कै डर ता प्रभु कौ कहि क्यौं न सभारै॥ १०॥
चेतत क्यौं न अचेतन ऊंघन काल सदा सिर ऊपर गाजै।
रोकि रहे गढ कै सव द्वारनि तू तव कौन गली होइ भाजै॥
आइ अचानक केस गहै जव पाकरि कै पुनि तोहि झुलाजै।
सुन्दर कौन सहाइ करै जव मूंड हि मूड भराभरि वाजै॥ ११॥
तूं अति गाफिल होइ रह्यौ सठ कुजर ज्यौं कछु शक न आनै।
माइ नहीं तन मैं अपने वल मत्त भयौ विपया सुख ठानै॥

---

(८) कौन सयोग=मनुष्य देह, अच्छा कुल, अच्छी सतसगति आदिकी प्राप्ति।

(९) साधि रह्यो=तीर का निशाना लगा रहा।

(१०) धामस धूमस=धूमधाम। लागि रह्यो=दाव घात कर रहा है। चित्रक=चीता।

(११) ऊघ न=मत ऊघै। पाकरिके=(पाकरिकै)=पकड़ करके। झुलाजै=झुलावै, लटकावै। मूडहि मूड भराभर वाजै=आपस मे सिर टकरावै, लड़ाई होने लग जाय और मांथे फूटने लगैं।

पोसत पासत वै दिन वीतत नीति अनीति कछू नहिं जानैं ॥
सुन्दर केहरि काल महारिपु दंत उपारि कुंभस्थल भानैं ॥ १२ ॥
मात पिता जुवती सुत बंधव आइ मिल्यौ इन सौं सनमंधा।
स्वारथ कै अपने अपने सब सो यह नाहिं न जानत अंधा॥
कर्म विकर्म करै तिन कै हित भार धरै नित आपनैं कंधा।
अंत विछोह भयौ सब सौं पुनि याहि तें सुन्दर है जग धंधा॥ १३ ॥

मनहर

करत करत धंध कछुव न जानै अंध
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दैं।
जैसें बाज तीतर कौं दावत अचानचक
जैसें वक मछरी कौं लीलत लपाकि दै॥
जैसें मक्षिका की घात मकरी करत आइ
जैसें सांप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै।
चेति रे अचेत नर सुन्दर संभारि राम
ऐसें तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै॥ १४ ॥
मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब
मेरौ धन माल मैं तौ बहुविधि भारौ हौं।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटै नाहि
मेरी जुवती कौं मैं तौ अधिक पियारौ हौं॥

---

(१२) षोसत षासत=आप छीने और दूसरों से छिनावें (मुहावरा)। केहरि=सिंह। कुंभस्थल=गंडस्थल। ललाट मस्तक।

(१३) सनमधा=सम्वन्ध। जगधंधा=संसारका कार व्यवहार। अथवा यह जगत धंधा (कार्य्यरूप) मात्र है।

(१४) चपाकदे=तुरत, झटपट। (दे=शीघ्रता, तड़ाका का द्योतक-राजस्थानी भाषा)। लीलत=निगल जाता है। लपाक दे=एक ही ग्रास में गड़प कर जाता है। गपाकि दे=गप से गले उतार लेता है। टपाक दे=टप से उचट कर ले जायगा।

मेरौ वश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसै भये
करत बडाई में तौ जगत उज्यारौ हौं।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानैं सठ
ऐसी नहि जानै मैं तौ काल ही कौ चारौ हौं ॥१५॥

जब तें जनम धर्‌यौ तब ही तें भूलि पर्‌यौ
बालापन माहि भूलौ समुझ्यौ न रुख में।
जोवन भयौ है जब काम बस भयौ तब
जुवती सौं एक मेक भूलि रह्यौ सुख मैं॥
पुत्रउ पौउत्र भये भूलौ तब मोह बाधि
चिंता करि करि भूलौ जानै नहिं दुख मैं।
सुन्दर कहत सठ तीनौं पन मांहि भूलौ
भूलौ भूलौ जाइ पर्‌यौ काल ही के मुख मैं ॥ १६ ॥

उठत बैठत काल जागत सोवत काल
चलत फिरत काल काल बोर धर्‌यौ है।
कहत सुनत काल पात हू पीवत काल
काल ही के गाल माहि हर हर हर्‌यौ है॥
तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल
सकल कुटंब काल काल जाल फस्यौ है।
सुन्दर कहत एक राम विन सब काल
काल ही कौ कृत्त कियौ अंत काल ग्रस्यौ है ॥१७॥

---

(१५) भारो=भारी, बड़ा।

(१६) रुख=सैन, निगाह का इशारा। एकमेक=गटपट मिला हुआ। दो तन एक जान।

(१६) पौउत्र=पौत्र, पोता। (छन्द के निमित्त ऐसा किया है)।

(१७) बोर=की तरफ। इस छंद में सवत्र काल से प्रयोजन एक सर्व भक्ष

जब तैं जनम लेत तब ही तैं आयु घटै
माइ तौ कहत मेरौ वडौ होत जात है।
आज और कालिह और दिन दिन होत और
दौर्‌यौ दौर्‌यौ फिरत षेलत अरु पात है॥
बालापन बीत्यौ जब जोवन लग्यौ है आइ
जो बन हू वीते वूढौ डोकरा दिपात है।
सुन्दर कहत ऐसें देषत ही वुझि गयौ
तेल घटि गये जैसें दीपक वुझात है॥ १८॥

सब कोउ ऐसें कहैं काल हम काटत हैं
काल तौ अपढ नाश सबकौ करतु है।
जाकै भय ब्रह्मा पुनि होत है कंपाइमान
जाकै भय असुर सुर इद्रऊ डरतु है॥
जाकै भय शिव अरु शेष नाग तीनौं लोक
केउक कलप बीतें लोमस परतु है।
सुन्दर कहत नर गरब गुमान करै
तू तो सठ एकई पलक मैं मरतु है॥ १९॥

काल से है परन्तु अर्थमें बारीक सा भेद भी करना पड़ता है। कहीं काल की सामग्री, काल की गति, नाश के वा बधन के कारण, मायाजाल इत्यादि।

(१८) आयु घटै=लौकिक में प्रत्येक सालगिरह पर खुशी मनाई जाती है। परन्तु प्रत्येक वर्ष असल में अवस्था में कम होता जाता है। दीपक वुझात है=तेल बीतने पर दीवा बुझ जाता है वैसे ही आयु घटने पर शरीर का पतन हो जाता है।

(१९) काल हम काटत हैं=काल को विताना काल का काटना है। दिन टेर करना। काल किसी के काटे नहीं कटता है, यह कहने मात्र है। लोमस=वह दीर्घजीवी ऋषि जो ब्रह्मा के मरने पर शिर पर से एक वाल तोड़ कर, फैंकता है कि नित्य उसके ब्रह्मा मरै नित्य मुंडन, कहां से, कैसे करावै।

काल सौं न वलवत कोऊ नहि देपियत
सब कौ करत अत काल महा जोर है।
काल ही कौ डर सुनि भग्यौ मूसा पैकंबर
जहा जहां जाइ तहा तहा वाकौ गोर है॥
काल है भयानक भैभीत सव किये लोक
स्वर्ग मृत्यु पाताल मैं काल ही को सोर है।
सुन्दर काल को काल एक ब्रह्म है अखड
वासौं काल डरै जोई चल्यौ उहि वोर है॥ २०॥
दरपा भये तें जैसें वोलत भंभीरी सुर
पड न परत कहु नैकहू न जानिये।
जैस पूंगी वाजत अखण्ड सुर होत पुनि
ताहू मैं न अतर अनेक राग गानिये॥
जैसैं कोऊ गुडी कौं चढावत गगन माहि
ताहू की तौ धुनि सुनि वैसैं ही बपानिये।
सुन्दर कहत तैसैं काल- कौ प्रचड वेग
राति दिन चल्यौ जाइ अचिरज मानिये॥ २१॥
माया जोरि जोरि नर रापत जतन करि
कहत है एक दिन मेरै काम आइहै।

---

(२०) मूसा पैकंवर=यहूदियों का एक पेगम्बर (ज्ञानी पुरुष) जिसके द्वारा 'तोरतें' नमक धर्म पुस्तक प्रगट हुई। इसने काल की अवहेलना की तव इसके पीछे पडा। तब इसको ईश्वर की महिमा का ज्ञान हुआ और आंख खुली। गोर=ख्याल भर। अथवा मरने की निशानी कबर। सोर=जोर, शोर। प्रभाव। वोर=तरफ, मार्ग।

(२१) भभीरी=झींगरी। गुड़ी=पतग, डुगड़ा जिसके घूघर वाध कर आकाश में उडा चढा कर पलग से बाँध देते थे सो रात को उसकी एक सी आवाज आया करती। यहां काल की निरन्तर इकसार गति वर्णित है।

तोहि तौ मरत कछु वार नहिं लागै सठ
देषत ही देषत बलूला सौ विलाइहै ॥
धन तौ धर्यौई रहै चलत न कौडी गहै
रीते ही हाथनि जैसौ आयौ तैसौ जाइहै ।
करि लै सुकृत यह वरिया न आवै फेरि
सुन्दर कहत पुनि पीछे पछिताइहै ॥ २२ ॥
बावरौ सौ भयौ फिरै बावरी ही बात करै
बावरे ज्यौं देत वायु लागत बौरानौ है ।
माया कौ उपाइ जानै माया की चातुरी ठानै
माया में मगन अति माया लपटानौ है ॥
जोबन कौ मदमातौ गिनत न कोऊ नातौ
काम वस कामिनी कै हाथ ही बिकानौ है ।
अति ही भयौ बेहाल सूझत न माथै काल
सुन्दर कहत ऐसौ बोर कौ दिवानौ है ॥ २३ ॥
झूठौ धन झूठौ धाम झूठौ कुल झूठौ काम
झूठी देह झूठौ नाम धरि कें बुलायौ है ।
झूठौ तात झूठी मात झूठे सुत दारा भ्रात
झूठौ हित मानि मानि झूठौ मन लायौ है ॥
झूठौ लैंन झूठौ दैंन झूठै मुख बोलै बैंन
झूठै झूठै करि फैंन झूठ ही कौं धायौ है ।
झूठही मैं ये तौ भयो झूठ ही मैं पचि गयौ
सुन्दर कहत सांच कबहू न आयौ है ॥ २४ ॥

---

(२२) बलूला=बुदबुदा । वरियां=विरिया, समय, मुहूर्त्त ।

(२३)देत वायु=बकवाद करै । बौरानू=पागल हुआसा । बोर कौ=अन्य और कोई ।

(२४) "झूठ" शब्द की पुनरावृत्ति बड़ी चतुराई से की है । इससे क्षर,

दीर्घाक्षरी

झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगै झूठा दौरा
झूठा बन्ध्या झूठा छोरा झूठा राजारानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठै धधा लाया
झूठा मूवा झूठा जाया झूठा याकी वानी है॥
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा झूझै झूठा भाजै
झूठा पीछै झूठा लागै झूठै झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा खाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है॥ २५॥

झूठ सों बंध्यौ है लाल ताही तें ग्रसत काल
काल विकराल व्याल सबही कौ खात है।
नदी को प्रवाह चल्यो जात है समुद्र माहिं
तैसें जग कालहि कै मुख में समात है॥
देह सौं ममत्व तातें काल कौ भै मानत है
ज्ञान उपजै तें वह कालहू विलात है।
सुन्दर कहत परब्रह्म है सदा अखंड
आदि मध्य अन्त एक सोई ठहरात है॥ २६॥

नाशवान, वृथा, अनित्य, नश्वर, आडम्बर, दम्भ, कपट आदि अर्थ लेना=जहा जैसा ठीक हो।

(२५) इस छंद में भी 'झूठ' शब्द की पुनरुक्ति उस ही ढंग पर, परंतु कुछ अधिक चतुराई से है। इस में सारे वर्ण गुरु है इस से शब्दालंकार का चित्रकाव्य है। छोरा=छोड़ा, मुक्त हुआ। झूझै=लड़ै। सब जगत् स्वप्न की तरह मिथ्या है।

(२६) लाल=प्यारा यह ताने के तौर पर शब्द है। बच्चा, पूत। व्याल=सर्प काल हू विलात है=ब्रह्म में दिक्, काल, कारण, गुण स्वभावादि कुछ नहीं। ब्रह्मप्राप्ति से काल को जीत लिया जाता है। सोही ठहरात है=जिस का आदि, मध्य और

इंदव

काल उपावत काल षपावत काल मिलावत है गहि माटी।
काल हलावत काल चलावत काल सिपावत है सब आटी॥
काल बुलावत काल भुलावत काल डुलावत है बन घाटी।
सुन्दर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढै जब पाटी॥ २७॥

॥ इति काल चितावनी को अंग ॥ ३ ॥

देहात्म बिछोह को अंग (४)॥

इन्दव

वै श्रवना रसना मुख वैसैहि वैसैहि नासिक वैसैहि अंषी।
वै कर वै पग वै सब द्वार सु वै नख सीस हि रोम असंषी॥
वैसें हि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत षषी।
सुन्दर कोउ न जानि सकैं यह 'बोलत हो सु कहा गयो पंषी'॥ १॥

बोलत चालत पीवत पात सु सींचत हो द्रुम कों जैसें माली।
लेतहु देतहु देषत रीऊत तोरत तान बजावत ताली॥
जामहिं कर्म विकम किये सब है यह देह परी अब ठाली।
सुन्दर सो कतहू नहिं दीसत पेल गयो इक पेल सो ष्याली॥ २॥

अत नहीं सो ही आदि, मध्य और अंत अर्थात् सदा और सर्वदा विराजमान, नित्य विभु है।

(२७) गहि माटी=पकड़ कर रेत खेत, नाश, कर देता है। आंटी=पेच, प्रपञ्च के ढग। पाटी=पाटी पढ़ना, आरम्भिक दीक्षा विद्यार्थियों की तरह गुरु से पावैं, प्रवेश की शक्ति प्राप्त करैं, ज्ञान में परिपक्व हो जावैं।

(देहात्म बिछोह) (१) अषी=आंख, नेत्र। असषी=असख्यात, बहुत। षषी=खोखला, कंकाल। पषी=पक्षी।

(२) ठाली=चेष्टा रहित। सूनी। ष्याली=खिलाड़ी।

मात पिता जुवती सुत बंधव लागत है सब कौं अति प्यारौ।
लोग कुटंब परौ हित रापत होइ नहीं हम तें कहु न्यारौ॥
देह सनेह तहा लग जानहुं बोलत है मुख शब्द उचारौ।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब वेगि कहै घर माहिं निकारौ॥ ३॥
रूप भलौ तब ही लग दीसत जौं लग बोलत चालत आगै॥
पीवत पात सुनै अरु देषत सोइ रहै उठिकैं पुनि जागै॥
मात पिता भइया मिलि बैठत प्यार करैं जुवती गर लागै।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब देषत ताहि सबै डरि भागै॥ ४॥

मनहर

कौन भांति करतार कियौ है शरीर यह
पावक कै मध्य देषौ पानी कौ जमावनौ।
नासिका श्रवन नैंन वदन रसन वैंन
हाथ पाव अंग नख शिख कौ बनावनौ॥
अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप
सुन्दर शोभित अति अधिक सुहावनौ।
जाही क्षन चेतना सकति जब लीन होइ
ताही क्षन लगत सबनि कौ अभावनौ॥ ५॥
मृत्तिका कौ पिंड देह ताही मैं युगति भई
नासिका नयन मुख श्रवन बनाये हैं।

---

(३) उचारौ=उच्चारण। मांहिं=अन्दर से बाहर। (मांहि से)।

(४) आगै=अगाड़ी सामने। गर लाग=गले लग, आलिंगन करे। डरि=डर कर।

(५) पावक=अग्नि, जठराग्नि पेट में। नासिका=पानी की बूंद मे इतने सुघड़ आकार कैसे बन जाते हैं, यह आश्चर्य है। ऊप=ओप, सफाई, पालिश। अभावनो=असुहावना, घृणित, बुरा।

सीस हाथ पाव अरु अगुली विराजमान
　　अंगुली कै आगै पुनि नख ऊ लगाये है ॥
पेट पीठि छाती कंठ चिबुक अधर गाल
　　दसन रसन वहु वचन सुहाये हैं ।
सुन्दर कहत जब चेतना शकति गई
　　वहै देह जारि वारि छार करि आये है ॥ ६ ॥
देह तौ प्रगट यह ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत
　　नैंन के झरौपे माहिं झाकत न देपिये ।
नाक के झरौपे माहिं नैंकु न सुवास लेत
　　कान के झरौपे माहिं सुनत न लेपिये ॥
मुख के झरौपे मैं वचन न उचार होत
　　जीभ हू कौ पट रस स्वाद न विशेपिये ।
सुन्दर कहत कोउ कौंन विधि जानै ताहि
　　कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेपिये ॥ ७ ॥
माइ तौ पुकारि छातो कूटि कूटि रोवत है
　　वाप हू कहत मेरौ नन्दन कहा गयौ ।
भइया कहत मेरी वाह आज दूरि भई
　　वहन कहत मेरै वीर दुख है दयौ ॥
कामिनी कहत मेरौ सीस सिरताज कहा
　　उनि ततकाल हाथ मैं सिंधौरा है लयो ।

---

(६) विराजमान=शोभित, प्रस्तुत ।

(७) झरोपे=वैठ कर देखने का स्थान, इद्रिय । पट्रस=छह रस-मीठा, कडुवा खारी, चरपरा, कसायला, खट्टा, । नाना प्रकार के स्वाद । कारौ पीरौ=किसी भी रग वा आकार का । ताहि=उस चेतनशक्ति को ।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहि जान सकै
बोलत हुतौ सु यह छिन में कहा भयौ ॥ ८ ॥
रज अरु बीरज कौ प्रथम सयोग भयौ
चेतना सकति तब कौन भाति आई है।
कोउ एक कहै बीज मध्य ही कियौ प्रवेश
किनहूक पञ्च मास पीछे के सुनाई है ॥
देह कौ विजोग जब देपत ही होइ गयौ
तब कोउ कहौ कहां जाइ के समाई है।
पण्डित ऋपीश्वर तपीश्वर मुनीसुर ऊ
सुन्दर कहत यह किनहु न पाई है ॥ ९ ॥
तब लौं हि क्रिया सब होत है विविधि भाति
जब लग घट माहि चेतन प्रकाश है।
देह क अशक्त भयें क्रिया सब थकि जात
जब लग स्वास चलै तब लग आश है ॥

---

(८) नन्दन=पुत्र। सिधौरा=सिन्दूर आदि (नारेल या मेहदी) जिसको लगाकर वा लेकर सती स्मशान को सती होने को जाती थी। बोलत हुतौ=जो बोलता था सो-वह चेतन शक्ति जिससे बोलने आदि की क्रियाए शरीर में फुरती हैं। चेतन और जड़ का विवेक इन अवस्थाओं के देखने और उन पर विचार से ही उपजता है। मृतक शरीर और जीवित शरीर की परस्पर की सज्ञा और लक्षणो से चेतन के प्रभाव का प्रक्षेप मन और बुद्धि पर बहुत कुछ होता है।

(९) मृतक को देख कर नाना प्रकार की कल्पना बुद्धिमान लोग करते हैं। उन ही का कुछ वर्णन है। परन्तु निदान सच्चा किसी से नहीं होता, और न हुआ, कि जिससे निश्चय-पूर्वक और निःसदेह निर्णय मिल सके। जीवात्मा का इस पुद्गल में कैसे और किधर से तो प्रवेश होता है, और मर जाने पर इस शरीर में से किधर होकर निकल कर कहां जाता है? इत्यादि शकाए सदा से सब विचारशील पुरुषों को

स्वासऊ थक्यौ है जब रोवन लगे हैं तब
सब कोऊ कहै यह भयौ घट नाश है।
काहू नहिं देष्यौ किहि वोर कौन कहां गयौ
सुन्दर कहत यह बडोई तमाश है॥ १० ॥
देह तौ स्वरूप तौलौ जौलौं है अरूप माहिं
सब कोउ आदर करत सनमान है।
टेढी पाग बाधि बार बार ही मरोरै मूछ
बांह उसकारै अति धरत गुमांन है॥
देश देश ही के लोक आइकैं हजूर होहि
बैठि करि तषत कहावै सुलतान है॥
सुन्दर कहत जब चेतना सकति गई
उहै देह ताकी कोउ मानत न आन है॥ ११ ॥

॥ इति देहात्म बिछोह कौ अंग॥ ४ ॥

होती आई है। परन्तु सच्चा भेद किसी को नहीं मिला। और शास्त्र, पुराण, दर्शन हैं जिनमें अपने २ ढग पर युक्ति प्रमाण द्वारा अपना निश्चित पक्ष सिद्ध किया है। परन्तु परस्पर विरोध आता है। और संदेह बना रह जाता है।

(११) अरूप=रूप रहित जीवात्मा तत्व। आत्मा के कोई आकार न होने से इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता है। इस ही लिये समझाने को आकाश तत्व का और लोह पिंड में ताप का वा पुष्प में सुगन्ध का, वा दूध में घृत का, वा चबुक मे वा अन्य पदार्थों में आकर्षण शक्ति का, दृष्टान्त दे देते हैं। परन्तु उस चिदात्म परम तत्व का कुछ भी ज्ञान वा आभास यथार्थरूप में नहीं हो पाता है। इतने सत्य और नित्य और स्वयम् सिद्ध पदार्थ का साधारणतया केवल अनुमान वा अटकल से ही कुछ ज्ञान मान लिया जाता है। केवल वेदांत के ज्ञानियों वा राजयोग के सिद्धोंको आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान होना शास्त्रों में माना गया है।

अथ तृष्णा को अंग (५) ॥

इंदव

नैननि की पल ही पल मैं क्षण आध घरी घटिका जु गई है।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साँझ गई तब राति भई है॥
आज गई अरु काल्हि गई परसौं तरसौं कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसें हि आयु गई "तृष्णा दिन ही दिन होत नई है" ॥ १ ॥

दुमिला

कन ही कनकौं बिललात फिरै सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तन ही तन कौं अति सोच करै नर पात रहै अन ही अन कौं॥
मन ही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी कबहू न गयौ बन ही बन कौं ॥ २ ॥

इन्दव

जौ दस बीस पचास भये सत होहि हजारनि लाप मगैगी।
कोटि अरब्ब परब्ब असंपि पृथीपति होन की चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल कौ राज करौ तृसना अधिकी अति आगि लगैगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना सठ "तेरी तौ भूष न क्यौंहु भगैगी" ॥ ३ ॥
लाप करोरि अरब्ब परब्बनि नीलि पदम्म तहा लग पाटी।
जोरि हि जोरि भण्डार भरे सब और रही सु जिमी तर दाटी॥

(१) जाम=एक पहर। जुग जाम=दो पहर, 'तृष्णा' को 'तृषणा' पढ़ो छंद पूर्त्तिके लिये।

(२) कन=दाना, अन्न। बिललात=चिल्लाता, रोता पुकराता। 'तृष्णा को 'तृषणा' पढ़िये छंद हित। बन में=त्यागी होकर एकात वास।

(३) मगैगी=मगैगी-चाही जायगी। चाह= (अप्रशस्त शब्द)-प्यास, चाह 'अग्नि ' जैसे जितना ई धन डालो उतनी बढ़ती है। वैसे ही तृष्णा, अधिक प्राप्ति से अधिक बढ़ती है। इस आग को शमन करने वा बुझानेवाला एक सतोष ही है।

तौहु न तोहि सन्तोष भयौ सठ सुन्दर तैं तृष्णा नहि काटो।
सूझत नाहिं न काल सदा सिर मारिकें थाप मिलाइहै माटी ॥ ४ ॥
भूप लिये दशहूं दिश दौरत ताहि तें तू कवहूं न अघैहे।
भूष भण्डार भरै नहिं, कैसेहु जो धन मेरु कुबेर लौं पैहे ॥
तू अव आगै हि हाथ पसारत ताहि तैं हाथ कछू नहिं ऐहे।
सुन्दर क्यौं नहिं तोप करै नर पाइ हि पाइ कतौइक पैहे ॥ ५ ॥
भूप नचावत रङ्क हि राज हि भूप नचाइ कें विश्व विगोई।
भूप नचावत इन्द्र सुरासुर और अनेक जहा लग जोई ॥
भूप नचावत है अध ऊरध तीनहु लोक गनै कहा कोई।
सुन्दर जाइ तहा दुख ही दुख ज्ञान विना न कहू सुख होई ॥ ६ ॥
पेट पसार दियौ जित ही तित तं यह भूप कितीयक थापी।
वोर न छोर कछू नहिं आवत मैं वहु भाति भली विधि मापी ॥
देषत देह भयौ सब जीरण तू निति नौतन आहि अद्यापी।
सुन्दर तोहि सदा समझावत 'हे तृष्णा अजहूं नहि धापी" ॥ ७ ॥
तीनहु लोक अहार कियौ फिरि सात समुद्र पियौ सव पानी।
और जहा तहा ताकत डोलत काढत आपि डरावत प्रानी ॥
दात दिषावत जीभ हलावत याहि तें मैं यह डायनि जानी।
सुन्दर षात भये कितने दिन "हे तृष्णा अजहूं न अघानी" ॥ ८ ॥

---

(४) घाटी=घाटा, घाटी, कमी (अप्रशस्त शब्द)। दांटी=गाड टी। काटी=मारी, कम किई।

(५) तोष=सतोप।

(६) विगोई=वदनाम किया, भांडा।

(७) थापी=रखी। मापी=जांचा, निश्चय किया। नौतन=नूतन, नई। अद्यापी=अवतक।

(८) डाइन=डाकिन, वहुत खानेवाली दुष्टा। अघानी=धापी, तृप्त हुई।

पाव पताल परे गये नीकसि सीस गयौ असमान अघेरौ।
हाथ दशौ दिशि कौ पसरै पुनि पेट भरे न समुद्र सुमेरौ॥
तीनहु लोक लिये मुख भीतरि आषिहु कान वधे चहु फेरौ।
सुन्दर देह धर्‍यौ अति दीरघ 'हे तृष्णा कहु छेह न तेरौ'॥ ९ ॥

वादि वृथा भटकै निशि वासर दूरि कियौ कवहू नहि धोपा।
तू हतियारिनि पापिन कोटनि साच कहू मति मानहि रोपा॥
तोहि मिल्यौ तवतें भयौ वन्धन तू मरि है तव ही होइ मोपा।
सुन्दर और कहा कहिये तुहि "हे तृष्णा अवतौ करि तोपा"॥ १० ॥

क्यों जग माहि फिरे झप मारत स्वारथ कौ न परीजिहि जोटै।
ज्यों हरिहाइ गऊ नहि मानत दूध दुह्यौ कछु सो पुनि ढोटै॥
तू अति चञ्चल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख बोलै।
सुन्दर तोहि न्ह्यौ वर केतक "हे तृष्णा अव तू मति डोटै"॥ ११ ॥

त कोउ कान धरी नहि एकहु बोलत बोलत पेट हि पाक्यौ।
हौं कोउ बात वनाइ कहू जवतें तव पीसत ही मव फाक्यौ॥
केतक बीस भये परमोधत तैं- अव आगे हि कौ रथ हाक्यौ।
सुन्दर सीप गई सव ही चलि "हे तृष्णा कहि कें तोहि थाक्यौ"॥ १२ ॥

---

(९) परे=आगे। अघरौ=अगे (पजावो मे अग्गे को अग्घे भी बोलते ह) बहुत आगे (जैसे वड़े से वड़ेरो) बधे=वढ़े, विशाल हो गये।

(१०) हतियारिनि=हत्यारी, घातिनि। पापिन कोटनि=पापिनी और कुट्टिनी। वा, कोव्यानुकोटि पापों की करनेवाली।

(११) झप मारत=वृथा काम करता हुआ। हरिहाई=हरे को चर कर हर को दौड़नेवाली। ढोलै=ढुला दै, आखती होकर झट टुहानी पटका दे। नहीं मुख बोलै=चुपचाप सटक जाय।

(१२) पेट पाक्यो=पेट पकना, उक्ता जाना, थक जाना। पीसते फाकना=वट पहिले तेल पी जाना, अधीरता से कार्य्य सिद्धि से पूर्व ही कार्य्य के फल के लिये

तूं हि भ्रमाइ प्रदेश पठावत बूडत जाइ समुद्र जिहाजा।
तू हि भ्रमाइ पहार चढावत बादि वृथा मरि जाइ अकाजा॥
तैं सब लोक नचाइ भली विधि भाड किये सब रङ्क रु राजा।
सुन्दर तोहि दुखाइ कहौं अब "हे तृष्णा तोहि नैकु न लाजा" ॥ १३ ॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ ५ ॥

अथ अधीर्य उराहने कौ अंग (६)॥

इन्दव

पाव दिये चलनै फिरनै कहु हाथ दिये हरि कृत्य करायौ।
कान दिये सुनिये हरि कौ जस नैंन दिये तिनि माग दिषायौ॥
नाक दियौ मुख सोभत ता करि जीभ दई हरि कौ गुन गायौ।
सुन्दर साज दियौ परमेश्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ॥ १ ॥
कूप भरै अरु वाय भरै पुनि ताल भरै वरषा ऋतु तीनौं।
कोठि भरै घट माट भरै घर हाट भरै सब ही भरि लीनौ॥

लालायित होकर उसे विगाड़ देना। परमोधत=प्रवोधन, सावचेत, जाग्रत करते २। आगे रथ हांकना=पहिले ही दोड़ा देना।

(१३) भांड किये=फजीहत की, किरकिरी कर दी, प्रतिष्ठा विगाड़ दी। दुखाइ कहौं=कड़ी कहू, तीखी सुनाऊ। कटती कहू। क्योंकि तैंने ससारियों का वड़ा अकाज किया है।

अधीर्य उराहना=अधीरता के लिये उलाहना-उपालम्भ-देना। अधीर होकर अधीरता उत्पन्न करनेवाले कारणों के पैदा कर देने वा देने के लिये ईश्वर को बुरा भला कहना, शिकायतें करना। इस अग में भूख और पेट की ही शिकायतें हैं।

(१) माग=मार्ग, रास्ता। पाप लगायौ=पाप लगाना, आफत पैदा करना, जीव को झमट कर देना।

पन्दक पास बुपार भरै परि पेट भरै न बडौ दर दीनौं।
सुन्दर रीतौ हि रीतौ रहै यह कौन पडा परमेश्वर कीनौ॥ २॥

मनहर

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाठी किधौ भार आहि
जोई कछु झौकिये सु सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौ बावी किधौं सागर है
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है
षाव पांव करै कहु नेकु न अघातु है।
सुन्दर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट
जवतें जनम भयौ तब ही कौ षातु है॥ ३॥

विग्रह तौ विग्रह करत अति बार बार
तनु पुनि तनुक न कबहु अघायौ है।
घट न भरत क्योंहीं घट्योई रहत नित
शरीर निराइ मैं तौ कछुव न पायौ है॥
देह देह कहत ही कहत जनम वीत्यौ
पिण्ड पिण्ड काजै निश दिन ललचायौ है।
पुदगल गिलत गिलत न तृपत होइ
सुन्दर कहत वपु कौन पाप लायौ है॥ ४॥

---

(२) वाय=बावड़ी। कोठि=कोठी अनाज की। माट=बड़ा मटका। पदब=बडा गढ़ा। पास=अनाज की बड़ी खाई। बुषारी=बुखारी, खड़की। दर=दरवाजा, दरार, दरीदा फटा हुआ रखना। पड़ा=खड्ढा, गढ़ा।

(३) किधौ=या तो, कहीं, क्या यह। भार=भाड़।

(४) विग्रह=लड़ाई, तकाजा। तनु=शरीर। तनुक न=थोड़ा सा भी नहीं। निराइ=निनाण किया हुआ, खाली हुआ अर्थात् भूखा का भूखा होकर। देह देह=दो

पाजी पेट काज कोतवाल कौ आधीन होत
कोतवाल सु तौ सिकदार आगें लीन है।
सिकदार दीवान के पीछै लग्यो डोलै पुनि
दीवान हू जाइ पतिसाह आगें दीन है॥
पातिसाह कहै या खुदाइ मुझै और देइ
पेट ही पसारें नहिं पेट वसि कीन है।
सुन्दर कहत प्रभु क्यौं हु नहि भरै पेट
एक पेट काज एक एक कौ आधीन है॥ ५॥

तैंतौ प्रभु दीयौ पेट जगत नचायौ जिनि
पेट ही के लिये घर घर द्वार फिर्यौ है।
पेट ही के लिये हाथ जोरि आगे ठाडौ होइ
जोइ जोइ कह्यो सोइ सोइ उनि कर्यौ है॥
पेट ही के लिये पुनि मेघ शीत घाम सहै।
पेट ही के लिये जाइ रनु माहि मर्यौ है।
सुन्दर कहत इन पेट सब भाड किये
और गेल छूटी परि पेट गेल पर्यौ है॥ ६॥

पेट सो न वली जाकै आगे सब हारि चले
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं।
कोउ वाघ मारत विदारत है कुंजर कौं
ऐसै सूर वीर पेट काज प्रान दिये हैं॥
यंत्र मंत्र साधत अराधत मसान जाइ
पेट आगै डरत निडर ऐसे हीये हैं॥

देखो, यो। पिंड पिंड=यह शरीर वात वात के लिये। पुद्गल=शरीर। गिलत=भोजन के ग्रास निगलते निगलाते (खा खा कर) वपु=शरीर।

(५) पाजी=पियादा, सिपाही। सिकदार=फौजदार के रुतबे का अफ्सर।

(६) रनु=रण, संग्राम।

देवता असुर भूत प्रेत तीनौं लोक पुनि
सुन्दर कहत प्रभु पेट जेर किये है ॥ ७ ॥
प्रात ही उठत सब पेट ही की चिंता सब
सब कोऊ जात आपु आपुने अहार कौं।
कोउ अन्न षात पुनि आमिष भषत कोउ
कोउ घास चरत चरत कोउ दार कौं ॥
कोऊ मोतीफल कोऊ घास रस पय पान
कोऊ पौन पीवत भरत पेट भार कौं।
सुन्दर कहत प्रभु पेट ही भ्रमाये सब
पेट तुम दियौ है जगत हौन ष्वार कौं ॥ ८ ॥

इन्दव

पेट हि कारण जीव हनै बहु पेट हि मास भषै रु सुरापी।
पेट हि लै करि चौरी करावत पेट हि कौं गठरी गहि कापी ॥
पेट हि पासि गरे महिं डारत पेट हि डारत कूप हु वापी।
सुन्दर काहे कौं पेट दियौ प्रभु "पेट सौ और नहीं कोउ पापी" ॥ ९ ॥
औरन कौ प्रभु पेट दिये तुम तेरै तौ पेट कहू नहिं दीसै।
ये भटकाइ दिये दश हू दिशि कोउक राधत कोउक पीसै ॥
पेट हि कारन नाचत है सब ज्यौं घर ही घर नाचत कीसै।
सुन्दर आपु न षाहु न पीवहु कौंन करो इन ऊपर रीसै ॥ १० ॥

---

(७) जेर=आधीन (फा०)

(८) आमिष=मास। दार=दाल, दला अन्न। मोती फल=मुक्ता फल, जैसे हंस मोती हो खाता है। ष्वार=(फा०) खराब करने को, जलील करने को।

(९) सुरापी=मदिरा पिई। कापी=काटी, गठकटापन किया। पासि गरे महि डारत=ठग लोग गले में रस्सी डाल आदमियों को मार कर लटकर जमीन में गाड़ देते थे (देखो तांतिया भील का किस्सा) वापी=बावड़ी।

(१०) कीसै=बंदर। रीसै=रोस, क्रोध।

मनहर

काहे कौ काहु कें आगे जाइ कै आधीन होइ
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिनकै तौ मद अरु गरब गुमान अति
तिनकै कठोर बैंन कबहु न सहते ॥
तुम्हरे हिं भजन सों अधिक लै लीन अति
सकल कौं त्यागि कै एकत जाइ गहते।
सुन्दर कहत यह तुमही लगायौ पाप
"पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते" ॥ ११ ॥
पेट ही कै वसि रंक पेट ही कै वसि राव
पेट ही कै वसि और खान सुलतान है।
पेट ही कै वसि योगी जंगम सन्यासी शेष
पेट ही कै वसि वनवासी खात पान है ॥
पेट ही कै वसि ऋषि मुनि तपधारी सब
पेट ही कै वसि सिद्ध साधक सुजान है।
सुन्दर कहत नहि काहू कौ गुमान रहै
पेट ही कै वसि प्रभु सकल जिहान है ॥ १२

॥ इति अधीर्य उराहने कौ अंग ॥ ६ ॥

अथ विश्वास कौ अंग (७) ॥

इन्दव

होहि निचिंत करै मत चिंत हिं चञ्च दई सोई चिंत करैगौ।
पाव पसारि पर्यौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगौ ॥

---

(११) गहते=ग्रहण कर-एकांत वासी बने रहते। बैठे रहते=परिश्रम और भागदौड़ इतनी न करनी पड़ती। बैठे २ भजन किया करते।

(१२) गुमान=घमंड, गर्व।

जीव जिते जलके थल के पुनि पाहन में पहुचाइ धरेगो।
भूरहि भूप पुकारत है नर सुन्दर तू कहा भूप मरेगो॥ १॥
धीरज धारि विचार निरन्तर तोहि रच्यो सुतो आपु हि ऐहै।
जेतक भूप लगी घट प्राण हि तेतक तू अनयासहि पैहै॥
जो मन में तृष्णा करि धावत तौ तिहु लोक न पात अवैहै।
सुन्दर तू मति सोच करै कछु चच दई सोइ चूनि हु दैहै॥ २॥
नैंकु न धीरज धारत है नर आतुर होइ दशौं दिश धावै।
ज्यों पशु पंचि तुडावत बधन जौं लग नीर न आव हि आवै॥
जानत नाहि महामति मूरप जा घरि द्वार धनी पहुचावै।
सुन्दर आपु कियौ घढि भाजन सो भरि है मति सोच उपावै॥ ३॥
भाजन आपु घड्यो जिनि तौ भरिहै भरिहै भरिहै भरिहै जू।
गावत है तिनके गुन कौं ढरिहै ढरिहै ढरिहै ढरिहै जू॥
सुन्दरदास सहाइ सही करि है करि है करि है करि है जू।
आदि हु अंत हु मध्य सदा हरि है हरि है हरि है हरि है जू॥ ४॥
काहे को डोलत है दश हू दिशि तू नर देषि कियौ हरि जू कौ।
बैठि रहै दुरिके मुख मूदि उघारि कैं दात पवाइ है टूकौ॥

---

(२) ऐहै=आवेगा, पोषण करने को बिना ही बुलाये दया करके आये बिन नहीं रहेगा अवश्य ही। अनयास=अनायास, बिना परिश्रम, स्वयम् ही स्वत। चूनि=चून, आटा (भोजन को)।

(३) जौ लग=जबतक। जा घरि द्वार=आप ही ले जाकर घर के दरवाजे तक। धनी=धणी, स्वामी। घढि=घड़ कर, बना कर। भाजन=बरतन, शरीर।

(४) "भरि" आदि शब्दों की पुनरुक्ति अर्थ और प्रयोजन को बलवान करने को निश्चय दृढाने को है। ढरि=दयार्द्र होंगे। कृपा करेंगे। सही=निश्चय।

गर्भ थकै प्रतिपाल करी जिन होइ रह्यौ तव तू जड मूकौ ।
सुदर क्यौ बिललात फिरै अब राषि हृदै बिसवास प्रभू कौ ॥ ५ ॥
जा दिन तैं गर्भवास तज्यौ नर आइ अहार लियौ तव ही कौ ।
पात हि पात भये इतने दिन जानत नाँहि न भूछ कहीं कौ ॥
दौरत धावत पेट दिषावत तू सठ कीट सदा अंन ही कौ ।
सुदर क्यौ बिसवास न राषत सो प्रभु विश्व भरै कवही कौ ॥ ६ ॥
षेचर भूचर जे जल के चर देत अहार चराचर पौषैं ।
वे हरि जू सब कौं प्रतिपालत जो जिहिं भाति तिसी विधि तोषैं ॥
तूं अब क्यौं बिसवास न राषत भूलत है कत धोवै हि धोषैं ॥
तोहि तहा पहुचाइ रहै प्रभु सुदर बैठि रहै किन ओषैं ॥ ७ ॥

मनहर

काहे कौं वघूरा भयौ फिरत अज्ञानी नर
तेरै तौ रिजक तेरै घर बैठैं आइहै ।
भावै तू सुमेर जाहि भावै जाहि मारू देश
जितनौक भाग लिष्यो तितनौई पाइहै ॥
कूप मांझ भरि भावै सागर कै तीर भरि
जितनौक भाडौ नीर तितनौं समाइहै ।

---

(५) कियौ=काज किया हुआ, करतव । गर्भ थकै=गर्भवास मे लगाकर । मूकौ=मूक, विना वाणी ।

(६) गर्भ शब्द भ्रम पढ़ा जाना चाहिये, गण के ठीक करने को । भूछ=बेडौल, मूर्ख । कीट=कीड़ा । सो प्रभु=वह प्रभु ऐसा है कि, उस ऐसे प्रभु का जो कि, कवही कौ=न जाने किस काल से, सदा ही से जिस को हम अब के पैदा हुये क्या जान सकते हैं ।

(७) तोषैं=तुष्ट, प्रसन्न हो । तहां पहुचाइ=जहा तू है वहीं भोजन पहुचावेगा अवश्य । ओषैं=ओट में, किसी स्थान में ।

ताही तें सतोष करि सुदर विश्वास धरि
जिन तौ रच्यो है घट सोई अमराइहै ॥ ८ ॥
काहे कौं करत नर उद्यम अनेक भाति
जीवनो है थोरो तातैं कल्पना निवारिये।
साढे तीन हाथ देह छिनक में छूटि जाइ
ताके लिये ऊचे ऊचे मदिर सवारिये ॥
माल हू मुलक भये तृपति न क्योंही होइ
आगे ही कौ प्रसरत इद्री क्यौ न मारिये।
सुदर कहत तोहि बावरे समझि देपि
"जितनीक सोरि पांव तितने पसारिये" ॥ ९ ॥ ÷
काहे कों फिरत नर दीन भयो घर घर
देपियत तेरौ तौ अहार एक सेर है।
जाकौ देह सागर में सुन्यौ सत जोजन कौ
ताहू कौं तौ देत प्रभु या में नहिं फेर है ॥
भूपौ कोउ रहत न जानिये जगत माहि
कीरी अरु कुजर सबनि हीं कौ दे रहै।
सुदर कहत तूं विश्वास क्यौ न राषै शठ
वार वार समुझाइ कह्यौ केती वेर है ॥ १० ॥

---

(८) बघरा=भभूला पवनका, भूत प्रेत। अमराइ=अमर, अटल, बिन घट बढ के होता है।

÷ यह ९ वां छद मूल (क) वा (ख) पुस्तकों मे नहीं है। अन्य पुस्तकों में मिला सो यहा लिख दिया है।

जितनीक सौर=सौड, तौशक, जितनी सी वड़ी हो उतने ही पांव पसारना उचित है, अधिक वढ़ाना कुछ फल नहीं देता है (मुहाविरा)।

(१०) दे रहै=देता रहता है।

तेरै तो अधीरज तू आगिली ही चिंत करै
आज तौ भर्‌यौ है पेट कालिह कैसी होइहै।
भूपौ ही पुकारै अरु दिन उठि पातौ जाइ
अति ही अज्ञानी जाकी मति गई पोइ है।
ताकौं नाहि जानै शठ जाकौ नाम विश्वम्भर
जहा तहाँ प्रगट सबनि देत सोइ है।
सुदर कहत तोहि वाकौ तौ भरोसौ नाहिं
एक विसवास विन याही भाति रोइ है॥ ११॥
दपिधौं सकल विश्व भग्त भरनहार
चूच कै समान चूनि सबही कौं देत है।
कीट पशु पपि अजगर मच्छ कच्छ पुनि
उनकै न सौदा कोऊ न तौ कछु पेत है॥
पेट ही के काज रात दिवस भ्रमत सठ
मैं तौ जान्यौ नीकैं करि तूतौ कोऊ प्रेत है।
मानुप शरीर पाइ करत है हाइ हाइ
सुन्दर कहत नर तेरे सिर रेत है॥ १२॥
तू तौ भयौ वावरौ उतावरौ फिरत अति
प्रभु कौ विश्वास गहि काहे न रहतु है।
तेरौ तो रिजक है सु आइ है सहज माहिं
यौंहि चिंता करि करि देह कौं दहतु है॥
जिनि यह नख शिख साजि कैं सवार्‌यौ तोहि
अपने किये की वह लाज कौं वहतु है।

---

(११) सोइ है=वह ही (देता) है।

(१२) रेत=धूल, मिट्टी। सिर धूल देना (मुहाविरा है) धिक्कार देना।

काहे कौ अज्ञानी कछु सोच मन माहिं करै।
भूपौ तू कदे न रहै सुन्दर कहतु है॥ १३॥
जगत मैं आइ तैं विसार्‍यौ है जगतपति
जगत कियौ है सोई जगत भरतु है।
तेरै चिंता निश दिन औरई परी है आइ
उद्यम अनेक भांति भांति के करतु है॥
इत उत जाइकैं कमाइ करि ल्याऊ कछु
नैकु न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।
सुन्दर कहत एक प्रभु कौ विश्वास बिन
बादि कै वृथा ही सठ पचि कें मरतु है॥ १४॥

॥ इति विश्वास को अग ॥ ७ ॥

अथ देह मलीनता गर्व प्रहार कौ अंग (८)॥

मनहर

देह तौ मलीन अति बहुत विकार भरे
ताहू माहिं जरा व्याधि सब दु:ख रासी है।
कबहूक पेट पीर कबहूक सिर बाहि
कबहूक आपि कान मुख मैं विथासी है॥
औरऊ अपने रोग नख शिख पूरि रहे
कबहूक स्वास चले कबहूक पासी है।

(१३) दहतु है=जलाता है, दु:ख पाता है। बहतु है=विवाहता है। सुन्दर कहतु है=यह कहना उस सुन्दरदास का है, जिसको अपने निज के अनुभव मे सतोष की महिमा निश्चित हो चुकी है।

(देह मलीनता) देहकी मलिनता की ओर विचार को खैंचकर देह के अभिमान का निवारण करते हैं। यहां देह जड़ और अनित्य वस्तु को क्षणिक न समझ कर मनुष्य भूले रहता है और इस पर भी घमड रखता है, विवेक शून्य बन जाता है।

ऐसौ या शरीर ताहि आपनौं कै मानत है
सुन्दर कहत या मैं कौन सुखवासी है ॥ १ ॥
जा शरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यौ
ताहो तू विचारि यामैं कौन वात भली है।
मेद मज्जा मास रग रगनि माहि रकत
पेट हू पिटारी सी मे ठौर ठौर मली है ॥
हाडनि सौं मुख भर्‍यौ हाड ही के नैंन नाक
हाथ पाव सोऊ सव हाड ही की नली है।
सुन्दर कहत याहि देषि जिनि भूलै कोइ
भीतरि भगार भरि ऊपर तें कली है ॥ २ ॥

इंदव

हाडकौ पिंजर चाम मढ्यौ सव, माहिं भर्‍यौ मल मूत्र विकारा।
थूक रु लार परै मुख तें पुनि व्याधि वहै सव और हु द्वारा ॥
मास की जीभ सौं षाइ सवै कछु ताहि तें ताकौ है कौन विचारा।
ऐसै शरीर में पैसि कै सुन्दर कैसैंक कीजिये सुच्य अचारा ॥ ३ ॥
थूक रु लार भर्‍यौ मुख दीसत आंषि मैं गीज रु नाक मैं सेंढौ।
औरऊ द्वार मलीन रहै नित हाड के मास के भीतरि वेढौ ॥

इसी से उस निराधार मिथ्या भ्रम को दूर कर विवेक की स्थापना मलिन काया में ग्लानि को उत्पन्न कर के, करते हैं।

(१) 'भरे' का सम्बन्ध आगे के चरण मे 'ताहूमाहि से है। जरा=बुढ़ापा। व्याधि=काया क्लेश, दु ख। रासी=समूह। सिर वाहि=माथा पकड़ कर। वा शिरमें दर्द। विथासी=व्यथा रोगका दु ख सा। पूरि रहे=भरे है। शरीर रोग का आगार है।

(२) रकत=रक्त,रुधिर। मली=मैल। भगार=भाक्म, तुच्छ पदार्थ।

(३) व्याधि वहै=रोगका दु ख चलता है, होता है। सुच्य=शौच, शुद्धि।

गर्भ शरीर में वास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढौ।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तू नर चालत टेढौ" ॥ ४ ॥
जा दिन गर्भ संयोग भयौ जब ता दिन बून्द छिपाहुति ताही।
द्वादश मास रह्यौ मुख भूलत बूडि रह्यौ पुनि वारस मांहीं ॥
या रज वीरज की यह देह सु तू अब चालत देषत छांहीं।
सुन्दर गर्व गुमान कहा सठ आपुनि आदि विचारत नांहीं ॥ ५ ॥

॥ इति देह मलीनता गर्व प्रहार को अंग ॥ ८ ॥

अथ नारी निंदा को अंग (९) ॥

मनहर

कामिनी कौ देह मानौं कहिये सघन वन
उहां कोऊ जाइ सु तौ भूलि कैं परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि कौ भय जामैं
बेनी काली नागनीऊ फन कौं धरतु है ॥
कुच हैं पहार जहां काम चोर रहै तहां
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कौं हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति तामैं
राक्षस वदन पाऊं पाऊं ही करतु है ॥ १ ॥

---

(४) गोज=गीद, आंख का मैल। सेढौ=सीट, नाक का मैल। बेढौ=घरोड़ा, झाड़-झखड़, बीहड़। वन, जंगल। बाभन=ब्राह्मण। ढेढौ=ढेढ, अंत्यज।

(५) छिपाहुति तांही=छिपा हुआ था उस स्थान (प्रद) में। द्वादश मास=अवधि प्रायः नौ महीने की है, परन्तु प्रसंग से १२ महीने कहे हैं। वा रस मांहि=रज और रक्त मिले तरल पदार्थ में-जो उस मिजगा की खूराक होती है। देखत छांहीं=अपने शरीर की छाया देख-देख गर्व करता हुआ।

(नारी निंदा-छंद १) इस छन्द में स्त्री के शरीर को एक भयानक घने जंगल

विष ही की भूमि माहि विष के अंकूर भये
नारी विष वेलि वढी नख शिख देपिये।
विष ही के जर मूल विष ही के डार पात
विष ही के फूल फर लागे जू विशेपिये॥
विष के तंतू पसारि उरझाये आटी मारि
सव नर वृक्ष पर लपटी ही लेपिये।
सुन्दर कहत कोऊ एक तरु वचि गये
तिन कै तौ कहु लता लागी नहीं पेपिये॥ २॥

उदर मैं नरक नरक अधद्वारनि मैं
कुचन मैं नरक नरक भरी छाती है।
कंठ मैं नरक गाल चिवुक नरक विव
मुख नैं नरक जीभ लार हू चुचाती है॥
नाक मैं नरक आपि कान मैं नरक वहै
हाथ पाव नख शिख नरक दिपाती है।
सुन्दर कहत नारी नरक को कुंड यह
नरक मैं जाइ परै सो नरक पाती है॥ ३॥

से उपमा देकर रूपक बांधा है। वेनी=केश की वधी हुई चोटी। फ्न=झूमका जो चोटी के ओर पर लटकाया जाता है उसको 'डोरी' भी कहते हैं। यही सांपनी का फण है मानों। राक्षस वदन=राक्षस का सा भक्षण-शील मुख, जिसके देखने से ही कामी पुरुष शिकार हो जाता है, यही उसका खांऊ खाऊ पना समझिये।

(२) नारी को विषवृक्ष वा वेल वा विषकन्या कहा है। जर=जड़। फर=फल ततू=भुजाए। एक तरु=सतजन।

(३) विम्व=होंठ, विम्वफल समान लाल कोमल मीठे। चुचाती=टपकती।

(३) दिपाती है=दिखलाई देते हैं। नरक-पाती=नरक-गामी। (पाती= पड़नेवाला)।

कामिनी कौ अंग अति मलिन महा अशुद्ध
रोम रोम मलिन मलिन सब द्वार हैं।
हाड मास मज्जा मेद चाम सौं लपेट राखै
ठौर ठौर रक्त के भरेई भंडार है॥
मूत्र ऊ पुरीष आत एक मेक मिलि रही
और ऊ उदर माहिं विविध विकार हैं।
सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप
ताहि जे सराहे तेतौ वडेई गंवार हैं॥ ४॥

कुण्डलिया

रसिक प्रिया रस मंजरी और सिंगार हि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहै नख शिख नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्टान पाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जुतौ रसिक प्रिया धारै॥ ५॥

---

(४) निंद रूप=निंदा के योग्य आकार वा शरीर वाली। निंद्य-रूपा।

(५) रसिक-प्रिया=महाकवि केशवदासजी का रचा रसकाव्य वा नायिकाभेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। केशवदासजी का समय १६१२ से १६७४ तक का है। रसिक प्रिया ग्रन्थ के सिवा इनका रचा "नखशिख" भी है। सुन्दरदासजी ने इन के रसग्रन्थों पर कटाक्ष ही नहीं किया है वरन रसिकता का पूर्ण खण्डन कर दिया है। रसमंजरी-संस्कृत का रसकाव्य ग्रन्थ। इस ही का अनुवाद 'सुन्दर शृंगार' काव्य है जिसका नामोल्लेख यहां सुन्दरदासजी ने किया है। आगरानिवासी सुन्दर कविने यह ग्रन्थ संवत् १६८८ में बनाया था। भाषा में रसमंजरी उस समय या पहिले का कोई ग्रन्थ नहीं जाना गया। विषै बनाई आनि=विषय (रसिकता) को लेकर सुन्दररूप दे दिया जो वास्तव में महाविष है। स्त्रीलिंग क्रिया में चिंत्य है। इसका झुकाव उक्त

रसिक प्रिया कै सुनत ही उपजै वहुत विकार।
जो या मांही चित्त दे वहै होत नर ख्वार ॥
वहै होत नर ख्वार धार तौ कछुव न लागै।
सुनत विषय की बात लहरि विष ही की जागै ॥
ज्यौं कोइ ऊंघै हुतौ लही पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जानि सुनत रसिक प्रिया भाई ॥ ६ ॥

॥ इति नारी निंदा को अंग ॥ ९ ॥

अथ दुष्ट कौ अंग (१०) ॥

मनहर

आपनै न दोष देषै परकै औगुन पेषै
दुष्ट कौ सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसैं काहू महल सभारि राष्यौ नीकै करि
कीरी तहा जाइ छिद्र ढूढत फिरतु है ॥
भोर ही तें सांझ लग सांझ ही तें भोर लग
सुन्दर कहत दिन ऐसैं ही भरतु है।
पाव के तरोस की न सूझै आगि मूरष कौं
और सौं कहत सिर ऊपर बरतु है ॥ १ ॥

ग्रन्थों की ओर भी है जिनमें प्रथम दो स्त्रीवाची है। धारै=पढै विचारै और उसमें रत हो जाय।

(६) ऊंघै=ऊंघतो। "ऊंघै छोर बिछायौ लाध्यो" प्रसिद्ध कहावत है। रसिकों को ऐसा वा ऐसे रसिकता के ग्रन्थ मिल जाय फिर करेला और नीम चढा। वावली वाई भूतों खदेडी हो जाय।

(१) तरोस=तले, नीचे (जैसे पडोस। न सूझै अपना दोष तो आप को दीखै नहीं दूसरों का दोष दिखाता फिरै। (मुहाविरे हैं)।

इन्दव

घात अनेक रहै उर अंतर दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्र हि त्यौं नित ताकत है पुनि नाहि की पीठी॥
ऊपर तें छिरकै जल आनि सु हेठ लगावत जारि अगीठी।
या महि क्रूर कछू मति जानहु सुन्दर आपुनि आपिन दीठी॥ २॥
आपुन काज सवारन के हित और कौ काज विगारत जाई।
आपुन कारज होउ न होउ बुरौ करि और कौ डारत भाई॥
आपुहु पोवत औरहु पोवत पोइ दुवौं घर देत बहाई॥
सुन्दर देपत ही वनि आवत दुष्ट करै नहि कौन बुराई॥ ३॥
ज्यौं नर पोपत है निज देह हि अन्न विनाश करै तिहि वारा।
ज्यौं अहि और मनुष्य हि काटत वाहि कछू नहि होइ अहारा॥
ज्यौं पुनि पावक जारि सवै कछु आपुहु नाश भयौ निरधारा।
त्यौं यह सुन्दर दुष्ट सुभाव हि जानि तजौ किन तीन प्रकारा॥ ४॥
सर्प डसै सु नहीं कछु तालक वीछु लगै सु भलौ करि मांनौ।
सिंह हु पाइ तौ नाहि कछू डर जौ गज मारत तौ नहिं हानौ॥
आगि जरौ जल वूडि मरौ गिरि जाइ गिरौ कछु भै मति आनौ।
सुन्दर और भले सब ही दुख दुर्जन संग भलौ जिनि जानौ॥ ५॥

॥ इति दुष्ट कौ अंग ॥ १० ॥

---

(२) व्याघ्र=चीता। "अधिक नवत है ढींकली, चीता, चोर, कमान"। पीठी=पीठ (पीठताकना दूसरे से दगा करना।) हेठ लगावत "आग लगाकर पानी को दौड़ना"। (३) तीन प्रकार के पिशुन यहां वर्णन किये हैं जो उत्तम, मध्यम, कहे जा सकते है। (४) अन्न=अन्य, दूसरा मनुष्य। तिहि वारा=तत्काल, तुरन्त। सवै कछु" दूसरे के सर्वस्व का और अपना भी नाश। इस में तीनों प्रकार के दुष्टों के उदाहरण दिये हैं।

(५) तालक=तअलुक (अ०) लगाव, कुछ नुकसान का खयाल (मत करो)

अथ मन को अंग (११)॥

मनहर

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन
सटकि सटकि चहु वोर अव जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल वार वार
गटकि गटकि करि विप फल पात है॥
झटकि झटकि तार तोरत करम हीन
भटकि भटकि कहु नैकु न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुन्दर जु मानी हारि
फटकि फटकि जाइ सुधौं कौंन वात है॥ १ ॥

पलु ही मैं मरि जात पलु ही मैं जीवत है
पलु ही मैं पर हाथ देषत विकांनी है।
पलु ही मैं फिरै नव खडहु व्रह्मण्ड सव
देष्यौ अनदेष्यौ सुतौ यातें नहि छानौ है।
जातौ नहि जानियत आवतौ न दीसै कछु
ऐसी सी वलाइ अव तासौ पर्यौं पानौ है।

हानौ=हानि। इस छदमे दुष्ट पुरुष के ससर्ग को अन्य महादुःखों और नाशक कर्मों वा कारणों से भी बहुत हानिकारक वताया है। अर्थात् दुष्ट का ससर्ग कभी नही करना चाहिये।

(११ वां अग) मन के अग मे मन के लक्षण, स्वभाव, शक्ति, अवगुण, गुण महिमा सब वर्णन किये गये हैं। यह महान् शक्ति, मनुष्य के शरीर मे है। यह आत्मा का प्रतिभास है। इस से बुरा होना चाहो बुरा हो लो, भला होना चाहो भला होलो। "मन एव मनुष्याणां कारणम् बधमोक्षयो"। इसही से वधन और इसही से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। (देखो भागवत् एकादश स्कध भिक्षु गीता)।

(१) हटकि=रोककर, मना करके। सटकि=सटसे निकल जाता है)।

सुन्दर कहत याकी गति हू न लषि परै
"मनकी प्रतीति कोऊ करै सो दिवानौं है" ॥ २ ॥

घेरिये तो घेर्यो हू न आवत है मेरो पूत
जोई परमोधिये सु कान न धरतु है।
नीति न अनीति देषै शुभ न अशुभ पेषै
पल ही मैं होती अनहोती हु करतु है॥
गुरु की न साधु की न लोक वेद हू की शंक
काहू की न मानै न तो काहू तें डरतु है।
सुन्दर कहत ताहि धीजिये सु कौंन भांति।
"मन को सुभाव कछु कह्यौ न परतु है" ॥ ३ ॥

काम जब जागै तब गनत न कोऊ साप
जानै सब जोई करि देपत न माधी है।
क्रोध जब जागै तब नैंकु न संभारि सकै
ऐसी विधि मूलकी अविद्या जिनि साधी है।

लटकि=बड़े चाव से लचक २ कर। लोल=चंचल। तार तोरत=एकाग्रता लगी हुई को विगाड़ देता है। करमहीन=मंदभागी। पटकि सिर=सिर मार कर, बहुत पचकर। फटकि=फटकारे से, बेग्रसी वा बेपरवाही से। सुधौं=इस तरह की, इस ढग की (यह क्या बात है, अर्थात् अचरज है)।

(२) मरि जात=वृत्तिरहित, वश में आजाता है। पर हाथ=प्रेमवश होकर दूसरे पुरुष वा स्त्री में जा बैठता है। अनदेख्यो=इसकी विशालता ऐसी है कि स्वप्न में वा योगदृष्टि से अज्ञात पदार्थ भी जान सकता है। पानौं परयो=पाला पड़ना, काम पड़ना।

(३) मेरो पूत="म्हारो बेटो" यह (रजवाड़ी भाषा में) तर्क भरी बोली है। इसमें कुछ जबरदस्तपने, अवशता आदि का भाव है। कान न धरतु=सुनता नहीं। होती अनहोती=सुकर्म, अकर्म। सहज वा असम्भव।

लोभ जब जागै तब त्रिपत न क्योंहू होइ
सुन्दर कहत इनि ऐसैं हि में पाधी है।
मोह मतवारौ निश दिन हि फिरत रहै
"मन सौ न कोऊ हम देष्यौ अपराधी है" ॥ ४ ॥
देषिबे कौ दौरै तो अटकि जाइ वाही वोर
सुनिबे कौ दोरै तो रसिक सिरताज है।
सूघबे कौ दोरै तो अघाइ न सुगध करि
पाइबे कौ दोरै तो न धापै महाराज है॥
भोग हू कौं दौरै तो तृपति नहीं क्यों हू होइ
सुन्दर कहत याहि नैकहू न लाज है।
काहू को कह्यो न करै आपुनी ही टेक परै
"मन सौ न कोऊ हम जान्यो दगावाज है" ॥ ५ ॥
देषै न कुठौर ठौर कहत और की और
लीन जाइ होत हाड मास ऊ रगत मं।
करत बुराई सर औसर न जानै कछु
धका आइ देत राम नाम सों लगत में॥
वाहे सुर असुर बहाये सब भेष जिनि
सुदर कहत दिन घालत भगत में।

---

(४) साप=सम्बन्ध, रिश्तेदारी। मा धी=माता वा युवती। महापाप की मति होने से विवेकशून्यता का वर्णन है। मूल की अविद्या=मूला माया, वा घोर मूर्खता। षाधी=खाया, ग्रहण किया। अर्थात् लोभवश ही लीन अलीन का विवेक जाता रहता है।

(५) महाराज=बड़ा जबरदस्त बलवान (यह तक से कहा है) टेक परै=हठ करै। दगावाज=बेईमान, धोखेबाज, दुष्ट।

और ऊ अनेक अतराय ही करत रहै
"मन सौ न कोऊ है अधम या जगत में" ॥ ६ ॥
जिनि ठगे शकर विधाता इन्द्र देव मुनि
आपनौ ऊ अधपति ठग्यौ जिनि चन्द है।
और योगी जगम सन्यासी शेष कौंन गनै
सव ही कौं ठगत ठगावै न सुछन्द है ॥
तापस ऋषीश्वर सकल पचि पचि गये
काहू कै न आवै हाथ ऐसौ या पै वद हैं।
सुदर कहत वसि कौंन विधि कीजै ताहि
"मन सौ न कोऊ या जगत माहि रिन्द है" ॥ ७ ॥
रङ्क कौ नचावै अभिलाषा धन पाइवे की
निश दिन सोच करि ऐसैं ही पचत हैं।
राजाहि नचावै सव भूमि ही को राज लेव
औरउ नचावै कोई देह सौं रचत हैं ॥
देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोक
कीट पशु पषी कहु कैसें कै वचत हैं।
सुदर कहत काहू संत की कही न जाइ
"मन कै नचाये सव जगत नचत हैं" ॥ ८ ॥

---

(६) लीन=लिप्त, अवज्ञा न करै। सर औसर=वक्त वे वक्त, समय कुसमय। धक्का आइ देत=हटा देता है-जव भगवान में भक्ति की लगन होने लगती है तव। वाहे=हानि पहुंचाई। वहाये=काली धार डुवो दिये। अर्थात् सन्मार्ग से हटाकर कुमार्ग में लगा दिये। दिन घालत=(मुहाविरा) दु ख पहुचाता है। अतराय=विघ्न।

(७) अधिपति=स्वामी-मनका स्वामी चन्द्रमादेव है। या पै वद है=इसके पास ऐसे पेच हैं। अर्थात् वड़ा चलाक है। रिंद (फा०)=वदमाश, शैतान। असल मे रिंद फकीर अवधूतको कहते हे। (८) नचावै=जैसे वाजीगर वदर को

इन्दव

केतक द्यौंस भये समुझावत नेंकु न मानत है मन भोंदू।
भूलि रह्यौ विषया सुख मैं कछु और न जानत है सठ दौंदू॥
आपि न कान न नाक विना सिर हाथ न पाव नहीं मुख पोंदू।
सुन्दर ताहि गहै कोउ क्यौं करि नीकसि जाइ वडौ मन लौंदू॥ ९॥
दौरत है दश हू दिश कौं सठ बायु लगी तव तैं भयौ वैंडा।
लाज न कान कछू नहिं रापत शील सुभावकि फोरत मैंडा॥
सुदर सीप कहा कहि देइ भिदै नहिं वान छिदै नहिं गैंडा।
लालच लागि गयौ मन वीपरि वारह वाट अठारह पैंडा॥ १०॥
स्वान कहू कि श्रृगाल कहू कि विडाल कहू मन की मति तैसी।
ढेढ कहू किधौं डूम कहू किधौं भांड कहूं कि भंडाइ दे जैसी॥

नाच नचावै। अपने वश में करके जो चाहे सो ही भला बुरा काम करावै। ससारी जाल मे फसाये रक्खै।

(९) भोंदू=मूर्ख। दौंदू=दोदा एक कव्वा होता है, इस अर्थ में नीच वा- और न जानत है शठ दौंदू=अन्य कार्य (तत्कार्य) करना जानता नहीं। वा-तौंदू तूद फुलानेवाला पिटभर, रुटखव्वा, निठल्ला। पौंदू=पूद, चूतड़, अधोभाग शरीर का वा पौंडा सी गर्दन। लौंदू=लौंडा, चालाक। वा लौंदा-मक्खन के समान चिकना वा फिसलना जो हाथ मे से खिसक जाय।

(१०) वैंडा=वड, वावरा भांड, टेढ़ा, अक्कड़ बाका। मैंडा=मेर खेतकी, मर्यादा, हद्द। भिदै नहि वांन=वांण से भेदन के योग्य नहीं। छिदै नहीं गैंडा=गैंडे की ढाल शस्त्र से नहीं कट सकती, कटै वहीं फिर भर जाती और वैसी ही हो जाती है। अकाट्य, अच्छेद्य। गयो मन वीपरि=मन विखर गया, नाना मार्ग वा तरफ चला गया, कावू से वाहर हो गया। वारह बाट= (मुहाविरा) वेकावू, कपूत, नालायक निकल गया। अठारह पैंडा=और भी वढ़कर विगाड़ हो गया। नष्ट भ्रष्ट। "वारह वाट अठारह पैंडा"—यह अकेला भी मुहाविरा है अर्थ विगड़ा वा विगाड़। तितर

चोर कहू बटपार कहू ठग जार कहू उपमा कहुं कैसी।
सुन्दर और कहा कहिये अब या मन की गति दीसत ऐसी॥ ११॥
कै बर तू मन रंक भयौ सठ मागत भीष दशौं दिश डूल्यौ।
कै बर तैं मन छत्र धर्‌यौ सिर कामिनि संग हिंडोरनि भूल्यौ॥
कै बर तू मन छीन भयौ अति कै बर तू सुख पाइर फूल्यौ।
सुंदर कै बर तोहि कह्यौ मन कौंन गली किहिं मारग भूल्यौ॥ १२॥
इन्द्रिनि के सुख चाहत है मन लालच लागि भ्रमैं सठ यौं हीं।
ज्यों मरीचि भर्‌यौ जल पूरन धावत है मृग मूरष ज्यौं हीं॥
प्रेत पिशाच निशाचर डोलत भूष मरे नहिं धापत क्यौं हीं।
वायु बघूर हिं कौन गहै कर सुंदर दौरत है मन त्यौं ही॥ १३॥
कौन सुभाव पर्‌यौ उठि दौरत अमृत छाडि चचोरत हाडै।
ज्यौं भ्रमकी हथिनी दग देषत आतुर होइ परै गज षाडै॥
सुंदर तोहि सदा समुझावत एक हु सीष लगै नहिं राडै।
बादि वृथा भटकै निश वासर रे मन तू भ्रमवौ किन छाडै॥ १४॥

वितर। "मनही के घाले गये वहि घर बारह बाट"। "नई जवानी बारह बाट"। "हवा लगी समार की हो गया बारह बाट" मोह को आदि लेकर बारह मार्ग।

(११) स्वान=श्वान, कुत्ता। श्रगाल=स्यार, श्याल। विड़ाल=विलाव, बिल्ली। ढेढ=नीचातिनीच पुरुष। डूम=खुशामदी। भांड=प्रशसा से मांग खाने वाला। भडाइ दे=दूसरों की भाडणी भाडै, बुराई करै।

(१२) कै बर=कितनी बेर। डल्यौ=(रा०) डुला, फिरा। पाइर=(रा०) पाकर। फूल्यो=फूला न समाया अंग मे। कौन गली (भूल्यो। किहि मारग भूल्यौ=मार्ग भूलना, किस गली जाना=रास्ता भूलकर बेराह होना, गुमराह होना। (मुहाविरे है)। (१३) मरीचि=मरीचिका, मृगतृष्णा का जल। प्रेत—उनकी तरह। कर=हाथ में।

(१४) चचोरत=निचोरता, चूसता है (मु०)। भ्रमकी=बनावटी, धोखेकी। राँडै=सीख राँड नहीं लगती। अथवा रांडका कै सीख नहीं लगती।

है सब कौ सिरमौर ततक्षिन जौ अभि अतर ज्ञान विचारै।
जौ कछु और बिषै सुख बछत तौ यह देह अमौलिक हारै।
छाडि कुबुद्धि भजै भगवत हि आपु तिरै पुनि औरहि तारै।
सुदर तोहि कह्यौ कितनी बर तू मन क्यौं नहि आपु सभारैं ॥ १५ ॥
जौ मन नारिकी वोर निहारत तौ मन होत है ताहि कौ रूपा।
जौ मन काहु सौं क्रोध करै जब क्रोधमई होइ जात तद्रूपा ॥
जौ मन माया हि माया रटै नित तौ मन बूडत माया के कूपा।
सुन्दर जौ मन ब्रह्म विचारत तौ मन होत है ब्रह्मस्वरूपा ॥ १६ ॥

मनहर

कबहूं कै हसि उठै कबहू कै रोइ देत
कबहू बकत कहु अंत हू न लहिये।
कबहूक पाइ तौ अघाइ नहिं काही करि
कबहूक कहै मेरै कछु नहिं चहिये ॥
कबहूं आकाश जाइ कबहू पाताल जाइ
सुन्दर कहत ताहि कैसैं करि गहिये।
कबहूक आइ लागै कबहू उतारि भागै
"भूत के से चिन्ह करै ऐसौ मन कहिये" ॥ १७ ॥
कबहू तौ पांप कौ परेवा कै दिषावै मन
कबहूक धूरि के चावर करि लेत है।

---

(१५) ओर (१६) में मन को वास्तविक वस्तु ब्रह्मस्वरूप की ओर ध्यान दिलाया गया है। 'तद्रूपा में तकार द्वित्व नहीं होगा। जिस पदार्थ को अनुभव करै वही वा उस जैसा हो जाना यह आत्मा की शक्ति है यह एक दार्शणिक सिद्धान्त है और बहुत अश में सत्य है, और शास्त्रों में जगह २ इसका वर्णन है और सिद्धि का यही हेतु है।

कबहू तौ गोटिका उछारत आकाश वोर
कबहूक राते पीरे रङ्ग श्याम सेत है॥
कबहूं तो आव कौ उगाइ करि ठाडौ करें
कबहूं तो सीस धर जुदे करि देत है।
वाजीगर कौ सो ख्याल सुन्दर करत मन
सदाई भ्रमत रहै ऐसो कोऊ प्रेत है॥ १८॥
कबहूंक साध होत कबहूक चोर होत
कबहूक राजा होत कबहूंक रङ्क सौ।
कबहूंक दीन होत कबहू गुमानी होत
कबहूक सूधौ होत कबहूक वक सौ॥
कबहूंक कामी होत कबहूंक जती होत
कबहूक निर्मल होत कबहूक पक सौ।
मन कौ स्वरूप ऐसौ सुन्दर फटिक जैसौ
कबहूंक सूर होत कबहू मयंक सौ॥ १६॥

(१८) पांच को परेवा=एक पाख हाथ में दिखलाकर हथ फेरी से उसका पक्षी वना कर दिखावै। इस छन्द में मन की वाजीगरी की सी कलाए दिखाकर समझाया है। धूरि के चांवर=धूल की चुटकी के चावल वना देता है। गोटिका=गोली आकाश में उड़ा देता है। और नाना प्रकार के रङ्ग वदल देता है और उनकी हेर फेर कर देता है। आंव—सूखी गुठली को मिट्टी में गाडकर जल छिड़क कर आम का रोंख उगा देता है। सीस धर किसी पुरुष को कटा दिखा देता है, उसका सिर अलग, धड़ अलग। ऐसा आख्यान तुजुक जहागीरी मे लिखा है और सुना भी जाता है। प्रेत भूत भी ऐसे चहन दिखा देता है, छलावा होकर अनेक अद्भुत भयानक वातें कर देता है। वाजीगर और भूत-प्रेत जगह २ भटका करते हैं। इससे वहा प्रेत को वाजीगर के साथ वताया है।

(१९) गुमानी=घमडी। फटिक=विल्लोर जिनके पास जो रङ्ग लाया जाय वैसा ही रङ्ग का हो जाता है। सूर=सूर्य।

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं
ध्वजा कौ उडान कहो थिर न रहतु है।
पानी कौ सौ घेरि किधौं पौंन उरफेर किधौ
चक्र कौ सौ फेरि कोऊ कैसें कै गहतु है॥
अरहट माल किधौं चरपा कौ ष्याल किधौं
फेरि पात वाल कछु सुधि न लहतु है।
धूम कौ सौ धाव ताकौ रापिबे कौ चाव ऐसौ
मन कौ सुभाव सु तौ सुन्दर कहतु है॥ २० ॥
सुख मानै दुख मानै सम्पति विपति मानै
हर्ष मानै शोक मानै मानै रङ्क धन है।
घटि मानै वढि मानैं शुभ हूं अशुभ मानै
लाभ मानै हानि मानें याही तें कृपन है॥
पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै
नीच मानै ऊंच मानै मानै मेरौ तन है।
स्वरग नरक मानै वन्ध मानै मोक्ष मानै
सुन्दर सकल मानै तातैं नांउं मन है॥ २१ ॥

---

(२०) पानी को सो घेरि=भँवर। अहर नदी का। उरफेर=वघूरा, भभूला। घ्याल=फिरने की घटना, वा चरखी जिसका बालकों का खिलौना होता है। धूम को सो धाव=धुवां आग से निकल कर ऊंची उठ फैलती है और फिर विलायमान हो जाती है वैसे। राषिबे को चाव=इसका सन्वन्ध धुवां से होतो यह अर्थ हो कि धुवा रोक रखना जैसा कठिन है वैसे ही मन का रोकना है। और जो इसका सम्वन्ध मन के वर्णित लक्षणों और स्वभावों के साथ हो तो यह अर्थ हो कि मनको वश करने की लालमा एक माधारण बात नहीं है। क्या ऐसे दुर्दम मनरूपी प्रवल पिशाच को कैद करने का चाव है, क्या इसका चाव? यह प्रश्न करने से अभिप्राय खुलेगा। ऐसा स्वभाव मनका है, आप इसको मामूली न जानें।

(२१) इस में "मन" इस शब्द की व्युत्पत्ति को दिखाते है कि मन यह

नाम इसको क्यों दिया गया ? रङ्क=दीन, दरिद्र। वन=मनात्मता। मानें मेरो तन है=मन शरीर से पृथक् होने पर भी शरीर में ममता होना अज्ञान है। यही अविवेक और इनको पृथक २ मानना ही विवेक है। नाउ=नाम (यह) मन यह नाम क्यों है, इसका कारण बताया है मन शब्द सं० मनस् का भाषारूप है। और मन शब्द की "मन्यते अनेन इति मन मन् करणे असुन्"-यह व्युत्पत्ति हैं। जिस से मानने का काम हो, जो मानने का कारण वा साधन वा औजार हो, सो ही मन। वैशेषिक शास्त्र में मन को सकल्प विकल्प रूपी अणु (जो अत्यन्य सूक्ष्म और देखने में न आवै) शक्ति, आत्मा से पृथक् कहा है, क्योंकि इस को द्रव्य माना गया है और आत्मा द्रव्य नहीं है। सख्या, परिणाम, पृथक्त्व, सयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, सस्कार-ये आठ इस के गुण कहे हैं। ज्ञान और कर्म दोनों धर्म इस में है। यह अतःकरणचतुष्टय का एक विभाग वेदात में है-मन, बुद्धि, चित्त, अहकार। परन्तु योग में मन ही का नाम चित्त कहा है। जैन और बौद्ध शास्त्रों मे मन को छठी इद्रिय कहा गया गया है। उपनिषदों मे मन का बहुत वर्णन है। मन को इद्रियों का राजा और रथी और प्रेरक और ब्रह्म ही कहा है। इत्यादि यों शास्त्रों में मन के सम्बन्ध में भाति २ का विचार हुआ है। यह आभ्यन्तर शक्ति है जिसके गुण, कर्म, लक्षण, धर्म आदि से जैसा ज्ञानियों का प्रतीत हुआ वैसा ही लिखा है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि यह हमारे अन्दर एक महान् शक्ति है। इसका एक लोक वा राज्य वा पृथक् अधिकार मानना उचित है। चार शरीरों-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और प्रत्यक्—से यह एक शरीर वा लोक का राजा वा स्वयम् लोक है। चार कोशों अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय-में यह एक कोश कहा गया है। इसमें बनाने वा सृष्टि करने की शक्ति है। पुराणों में ब्रह्माजी मन से और ब्रह्माजी के मन से प्रथम सृष्टि हुई। उसही को मानसिक सृष्टि कही जाती है। सातों महर्षि, आदि पितृ, और चार मनु मानसिक सृष्टियों यथा गीता मे (१०।६) भी कहा है। स्थूल देह की सृष्टि का क्रम पीछे से हुआ। अनेक दार्शनिक विद्वान् सृष्टि को मनोमय—ईश्वर शक्ति-भगवान् के मन से प्रादुर्भूत मानते हैं। इस ही से वेदांत में इस सृष्टि वा प्रकृति को स्वप्न भी कहा है। मन से ऊपर (इस ही का एक गुण) विवेक बुद्धि,

जोई जोई देषै कछु सोई सोई मन आहि
जोई जोई सुनै सोई मन ही कौं भ्रम है।
जोई जोई सूंघै जोई पाई जौ सपर्श होइ
जोई जोई करै सोऊ मन ही कौ क्रम है॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै
जहा जहां जाइ सोई मन ही कौ श्रम है।
जोई जोई कहै सोई सुन्दर सकल मन
जोई जोई कलपै सु मन ही कौ ध्रम है॥ २२॥
एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देषियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौं अनादि काल मूल है॥
दश च्यारि लोक लौं प्रसरि जहा तहा रह्यौ
अध पुनि ऊरध सूक्ष्म अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥ २३॥✢

शुद्ध बुद्धि है। इसका साधन द्वारा प्रभाव वा बल बढाने से मन की वृत्तिया वा चचलता रोकने से आत्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष वा सिद्ध होने लगता है। यह सब को सम्मत है।

(२२) क्रम=विधान, कर्म। अनुरागै=अनुराग वा चाव करके ग्रहण करे ध्रम=धर्म, वास्तविक स्वभाव। कलपै=सकल्प-विकल्प करै।

✢ छद २३ वां चित्रकाव्य भी है। देखो चित्रकाव्य के चित्र।

(२३) विटप=वृक्ष। विश्व=ससार। ससार मे घटाव बढाव केवल वृक्ष के पत्तों, फूलों और फलों के समान बताया है, ऐसे ही जन्मांतर है। शास्त्र में (गीता १५।१-३।) सृष्टि को अश्वत्थ (पीपल) इसही कारण से कहा है। और

तौ सौ न कपूत कोऊ कतहू न देषियत
तौ सौ न सपूत कोऊ देषियत और है।
तू ही आप भूलि महा नीच हू तें नीच होइ
तूं ही आपु जाने तें सकल सिर मौर है॥
तू ही आपु भ्रमै तब भ्रमत जगत देषै
तेरै थिर भये सब ठौर ही कौ ठौर है।
तू ही जीव रूप तू ही ब्रह्म है आकाशवत
सुन्दर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४॥
मन ही के भ्रम तें जगत यह देषियत
मन ही कौ भ्रम गये जगत विलात है।
मन ही के भ्रम जेवरी मैं उपजत सांप
मन के विचारें सांप जेवरी समात है॥

इसका मूल (अनादि काल ब्रह्म) है अनादि काल। चौदह लोक—(सात ऊपर के) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक। (सात नीचे के) अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल। अध=नीचे। ऊरध=ऊपर। ऊंच नीच सापेक्षता से ही है असल मे नहीं है। सूक्ष्म=इन्द्रियगोचर न हो, मन बुद्ध्यादिक परमात्मा तक। स्थूल=इन्द्रियगोचर, पंच तत्व और उन से बने पदार्थ। सत=तीनों काल में रहै। असत्य=जो विगड़ै, बदलै, वा नाश हो। अक्षर और क्षर। सद्वाद के प्रवर्त्तक रामनुजादि। असद्वाद के चार्वाकादि वा वेदांत भी। (यह चित्रकाव्य है।)

(२४) इस छंद में मन से सम्बोधन करके बहुत उत्तम रीति से मन को समझाया है और बहुत तत्व की बातें कही है। मन को आत्मा का बेटा कहा है। अवगुण मे प्रवृत्त होनेसे पुत्र भी कुपुत्र कहाता है और सद्गुणी होने से सुपुत्र वैसे ही यह मन विषयादि से हटकर अहंकार को मिटा कर परमात्मतत्व अपने पिता का अनुयायी और आज्ञावर्त्ती हो जाय तो इस की सपूताई है। नहीं तो कपूताई। आपु

मन ही के भ्रमतै मरीचिका कौ जल कहै
मन ही कें भ्रम सींप रूपौ सौ दिपात है।
सुन्दर सकल यह दीसै मन ही कौ भ्रम
"मन ही कौ भ्रम गये ब्रह्म होइ जात है" ॥ २५ ॥

मन ही जगत रूप होइ करि विसतर्यौ
मन ही अलष रूप जगत सौं न्यारौ है।
मन ही सकल घट व्यापक अखण्ड एक
मन ही सकल यह जगत पियारौ है ॥
मन ही आकाशवत हाथ न परत कछु
मन के न रूप रेष वृद्ध ही न वारौ है ॥
सुन्दर कहत परमारथ विचारै जब
"मन मिटि जाइ एक ब्रह्म निज सारौ है" ॥ २६ ॥

॥ इति मन कौ अंग ॥ ११ ॥

जानते=अपना असली स्वरूप जान लेने से-अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि"—मैं आत्मा ही हूं। स्थिर भये=चंचलता छुट कर एकाकार हो जाने से। आकाशवत्=आकाश समान सर्वव्यापी और अलिप्त और अतिसूक्ष्म। मन, जीव होकर, जीव फिर ब्रह्म हो जाय-यह क्रम है।

(२५) यहां तीन दृष्टान्त वेदांतसे दिये हैं —(१) रज्जुसर्प का (२) रजत शुक्ति का (३) मृगमरीचिका का यह तीनों अध्यात्म वाद से सम्बन्ध रखते हैं। वेदांत सूत्र में अ० ३ पाद ३-५ तथा शांकरभाष्य के उपोद्घात में विस्तार से है। अध्यास ही को भ्रम कहते हैं।

(२६) मन ही जगत रूप=यह जगत मनोमय सृष्टि है। ईश्वर का एक विचार मात्र यह सकल संसार है। फिर, यह मन सकल स्थूल प्रपंच से पृथक् है, क्योंकि यह सूक्ष्म है इसका स्वभाव, धर्म, गुण स्थूल प्रकृत्ति से भिन्न है। प्रपंच दृष्ट यह अदृष्ट। सकल घट व्यापक=यहा मन को आत्मस्वरूप मानकर सर्वव्यापक कहा। "मनो वै ब्रह्म" (श्रुति)

अथ चाणक को अंग (१२)॥

मनहर

जोई जोई छूटिवे कौ करत उपाइ अज्ञ
सोई सोई दृढ करि वन्धन परत हैं।
जोग जज्ञ जप तप तीरथ ब्रतादि और
झपापात लेत जाइ हिवारैं गरत है॥
कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुचाइ अङ्ग
विभूति लगाइ सिर जटाऊ धरत है।
विनु ज्ञान पाये नहिं छूटत हृदै की ग्रन्थि
सुन्दर कहत यौं ही भ्रमि कै मरत है॥ १॥

पियारो=प्यारा, प्रिय। आत्मा आनन्दस्वरूप है। सत, चित, आनन्द प्राप्त तीन गुणोंमे आनद गुण कथित है, यहा। रूप रेष=(महाविरा) आकार रहित। आकार रेखाओं का विकार होता है। रेखा परमाणुओं का विकार है। अतः सूक्ष्म से स्थूल का वनना प्रतीत होता है। मन मिटि जाइ=यहां मन के सकल्प विकल्पात्मक स्वभाव वा धर्म से प्रयोजन है। जब अतःकरण की वृत्ति होती रह जाय, साधन, समाधि वा प्रेमाभक्ति आदि—विधानों से, तब परमात्म- स्वरूप का अपरोक्ष अनुभव हो जाता है। निज सारौ=निज सार "राम नाम निजसार है काया मोक्ष करत" इत्यादि मे निजसार का प्रयोग है। असल, अपना, सारतत्त्व वा स्वरूप। यही सब साधनों का परम फलस्वरूप सिद्धि और यही मोक्ष वा मुक्ति है। इस मन के अग को श्री दादूदयालजी की वाणी के अग १० मन के अङ्ग से मिलाने से और भी अधिक आनन्द होगा। अन्य महात्माओं-रज्जवजी की वाणी १५२ का अङ्ग। यही सुन्दरदासजी की साखी में मनका अङ्ग। जगजीवणजी की वाणी मे। कबीरजी की वाणी मे। इत्यादि।

(चाणक को अङ्ग) (१) चाणक=कोरड़ा, ताजियाना, चपेटिका। चितावन

निर्मात्रिक (उक्त)

जप तप करत धरत व्रत जत सत
मन बच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
बलकल बसन असन फल पत्र जल
कसत रसन रस तजत बसत बन॥
जरत मरत नर गरत परत सर
कहत लहत हय गय दल बल घन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ
घट घट प्रगट रहत न लषत जन॥ २॥

जोग करै जाग करै वेद विधि त्याग करै
जप करै तप करै यू ही आयु पूटि है।
यम करै नेम करै तीरथऊ व्रत करै
पुहमी अटन करै वृथा स्वास टूटि है॥
जीवे को जतन करै मन मैं वासना धरै
पचि पचि यौं ही मरै काल सिर कूटि है।

इस में अनेक प्रकार बेष और रङ्गढग को वृथा, और ज्ञान ही को सर्वोत्तम कहा है। हृदै की ग्रन्थि=दिल की घुडी। मन की कसक। संदेह, सशय। भ्रमि के मरत है=अनेक प्रकार के विध-बिघान, मतमतांतर, पठनपाठन, ढूढ तलाश, इधर-उधर के शास्त्र सिद्धांत आदि को ढूढते फिरने से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होवै नहीं, उलटा मिथ्या ज्ञान होने से अपनी आत्मा को मारना है। वृथा ही पचकर मरना है।

(२) कष्ट का 'कषट' छद के लिये बनाना पड़ा। बलकल=छाल। बसन=वस्त्र। असन=भोजन। रसन=जिह्वा। घटघट' '=ईश्वर सर्वव्यापी सब पदार्थों मे विद्यमान है, तो भी उसको यह अज्ञ मनुष्य नहीं जान लेता है अनेक कठिन उपाय और तपादि साधना करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात् ज्ञान के बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं है।

औरऊ अनेक विधि कोटिक उपाइ करै
सुन्दर कहत विनु ज्ञान नहिं छूटि है ॥ ३ ॥
बुद्धि करि हीन रज तम गुन छाइ रह्यौ
वन वन फिरत उदास होइ घर तें।
कठिन तपस्या धरि मेघ शीत घाम सहै
कन्द मूल पाइ कोऊ कामना के डरतें॥
अति ही अज्ञान और विविधि उपाइ करै
निज रूप भूलि करि बँधै जाइ परतें।
सुन्दर कहत मूधी वोर दिश देषै मुख
हाथ माहि आरसी न फेरै मूढ करतें॥ ४ ॥
मेघ सहै शीत सहै शीश परि घाम सहै
कठिन तपस्या करि कन्द मूल षात है।
जोग करै जज्ञ करै तीरथऊ व्रत करै
पुन्य नाना विधि करै मन मैं सिहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै
आवन की हौंस कैसैं अकडोडे जात है।
सुन्दर कहत एक रवि के प्रकाश विन
जैंगनै की जोति कहा रजनी विलात है॥ ५ ॥

---

(३) 'वेद विधि'—इसका सम्वन्ध 'जाग करै' से है षूटी=बीती, चली गई। पुहमी=पृथ्वी। अटन=भ्रमण। स्वास टूटी=जीवन के स्वास योंही चले गये। सिर कूटि=माथे पर प्रहार करैगा। अर्थात् मार देगा।

(४)मूधी वौर=उलटी तरफ। दर्पण की पीठ (प्राचीन काल का फौलादी आइना)।

(५) हौंस=हविस, चाह। अकडोढे=आक की पाडी (फल)। जैंगने=जुगनू, खद्योत, आग्या, पटवीजना।

"आप ही के घट में प्रगट परमेश्वर है
ताहि छोडि भूलै नर दूर दूर जात है।
कोई दौरै द्वारिका कौ कोई काशी जगन्नाथ
कोई दौरै मुथुरा कौ हरिद्वार न्हात है॥
कोई दोरै वद्रीनाथ विषम पहाड चढै
कोई तौ केदार जात मन में सिहात है।
सुन्दर कहत गुरुदेव देहि दिव्य नैन
दूर ही कै दूरवीन निकट दिपात है" ॥ ६ ॥*
कोऊ फिरै नागै पाइ कोऊ गूदरी बनाइ
देह की दशा दिपाइ आइ लोक धूर्त्यौ है।
कोऊ दूधाधारी होइ कोऊ फलाहारी तोय
कोऊ अधौमुख भूलि भूलि धूम घूट्यौ है॥
कोऊ नहिं पाहि लौन कोऊ मुख गहै मौन
सुन्दर कहत यौंहीं वृथा भुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति माहिं ज्ञान सौं परचै नाहिं
"देषौ भाई आधरैनि ज्यौं वजार लूट्यौ है" ॥ ७ ॥

---

(६) आप ही के घट में=अपने ही शरीर भीतर। हृदय में। अन्तरात्मा अपने अन्दर ही विराजमान है। इस प्रकार परब्रह्म को सत्ता का मानना दादूदयाल के पथधारियों का प्रधान मत है। और नानक, कबीर, रैदास, आदि इस मर्म के पहुचवान साधुओं का तथा वेदांत का यही परम सत्य दृढ निश्चय है।

* ६ छन्द (क) (ख) पुस्तकों में नहीं है। अन्य पुस्तकों में हैं सो वहां से उद्धृत किया गया है। (७) धूर्त्यो=धूत्यो, धूर्त्तता की, छल किया। घूट्यो=घूट २ कर पीया। भुस कूट्यो=भुस्सी कूट कर अन्न निकालने के लिये वृथा उद्योग करना। आंधरे ने वाजार लूट्यो=अधा वाजार, को कैसे लूटमार करे? अर्थात् असम्भव वात वा अनहोनी कार्यवाही करना।

इन्दव

आसन मारि संवारि जटा नख उज्जल अङ्ग विभूति चढाई।
या हम कौं कछु देइ दया करि घेरि रहै बहु लोग लुगाई॥
कोउक उत्तम भोजन ल्यावत कोउक ल्यावत पान मिठाई।
सुन्दर लै करि जात भयौ सब मूरष लोगनि या सिधि पाई॥ ८॥
ऊरध पाइ अधौमुख ह्वै करि घूटत धूमहि देह झुलावै।
मेघहु शीतहु घाम सहै सिर तीनहु काल महा दुख पावै॥
हाथ कछू न परै कबहूक्न मूरष फूकस कूटि उडावै।
सुन्दर वछि विषै सुख कौं "घर बूडत है अरु झाम्झण गावै॥ ९॥
ग्रेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि पेह लगाइ कै देह सवारी।
मेघ सहे सिर सीत सह्यौ तनु धूप समै जु पञ्चागनि वारी॥
भूप सही रहि रूंप तरै-परि सुन्दरदास सहे दुख भारी।
डासन छाडि कै कासन ऊपर "आसन मार्‍यौ पै आस न मारी"॥ १०॥
जौ कोउ कष्ट करै बहुभातिनि जाति अज्ञान नहीं मन केरौ।
ज्यौं तम पूर रह्यौ घर भीतरि कैसैंहु दूर न होत अन्धेरौ॥

---

(८) इस में कपटवेश धूर्त साधु का वर्णन है। या=हे! "लैकरि जात भयो=माल मता लेकर चल दिया। अर्थात् उन मूख भक्तों का सर्वस्व हरण कर तीन तेरह हो गया। या=यह।

(९) झाम्झण गावै=मारवाड़ में खुशी का एक गीत होता है। उधर घर बरबाद हो रहा है और इधर उनको कुछ चिंता ही नहीं। निश्चित होकर रागें अलापते हैं। अर्थात् बड़े ही असावधान वा बेफिक्र हो रहे हैं। अर्थात् मनुष्य देह पाकर आयुष्य बहुमूल्यवान को वृथा खोते हैं, हरिभजन नहीं करते।

(१०) डासन=बिछौना (ससार सुख) कासन=कास के मोटे घास पर। आसन मार्‍यो=आसन लगाया, योगाभ्यास किया। आस=आशा तृष्णा, कामना।

लाठिनि मारिये ठेलि निकारिये और उपाइ करै बहुतेरौ।
सुन्दर सूर प्रकाश भयौ तब तौ कतहूं नहिं देपिय नेरौ॥ ११॥

धार बह्यौ पग धार ह्यौ जल धार सह्यौ गिरिधार गिर्‌यौ है।
भार सच्यौ धन भारथ हू करि भार लयौ सिर भार पर्‌यौ है॥
मार तप्यौ वहि मार गयौ जम मार दई मन तौ न मर्‌यौ है।
सार तज्यौ पुट सार पढ्यौ कहि सुन्दर कारिज कौन सर्‌यौ है॥ १२॥

कोउ भया पय पान करै नित कोउक पात है अन्न अलौना।
कोउक कष्ट करैं निसवासर कोउक बैठि कै साधत पौना॥
कोउक वाद विवाद करै अति कोउक धारि रहै मुख मौना।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु सिद्ध भयो नहिं दीसत कौना॥ १३॥

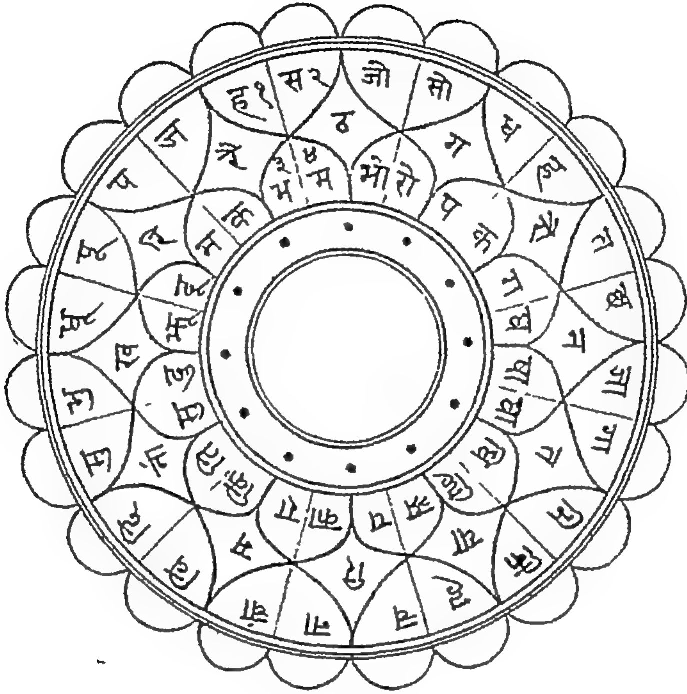
कोउक अङ्ग विभूति लगावत कोउक होत निराट दिगम्बर।
कोउक स्वेत कपाइक वोढत कोउक काथ रंगै बहु अम्बर॥
कोउक वल्कल सीस जटा नख कोउक वोढत हैं जु बघम्बर।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु ये सब दीसत आहि अडम्बर॥ १४॥

कोउक जात पिराग बनारस कोउ गया जगनाथ हिं धावै।
को मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ भया कुरषेत हि न्हावै॥
कोउक पुष्कर ह्वै पञ्च तीरथ दौरइ दौरै जु द्वारिका आवै।
सुन्दर वित्त गड्यौ घर माहिं सु बाहिर ढूंढत क्यौं करि पावै॥ १५॥

---

(१२) यह चित्रकाव्य है। पग=खङ्ग। ह्यौ=मारा गया। गिरिधार=पहाड़ का किनारा। भार=(१) बहुत (२) बोझ (३) भाड़। मार=कामदेव। मार=ताड़ना पिटना। पुट=खोट।

(१५) पचतीरथ=पाचतीर्थ एक स्थान में-यथा कुशावर्त्त, बिल्व। वित्त गड्यो=हृदय में प्रविष्ट परमात्मा बाहर ढूंढने से क्या मिले। केश्वर, नीलपर्वत, कनखल, हरिद्वार।



Engraved & printed by Gaya Art Press, Cal.

(१३) कङ्कण बध पहिला १

डुमिला छन्द

हठ जोग धरौ तन जात मिया, हरि नाम विनां मुख धूरि परै ।
सठ सोग हरौ छन गात किया, चरि चाम दिना भुप भूरि जरै ॥
भठ भोग परौ गन पात धिया, अरि काम किना सुख झूरि मरै ।
मठ रोग करौ धन घात हिया, परि राम तिना दुख दूरि करै ॥१३॥

---o---

[इसके पढने की विधि सामने पृष्ट पर देखें]

न्यू राजस्थान प्रेस

कंकण वन्ध (१)

पढने की विधि.—

कंकण के भीतर विभाग इस प्रकार हैं कि ऊपर की वड़ी पखड़ियों के और नीचे की छोटी पखड़ियों के दो २ टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के चार २ (दो पिछलों और दो पहिलों) के वीच में चौकोर से घर वन गये हैं। अव छन्द के चारों चरणों के आद्य अक्षरों पर १-२-३-४ के अङ्क रख दिये गये हैं और ये अक्षर वड़ी छोटी पत्तियों के टुकड़ों में पास २ लिखे हुए हैं। यह भी ध्यान में रहे कि छन्द का प्रत्येक शब्द दो २ अक्षरों का है। (१) चौकोर घर के १२ अक्षर चारों पखड़ियों के टुकड़ों के अक्षरों के साथ चार २ वेर पढ़े जाते हैं। (२) प्रथम चरण यों पढना चाहिए—ह (वड़ी पाखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर) ठ (चौकोर घर के अक्षर) के साथ पढे। इसही प्रकार आगे सव युग्माक्षरों के ग्यारहों शब्द पढें। प्रत्येक चरण में वारह २ शब्द दो २ अक्षरों के होने से पढ़ना सहज है। (३) द्वितीय चरण इस प्रकार पढ़ें—स (वड़ी पखड़ी के द्वितीयार्ध का अक्षर) के साथ ठ (पास के चौकोर घर के अक्षर) को पढ़ें। इसही प्रकार आगे के ग्यारहों शब्द। (४) तृतीय चरण यों पढ़िये—भ को ठ के साथ (जो छोटी पांखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर, चौकोर घर के अक्षर हैं) पढें। और आगे के ग्यारहों शब्द इसही ढग से। (५) चतुर्थ चरण पढ़ने की विधि यह है—म (छोटी पांखड़ी के द्वितीयार्ध के अक्षर) को ठ (उसही) के साथ पढ़कर आगे ११ शब्दों को यों ही॥

———o———

आगें कछू नहिं हाथ पर्यौ पुनि पीछै बिगारि गये निज भौना।
ज्यों कोउ कामिनि कन्तहि मारि चली मग और हि देपि सलौंना॥
सोउ गयौ तजिकें ततकाल कहै न बनै जु रही मुख मौना।
तैसेंहि सुन्दर ज्ञान विना सब छाडि भये नर भाड के दौना॥ १६॥
ज्यौं कोउ कोस कर्यौ नहिं मारग तेलकलै घर मैं पशु जोये।
ज्यौं बनिया गयौ बीस कै तीस कौं बीस हु मैं दशहू नहिं होये॥
ज्यौं कोउ चौबे छबे कौ चल्यौ पुनि होइ दुवे दुइ गाठि के षोये।
तैसेंहि सुन्दर और क्रिया सब राम बिना निहचै नर रोये॥ १७॥
जो कोउ राम बिना नर मूरष औरन के गुन जीभ भनैंगी।
आनि क्रिया गढतें गड़वा पुनि होत है भेरि कछू न बनैंगी॥
ज्यौं हथफेरि दिपावत चावर अन्त तौ धूरि की धूरि छनैंगी।
सुन्दर भूल भई अतिसें करि "सूते की भेंसि पडाइ जनैंगी"॥ १८॥

---

(१६) भौंना=भवन, घर। घर विगड़ना (मुहाविरा) हाथ पड़ना (मुहाविरा), भांड के दौना=दूसरो की बुराई कर अल्पलाभ (दौने के बराबर) पाना। घणी बिगाड़ थोड़ी पाना। सब भ्रष्ट कर पछताना। प्रसाद को उच्छिष्ट करना। यह एक आख्यायिका से सम्बन्ध रखता है।

(१७) तेलकलै=तेल कल (घाणी या कोल्हू) मे। जोये=जोते, जोड़े। घाणी के बैल चक्कर ही लगाया करते है परन्तु मंजिल नहीं काटते, वैसे ही ससार चक्र में मनुष्य भ्रमता रहता है परन्तु इस चाल से परमार्थ के रस्ते मे आगे नहीं बढ सकता। उसका सब भ्रमण वृथा ही है। बीस के तीस कौं=बीस रुपये के तीस रुपये के नफे के लिये व्यापार करने को गया। अर्थात् लोभ करके जन्म गमाया सच्चा लाभ भगवत्प्राप्ति का नहीं हुआ। उल्टी हानि हुई। होये=हुये। चौबे छब्बे दुब्बे—(प्रसिद्ध मुहाविरा कहावत) "चौबेजी छब्बे होने चले पर दुब्बे के सासे पड़े।

(१८) गडवा · गडवा से भेर होना (मुहा०) कुछ का कुछ हो जाना।

होइ उदास विचार विना नर ग्रेह तज्यो वन जाइ रह्यौ है।
अम्बर छाडि वघम्बर लै करि कै तप कौं तन कष्ट सह्यौ है॥
आसन मारि सवासन ह्वै मुख मौंन गही मन तौ न गह्यौ है।
सुन्दर कौन कुवुद्धि लगी कहि या भवसागर माहिं वह्यौ है॥ १९ ॥
भेष धर्यौ परि भेद न जानत भेद लहे विनु पेद हि पैं हैं।
भूषहि मारत नीन्द निवारत अन्न तजै फल पत्रनि पैहैं॥
और उपाइ अनेक करै पुनि ताहि तें हाथ कछू नहिं ऐहै।
या नर देह वृथा सठ षोवत सुन्दर राम विना पछितैहैं॥ २० ॥
आपने आपने थान मुकाम सराहन कौं सव वात भली हैं।
यज्ञ व्रतादिक तीरथ दान पुरान कथा जु अनेक चली है॥
कोटिक और उपाइ जहाँ लगते सुनि कैं नर वुद्धि छली है।
सुन्दर ज्ञान विना न कहूं सुख भूलन की वहु भाँति गली हैं॥ २१ ॥
कोउक चाहत पुत्र धनादिक कोउक चाहत वाँझ जनायौ।
कोउक चाहत धात रसायन कोउक चाहत पारद पायौ॥
कोउक चाहत जन्त्रनि मन्त्रनि कोउक चाहत रोग गमायौ।
सुन्दर राम विना सव ही भ्रम देपहु या जग यौं डहकायौ॥ २२ ॥

गडवा=छोटा लोटा। भेर=वड़ा नरसिंघा वाजा। सूते की=गाफिल की। पड़ा जनना दूसरे चालाक ने पाड़ी को चुराकर पाड़ा ला धरा। ससार में सावधानी से ईश्वर भजना।

(१९) उदास=विरक्त। सवासन=वासना सहित, वासना वा कामना को न त्यागकर रसवर्ज वा रसरहित न होकर।

(२०) विन षेद=क्लेश वा श्रम किये विना ही। ज्ञान मार्ग से सहज ही।

(२१) गली=मार्ग।

(२२) डहकायो=धोखा खाया। वहकावट में पड़ गया। भ्रमग्रस्त हो गया।

काहेकौं तू नर भेप बनावत काहे कौं तू दश हू दिश डूलै।
काहे कौं तू तन कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख तें कहि फूलै॥
काहे कौं और उपाइ करै अब आन क्रिया करि कैं मति भूलै।
सुन्दर एक भजै भगवत हि तौ सुखसागर मैं नित झूलै॥ २३॥

॥ इति चाणक्य को अंग ॥ १२ ॥

अथ विपरीत ज्ञानी को अंग (१३)॥

मनहर

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत है
अन्तहकरन तौ विकारनि सौं भर्यौ है।
जैसैं ठग गोवर सौं कूपौ भरि राषत है
सेर पाच घृत लैकें ऊपर ज्यौं कर्यौ है॥
जैसैं कोउ भाडे माहिं प्याज कौं छिपाइ राषै
चीथरा कपूर कौ लै मुख बाधि धर्यौ है।
सुन्दर कहत ऐसें ज्ञानी है जगत माहिं
तिन कौं तौ देषि करि मेरौ मन डर्यौ है॥ १॥
देह सौं ममत्व पुनि गेह सौं ममत्व सुत
दारा सौं ममत्व मन माया मैं रहतु है।

---

(२३) डूलै=डोलै, फिरै, भ्रमता रहै। फूलै=गर्व कर। सुखसागर=ब्रह्मानद का समुद्र वा लोक। झूल=हिलोर लेवै। मग्न हो जाय। (प्राचीन काल मे धनवान अमीर व राजाओं की त्रिया पलगों पर लटके हुओ पर झूला करती थी। अब भी किसी २ देश में यह रिवाज है।

(विपरीत ज्ञानी का अङ्ग) (१) कूपो=सीदड़ा, भांडा। ऐसें ज्ञानी=इस प्रकार कपटी व दम्भी ज्ञानी। कपटी साधु वा कपटमुनी।

थिरता न लहै जैसैं कंदुक चौगान माहिं
कर्मनि के वसि मार्यौ धक्का कौं वहतु है ॥
अंतहकरन सुतौ जगत सौं रचि रह्यौ
मुख सौं बनाइ बात ब्रह्म की कहतु है।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचंभौ आहि
भूमि पर पर्यौ कोऊ चन्द कौं गहतु है ॥ २ ॥

मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमै मन इन्द्री प्रान
मारग के जल मैं न प्रतिबिंब लहिये।
गांठि मैं न पैका कोऊ भयौ रहै साहूकार
बातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिये ॥
स्वपनै मैं पंचामृत जोमि कै तृपति भयौ
जागे तें मरत भूप पाइबे कौं चहिये।
सुन्दर सुभट जैसैं काइर मारत गाल
"राजा भोज सम कहा गांगो तेली कहिये" ॥ ३ ॥

संसार के सुपनि सौं आसक्त अनेक विधि
इन्द्री हू लोलप मन कवहूं न गह्यौ है।

---

(२) कदुक=गेंद। धक्का कौं वहतु है=धक्के खाता फिरता है। बे ठिकाना है। चद कौं गहतु है=चांद को पकड़ता है, बालक की तरह सरीह असम्भव बात करता है।

(३) मारग के जल=बहता जल। पैका=दमड़ी, पैसा कौड़ी। "पैका नाही गाठडी" (दादू वाणी अंग १३। सा० १११-११२)। मारत गाल=बड़े बोल बोलना, बकवाद करना। राजाभोज गागोतेली—यह प्रसिद्ध कहावत है "कहा तो राजाभोज और कहा गागातेली"। राजाभोज की होडाहोडी उज्जैन में एक गागातेली ने भी दातव्यता की थी। वहां उसका स्मारक भी बताते है। परन्तु वास्तव में यह पराजित "गागेय तैलग" राजा था जिसका जिक्र इतिहास में अनुसधान से लिखा गया है।

कहत है ऐसै में तौ एक ब्रह्म जानत हौ
ताहि तें छोडि कै शुभ कर्मनि कौं रह्यौ है ॥
ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गये
दहुंन तें भ्रष्ट होइ अध वीच वह्यौ है।
सुन्दर कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसें
याही भाति ग्रन्थ में वशिष्टजी हू कह्यो है ॥ ४ ॥
ज्ञान की सी वात कहै मन तौ मलीन रहै
वासना अनेक भरी नैकु न निवारि है।
जैसे कोऊ आभूषन अधिक वनाइ राष्यौ
कलीई ऊपर करि भीतरि भगारि है॥
ज्यौं हीं मन आवै त्यौं हीं पेलत निशक होइ
ज्ञान सुनि सीप लयौ ग्रन्थन विचारि है।
सुदर कहत वाकै अटक न कोऊ आहि
ओई वासौं मिलै जाइ ताहि कौं विगारि है ॥ ५ ॥
हंस स्वेत वक स्वेत देपिये समान दोऊ
हंस मोती चुगै वक मकरी कौं पात है।
पिक अरु काक दोऊ कैसें करि जाने जाहिं
पिक अव डार काक करक हि जात है॥
सिंधौ अरु फटक पपान सम देपियत
वह तौ कठौर वह जल में समात है।

---

(४) स्वपच=श्वपच, चांडाल। ग्रन्थ में=योगवशिष्ट वेदांत ग्रन्थ। वशिष्टजी-योगवाशिष्ट ग्रन्थ में वाल्मीकिजीने वशिष्ट मुनि और श्रीरामचन्द्र का सम्वाद वर्णन किया है। उसमें ऐसे मिथ्या ज्ञानी को त्याज्य लिखा है।

(५) भगारि=भरती, कालबूत।

सुदर कहत ज्ञानी वाहिर भीतर शुद्ध
ताकी पटतर और वातनि की वात है॥ ६॥

॥ इति विपरीत-ज्ञानी को अग ॥ १३ ॥

अथ वचन विवेक को अंग (१४) ॥

मनहर

जाकै घर ताजी तुरकीन कौ तवेला वध्यौ
ताकें आगै फेरि फेरि टट्टुवा नपाइये।
जाकै पासा मलमल सिरी साफ ढेर परे
ताकै आगै आनि करि चौसई रपाइये॥
जाको पंचामृत पात पात सव दिन वीते
सुन्दर कहत ताहि रावरी चपाइये।
चतुर प्रवीन आगै मूरप उचार करै
"सूरज कै आगै जैसें जेंगणा दिपाइये" ॥ १ ॥
एक वाणी रूपवत भूपन वसन अंग
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक वांणी फाटे टूटे अवर उढाये आनि
ताहू माहि विपरीति सुनियत तैसी है॥
एक वाणी मृतक हि वहुत सिंगार किये
लोकनि कौ नीकी लगै सतनि कौ भै सी है।

(६) पिक=कोयल। करक=करक, मुर्दा पशु। पटतर=समानता, वरावरी।

(१) ताजी=अरव देश का घोड़ा। तुरकीन=तुरकिस्तान का घोड़ा। पासा=वढिया कपड़ा। सिरी=उत्तम वस्त्र। साफ=उच्चप्रकार का रेशमी वस्त्र। चौसई=गजी, मोटा कपड़ा। नपाइये=कुदाइये, चाल चलवाइये। जैंगणा=जुगनू, खद्योत, आगया। (देखा "जैंगणां की जोत")।

सुन्दर कहत वांणी त्रिविधि जगत माहि
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है ॥ २ ॥
राजा कौ कुवर जौ स्वरूप कै कुरूप होइ
ताकौं तसलीम करि गोद लै पिलाइये।
और काहू रैति कै स्वरूप होइ सोभनीक
ताहू कौ तौ देपि करि निकट बुलाइये॥
काहू कै कुरूप कारौ कूवरौ ह्वै अगहीन
वाको वोर देपि देपि माथौ ई हलाइये।
सुन्दर कहत वाके वाप ही कौ प्यार होइ
यौं ही जानि वांनी कौ विवेक ऐसै पाइये॥ ३ ॥
बोलिये तौ तव जव बोलिवे की सुधि होइ
न तौ मुख मौंन करि चुप होइ रहिये।
जोरिये ऊ तव जव जोरिवौ ऊ जांनि परै
तुक छद अरथ अनूप जामैं लहिये॥
गाइये ऊ तव जव गाइवे कौ कठ होइ
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुकभङ्ग छन्दभङ्ग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी वानी नहिं कहिये॥ ४ ॥
एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ
फूल से झरत हैं अधिक मन भांवने।
एकनि के वचन अशम मानौ वरपत
श्रवण कै सुनत लगत अलपांवने॥

---

(२) जाकै जैसी=जिसको जैसी आती है वैसी।

(३) तसलीम=(अ०) मुजरा, प्रणाम। सोभनीक=वहुत सुदर। प्यार=प्यारा, प्रिय।

(४) ऊ=भी। जानि परै=जाना जाय, ज्ञात हो।

एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप
करत मरम छेद दुख उपजावने ।
सुन्दर कहत घट घट मे वचन भेद
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने ॥ ५ ॥

काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं
तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं ।
कोकिला ऊ सारौ पुनि सूवा जब बोलत है
सब कोऊ कान दे सुनत रव रौन कौं ॥
ताहि ते सुवचन विवेक करि बोलियत
यौंहि आक बाक बकि तौरियें न पौन कौं ।
सुन्दर समुझि कैं वचन कौ उचार करि
नाहीं तर चुप ह्वै पकरि वैठि मौन कौं ॥ ६ ॥

प्रथम हिये विचारि ढीम सौ न दोजै डारि
ताहि तें सुवचन सभारि करि बोलिये ।
जाने न कुहेत हेत भावै तेसी कहि देत
कहिये तौ तब जब मन माहिं तौलिये ॥
सब ही कौ लागै दुःख कोऊ नहिं पावै सुख
बोलिकैं वृथा ही तातें छाती नहिं छोलिये ।
सुन्दर समुझि करि कहिये सरस बात
तब ही तौ बदन कपाट गहि पोलिये ॥ ७ ॥

---

(५) अशम=पत्थर । अलपावने=असुहावने । भद्दे । बुरे ।

(६) रासभ=गधा । उलूक=उल्लू । सारौ=मैंना । रम्व=शब्द । रौन=रमनीक आक वाक=अक बक, ऐण्ड बैंड । तोरियन पौन को=(पौन तोड़ना=जोर से बोलना) बकवाद न कीजिये ।

(७) छाती नहि छोलिये=(छाती छोलना=कर्णकटु, असह्य बोलना)

तू तौ भयौ बावरौ बिकाइ गई बुद्धि तेरी
ऐसौ अन्धकूप गृह तामें तू परतु है।
सुन्दर कहत तोहि नैक हूं न आवै लाज
काज कौ बिगारि कैं अकाज क्यौं करतु है ॥ ६ ॥
तेरें तौ कुपेच पर्‌यौ गाठि अति घुरि गई
ब्रह्मा आइ छोरै क्यौं ही छूटत न जबहू।
तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपेट रापै
कूकर की पूछ सूधी होइ नहीं तबहू॥
सासू देत सीप बहू कीरी कौं गनत जाइ
कहत कहत दिन बीत गयौ सबहू।
सुन्दर अज्ञान ऐसौ छाड्यौ नहिं अभिमान
निकसत प्रान लग चेत्यौ नहिं कबहू ॥ ७ ॥
बालू माहि तेल नहिं निकसत काहू बिधि
पाथर न भीजै बहु बरपत घन है।
पानी के मथे तें कहु घीव नहिं पाइयत
कूकस के कूटें नहिं निकसत कन है॥
शून्य कू मूठी भरे तें हाथ न परत कछु
ऊसर के वाहे कहा उपजत अन है।

और विवाह की आवश्यकता नहीं। कहने सुनने से क्या प्रयोजन। वहा तो ज्ञान का इशारा गुरु का आत्मा से शिष्य की आत्मा में ज्ञान सचार कर देता है। सोवा, तोता, तूती और मैना यह प्यारा जीव है जो काया पिजरे में रहता है।

(६) बिकाइ गई बुद्धि=विषयादि हीन-मूल्य पदार्थों में यह बुद्धि-हीरा वृथा खोया गया।

(७) कीरी कौं गनत=कीड़ी समान मानैं। निरादर करैं।

उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि
सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥
वैरी घर मांहि तेरे जानत सनेही मेरे
दारा सुत वित्त तेरौ पोसि पोसि पाहिगे।
और ऊ कुटंब लोग लूटैं चहुं वोरही तें
मीठी मीठी वात कहि तोसौं लपटाहिंगे ॥
सकट परैगौ जब कोऊ नहिं तेरौ तब
अतिहि कठिन वांकी वेर बुटि जाहिंगे।
सुन्दर कहत तातें झूठौ ही प्रपंच यह
सुपनै की नाहिं सब देपत विलाहिंगे ॥ ६ ॥
वारू कै मंदिर माहि वैठि रह्यौ थिर होइ
रापत है जीवने की आसा कैऊ दिन की।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी
विनसत वार कहा पवरि न छिन्न की ॥
करत उपाइ झूठे लैन दैन पान पान
मूसा इन उत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूलौ शठ
"चञ्चल चपल माया भई किन किन की" ॥ १० ॥

---

(८) कूकस=थोथा घास। ऊसर=नहीं उपजाऊ भूमि। मन का पाठांतर 'तन' भी है। परतु मन शब्द से अर्थ का गौरव होता है।

(९) सनेही=प्रेम करने वाले, मित्र। जानत=तू यह जानता है कि ये (मेरे सनेही है ?) कठिन वाँकी वेर बुटि=सकट और टेढे मेढे अवसर आने पर पूठ फेर जांयगे। पाठांतर "कठिनता की वेर उठि"।

(१०) मिनकी=विल्ली (काल, मृत्यु)। मूसा=चूहा (जीवात्मा, शरीरधारी प्राणी)। भई किन किन की=किसी की भी नहीं हुई।

श्रवनू लै जाइ करि नाद की लै डारे पासि
नैनवा लै जाइ करि रूप घसि कर्यौ है।
नथुवा लै जाइ करि बहुत सुघावे फूल
रसनू लैजाइ करि स्वाद मन हर्यौ है॥
चरनूं लै जाइ करि नारी सौं सपर्श करै
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डर्यौ है।
कांम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग
"ठगनि की नगरी मैं जीव आइ पर्यौ है" ॥ ११ ॥

पायौ है मनुष देह औसर बन्यौ है आइ
ऐसौ देह बार बार कहौ कहा पाइये।
भूलत है बावरे तू अबकै सयानौ होइ
रतन अमोल यह काहे कौं ठगाइये॥
समुझि बिचार करि ठगनि कौ सग त्यागि
ठगावाजी देप कहु मन न डुलाइये।
सुन्दर कहत तोहि अब सावधान होइ
"हरि को भजन करि हरि में समाइये" ॥ १२ ॥

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन
भीजत ही गरि जात माटी कौ सौ ढेल है।
मुक्ति हु के द्वारै आइ सावधान क्यौं न होहि
बार बार चढत न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुकृत हरि भजन अखंड उर
याही मैं अतर परै या मैं ब्रह्म मेल है।

---

(११) श्रवनू=कान (इंद्रिय) ऐसे नाम देकर पुरुषभाव दिया है। नथुवा=नाक। रसनू=जीभ, कोउक साध=कोई विशेष साधनसे सावधान जितेंद्रिय महापुरुष महात्मा।

(१२) ठगावाजी=ठगी, ठग विद्या। सयानौ=सयाना, सावधान समझदार।

मनुष जनम यह जीति भावे हारि अब
सुन्दर कहत यामें जूवा कौ सौ षेल है ॥ १३ ॥
जोवन कौ गयौ राज और सब भयौ साज
आपुनि दुहाई फेरि दमामौ बजायौ है।
लकुटी हथ्यार लिये नैननि को ढाल दीये
सेत बार भये ताकौ तबू सौ तनायौ है ॥
दसन गये सु मानौ दरवान दूरि कीये
जौंगरी परी सु औरे बिछौना बिछायौ है।
सीस कर कपत सु सुन्दर निकार्‌यौ रिपु
"देषत ही देषत बुढापौ दौरि आयौ है" ॥ १४ ॥

इन्दव

घींच तुचा कटि है लटकी कचऊ पलटे अजहू रत वामी।
दत भया मुख के उपरे नपरे न गये सुषरी पर कामी ॥

---

(१३) त्रिया को सो तेल है=स्त्रीके विवाह में, कुमारी के, तेल जो चढाया जाता है, तब ही चढता है दुवारा नहीं चढता है, वैसे ही नरदेह वार २ नहीं मिलती। "तिरिया तेल हमीर हठ चढै न दूजी वार"। याही मे=इस देह ही मे-परमात्मा से दूर रह जाय और इस ही में उस की प्राप्ति हो जाय यह कर्म्म, ज्ञानके आधीन है।

(१४) गयो राज=दौर खतम हो गया। और सब भयो साज=रंग-ढग बदल गये, अवस्था और ही हो गई। दमामो बजायो=नक्कारा बजा चुका, जो कुछ करना था कर चुका। ढाल दीये=अधा हो गया, यही मानों आंखों पर ढकनी ही ढाल हो गई। तबू सो तनायो हैं=कुच की मजिल पर डेरा डाल दिया, चलने की निशानी है। जौंगरी=शरीर की खाल ढीली होकर सिमट गई। बिछौना=विश्राम लेने का निशान है, अत समय की सामग्री है, यह यौवन की समय की सेज नहीं है। निकार्‌यो रिपु=काम क्रोधादि शरीरस्थ महान् रिपुओंने मार पीट कर राज्य छीन कर देश बाहर कर दिया। उनके डरसे कापता हैं मानों।

संपति देह सनेह सु दंपति संपति जपति है निश जामी।
सुन्दर अनहु भौन तज्यौ न भज्यौ भगवत सु लौन हरामी ॥१५॥
दह घटी पग भूमि मडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लईजू।
आपिहु नाक परै मुख तें जल सीस हलै कटि घींच नईजू ॥
ईश्वर कौं कबहू न संभारत दुःख परै तव आहि दई जू।
सुन्दर तौहु विपै सुख वछत 'घोरे गये पै वर्गं न गई जू' ॥ १६ ॥
पाई अमोलिक देह इहै नर क्यौ न विचार करै दिल अन्दर।
काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु लूटत हैं दस हू दिसि द्वन्दर ॥
तू अब वछत है सुरलोकहि कालहु पाइ परै सु पुरदर।
छाडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि 'आतम राम भजै किन सुन्दर' ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मानत है शठ याहित तें बहुते दुख पावै।
ज्यौ जल मैं झप मास हि लीलत स्वाद बध्यौ जल वाहरि आवै ॥

---

(१५) घींच=गरदन । तुचा=त्वचा, खाल । कटि=कमर । कच=सिरके बाल । रतवामी=वामरत, स्त्री का प्रेमी । हत भया=हे भइया—तेरे । दांत अथवा दांत जो जन्म भर वहे, अर्थात् खाते चावते रहे सो । नपरे=नखरे, मिजाजीपन, हाव-भाव नजाकत । सुपरौ=असली, सचमुच, पक्का (खरा) पर=खर, गधा (गधेके समान कामी) दपति=स्त्री पुरुषो का बुड्ढा हो जाने पर भी प्रेम है । जपति=(धन दौलत का ही) स्मरण करता है , जिक्र होता है । वोलता है । निसजामी=यहां रात दिन, दिन दिन प्रति । अथवा सुखभोग में रात्रि एक (याम) पहर सी बीतती है । लौन हरामी=नमक हरामी स्वामी-विमुख । ईश्वर को कृतज्ञता न अर्पण करने वाला ।

(१६) नई=झुकी । आहि दई=हाय भगवान ! (पुकारना) बर्ग=पशुओं पर एक दुष्ट मक्खी (मुहावरा है) ।

(१७) द्वद्वर=विषयादिक । परै सु पुरन्दर=इन्द्र भी गिरै, नाशै । (इसमे "किरीट" सवैया है) ।

ज्यौं कपि मूठि न छाडत है रसना वसि वदि परयौ विल्लावै ।
सुन्दर क्यों पहिलें न सभारत 'जौ गुर पाइ सु कान विधावै' ॥१८॥
कौन कुबुद्धि भई घट अतर तू अपनौ प्रभु सौं मन चौरै ।
भूलि गयौ विषया सुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थौरे ॥
ज्यौं कोउ कचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फौरै ।
सुन्दर या नर देह अमोलिक 'तीर लगी नवका कत वोरै' ॥ १९ ॥
देषत के नर सोभित हैं जैसें आहि अनूपम केरि कौ पभा ।
भीतरि तौ कछु सार नहीं पुनि ऊपर छीलक अवर दंभा ॥
वोलत है परि नाहि कछू सुधि ज्यौ ववयारि तें वाजत कुंभा ।
रूसि रहै कपि ज्यौं छिन माँहिं सु याहि तें सुन्दर होत अचाभा ॥२०॥
देषत के नर दीसत हैं परि लछन तौ पसुके सव ही हैं ।
वोलत चालत पीवत षात सु वै घरि वै वन जात सही हैं ॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत सुन्दर यौं नित भार वही हैं ।
और तौ लछन आइ मिलै सव एक कमी सिर शृंग नहीं है ॥२१॥
प्रेत भयौ कि पिशाच भयौ कि निशाचर सौ जित ही तित डोलै ।
तू अपनी सुधि भूलि गयौ मुख तें कछु और की औरई वोलै ॥
सोइ उपाइ करै जु मरे पचि वधन तौ कवहू नहिं पोलै ।
सुन्दर जा तन मैं हरि पावत सो तन नाश कियौ मति भौलै ॥२२॥

---

(१८) गुर=गुड़ (मुहाविरा है) ।

(१९) कत=क्यों, किस लिये ।

(२०) अवर दभा=ढोंग का वेश। ववयारि=मुंहकी फूक (घड़े में वोलने से ।

(२१) भारवही=भार वाहने वाला, पशु । "यथा खरश्चन्दन भारवाही" ।

(२२) मरे=अज्ञानवश ऐसे उपाय (काम) करता है जिन से उलटा मरता है—कुगति को पता है । भौलै=भूलकर भी ।

पेट तें बाहिर होतहि बालक आइकें मात पयोधर पीनौ।
मोह बढ्यौ दिन ही दिन और तरुन्न भयौ त्रिय कै रस भीनौं॥
पुत्र पउत्र बध्यौ परवार सु ऐसि हि भाति गये पन तीनौ।
सुन्दर राम कौ नाम विसारिसु आपुहि आपु कौ वधन कीनौ॥२३॥
मात पिता सुत भाई बंध्यौ जुवती के कहैं कहा कान करै हैं।
चौरी करै बटपारी करै किरषी बनजी करि पेट भरै है॥
शीत सहै सिर घांम सहै कहि सुन्दर सो रन माहि मरै हैं।
बांधि रह्यौ ममता सबसौं नर ताहि तें वांध्यौइ बाध्यौ फिरै हैं॥२४॥
तू ठगि कै धन और कौ ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सबही जरि जाइ सु तूं दमरी दमरी करि जोरै॥
हाकिम कौ डर नांहि न सूझत सुन्दर एक हि बार निचौरै।
तू परचै नहि आपु न पाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि ले बौरै॥२५॥

मनहर

करत प्रपंच इनि पंचनि कै वसि पर्‌यौ।
परदारा रत भै न आनत बुराई कौ।
पर धन हरै पर जीव की करत घात
मद्य मांस पाइ लव लेश न भलाई कौ॥
होइगो हिसाव तव मुखतें न आवै ज्वाब।
सुन्दर कहत लेपा लेत राई राई कौ॥

---

(२३) पयोधर=स्तन, बोवा। पीनौं=पीया, पान किया। पन तीनौं=तीन अवस्थाए-बालपन, जवानी, बुढापा।

(२४) किरषी=कृषी, खेती। वांध्यौ=वंधा हुआ। (ममता, मायाजाल से लिप्त) वंधन में पड़ा है, फसा हुआ है।

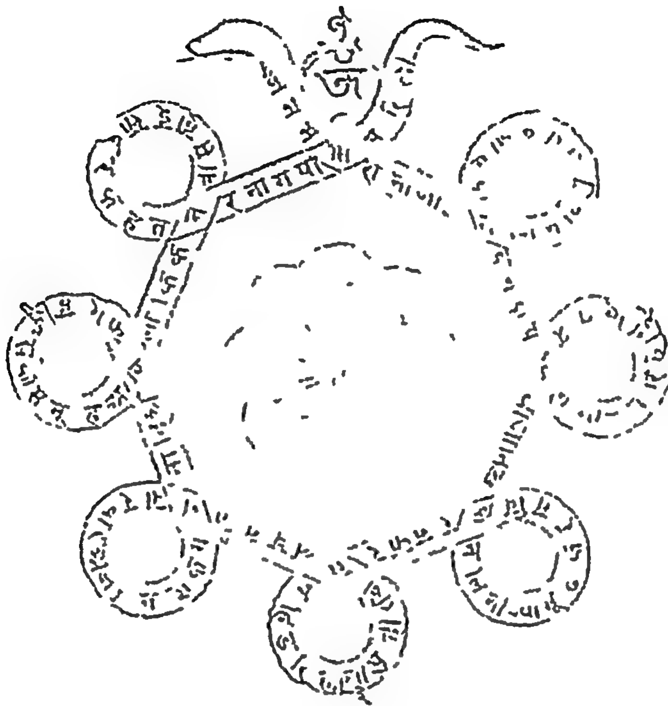
(२५) एकहि बार निचौरै=(हाकिम लोग) मुकद्दमों में बड़ी घूसें लेकर बटोरे धन को सूत लेते हैं। डुबोरै=धावै।

इहां तैं किये विलास जम की न तोहि त्रास,
उहां तौ न ह्वै है कछु राज पोपावाई को ॥ २६ ॥
दुनिया कौ दौढता है औरति कौ लोडता है,
औजूद कौ मोडता है बटोही सराइ का।
मुरगी कौं मोसना है बकरी को रोसता है
गरीबौं कौं पोसता है बेमिहर गाइ का॥
जुल्म कौ करता है धनी सौ न डरता है
दोगज कौ भरता है पजाना बलाइ का।
होइगा हिसाब तब आवैगा न ज्वाब कछु
सुन्दर कहत गुन्हैंगार है पुदाइ का ॥ २७ ॥
कर कर आयौ जब पर पर काट्यौ नार
भर भर वाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दरै दौर्यौ जाइ नर नर आगै दीन
बर बर बकत न नैक अलसान्यौ है॥

---

(२६) भैं=भय, डर। उहां=ईश्वर के घर। पोपांवाई=प्रसिद्ध पोल्का राज्य "टके सेर भाजी टके सेर खाजा।' 'सब धान बाईस पसेरी'। यह कुम्हार की लड़की खडले के राजा के यहां प्रधान हो गई थी सो उसने ऐसा राज्य जमाया और आप ही फांसी लटकी थी।

(२७) लोडता है=लड़ता है या लाड करता है। बटोही=राहगीर मुसाफिर। यह ससार सराय है। थोड़ी देर ठहरने का स्थान है। मोसता है=उसकी गर्दन मरोड़ कर मार डालता है। हिंसा करता हैं। रोसता है=रोस (क्रोध) करके मारता है, जिबह करता है, काटता है,। (यह अप्रशस्त शब्द है) रोंथना का रूपान्तर हो सकता है। बेमिहर=निर्दयी (गाय के वास्तै) यह मुसलमानों के प्रति कहा गया है।



I r rn I ⊃ rrint ɹ fs Gaya Art Press Cal

सर्प बन्ध । (११)

मनहर छन्द

जनम सिरानौ जाय भजन बिमुख सठ,
काहेकौं भवन कूप बिन मीच मरि है।
गहित अविद्या जानि शुकनलिनी ज्यौंमूढ
क्रम बिक्रम करत नहिं डरि है ॥
आपुही तें जात अंध नरकन बार बार,
अजहू न शंक मन माहिं अब करि है।
दुःखकौं समूह अवलोकि कैं न त्रास होइ,
सुंदर कहत नर नागपासि परि है ॥११॥

नोट—यह नागबन्ध 'सवैया' ग्रन्थ के अंग उपदेश चितावनी का ३० वा छन्द है।

पढ़ने की विधि—

सर्प के मुखके पास 'ज' अक्षर से आरंभ करें कि जिस पर एक का अंक है। प्रथम चरण को सर्प के पहिले मरोड़े से होकर पढ़ते हुए दूसरे मरोड़े के आधे पर 'मरि है' पर पूर्ण करें। आगे 'ग' से प्रारंभ कर जिस पर दो का अंक लगा हुआ है और तीसरे मरोड़े से होकर पढ़ते हुए चौथे के आधे से पूर्ण करें। इसही प्रकार तीसरे और चौथे चरणों को चौथे और छटे मरोड़ों के मध्य से पढ़ें जहां ३ और ४ के अंक लगे हुए हैं। ४ था चरण या सारा छन्द ही सर्प की पूछ में समाप्त होता है ॥

न्यू राजस्थान प्रेस

पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान
पति ही तीरथ न्हांन पति ही कौ मत है।
पति विन पति नाहिं पति विन गति नाहिं
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है॥ ७॥

जल कौ सनेही मीन विछुरत तजै प्रान
मणि विन अहि जैसैं जीवन न लहिये।
स्वाति बूंद के सनेही प्रगट जगत माहिं
एक सींप दूसरौ सु चातक ऊ कहिये॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोवर मैं।
ससि कौ सनेही ऊ चकोर जैसैं रहिये।
तैसैं ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि
और कछू देपि काहू वोर नहि वहिये॥ ८॥

॥ इति पतिव्रत को अंग ॥ १६ ॥

---

(७) यह छन्द और ८ वां छन्द अति विख्यात हैं। पातिव्रत धर्मका मानो चरम सिद्धात सूत्र है। क्षेम=रक्षा, क्षेम-कुशल। रत=अनुरक्त। वा आनन्द। यत=यतीत्व। मत=धर्म। स्त्री सहधर्मिणी होती है। पति नाहि= प्रतिष्ठा नहीं रहती। लाज गाल।

(८) यह कितना सुन्दर और मनको मुदित कर देनेवाला छन्द है। सनेही=प्रेमी।

(८) वोर=तरफ। वहिये=जाइये, फिरिये, झुकिये। सुन्दरदासजी का यह पतिव्रत धर्म वर्णन भाषा-साहित्य मे अनुपम रत्न है। नैतिक सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक किसी भी अर्थ में लगाकर देखिए, कैसा प्रभावदायक और चमत्कारी मिलेगा।

अथ विरहनि उराहने को अंग (१७) ॥

मनहर

प्रिय कौ अदेसौ भारी तोसौं कहौं सुनि प्यारी
यारी तोरि गये सुतौ अजहू न आये हैं।
मेरै तौ जीवन प्रांन निश दिन उहै ध्यान
मुख सौ न कहू आन नैंन झर लाये हैं॥
जब तें गये बिछोहि कल न परत मोहि
तातें हू पूछत तोहि किन बिरमाये हैं।
सुन्दर बिरहनी के सोच सपी बार बार
हम कौं बिसारि अब कौन के कहाये हैं॥ १॥
हम कौं तौ रैनि दिन शंक मन मांहि रहै
उनकी तौ बातनि मैं ठीक हू न पाइये।
कबहू संदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ
कबहूक रोइ रोइ आंसुनि बहाइये॥
औरनि कै रस बस होइ रहे प्यारे लाल
आवन की कहि कहि हम कौं सुनाइये।

(अंग १७ वां) "विरहनि उराहना"—पतिप्रेया स्त्री, अपने प्यारे पति को विरह में उनके न आने पर वा अन्य प्रेमी जानकर दुःखी होकर उलहना, प्रतारक प्रेमसने व्ययामथे वचन अनायास ही निकालती है। वैसे ही भगवत्प्रेमी जन अपने प्यारे ध्येय परमात्मा की अप्राप्ति में विरहाकुल हो उलहना भरे वचन उच्चारण करते हैं।

(१) अंदेसौ=अंदेशा, चितचिंता, विस्मय। बिछोहि=छोड़कर (इकार से क्रिया हुई)। बिरमाये=बिलमाये, रोक रखे।

सुन्दर कहत ताहि काटिये जु कौन भाति
जु तौ रूप आपनेंई हाथ मौं लगाइये ॥ २ ॥
मोसौं कहै औरसी ही वासौं कहै और सो ही
जासौं कहै ताही के प्रतीति कैमें होत है ।
काहू कौ समाप करै काहू सौ उदास फिरै
काहू सौ तौ रस बस एक मेक पोत है ॥
दगावाजी दुविध्या तौ मन की न दूरि होइ
काहू कै अन्धेरौ घर काहू कें उद्योत है ।
सुन्दर कहत जाके पीर सौ करै पुकार
जाकै दुख दूरि गयौ ताकै भई वोत है ॥ ३ ॥
हीये और जीये और लीये और दीये और
कीये और कौनऊ अनूप पाटी पढे हैं।
मुख और बैन और नैंन और सैन और
तन और मन और जन्त्र माहिं कढे हे ॥
हाथ और पाव और सीसहू श्रवन और
नख शिख रोम रोम कलई सौ मढे हैं।
ऐसी तौ कठौरता सुनी न देपी जगत मैं
सुन्दर कहत काहू बज्र ही के गढे हैं ॥ ४ ॥

---

(२) सुनाइये=सुनाते हैं (पाते, पत्र वा समाचार से) जुतौ=जो तो । लगाइये=लगाया (रोपा और बढ़ाया) हुआ ।

(३) समाप=समोख, सतोष, आश्वासन । पोत=ओत प्रोत, हिलामिला । जिसे पति (परमात्मा) प्राप्त नहीं उस विरही (स्त्री वा भक्त) के घर (हृदय) अधेरा (ज्ञान का अभाव) है । जिसे मिल गया उसके प्रकाश है । पीर=पीड़ा व्यथा । जिसको दु ख होय सोही पुकारता है, अन्य नहीं । विरह वेदना प्रभुभक्त की दशा । वोत=शांति, आराम (रा०) (४) अनूप पांठ पढे=अद्भुत शिक्षा पाई है ।

भई हौं अति बावरी बिरह घेरी बावरी
चलत ऊचौ बावरो परौंगी जाइ बावरी।
फिरत हौ उतावरी लगत नहीं तावरी
सु वाही कौ बतावरी चल्यौ है जात तावरी॥
थके हैं दोउ पावरी चढत नहिं पावरी
पियारौ नहिं पावरी जहर बाटि पावरी।
दौरत नहिं नावरी पुकारि कै सुनावरी
सुन्दर कोउ नावरी डूबत रापै नावरी॥ ५॥

॥ इति बिरहनि उराहने कौ अग ॥ १७ ॥

अथ शब्दसार को अंग (१८)॥

मनहर

भूल्यौ फिरै भ्रम तें करत कछु और और
करत न ताप दूरि करत संताप कौ।

जन्त्र मांहि कढे=किसी कल में होकर निकले है। अर्थात् न्यारा ही रङ्ग-ढङ्ग हो गया है। गढे=बने। घड़े गए।

(१७) बावरी=(१) बावली, दिवानी (बिरहसे)। (२) बावड़ी, वापी (अपघात करूंगी) ताव=स्वास (ऊंचा सास आ रहा है, बिरह के दुःखसे) वाव=वायु, बघूला, (बिरह का प्रबल झोंका)। उतावरी=उतावली जलदी (पिया टूटने में) तावरी=तावड़ी, धूप (देहाभिमान नहीं है) बताव+री=बतादे हे सखी! जात ताव+री=ताव जाना, अवसर खोना। (शीघ्र ढूंढकर बता दे, फिर न जाने मिलै या न मिलै। यह मनुष्य के पाने का अवसर ईश्वर प्राप्ति का अब ही है, फिर वही चौरासी भरमना तयार है)। पावरी=(१) दोनों पग+हे सखी (२) पाव चलते २ सूज गये सो पांवडी (वा जूता) भी इन मे नहीं समाता। (३) मिलै+सखी। (४) पिलादे। नावरी=(१) पहुंची, जा लिया। (२) सुनाव+री,

दृक्ष भयौ रहै पुनि दृक्ष प्रजापति जसैं
देत परदक्षणा न दक्षगा दे आप कौ ॥
सुन्दर कहत ऐसैं जानें न जुगति कछु
और जाप जपै न जपत निज जाप कौं ।
वाल भयौ युवा भयौ वय वीत वृद्ध भयौ
वप रूप होइ कै विसरि गयौ वाप कौ ॥ १ ॥

इन्दव

पान उहै जु पीयूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै ।
कांन उहै सुनिये जस केशव मान उहै करिये सनमानें ॥
तान उहै सुरतान रिझावत जान उहै जगदीश हि जानें ।
वान उहै मन वेधत सुन्दर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानें ॥ २ ॥
सूर उहै मन कौ वसि राषत क्रूर उहै रन मांहि लजै है ।
त्याग उहै अनुराग नहीं कहु भाग उहै मन-मोह तजै है ।
तज्ञ उहै निज तत्वनि जानत यज्ञ उहैं जगदीश जजै है ॥
रक्त उहै हरि सौं रत सुन्दर गत्त उहै भगवत भजै है ॥ ३ ॥

चिल्लाकर आवाज दे, हेला पाड़े । (३) नाव+री=नवका । (४) नाव+री=नांव नाम, हे सखी ।

(अंग १८) (१) भ्रम=उपाधि, अज्ञान । जो यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है वोह तो भ्रमवश करता नहीं जिससे मोक्ष मिले । ताप=तप त्याग, वैराग्य । जिससे ससार के तीनों ताप निवृत हो जांय । दक्ष=चतुर (अभिमत्त, अहकार भरा) दक्ष प्रजापति ने निज अभिमान से शिव पार्वती का अनादर किया, तव शिवजी ने उसका मस्तक काटकर यज्ञविध्वंस कर दिया, वैसे ही यहाँ अहकार से मत्त होकर आत्म का अनादर (अज्ञान) होने से अपना नाश होता है, मोक्ष नहीं मिलती । मनुष्य देह का पाना ही यज्ञ का सजाना है । परदक्षणा=प्रदक्षणा, परकम्मा । दक्षणा=दक्षिणा, उपकार मे दान अर्थात् वाहरी कर्मों का ढोंग तो करता है, अन्तरात्मा में ढूढकर स्वरूप की प्राप्ति

चाप उहै कसिये रिपु ऊपर दाप उहै दलकारि हि मारै।
छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि और न धारै॥
जाप उहै जपिये अजपा नित षाप उहै निज पांप विचारै।
वाप उहै सब कौ प्रभु सुन्दर पाप हरै अरु ताप निवारै॥ ४॥
भौंन उहै भय नाहिं न जा महिं गौंन उहै फिरि होइ न गौंना।
बौंन उहै वमिये विषया रस रौंन उहै प्रभुसौं नहिं रौंना॥
मौंन उहै जु लिये हरि बोलत लौंन उहै सब और अलौना।
सौंन उहै गुरु सन्त मिलै जब सुन्दर शंक रहै नहिं कौंना॥ ५॥
कार उहै अविकार रहै नित सार उहै जु असार हि नाषै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर नीति उहै जु अनीति न भाषै॥
तन्त उहै लगि अन्त न टूटत सन्त उहै अपनौ सत राषै।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाषै॥ ६॥

का उपाय करके ब्रह्म की प्राप्ति नहीं करता है। पर+दक्षणा=इससे यह अर्थ भी हो सकता है कि अपना आपा नहीं ढूढ़ता पैसे की करता फिरता है।

(१) बुड्ढा हुआ तब आयुष्य का अन्त आया, अब कुछ करने का अवसर ही नहीं रहा। वप रूप=(१) वाप (वड़ा) होने का भाव होनेसे अभिमानी हो गया। अथवा (२) निज आत्मा को न साध कर वपु (शरीर) के रूप के भाव ही में रहा। वाप=ईश्वर। इस सारे अङ्ग के छन्दों में शब्दों के आद्यवर्णों वा प्रतिध्वनित शब्दों से भिन्न चमत्कारी अर्थ निकाल कर चमत्कारी ही रीतिसे वर्णन किया है। ये शब्दालकार और अर्थालकार दोनों प्रकार से सिद्ध होते हैं। जैसे वप और वाप। पान पीयूष पीवै। (२) सुरतान=सुल्तान, बादशाह। ईश्वर। (३) रन=विषयों के साथ लड़ाई। भाग=भागना। तज्ञ=तत (ब्रह्म) को जाननेवाला (जो अज्ञ न हो) जजै=याचै। (४) दलकारि=ललकार कर। षाप=जाति। आपा, निजस्वरूप। (५) सौन=सौंण, शगून। कौना=कोई भी नहीं। (६) कार=काम। वा मर्यादा। उस्वास=कुंभक। यहां प्राणायाम और प्रत्याहार आदि से अभिप्राय है।

स्वास उहै जु उस्वास न छाडत नाश उहै फिरि होइ न नासा।
पास उहै सत पास लगै, जम-पास कटै प्रभु कै नित पासा॥
वास उहै गृह वास तजै वन वास नहीं तिहिं ठाहर वासा।
दास उहै जु उदास रहै हरिदास सदा कहि सुन्दरदासा॥ ७॥
श्रोत्र उहै श्रुति सार सुनै नित नैंन उहै निज रूप निहारैं।
नाक उहै हरि नाक हि राषत जीभ उहै जगदीस उचारै॥
हाथ उहै करिये हरि कौ कृत पाव उहै प्रभु कै पथ धारैं।
सीस उहै करि स्याम समर्पन सुन्दर यौ सब कारज सारे॥ ८॥
सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै बर रोयौ।
गोवत गोवत गोइ धर्‍यौ धन पोवत पोवत तैं सब पोयौ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै विप बोयौ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं ढोवत ढोवत बोझ हि ढोयौ॥ ९॥
देषत देषत देषत मारग बूझत बूझत बूझत आयौ।
सूझत सूझत सूझि परी सब गावत गावत गोविन्द गायौ॥

---

(७) सत पास=सची वा सत्यकी गाठ वा फांसी। नाश=आपा मरना। होइ न नाशा=ब्रह्मस्वरूप वन जाय। अमर हो जाय।

(८) श्रुतिसार=वेदांत के सिद्धान्त। निजरूप=आत्मा का स्वरूप। हरि नाक हि राखत=प्रभु या प्रभु भजन ही को सर्वोपरि वा प्रतिज्ञा की परमावधि समझै। नाक रखना मुहाविरा है-टेक रखना, नीची न आने देना, बात को निबाहना। धारैं=सिधारैं। स्याम=स्वामी, ईश्वर। अमर हो जाय।

(९) सोवत=आलस्य में गाफिल रहकर जीवन खोया। रोवत=प्रपंच मे ग्रस्त हाय घोड़ा करता फिरा। गोवत=वकवाद करता रहा। धन=वीर्य वा जीवन, मनुष्य देह मिलने का अर्थ। बोवत=विषयों का विषरूपी बीज जीवनरूपी भूमि में डाला। सुन्दर=सर्वोत्कृष्ट आनन्दस्वरूप परमात्मा। बोझ ही ढोया=थोथी वेगार सो ही करता रहा। शरीर धार कर मानों हम्माली ही की, कुछ परम लाभ नहीं पाया।

सोधत सोधत सुद्ध भयौ पुनि तावत तावत कंचन तायौ।
जागत जागत जागि पर्‍यौ जब सुन्दर सुन्दर सुन्दर पायौ ॥ १० ॥

॥ इति शब्दसार को अंग ॥ १८ ॥

अथ सूरातन को अंग (१९) ॥

मनहर

सुणत नगारै चोट बिगसै कवल मुख
अधिक उछाह फूल्यौ माइ हू न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै
काइर कपाइमान होत देपि मन मैं ॥
टूटिकै पतग जैसें परत पावक माहिं
ऐसें टूटि परै बहु सावत के गन मैं।
मारि घमसाण करि सुन्दर जुहारै स्याम
सोई सूर धीर रुपि रहे जाइ रन मैं ॥ १ ।
हाथ में गह्यौ है पर्ग मरिबे कौं एक पग
तन मन आपनौ समरपन कीनौ है।
आगै करि मीच कौं पर्‍यौ है डाकि रन बीच
टूक टूक होइ कें भगाइ दल दीनौ है ॥

---

(१०) कचन तायौ=आत्मारूपी स्वर्ण को ज्ञान की आग से वा तप से तपा कर निर्मल किया। जागि पर्‍यौ=मोह निद्रा को हटा कर अपने निजस्वरूप को जान लिया। सुन्दर (१)=कवि। सुन्दर (२)=अच्छी रीति से, उत्तम साधन द्वारा। सुन्दर (३)=आनन्द स्वरूप परमात्मा।

(सूरातन को अङ्ग) (१) सूरातन=शूरवीरता। तन=शरीर के भीतर काम आदिक शत्रुओंसे यम नियमादि ज्ञानवीरों द्वारा लड़कर विजयी रहना। बिगसै=खिलै प्रसन्न होवें, जैसे कवल खिल जाय। माइ=मावे, समावै। सांगि=लोह दड, भारी

पाट लौंन स्याम कौ हरामपोर कैसें होइ
नामजाद जगत में जीत्यौ पन तीनौं है।
सुन्दर रहत ऐसौ कोऊ एक सूर वीर
सीस कौं उतारिकें सुजस जाइ लीनौं है॥ २॥

पाइ रोपि रहे रन माहिं रजपूत कोऊ
हय गय गाजत जुरत जहा दल है।
बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधू राग पुनि
सुनत ही काइर की छूटि जात कल है॥
झलकत बरछी तरछी तरवारि वहै
मार मार करत परत पलभल है॥
ऐसे जुद्ध में अडिग सुन्दर सुभट सोई
'घर माहिं सूरमा कहावत सकल है"॥ ३॥

असन बसन बहु भूषन सकल अङ्ग
सम्पति विविधि भाति भर्यौ सब घर है।
श्रवन नगारौ सुनि छिनक में छोडि जात
ऐसें नहिं जानै कछु आगैं मोहि मर है॥

भाला। वा लंबी गदा। सावत=सामत, योद्धा। जुहारै=सलाम करै, लड़कर फतह करके प्रणाम करै।

(२) आगे करि मीच=मौत को सामने रखकर, अर्थात् मौत से न डर कर। टूक टूक होइ कै=लड़ने मे घावों पूर होकर वा न्योछावर होकर। नाम जाद='नामजादिक', प्रसिद्ध। सीस कौ उतारि=विना सिर-कमधज ही-लड़ै। सीस उतारना=आपा मारना।

(३) झुझाऊ=रणवाद्य, रणसींगा। सिंधुराग=सिंधुडा, राग जो लडाईमे सहनाई में गाई जाती है। वीर राग। कल=कला, बिखर जाती है। पल भल=खलबली घबराहट, उत्पात।

मन में उछाह रन माहिं टूक टूक होइ
निरभै निशक वाकै रञ्च हू न डर है।
सुन्दर कहत कोऊ देह को ममत्व नाहि
'सूरमा कै देपियत सीस विन धर है'॥ ४॥

जूझिवे कौं चाव जाकै ताकि ताकि करै घाव
आगै धरि पाव फिरि पीछैं न सभारि है।
हाथ लीये हथियार तीक्ष्ण लगायौ धार
वार नहिं लागे सव पिशुन प्रहारि है॥
वोट नहिं रापै कछु लोट पोट होइ जाइ
चोट नहिं चूकै सीस रिपु कौ उतारि है।
सुन्दर कहत ताहि नंकु नहि सोच पोच
"ऐसौ सूरवीर धीर मीर जाइ मारि है"॥ ५॥

अधिक अजान-वाहु मन में उछाह कीये
दीयें गज-गाह मुख वरपत नूर है।
काढै जव करवाल वाल सव ठाडे होहिं
अति विकराल पुनि देपत करूर है॥
नेंक न उसास लेत फौज मैं फिटाइ देत
पेत नहिं छाडै मारि करै चकचूर है।
सुन्दर कहत ताकी कीरति प्रसिद्ध होइ
"सोई सूरवीर धीर स्याम कै हजूर है"॥ ६॥

---

(४) मर=मरण, मौत। धर=धड, कमधज।

(५) पिशुन=शत्रु (काम, क्रोध, लोभ मोह आदिक) प्रहारि=मारे। सोच पोच=शका वा डर और कायरता। मीर=अफसर (होकर) नायक दल का (होकर) यहां काम (वा क्रोधधिक में से कोई प्रधान शत्रु)।

(६) अजान वाहु=आजानु वाहु, महावीर पुरुष। गजगाह=वखतर पहने।

ज्ञान कौ कवच अङ्ग काहू सौं न होइ भंग
टोप सीस झलकत परम विवेक है।
तीन्हे ताजी असवार लीये समसेर सार
आगें ही कौ पाव धरै भागणै की टेक है॥
छूटत बढूक बाण बीतै जहाँ घमसाण
देषिकें पिशुन दल मारत अनेक है।
सुन्दर सकल लोक माहिं ताकौ जै जै कार
"ऐसौ सूर वीर कोऊ कोटिन मैं एक है" ॥ ७ ॥
सूर वीर रिपु कौ निमूंनौ देषि चौट करै
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
मारू ऊठौं जाँम वैठौ मन ही सौं युद्ध करै
ताकै मूह माथौ नहिं देषिये शरीर सौं॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लगं
साधु शून्य कौं पकरि रापै धरि धीर सौं।
सुन्दर कहत तहा काहू के न पाव टिकैं
"साधु कौ सग्राम है अधिक सूरवीर सौं" ॥ ८ ॥

करवाल=तलवार, खड्ग। बाल सब ठाढ़े होंहिं=शूरवीरता चढनेके वक्त शूरवीरों के शरीर के बाल, दाढ़ी मूछ आदि के मोर की छत्री तरह खड़े हो जाते हैं। करर=क्रूर, रोसभरे। फिटाइ देत=हटादेता है। खेत=रणक्षेत्र, मैदान लड़ाई का।

(७) तीन्हे=तेज, (तीक्ष्ण का रूपान्तर) वा तेज दोड़वाले (तीर्ण का रूपान्तर)। समसेर सार=सार जातिके लोहे की तलवार। टेक=प्रतिज्ञा (न भागने की दृढ़ प्रतिज्ञा)। घमसाण=तुमुल युद्ध।

(८) निमूनौ=प्रत्यक्ष आकार वाला, ढङ्ग। अधिक=मनुष्यों से लड़नेवाले वीरो की अपेक्षा, बिना सिरपैर वाले मन और कामादि गुप्त शत्रुओं से लड़नेवाला, ज्ञानी सयमी सत बढकर है।

षैंचि करडी कमाण ज्ञान कौ लगायौ बांण
मार्‍यौ महाबली मन जग जिनि रान्यौ है।
ताकै अगिबांणो पच जोधा ऊ कतल कीये
और रह्यौ पह्यौ सब अरि दल भान्यौ है॥
ऐसौ कोऊ सुभट जगत मैं न देषियत
जाकै आगै कालहूसौ कपि कै परान्यौं है।
सुन्दर कहत ताकी सोभा तिहू लोक मांहि
"साधु सौ न सूरवीर कोऊ हम जान्यौ है" ॥ ९ ॥
काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौ लोक
सुतौ एक साधु के बिचार आगै हार्‍यौ है।
क्रोध सौ कराल जाकें देषत न धीर धरै
सोउ साधु क्षमा कै हथ्यार सौं बिदार्‍यौ है॥
लोभ सौ सुभट साधु तोष सौं गिराइ दियौ
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्‍यौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर
ताकि ताकि सबहि पिशुन दल मार्‍यौ है॥ १० ॥
मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारे
इन्द्री हूं कतल करि कीयौ रजपूतौ है।
मार्‍यौ मय मत्त मन मारयौ अहंकार मीर
मारे मद मच्छर ऊ ऐसौ रन रूतौ है॥

---

(९) जग जिनि रान्यौं है=जिन्होंने ससार के माया प्रपंच को रणमें मारा है वा उससे रणमें राजा समान संग्राम करके जीता है। पञ्च जोधा=पाँचों विषय पाँचों इन्द्रियों के। भान्यौं=मारा। अगिवांणी=अगाऊ, मुखिया, अफसर। सुभट=महावोर। परान्यौ=भाग गया।

(१०) तोष=सतोष।

मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ
सब कौं प्रहारि निज पदई पहूतौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूरवीर
वैरी सब मारि कै निचिन्त होइ सूतौ है॥ ११॥
कियौ जिनि मन हाथ इन्द्रिनि कौं सब साथ
घेरि घेरि आपने ई नाथ सौं लगाये हैं।
और ऊ अनेक वैरी मारे सब युद्ध करि
काम क्रोध लोभ मोह पोदि कैं बहाये हैं॥
किये हैं संग्राम जिनि दिये हैं भगाइ दल
ऐसे महा सुभट सुग्रन्थनि मैं गाये हैं।
सुन्दर कहत और सूर यौंही षपि गये
"साधु सूर वीर वेई जगत मैं आये हैं"॥ १२॥
महामत्त हाथी मन राख्यौ है पकरि जिनि
अति ही प्रचण्ड जामैं बहुत गुमान है।
काम क्रोध लोभ मोह बाध्यै चारौ पाव पुनि
छूटने न पावै नैंक प्राण पीलवान है॥
कबहूं जो करै जोर सावधान साझ भोर
सदा एक हाथ मैं अंकुस गुरु ज्ञान है।

---

(११) मय मत्त=मदोन्मत्त। अपनी "मय" मे (मौज ही मे) मस्त रहने वाला। सूतौ=झुमार, स्पनेवाला। पहूतौ=पहुचा।

(१२) मन हाथ=मन को वश में कर लिया। साथ=सहित। नाथ=स्वामी, ईश्वर। इन्द्रियों सहित मन को परमात्मा के ध्यान में लगा दिया। अपने पक्षमें, विजय करके, लाकर। औरऊ=जो ईश्वरके पक्षमें न आवे उनको मार डाले। षपि=मर गये, नाश हो गये। जगत में आये=उनही का जगत में जन्म लेना सफल है। और आये सो वृथा ही आये।

सुन्दर कहत और काहू कै न वसि होइ
'ऐसौ कौन सूर वीर साधु के समान है"॥ १३ ॥

॥ इति सूरातन को अंग ॥ १९ ॥

अथ साधु को अंग (२०) ॥

इन्दव

प्रीति प्रचण्ड लगै परब्रह्म हि और सवै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध हृदै मति होइ सु निर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जीकौ॥
गोष्टि रु ज्ञान अनन्त चलै तहं सुन्दर जैसें प्रवाह नदी कौ।
ताहि तें जानि करै निसवासर "साधु कौ संग सदा अति नीकौ"॥ १ ॥
जो कोउ जाइ मिलै उन सौं नर होत पवित्र लगै हरि रिङ्गा।
दोष कलक सबै मिटि जात जु नीच हु आइ कैं होत उतगा॥
ज्यौं जल और मलीन महा अति गंग मिलें होइ जात है गगा।
सुन्दर सुद्ध करै ततकाल सु "है जग माहिं वडौ सतसंगा"॥ २ ॥

---

(१३) इस छन्द में मन को हाथी कह कर रूपक वान्धा है। काम आदिक चार पाँव जिसके। प्राण उसके ऊपर महावत। अकुश, उसके लिए, गुरु का दिया ज्ञान। 'सुन्दर कहत वसि होइ' यह पादांश मन का विशेषण है। 'ऐसा ' इस का सम्वन्ध प्रथम पादांश में 'जिनि' शब्द से है। अर्थात् जिन्होंने मन हाथी को वाध वश किया ऐसे साधु।

(साधु को अङ्ग २०) (१) 'साधु को सग सदा अति नीकौ' यह पादांश छन्द के प्रारम्भ में वोल कर पढ़ा जाता है-सवैये की चाल इस ही प्रकार होती है। जीकौ=जीव का। जीव और ब्रह्म में भेद बुद्धि मिट जाय। जीव ब्रह्म है यह ज्ञान हो जाय। गोष्टि=सत्सग साधु मडली का। ज्ञान का विचार।

(२) होत पवित्र=ज्ञान विवेक के साबुनसे धुलकर साफ हो जाय तब उसपर ब्रह्मज्ञान का रङ्ग अच्छा चढ़ै। उतंगा=उत्तुग, अत्यन्त ऊचा। गग मिले=गगामें मिल जाने से।

ज्यौं लट भृङ्ग करै अपनै सम ता सनि भिन्न कहै नहिं कोई।
ज्यौं द्रुम और अनेक हि भाँतिनि चन्दन की ढिग चन्दन वोई॥
ज्यौं जल क्षुद्र मिलै जब गंग हि होत पवित्र उहै जल सोई।
सुन्दर जाति सुभाव मिटै सब "साधु के सग तें साधु ही होइ" ॥ ३ ॥
जो कोउ आवत है उनकें ढिंग ताहि सुनावत शब्द सँदेसौ।
ताहि कै तैसि हि औषद लावत जाहि के रोग हि जानत जैसौ॥
कर्म कलंकहि काटत हैं सब सुद्ध करैं पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु विचारत है नित संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ॥ ४ ॥
जो परब्रह्म मिल्यौ कोउ चाहत तौ नित संत समागम कीजै।
अन्तर मेटि निरन्तर ह्वै करि लै उनकौं अपनौ मन दीजै॥
वै मुख द्वार उचार करैं कछु सो अनयास सुधा रस पीजै।
सुन्दर सूर प्रकासत है उर और अज्ञान सबै तम छीजै॥ ५ ॥
जा दिन तें सतसंग मिल्यौ तब ता दिन तें भ्रम भाजि गयौ है।
और उपाइ थके सब ही जब संतनि अद्वय ज्ञान दयौ है॥
पोति पवारि हि क्यौं कर छूवत एक अमोलिक लाल लयौ है।
कौन प्रकार रहै रजनी तम सुन्दर सूर प्रकास भयौ है॥ ६ ॥
संत सदा सब कौ हित चाहत जानत है नर बूडत काढै।
दे उपदेश मिटाइ सबै भ्रम लै करि ज्ञान जिहाज हि चाढै॥

(३) क्षुद्र=छोटा, हीन (मलीन वा नदी-नाला)।

(४) वस्तु=परमात्म वस्तु परम तत्व। विचारत=मनन व निदिध्यासन।

(५) अन्तर=बीचका भेदभाव। कपट।

(६) पोति=काचकी पोत (मोती जैसे छोटे दाने)। पवार=सफेद वा काके दाने। अथवा फैंकने योग्य। अथवा कठोर, हीन-"सुआसु नाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल पुहुप सवारी" (जायसी) कर=हाथ (से मत छू-अर्थात् दूर रख)।

ये विषया सुख नाँहि न छाडत ज्यौं कपि मूठि गहै सठ गाढैं।
सुन्दर यौं दुख कौं सुख मानत हाट हि हाट बिकावत आढैं॥ ७॥
सो अनयास तिरै भवसागर जो सतसगति मैं चलि आवै।
ज्यौं कणिहार न भेद करै कछु आइ चढै तिहिं नाव चढावै॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य हू शूद्र मलेछ चण्डाल हि पार लघावै।
सुन्दर बार कछू नहि लागत या नर देह अभै पद पावै॥ ८॥
ज्यौं हम पाँहि पिवैं अरु वोढहिं तैसैंहि ये सव लोग वषानैं।
ज्यौं जल मैं ससि कै प्रतिविंव हि आप समा जल जन्त प्रवानैं॥
ज्यौं पग छांह धरा परि दीसत सुन्दर पषि उडै असमानैं।
त्यौं सठ देहनि के कृत देषत संतनि की गति क्यौं कोउ जानैं॥ ९॥
जौ पपरा कर लै घर डोलत मागत भीष हि तौ नहिं लाजै।
जौ सुख सेज पटंवर अवर लावत चन्दन तौ अति राजै॥

---

(७) बूडत काढैं=डूवता है यह जानते हैं तो (तुरत) उसे बाहर निकालैं। चाढैं=चढालैं। गाढैं=गाढी करके, दृढ़। हाट ही हाट=एक हाट से दूसरी हाट पर। आढैं=आढत द्वारा। अर्थात् ससार वाजार है वहां सुख दुःख कर्म्मोका व्यापार सा है। किसी के लाभ वा नफा किसी के हानि वा घाटा होता है। कर्मफल अनिवार्य हैं।

(८) कणिहार=कर्णधार, खेवटिया। लघावै=उतारै।

(९) वषानैं=साधरण अज्ञ लोगों को सतों की वास्तव गति का तो ज्ञान नहीं उनके रहन-सहन को भा अपना सा ही जानते हैं। आप सम=अपने समान ही चान्द के प्रतिविवों के आकारों को मच्छ-कच्छ समझते हैं कि वे भी मच्छ-कच्छ ही हैं। षग छांह=पक्षी की छाया पृथ्वी पर पड़ै उसही को पक्षी का भ्रम करै। देहन की कृति शरीरों के कर्म्मों को साधारण समझते हैं परन्तु सतों के कर्म्म असग होते हैं, वे कर्म्मों में लिप्त नहीं होते हैं, उनके कर्म दीखने मात्र हैं। उनकी गति अगाध है।

जौ कोउ आइ कहै मुख तें कछु जानत ताहि बयारि हि बाजै।
सुन्दर संसय दूरि भयौ सब "जो कछु साधु करै सोइ छाजै" ॥ १० ॥
कोउक निंदत कोउक बंदत कोउक आइकै देत है भक्षन।
कोउक आइ लगावत चन्दन कोउक डारत धूरि ततक्षन ॥
कोउ कहै यह मूरष दीसत कोउ कहै यह आहि विचक्षन।
सुन्दर काहु सौं राग न द्वेष सु "ये सब जानहुं साधु के लक्षन" ॥ ११ ॥
तात मिले पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज बाज मिलै सब साज मिलै मन बंछित पाई ॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधि लोक मिलै बइकुण्ठ हुं जाई।
सुन्दर और मिलै सब ही सुख दुल्लभ संत समागम भाई ॥ १२ ॥

मनहर

देव हू भये तें कहा इन्द्र हू भये तें कहा
विधि हू के लोक तें बहुरि आइयतु है।
मानुष भये तें कहा भूपति भये तें कहा
द्विज हू भये तें कहा पार जाइयतु है ॥
पशु हू भये तें कहा पक्षी हू भये तें कहा
पन्नग भये तें कहो क्यों अघाइयतु है।
छूटिवे की सुन्दर उपाइ एक साधु सङ्ग
जिनि की कृपा तें अति सुख पाइयतु है ॥ १३ ॥

---

(१०) षपरा कर=खप्पर को हाथ मे (लेकर) बयार हि बाजी=पवन बाज गई, उनके चित्तपर संस्कार नहीं होने पाता। कहे सुने का वे बुरा नहीं मानते हैं, न हर्ष मानते हैं। (११) ततक्षन=तत्क्षण, उसी समय। विचक्षन=ज्ञानी।

(१२) बइकुंठ=विष्णुलोक। दुल्लभ=दुर्लभ, कठिनता से मिलने वाला।

(१३) यह छन्द सुन्दरदासजी का बहुत प्रसिद्ध है। आइयतु आदि क्रियाएं निश्चय बोधके निमित्त हैं। "ऐसा होता ही है"।

इन्द्रानी शृङ्गार करि चन्दन लगायौ अङ्ग
वाहि देषि इन्द्र अति काम वस भयौ है।
शूकरी हू कर्दम के चहले मैं लोटि करि
आगै जाइ शूकर कौ मन हरि लयौ है॥
जैसौ सुख शूकर कौं तैसौ सुख मघवा कौं
तैसौ सुख नर पशु पंपिन कौं दयौ है।
सुदर कहत जाकै भयौ ब्रह्मानन्द सुख
सोई साधु जगत मैं जन्म जीति गयौ है॥ १४॥
धूलि जैसौ धन जाकै सूलि से ससार सुख
भूलि जैसौ भाग देषै अत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई साप जैसौ सनमान
बडाई हू बीछनी सी नागनी सी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ विधिलोक
कीरति कलक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुन्दर कहत ताहि वन्दना हमारी है॥ १५॥
काम ही न क्रोध जाकै लोभ ही न मोह ताकै
मद ही न मच्छर न कोउ न विकारौ है।

---

(१४) कर्दम=कादा, कीच। चहले=चहल में, कीचड़ की मिट्टी में। मघवा=इन्द्र।

(१५) यह १५ वां छन्द सुन्दरदासजी ने बनारसीदासजी जैन कवि आगरे वालों को लिखा था, जिसके उत्तर में बनारसीदासजीने एक छन्द भेजा था जो "समयसार नाटक" में ८ वीं अध्याय का छन्द ५६ वां है:—"कीच सो कनक जाकै · ताहि वंदत बनारसी"। (देखो भूमिका)।

दुन्च ही न सुख मानै पाप ही न पुन्य जानै
हरप न सोक आनै देह ही तें न्यारौ है ॥
निंदा न प्रशसा करै राग ही न दोप धरै
लेंन ही न दैंन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति
ऐसौ कोउ साधु सु तौ रामजी कौ प्यारौ है ॥ १६ ॥
आठौं याम यम नेम आठौ याम रहै प्रेम
आठौं याम योग यज्ञ कियो वहु दांन जू।
आठौं याम जप तप आठौं याम लियो व्रत
आठौं याम तीरथ मैं करत है न्हांन जू ॥
आठौं याम पूजा बिधि आठौं याम आरती हू
आठौं याम दडवत समरन ध्यांन जू।
सुन्दर कहत तिन कियौ सब आठौं यांम
"सोई साधु जाकै उर एक भगवान जू" ॥ १७ ॥
जैंसै आरसी कौ मैल काटत सिकल करि
मुख मैं न फेर कोऊ वहै वाकौ पोत है।
जैसें वद नैन मैं सलाका मेलि शुद्ध करै
पटल गये तें तहां ज्यौंकी त्यौंही जोत है ॥
जैसें वायु वादर वपेरि कैं उडाइ देत
रवि तौ अकाश माहिं सदाई उदोत है।
सुदर कहत भ्रम छिन मैं विलाइ जात
"साधु ही कें संग तें स्वरूप ज्ञान होत है" ॥ १८ ॥

---

(१६) वें के लिये भी यही कहा जाता है ।। अत की=मौत की । साप=सर्प वा शाप । पसारौ=फैलाव, आडवर, प्रपंच ।

(१७) आठौं याम=आठौं पहर, रात दिन, निरन्तर । (१८) आरसी=आईना,

मृतक दादुर जीव सकल जिवाये जिनि
बरषत बानी मुख मेघ की सी धार कौं।
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश
निशि दिन करत है ब्रह्म ही विचार कौ॥
औरऊ सन्देहनि मिटावत निमेष माहि
सूरज मिटावत है जैसैं अन्धकार कौं।
सुन्दर कहत हस बासी सुख सागर के
"सन्तजन आये हैं सु पर उपकार कौं" ॥ १९ ॥
हीरा ही न लाल ही न पारस न चिंतामनि
औरऊ अनेक नग कहौ कहा कीजिये।
कामधेनु सुरतरु चन्दन नदी समुद्र
नौकाऊ जिहाज बैठि कबहूक छीजिये॥
पृथ्वी अप तेज वायु व्यौम लौं सकल जड
चन्द सूर सीतल तपत गुन लीजिये।

शीशा (पहिले जमानों में फौलाद के दर्पण बनते थे, उन पर मोरचा आ जाया करता था उसको सिकलगर साफ करते थे)। पोत=मोरचा, दाग। पहल=परदा मैलका।

(१९) मृतक दादुर=मरे मेंडक। गर्मियों में पानी सूखने से मेंडक मछली आदिक सूख जाते हैं। वारिशमे वर्षा की अमी से तर होकर जी उठते हैं। इसही तरह माया के वश होकर विषय की ताप से जीव जो सूख कर मृतक (पतित) हो जाते हैं वे सतजनों की ज्ञानोपदेश की अमृत वर्षा से सजीव या ज्ञानी और ब्रह्मानन्द को पा कर सुखी हो जाते हैं। स्वारथ न लवलेश=निःस्वार्थ उपदेश देते हैं। आजकल के वैतनिक अध्यापकों और स्वार्थी प्रोफेसरोंकी सी तरह नहीं। निर्लोभी सतों का ढङ्ग निराला है। निमेष=पल में। संदेहनि=सब शकाओंको।

सुन्दर विचारि हम सोधि सब देपे लोक
"सन्तनि के सम कहो और कहा कीजिये" ॥ २० ॥
जिनि तन मन प्रान दीनौं सब मेरे हेत
औरऊ ममत्व बुद्धि आपुनी उठाई है।
जागनऊ सोवतऊ गावत है मेरे गुन
मेरोई भजन ध्यान दूसरी न काई है॥
तिनके मैं पीछे लग्यौ फिरत हौं निश दिन
सुन्दर कहत मेरो उनतें वडाई है।
वे है मेरे प्रिय मैं हौं उनको आधीन सदा
"सन्तनि की महिमा तौ श्रीमुख सुनाई है" ॥ २१ ॥
प्रथम सुजस लेत सील हू सन्तोष लेत
क्षमा दया धर्म लेत पापतें डरत है।
इन्द्रिनि को घेरि लेत मनहू कौं फेरि लेत
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत है॥
गुरु को वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत
आतमा को सोधि लेत भौ जल तरत है।

(२०) इस छन्द मे सतों के समान वा बराबरी करने के योग्य पदार्थों को ढूढ कर लिखा है कि सतों को किसकी उपमा दी जा सके वा किसके साथ तुलना की जाय ? उनको हीरा आदि बहुमूल्य मणि कहैं, वा चितामणि ही कहै, वा कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्दन का वृक्ष, वा समुद्र का जहाज वा पर्वतल, वा सूरज-चाद इत्यादि ससार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जचा कि जो सतो की समानता के लिये उपयुक्त समझा जाय। अर्थात् सतो का दर्जा बहुत ऊचा है।

(२१) सतजनों वा अनन्यभक्तों की महिमा (भागवत आदिक ग्रन्थों मे) भगवान ने अपने मुखारविंद से वर्णन की है। भक्तो को अपने आप से भी बड़ा कहा है। काई=और कुछ।

सुन्दर कहत जग सन्त कछु लेत नाहिं
"सन्तजन निश दिन लेवौई करत हैं" ॥ २२ ॥

साचौ उपदेश देत भली भली सीष देत
समता सुवुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत भाव हू भगति देत
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुन्दर कहत जग सन्त कछु देत नाहिं
"सन्तजन निश दिन देवौई करत हैं" ॥ २३ ॥

जगत व्यौहार सब देषत है ऊपर कौं
अन्तहकरण कौं न नैंक पहिचांनि है।
छाजन कै भोजन कै हलन चलन कछु
और कोऊ क्रिया कै तौ सोइवौ बषांनि है॥
आपुनेई गुननि आरोपत अज्ञानी नर
सुन्दर कहत तातें निन्दाई कौं ठांनि है।

---

(२२) पापते डरत है=(अर्थात्) पुन्य को लेते हैं। भौ जल तरत हैं=जगत समुद्र से पारगतता लेते हैं। कहत जग=लोग तो ऐसा कहते हैं—परन्तु उनका कहना ठीक नहीं। सतों का लेना सिद्ध है। यहाँ व्याज स्तुति है।

(२३) कुमति हरत है=(अर्थात्) सुमति देते हैं। प्रतीति=निश्चय। अभरा भरत है=अपूर्ण को पूर्णता देते हैं। ब्रह्म में चरत हैं=ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करा के ब्रह्मानन्द लोक में विचरने की शक्ति देते हैं। इस छन्द में संतजनों को मालदार होना सिद्ध किया है। सतजन तो त्यागी हुआ करते हैं फिर उनके पास देने को कहाँ। परन्तु दातव्यता का, अलङ्कार की चातुरी से, आरोप कर दिया है।

भाव में तो अन्तर है राति अरु दिन कौ सौ
"साधु की परीक्षा कोऊ कैसैं करि जानि है" ॥ २४ ॥
कूप में कौ मेंडुका तौ कूप कौं सराहत है
राजहंस सौं कहै कितौक तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सर भरि कौन उडै
मेरै आगै गरुड की कितीयक जर है॥
गुबरैंडा गोली कौं लुढाई करि मानै मोद
मधुप कौं निन्दत सुगन्ध जाकौ घर है।
आपुनो न जानै गति सन्तनि कौ नाम धरै
सुन्दर कहत देषौ ऐसौ मूढ नर है॥ २५ ॥
कोऊ साधु भजनीक हुतो लयलीन अति
कबहू प्रारब्ध कर्म धका आइ दयौ है।
जैसैं कोऊ मारग में चलतें आपुटि परै
फेरि करि उठै तब उहै पन्थ लयौ है॥
जैसैं चन्द्रमा की पुनि कला क्षीण होइ गई
सुन्दर सकल लोक द्वितिया कौ नयौ है।
देव कौ देवातन गयौ तो कहा भयौ वीर
पीसरि कौ मोल सुतौ नाँहि कछु गयौ है॥ २६ ॥

---

(२४) ऊपर के छन्द ९ से इस छन्द का अभिप्राय कुछ-कुछ मिलता सा प्रतीत होता है। ऊपर कौं=साधारण मनुष्य सतोंके बाहर के व्यवहार ही को देख सकते हैं उनके अन्तरङ्ग की भावनाओं-ज्ञान भक्ति ब्रह्मनिष्ठता योगशक्ति आदि को—नहीं जान सकते। मूर्ख लोग इसके अधिकारी ही नहीं हैं। इसको आगे के। (२५) वें छन्द में उदाहरणों से दरसाते हैं। मसका=मच्छर। सरभरि=बराबर जर=जड़ (क्या बुनियाद) औकात।

(२६) आंखुटि=ठोकर खाकर। (किसी कर्म वा आचरण मे चूक) द्वितीया

उही दगावाज उही कुष्टी जु कलङ्क भर्‌यौ
उही महापापी वाकैं नख शिख कीच है।
उही गुरुद्रोही गो ब्राह्मण कौ हननहार
उही आतमा को घाती हिंसा वाकै वीच है॥
उही अघ कौ समुद्र उही अघ कौ पहार
सुन्दर कहत वाकी बुरी भाति मीच है।
उही है मलेछ उही चण्डाल बुरे तें बुरौ
"सन्तनि की निन्दा करै सुतौ महा नीच है"॥ २७॥

परि है वज्राग्नि-ताकै ऊपर अचांनचक
धूरि उडि जाइ कहुं ठौहर न पाइ है।
पीछै कैऊ युग महानरक मैं परै जाइ
ऊपर तें यमहू की मार वहु पाइ है॥
ताकै पीछै भूत प्रेत थावर जगम योनि
सहैगौ संकट तव पीछै पछिताइ है।
सुन्दर कहत और भुगतै अनन्त दुख
"सतनि कौ निंदै ताकौ सत्यानाश जाइ है"॥ २८॥

को नयो है=वह सत फिर वैसा ही उज्ज्वल तपश्चर्या से हो जाता है। उसको सव दोज के चांद को देख हर्षित व प्रणाम करते व पूजते हैं वैसे भाव करने लगते है। देव को देवातन=देवता का देवता पन अथवा देवालय (जा नहीं सकता, वह थोड़ी देर को विकृत प्रतीत होता है फिर वैसा का वैसा) पीतरि कौ मोल=सोने का सोनापन गया तो क्या पीतल का भी मोल गया। अर्थात् उसकी असलियत कुछ रहती है ही। (मुहाविरे हैं)।

(२७) सन्तजनों की निन्दा से मनुष्य महापातकी हो जाता है। अतः सन्तों की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

(२८) के छन्द में भी वही सन्तनिन्दा के वुरे फल को कहा है।

नाहि क भगति भाव उपजि है अनायास
जाकी मति सन्तन सौं सदा अनुरागी है।
अति सुख पावै ताके दुख सब दूरि होंहि
औरऊ काहू की जिनि निन्दा मुख त्यागी है॥
संसार की पासि काटि पाइ हं परम पद
सतसंग ही तें जाकें ऐसो मति जागी है।
सुन्दर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ
सन्तन को गुन गहै सोई बड़भागी है॥ २९ ॥
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान
साधन सकल नहि याकी सरभरे हैं।
और देवी देवता उपासना अनेक भाति
सक सब दूरि करि तिन तें न डरे हैं॥
सब ही के सिर पर पाव दै मुकति होइ
सुन्दर कहत सो तो जनमे न मरे है।
मन वच काय करि अन्तर न रापै कछु
सतन की सेवा करे सोई निसतरे हैं॥ ३० ॥

॥ इति साधु को अंग ॥ २० ॥

---

(२९) यहा सन्तो की भक्ति करके उनसे लाभ उठाने की प्रशसा है। सन्तों में जो गुण हैं वह ग्रहण करना ही उत्तम है। उनमे कोई अवगुण नहीं होते हैं जो दिखाई देते हैं वे मन्दबुद्धिजनों का दृष्टिदोष मात्र है और उनकी बुरी भावना है। सन्तो को सदा शुद्ध और निर्दोष समझना ही अच्छी बात है।

(३०) सन्तजन परमात्मतत्व और अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति कराके भक्तजनो का निस्तारा (मोक्ष) करा देनेवाले होते हैं। इसलिये उनकी सेवा शुश्रुषा करने से ही अत्यन्त लाभ हो सकता है। उनसे अन्तर (कपट आदि) नहीं रखना। शुद्ध-

अथ भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग (२१)॥

इन्दव

बैठत राम हि ऊठत राम हि बोलत राम हि राम रह्यौ है।
जीमत राम हि पीवत राम हि धीमत राम हि राम गह्यौ है॥
जागत राम हि सोवत राम हि जोवत राम हि राम लह्यौ है।
देतहु राम हि लेत हु राम हि सुन्दर राम हि राम कह्यौ है॥ १॥
श्रोत्र हु राम हि नेत्र हु राम हि वक्त्र हु राम हि राम हि गाजै।
सीस हु राम हि हाथ हु राम हि पाव हु राम हि राम हि साजै॥
पेट हु राम हि पीठ हु राम हि रोम हु राम हि राम हि बाजै।
अन्तर राम निरन्तर राम हि सुन्दर राम हि राम विराजै॥ २॥
भूमि हु राम हि आपु हु राम हि तेज हु राम हि वायु हु रामै।
व्यौम हु राम हि चन्द हु राम हि सूर हु राम हि शीत न घामै॥
आदि हु राम हि अन्त हु राम हि मध्य हु राम हि पुस न वामै।
आज हु राम हि काल्हि हु राम हि सुन्दर राम हि म्हांमहिं थामै॥ ३॥

भाव से मुमुक्षुता और जिज्ञासा करनी चाहिये। वे मतमतान्तरों के आडम्बरों और झगड़ों की उपेक्षा करते हुए सरल सहज विधि से बेड़ा पार कर देंगे। अतः सन्त सेवा कर्तव्य है। (साधु लक्षण के लिये देखो दादूपद १६४। तथा साधु का अंग)

(भक्ति ज्ञान मिश्रित अग २१) (१) रह्यौ है=बरतता रहता है। धीमत=ध्याते हुये ('धीमहि' का रूपान्तर है)। जोवत=देखते हुये।

(२) गाजै=गर्जना करै, उच्च शब्द से रटै। बाजै=गुंजारै, शब्द करै (रोम रोम से राम धुन लागै)।

(३) शीत न घामै=शीतोष्ण का दुख भक्तिभाव में नहीं व्यापै। पुस न वामै=स्त्री पुरुष में समभाव रक्खै अर्थात् सबको ईश्वरस्वरूप से भावना में लावै, भेद न समझै। म्हां में (रजवाड़ी) हमारे अन्दर। थांमें (रजवाड़ी) तुम्हारे अन्दर।

देष हु राम अदेष हु राम हि लेष हु राम अलेष हु रामै।
एक हु राम अनेक हु राम हि शेष हु राम अशेष हु तामै॥
मौन हु राम अमौन हु राम हि गौन हु राम हि भौन हु ठामै।
बाहिर राम हि भीतरि राम हि सुन्दर राम हि है जग जामै॥ ४॥
दूरि हु राम नजीक हु राम हि देश हु राम प्रदेश हु रामै।
पूरब राम हि पच्छिम राम हि दछिन राम हि उत्तर धामै॥
आगै हु राम हि पीछे हु राम हि व्यापक राम हि है बन ग्रामैं।
सुन्दर राम दशौं दिशि पूरत स्वर्ग हु राम पताल हु तामैं॥ ५॥
आप हु राम उपावत राम हि भञ्जन राम संवारन रामै।
दृष्टि हु राम अदृष्टि हु राम हि इष्ट हु राम करै सब कामै॥
वर्ण हु राम अवर्ण हु राम हि रक्त न पीत न स्वेत न स्यामै।
शून्य हु राम अशून्य हु राम हि सुन्दर राम हि नाम अनामै॥ ६॥

॥ इति भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग ॥ २१ ॥

---

(४) देष लेष . =दृष्ट-अदृष्ट, लक्षित अलक्षित। शेष अशेष=नेति नेति कहते, बचै सो अवशिष्ट ब्रह्म। अशेष, सकल, चराचर मे व्याप्त। गौन=गमन, गति, स्पन्दन क्रिया का मूलभूत। जग जामैं=जिसमें जगत है वही ब्रह्म है।

(५) नजीक=(फा०) नजदीक, पास (अपने अन्दर ही)। प्रदेश=परदेश, दूर देश। पताल हु तामै=पाताल जो है उसमें भी।

(६) उपावत=उत्पन्न करता, सिरजता है। भजन=नाश करनेवाला। सवारन= सवारनेवाला, रक्षा वा पालन करनेवाला। दृष्टि=देखने की शक्ति जिससे उसका साक्षात्कार होता है। अदृष्टि=वह अवस्था जिसमें साक्षात्कार न हो। शून्य में समाधि। करै सब कामैं=सर्व कार्य का आदि कारण। अनामै=अनामय, निर्मल। अथवा जिसका कोई नाम नहीं हो सकता, क्योंकि निर्गुण है।

(अंग २१ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त)

अथ भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग (२१)॥

इन्दव

उठत राम हि ऊठत राम हि बोलत राम हि राम रह्यौ है।
पीमत राम हि पीवत राम हि धीमत राम हि राम गह्यौ है॥
जागत राम हि सोवत राम हि जोवत राम हि राम लह्यौ है।
देतहु राम हि लेत हु राम हि सुन्दर राम हि राम कह्यौ है॥ १॥
श्रोत्र हु राम हि नेत्र हु राम हि वक्त्र हु राम हि राम हि गाजे।
सीस हु राम हि हाथ हु राम हि पाव हु राम हि राम हि साजै॥
पेट हु राम हि पीठ हु राम हि रोम हु राम हि राम हि वाजै।
अन्तर राम निरन्तर राम हि सुन्दर राम हि राम विराजै॥ २॥
भूमि हु राम हि आपु हु राम हि तेज हु राम हि वायु हु रामै।
व्यौम हु राम हि चन्द हु राम हि सूर हु राम हि शीत न घामै॥
आदि हु राम हि अन्त हु राम हि मध्य हु राम हि पुंस न वामै।
आज हु राम हि काल्हि हु राम हि सुन्दर राम हि म्हांमहिं थामै॥ ३॥

भाव से मुमुक्षुता और जिज्ञासा करनी चाहिये। वे मतमतान्तरों के आडम्बरों और झंझटों की उपेक्षा करते हुए सरल सहज विधि से बेड़ा पार कर देंगे। अतः सन्त सेवा कर्तव्य है। (साधु लक्षण के लिये देखो दादूपद १६४। तथा साधु का अंग)

(भक्ति ज्ञान मिश्रित अग २१) (१) रह्यौ है=वरतता रहता है। धीमत= ध्याते हुये ('धीमहिं' का रूपान्तर है)। जोवत=देखते हुये।

(२) गाजे=गर्जना करै, उच्च शब्द से रटै। वाजै=गुंजारै, शब्द करै (रोम रोम से राम धुन लागै)।

(३) शीत न घामै=शीतोष्ण का दुःख भक्तिभाव में नहीं व्यापै। पुंस न वामैं=स्त्री पुरुष में समभाव रक्खै अर्थात् सबको ईश्वरस्वरूप से भावना में लावै, भेद न समझै। म्हां में (रजवाड़ी) हमारे अन्दर। थांमें (रजवाड़ी) तुम्हारे अन्दर।

देप हु राम अदेप हु राम हि लेप हु राम अलेष हु रामै।
एक हु राम अनेक हु राम हि शेप हु राम अशेप हु तामै॥
मौन हु राम अमौन हु राम हि गौन हु राम हि भौन हु ठामै।
बाहिर राम हि भीतरि राम हि सुन्दर राम हि है जग जामै॥ ४॥
दूरि हु राम नजीक हु राम हि देश हु राम प्रदेश हु रामै।
पूरब राम हि पच्छिम राम हि दक्षिन राम हि उत्तर धामै॥
आगै हु राम हि पीछै हु राम हि व्यापक राम हि है वन ग्रामैं।
सुन्दर राम दशौं दिशि पूरत स्वर्ग हु राम पताल हु तामैं॥ ५॥
आप हु राम उपावत राम हि भञ्जन राम संवारन रामै।
दृष्टि हु राम अदृष्टि,हु राम हि इष्ट हु राम करै सब कामै॥
वर्ण हु राम अवर्ण हु राम हि रक्त न पीत न स्वेत न स्यामै।
शून्य हु राम अशून्य हु राम हि सुन्दर राम हि नाम अनामै॥ ६॥

॥ इति भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग ॥ २१ ॥

---

(४) देप लेप =दृष्ट-अदृष्ट, लक्षित अलक्षित। शेप अशेप=नेति नेति कहते, बचे सो अवशिष्ट ब्रह्म। अशेप, सकल, चराचर में व्याप्त। गौन=गमन, गति, स्पन्दन क्रिया का मूलभूत। जग जामैं=जिसमें जगत है वही ब्रह्म है।

(५) नजीक=(फा०) नजदीक, पास (अपने अन्दर ही)। प्रदेश=परदेश, दूर देश। पताल हु तामैं=पाताल जो है उसमें भी।

(६) उपावत=उत्पन्न करता, सिरजता है। भजन=नाश करनेवाला। सवारन=सवारनेवाला, रक्षा वा पालन करनेवाला। दृष्टि=देखने की शक्ति जिससे उसका साक्षात्कार होता है। अदृष्टि=वह अवस्था जिसमें साक्षात्कार न हो। शून्य में समाधि। करै सब कामैं=सर्व कार्य का आदि कारण। अनामैं=अनामय, निर्मल। अथवा जिसका कोई नाम नहीं हो सकता, क्योंकि निर्गुण है।

(अंग २१ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त)

अथ विपर्यय शब्द को अंग (२२) ॥

सवईया :-

श्रवन हु देपि सुने पुनि नैनहु, जिह्वा सूघि नासिका बोल।
गुदा पाइ इन्द्रिय जल पीवै, विन ही हाथ सुमेर हि तोल॥
ऊंचे पाइ मूड नीचे कौं, विचरत तीनि लोक में डोल।
सुन्दरदास कहै सुनि ज्ञानी, भली भाति या अर्थ हि पोल॥ १ ॥

(विपर्यय अंग २२) (१) विपर्यय=उलटा, जो सुनने में असभव, असगत वा वेढगा जान पड़ै परन्तु अर्थ उसका गहरा और चमत्कारी निकलै। ऐसा शब्द कबीरजी, गोरपनाथजी, दादूजी, रज्जबजी आदि सतों ने भी कहा है। हमको दो हस्तलिखित टीकाए तथा प० पीताम्बर जी अहमदावादवालों की मुद्रित टीका मिली उनके आधार पर तथा जो हमको सतों से, ग्रन्थोंसे अथवा अपने निज के विचार से अर्थ अवभासित हुआ तदनुसार टीका टिप्पणी जहा आवश्यक वा उचित जानी देवे हैं। न्यूनाधिक को पडितजन व महात्मा लोग सुधार लें।

हस्तलिखित उभय टीका (१ ली टीका)--(यह टीका सांकेतिक है) श्रवण=सुरत। नैंन=निरत। सुघि=रामरस। बोल=जाप। गुदा पाय=अपानपौन। इन्द्रिय जल पीवै=विषैजल पीवे। हाथ=हेत। सुमेर=अहकार। ऊचो पाय=ऊचो ब्रह्म पायो। मूड नीचे=तव सव को मस्तक नम्र भयो। (२ री टीका)—"श्रवण सुणनों नाम सुरति सों शुभाशुभ विचार वारवार अवलोकन करणों सोई देपणो। निरति सौं सर्वकार्य अकार्य का निरणौं करणां सोई सुणनों। जिह्वा सो रामराम रटि करि सुप स्वाद की प्राप्ति सोई सूघणों। नासिका द्वारि सासोसास जपधुनि करणी सोई बोलणां। गुदास्थाने आधारचक्र मध्ये अपान वाय कौं थिर करणां सोई पावणां। भजन करि संयमता सौं इद्रिया का विकार जीतणां सोई इन्द्रिय जल पीवणां। हाथों विना केवल विवेक सौं मेरु नाम अहकार है ताकौं तोलणां जो जितनाक दुख होवे है सो सर्व एक अहकार के आसिरे है, यों विचार करणां सोई तोलणां। ऊचे—यों विचार कीया ऊचा

परमेश्वरजी को पाया तब सर्व का मुड नाम मस्तक नीचे कौं नाम सर्व का मस्तक आपकों नयना लगि जावे। तब तीनलोक मे इच्छाचारी हुवा विचरो, कहीं अटक नहीं। सुन्दरदासजी कहे हो ज्ञानी पुरुष याका अर्थ को भलीभांति करि पोल, नाम विचारो। सर्व कल्याण साधन सिद्धांत याही में है" ॥ १ ॥

। पीताम्बरजी की टीका --"श्रोत्र द्वारा निकसी जो अतःकरण की वृत्ति। ता वृत्तिरूप श्रवण करि गुरुके मुख सें महावाक्य के अर्थ कू ग्रहण करिके । अतर्मुखताते देखे। कहिये प्रत्यक् अभिन्न-ब्रह्मस्वरूप कू साक्षात् अपरोक्ष जाने। नेत्रद्वारा निकसी जो अतःकरणकी वृत्ति। ता वृत्तिरूप चक्षु करि सुने। कहिये ब्रह्म औ, आत्मा की एकतारूप महावाक्यके अर्थ कू ग्रहण कर। मधुरादिक षट्रसनतें विलक्षण स्वरूपानद रसकू आस्वादन करनेवाली जो अतःकरण की वृत्ति। ता वृत्ति रूप जिह्वा करि। अतःकरणानद समर की निर्विरतिनैकता सुगधिकू सूघें। कहिये अनुभव करै। उपनिषद रूप पुष्पन के आनदरूप मकरद कू ग्रहण करनेवाली अतःकरण की वृत्तिरूप नासिका करि बोले। कहिये मनन करनेके वास्तै पूर्व अभ्यास किये शास्त्रन के शब्दन का सूक्ष्म उच्चारण कर। अथवा निदिध्यासन करनेके वास्ते "सोऽहं ॐ। ब्रह्मैवाहं। असंगोऽहं। निरजनोऽहं।" इत्यादिक शब्दन का मनमें सूक्ष्म जप करै। बाधित अनुवृत्ति युक्त रागद्वेषादि वासनारूप गुदा करि खाय। कहिये प्रारब्धकर्म तें मिले हुवे अनुकूल सुख वा दुःख का अनुभव कर। भोक्ता, भोग्य औ भोग कू मिथ्या जानि के जो वासनाका क्षय है तिसरूप लिंग इन्द्रिय करि "मै अकर्त्ता, अभोक्ता, औ आत्मा हू' इस निश्चयरूप जल कू पीवे। स्थूल औ सूक्ष्म प्रपच कार्यरूप शिखर वाला मूल-अज्ञानरूप जो सुमेर पर्वत है। ताकू हाथ विन ही तौलै। कहिये स्वरूप मे विवेचन करिके मिथ्या जानै।—"मै सर्वत्र व्यापक हू" ऐसा जो अतःकरण का निश्चय। औ वैराग्य विवेकादि करि ब्रह्मरूप प्रदेश मे गमनरूप जो निश्चय है, तिन दोनू निश्चयरूप पगन कू ऊचे कहिये मुख्य राखिकै। ज्ञान हुये पीछे भी व्यवहार काल में बाधित हुआ जो अहकार फुरतां है। सो सर्व सघातमे मुख्य होने ते तिसरूप मुंडी नीचे कू। कहिये अमुख्य राखिके तीनलोक में विचरत डोल। कहिये जहां जहा गति होवै तहा तहां स्वच्छन्द हुआ विचरै।—सुन्दरदासजी कहे हैं कि हे ज्ञानी! इस सवैये के अर्थ

कू सुनि। भले प्रकार करि खोलो। जैसे किसी अनेक पदार्थन सहित ग्रह के द्वार कू ताला लगा होवै। ताकू खोलतें वे सर्वपदार्थ प्रगट दृष्टि में आवें हैं। तैसे याके खोलनेसे मोक्षोपयोगी पदार्थ दृष्टि आवैंगे। या में यह रहस्य है:—इस पद्यमें मुक्त पुरुष के लक्षण कहे हैं। सोही मुमुक्षु के साधन हैं। या तें तिस अर्थ कूं प्रगट करने में मुक्त कू प्रसन्नता औ मुमुक्षु कूं उक्त साधनों की प्राप्ति में परम लाभ होवैगा" ॥ १ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—पंच ज्ञानेंद्रिया मनके आश्रित हैं। राजयोग और हठ्योग से जब मन वश में हो गया तो श्रवणादिक इन्द्रियोंके अंतर्मुख हो जाने से उनके बहिर्मुख (स्थूल) काम जिस तरह योगी चाहै कर सकता है। उनके कार्यों में उलट-पुलट, लोम-विलोम से अन्तरात्मा के ज्ञान में कुछ भी भेदभाव, वा हानि नहीं हो सकती। हठ्योगी गुदा द्वारा गणेशक्रिया वा वस्ति और उड्डियान साधन की सिद्धि से जितना चाहै जल वा दूध गुदासे चढा ले सकता है। ऐसेही इन्द्रिय (लिंग) से जल, दुग्ध, घृत खींच सकता है। ऊंचे पाव से शीर्षासन प्रयोजन है। अथवा ऊर्द्धरेता होना भी। खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाने पर गगनगामी होकर स्थूल वा सूक्ष्म शरीरसे लोकान्तर में भ्रमण वा प्रवेश करता है। यह उभय योग मार्गों से सिद्धियोंके अनुसार अर्थ है। साधारण पुरुषों को योगियों की क्रियाएं असंभव और उलटी (विपरीत) प्रतीत होती है। इसही से विपर्यय कहा जाता है। जो उक्त दोनों टीकाओंमें अर्थ दिये हैं वे वेदातादि के पक्ष से उत्तम हैं। सुन्दरदासजी ने १२ वर्ष योग साधन किया था। वे योग की सब बातों से भलीभांति अभिज्ञ थे। वेदांत के भाव के साथ योग का भी अभिप्राय था। बिनही हाथों के सुमेर तोलना ज्ञानी की अन्तरात्मा में विशाल विराट् विश्व प्रपंच की असारता का मिथ्यात्व सिद्ध होना ही अन्तःकरण की वृत्ति में (जहां कोई हाथ वा ताखड़ी बाट नहीं हैं) भासजाना ही तौलना हैं। वह ज्ञानी की सहज वृत्ति है। साधारण पुरुष को असंभव वा विपरीत सा जान पड़ता है।—स्वयम् सुन्दरदासजी ने निजरचित 'साषी' में (२० वां अङ्ग) ५० साखियां दी हैं जो विपर्यय के वर्णन में हैं। हम उपर्युक्त मिलती विपर्यय का साखी देते हैं। और अन्य महात्माओं की वाणियों से भी देते हैं। जिस से विपर्यय

लिखने वा कहने का प्रमाण अन्यत्र से भी प्राप्त हो और यह ज्ञात हो कि इस ढङ्ग की उक्ति महात्माजनों में एक प्रथा सी थी। अध्यात्मलोक की बातें साधारण पुरुषों को अटपटी सी प्रतीत होती हैं। उनके वास्तविक अभिप्राय के जानने पर बड़ा ही आनद मिलता है। विपर्यय के समझने के ऊपर सु० दा० जीने स्वयम् कहा है कि—"सुंदर सब उलटी कही समझैं सत सुजांन। और न जानैं बापुरे भरे बहुत अज्ञान"। ५०। प्रथम छंद विपर्यय पर साखी में इतनाही आया है—"नीचे को मूडी करै तब ऊचे कों पाइ"। १।

*नोट—(इस विपर्यय के अङ्ग में) यह छंद मात्रिक सवैया है, जिसको "वीर सवैया" कहते हैं। १६+१५=३१ मात्रा का अन्त में गुरु लघु ऽ। होते है।—दादूजी की साखी १३५—"सब घट श्रवना सुरतिसौं सब घट रसना वैन। सब घट नैनां हो रहे दादू विरहा ऐन"।—तथा—"दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुख वैन। सबै दिसा श्रवणहु सुनैं, सबै दिसा कर नैन"। २१४ अङ्ग ४। श्यामचरणदासजी—"औघट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जांइ। श्रवण विनां बहुवाणी सुनिये, बिन जिह्वा स्वर गावैं। बिनां नैन जहँ अचरज दीखै, विनां अंग लपटावैं। बिना नासिका बास पुष्प की, विनां पाव गिरि चढ़िया। विनां हाथ जहँ मिलो धायके, बिन पाया जहँ पढ़िया।"—(भक्तिसागरादि पृ० २४६)।—इस श्या० च० दा० जीके पदको सवैया ४ में भी लगाना।—जनगोपालजी-"नैन विनां निरषै सब रूपा। बैन विनां गावै सब भूपा। अङ्गहि विना सग सो करै। धरणी विनां चाल पग धरै। १२०। देव बिन देव पत्र विन पूजा। जल बिन निर्मल भाव नहि दूजा। धुनि बिन सबद ज्योति बिन दीपग चदसूर गमि नांही। १२१।—चरन विना निरत बह कीजे। रसना बिन गुन गावै। श्रवनां विनां सुनै सो बानी। विनही सिरकै नावै। १२२।—(मोह विवेक से)।—कबीरजी का पद—"बिन चरणन को दहु दिशि धावै, बिन लोचन जग सूझै"। (बीजक शब्द १)। तथा—"करचरण बिहूनां राजै। कर बिनु बाजै श्रवण सुनैं बिनु श्रवणें श्रोता सोई। इन्द्रिय बिनु भोग स्वाद जिह्वा बिनु, अक्षय पिंड बिहूनां। बीजु बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरुवर, बिनु फूले फल फलिया ससि बिनु द्वात कलम बिनु कागज, बिनु अक्षर सुधि सोई। सुधि बिनु सहज ज्ञान बिन ज्ञाता, कहै

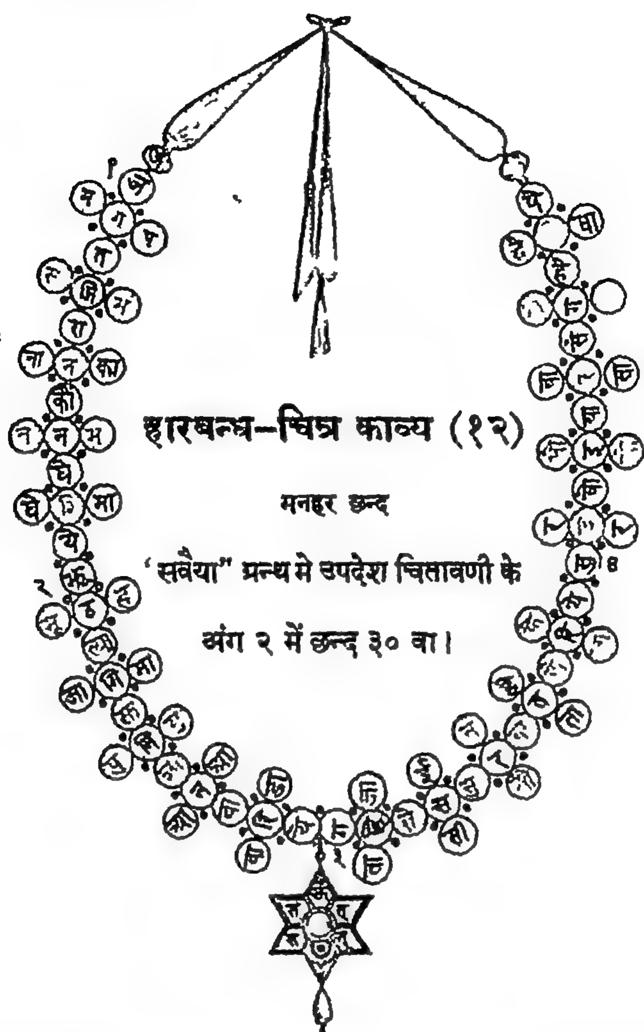
अन्धा तीनि लोक कों देखै वहिरा सुनै वहुत विधि नाद।
नकटा वास कमल की लेवे गूगा करै वहुत संवाद॥
टूटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।
जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुन्दर सोई पावै स्वाद॥ २॥

कर्वार जन सोई।" (वीजक शब्द १६)।—तथा—"विनु पग तरुवर चढ़िया"—उक्त)।

(२)—हस्त लि० १ टीका—अधा=अन्तर्दृष्टी। वहिरा सुनै—जगत के आक्वाक सू रहित दस प्रकार अनहद सुनै। नकटा=लोकलाज रहित। वास—ब्रह्म सुगध ले। गूगा—जगत मन सों अवोल। टूटा=क्रिया रहित। पर्वत=पाप। पगुल=गति रहित। नृत्य=ध्यान। अहलाद=हर्ष॥ २॥

हस्त लि० २ री टीकाः—अधा, ससार व्यवहार की तरफ सों अन्तर्दृष्टि। सो तीन लोक कौं देखै, यथार्थ जैसा झूठ सांच, सार असार कौं जांणै, असार त्यागि सार ग्रहण करै। वहिरा-जगत वाद-विवाद रहित निश्चल चित्त होय अन्तरश्रुति दश प्रकार का अनहद नाद कौं सुनै। नकटा-नाम लोक लाज कुल कानि रहित निसक होवै, सो ब्रह्म कमल की वास लेवै, ब्रह्मानन्द रस स्वाद कौं पावै। गूगा-जगत सवधी वकवाद सौं रहित होय तव वहुत प्रकार को सवाद नाम ब्रह्मनिरूपण करै। टटा-कायक, वायक, मानस तीन स्थान की विरथा क्रिया रहित। सो पकरि नाम पुरुषार्थ करिके परवत नाम अति भारी पापन को उठावै दूरि करै। पगुल-नाम गुण विकार चपलता रहित। गुणातीत सत। सो निरत नाम अत्यन्त प्रवीणता सौं भगवत ध्यान मैं अत्यन्त आनन्द हरष कौ पावै॥ २॥

पीताम्बरी टीका—"मैं आत्मा हूं" इस निश्चय करि अहता और ममतारूप दो नेत्रन के सवध तें रहित ज्ञानीरूप जो अंधा। सो जाग्रत, स्वप्न, औ सुषुप्तिरूप तीनलोक कू ब्रह्मचेतन रूप करि प्रकाशै। अथवा लोक शब्द का अर्थ प्रकाश होने तें वाह्य सूर्यादिक प्रकाश कू, औ मध्य नेत्रादिक इंद्रियन के प्रकाश कू, औ अन्तरबुद्धि रूप प्रकाश कू, अतःकरण-वृत्ति-उपहित साक्षिरूप करि देखै। कहिये प्रकाशै है—



Engraved & printed by Gaya Art Press, Cal

जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम, काम कौंन तन मन घेरि घेरि मारिये।
झूठ मूठ हठ त्यागि जागि मागि सुनि पुनि, गुनि ज्ञान आंन आंन वारि वारि डारिये॥
गाहि ताहि जाहि सेस ईस सीस सुर नर, और बात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुंदर दरद खोइ धोइ धोइ बार बार, सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये॥३०॥

इसके पढ़ने की विधिः—

हार की प्रथम पचनगी के प्रथम नग में जो 'ज' अक्षर है वहा से प्रारभ करै। मध्य के नग के अक्षर के साथ उस 'ज' को फिर बाईं ओर के 'म' को फिर दाहिनी ओर के 'प' को मिलाकर पढ़ैं। आगे नीचे के पाचवें अक्षर 'त' को दूसरी पचनगी के अक्षरों के साथ पूर्ववत् पढ़ैं। आगे इस ही प्रकार। दूसरा चरण छटी पचनगी से। तीसरा ११ वीं से। चौथा १६ वीं से। प्रत्येक चरण पर अङ्क है॥

श्रोत्रेंद्रिय ने सबध तें रहित जो ज्ञानीरूप वैरा। सा लौकिक औ शास्त्रीय भेद करि नाना प्रकार के शब्दन का बहुत विधि नाद सुने है।—नासिका इन्द्रिय के सबध ते रहित ज्ञानीरूप जो नकटा सो कमलादिक अनेक पदार्थन की बास लेवै है। वाक् इन्द्रिय के सबध तें रहित ज्ञानीरूप जो गूगा, सो नाना प्रकार के लौकिक औ वैदिक शब्दन करि बहुत सवाद करै है —हस्त इन्द्रिय के सबध तें रहित ज्ञानीरूप जो ठूठा महान कृयारूप पर्वत पकरि के उठावे, कहिये आरभ करिके वाकी समाप्ति करै है। पादेन्द्रिय के सबध तें रहित ज्ञानीरूप जो पगु, सो यथा इच्छा पृथिवी पर नृत्य, कहिये गमन करि अति अल्हाद कू पावै है। सुन्दरदासजी कहै है कि, या सवैये के अर्थ कू जो कोई मुमुक्षु पुरुष विचारै, सोई जीवन्मुक्तिरूप स्वाद पावै, कहिये श्रेष्ठ सुख का अनुभव करै ॥ २ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:--सु० दा० जीकी साखी—"अन्धा तीनौ लोक कौ सुदर देख नन। बहिरा अनहद नाद सुनि अतिगति पावे चैन"। २। "नकटा लेत सुगध कौ यह तो उलटी रीत। सुन्दर नाच पगुला गूगा गावे गीत" । ३। दादूजी का पद ३०७—"देखत अन्धे अन्ध भी अन्धे। बोलत गूगे गूग भी गूगे"। तथा दादूजी का पद २६९—"श्रवण बिन सुनिबो। बिन कर बैन बजाइये।—बिन रसना मुख गाइये"। तथा दादूजी का पद २३४ मे—"बोलत गुगे गुग बुलाये"। "अपग विचारे सोई चलाये।— तथा दादूजी का पद २१३—"पांगलो उजावा लाग्यौ"।—तथा—"जिभ्या बिहूणाँ गाये"।—पुन दादूजी का पद २११—"बिनही लोचन निरपि। श्रवण रहित सुनि साऊं। बिनही मारग चलै चरण बिन। बिनही पाऊ नाचै निस दिन। बिन जिभ्या गुण गावै"।—दादूजी की साखी ८८। अङ्ग ४।—"दादू बिन रसना जह बोलिये तह अन्तरजामी आप। बिन श्रवणहु सांई सुनै जे कछु कीजे जाप"। (यह व्याख्या है विपर्यय की) दादूजी की साखी—"दादू नैन बिन देखिबा, अङ्ग बिन पेखिबा, रसन बिन बोलिबा नैन सेती। श्रवण बिन सुणिबा, चरण बिन चालिबा, चित्त बिन चिंतवा सहज एती"। (१९४। अङ्ग ४।)—तथा दादूजी की साखी—"बिन श्रवणहु सब कुछ सुणै, बिन नैनहु सब देखै। बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यहु दादू अचिरज पेखै"। २१६। अङ्ग ४।—पुन —"जिभ्याहीणे कीरति गाई"—(पद ७१।)—

कुंजर कौं कीरी गिलि बैठी सिंघ हि पाइ अघानौ स्याल।
मछरी अग्नि माहिं सुख पायौ जल में हुती बहुत बेहाल॥
पगु छड्यौ पर्वत कै ऊपर मृतक हि देपि डरानौ काल।
जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुन्दर ऐसा उलटा ख्याल॥ ३॥

हरिदासजी निरजनी की साखी—"अन्धा को सब सूझै"। १। बहरैं सब कुछ सुनिया। ३। "पगुल मार्ग अगम का लाधा"। ३।—(योग मूल सुख भोग)। कबीरजी का शब्द—"बिन करताल पखावज बाजै, बिन रसना गुन गावै। गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै'। (शब्दावली। भेदवानी। २६ में)।—तथा—"तीनलोक ब्रह्माण्ड खड में, अन्धरा देख तमासा। पगला मेर सुमेर उड़ावै, त्रिभुवन माहीं डोलै। गूगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै, अनहद बानी बोलै"। (शब्दावली। भाग २ शब्द २१ से)।—तथा—"बिन जिह्वा गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल। बिन कर बाजा बजै बैन, निरख देख जहां बिना नैन।—(शब्दावली भाग २। होरी १९।)—तथा "बिन कर ताल बजाय, चरन बिन नांचिये"। (श० होली ४।) तथा पद—"पडित होइ सु पद हि बिचारै मूरिष नांहि न बूझै। बिन हाथनि पांइनि बिन काननि, बिन लोचन जग सूझै। बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै। आछे रहै ठौर नहिं छाड़ै, दह दिसि ही फिरि आवै। बिन ही तालां ताल बजावै, बिन मदल पट ताला। बिनही सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत (है) गोपाला। बिना चौलन बिना कचुकी, बिनहि सग सग होई। दास कबीर औसर भल देप्या, जानैंगा जन कोई॥ (क० ग्र०। पद १५९।) —श्रीगुरु गोरषनाथजी का वचन-अदेप देपिबा बिचारिबा, अदृष्टि राषि बाचिया। पाताल की गगा ब्रह्मांड चढ़ाइबा तहां निर्मल बिमल जल पीया। (शब्दी गोरषनाथजी की। २।)—तथा—"अजर जरता, अकल कलता, जमराजीता, आप अजीता। उलटायी गगा, भीतरि अन्ना, भेद भुवता।—जिभ्या बिण गीता, वेद भ्रुणंता, सूता रमता, सांभलता"। १२। (गो० छद)।—तथा—"अनहद सबद म्रदगा बाजै, तह पगुला नांचण लागा (गो० पद ३८)॥ २॥

ह० लि० १ टीका —कुंजर=काम। कीरी=बुद्धि। सिंघ=ससै। स्याल=जीव।

मछरी=मनसा । अग्नि=ब्रह्म अग्नि । जल (मैं हुती)=काया । पगु=पूर्णातीत । मृतक=आपा अहंकार जीता । काल डरानो=जीवन मृतक सेती काल डरो ॥ ३ ॥

ह० लि० २ री टीका.—कुंजर-जो अतिबली मदोन्मत्त हस्ती की नाई काम । ताकों कीरी नाम अति सूक्ष्म जो विवेकवती बुद्धि सो गिलि बैठी नाम जीति बैठी । अहो ! आश्चर्य सबल कों निबल जीति बैठा, इहि विपर्यय । सिंघ नाम अति गर्नि बलवत जन्म-मरण भय को दाता जीव का ग्रासक जो ससो ताकों पहली कर्माधीन अतिकायर स्यालरूपी जो जीव हो सो, अब गुरुसंत शास्त्र उपदेश भजन ध्यान पुरुषार्थ करि ज्ञान को पाय सबल होय ता ससा कों पायो नाम जीत्यो तृप्त हुवो । मछरी नाम मनसा सो जल नाम जलबूंद की काया ताका विकारां में, बहुत बेहाल नाम दुखी होती, सो अब अग्नि नाम सर्वदुख कर्मन को दाहक ब्रह्माग्नि ज्ञानाग्नि, ताँको पय बहोत सुख आनन्द पायो । पगु नाम जो हलन-चलन गति है सो सर्व कामनाके आसरे है, सो कामना मिटि गई, तब निश्चल हुआ । 'अब पावा थिति पाकरी आँगन भया बदेश' । इति । सो असो जो मत मन वा । परबत—नाम अत्यन्त ऊंचा कठिन आपा अभिमान, ता ऊपरि चढ्या नाम जीत्या, मोक्ष मार्ग में प्रवर्त्तमान हुआ । मृतक नाम ज्यूं मृतक शरीर कूं कोई सुख दुख विकार व्यापै नहीं त्यूं जीवते कों नहीं व्यापै वाको नाम जीवत मृतक है । असो संत को देषि के डरानां नाम काल भी ता सत सों सदा डरता रहै है । 'काल सज्या दे जगत को' । इति । तहां 'काल प्रचण्ड को दण्ड मिट्यो' । इति । ता विपर्यय वाणी का पाठ कौंण जांण तहां कहै हैं 'जाकौ अनुभव होय सो जाणैं' । अनुभव नाम साक्ष्यांतकार ज्ञान । अथवा भलै प्रकार शब्द, शास्त्र, विवेक ज्ञान होय सो जाणैं ॥ ३ ॥

पीताम्बरी टीका:—अनत वासना करि युक्त मनरूप जो हस्ति (कुंजर), ताकूं सूक्ष्म विचारवाली अंतर्मुख बुद्धिरूप कीरी, ताकूं प्रथम अविवेक करि जीवभाव पाया हुआ आत्मरूप स्याल । खाय अघानो-कहिये गुरुकी कृपा सें अपने मे उक्त अध्यास का लयकरि के परमात्मानद कूं पाया—जिज्ञासावाली साभास बुद्धिरूप जो मछरी ताने सचित कर्मरूप तृण के दाहक ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि (ता) माहि सुख पायो । कहिये निरतिशयानद कूं पाया । सो प्रथम अज्ञानकाल में ससाररूपी जल में तदुन

वेहाल हुती। कहिये दुखी थी।—स्वर्गादिक लाकमें और इस लोक मे गमन औ आगमन की इच्छारूप चरणन तें रहित तीव्र वैराग्यवान् मुमुक्षुरूप जो पगु। सो प्रपंच तें पर चिदाकाशरूप पर्वत के ऊपर चढ्यो। कहिये स्थित भयो।—देहेन्द्रियादि सघातके अभिमान तें रहित दग्ध पटवत् देहाभिमान से रहित, औ अभ्यास की निवृत्तिवाले जीवन्मुक्तरूप जो मृतक। ताकू देखि के काल डरानों, कहिये भयभीत हुआ। यहा श्रुति प्रमाण है—"परमात्मा के भयकरि मृत्यु भी दौड़ता है"। औ ज्ञानी ब्रह्मरूप होने तें काल का भी काल है। यातें काल कू ज्ञानी का भय सभवै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई अनुभवी कहिये ज्ञानी होय सो (सु) यह अज्ञानीजनों की दृष्टिकरि विपरीत औ आश्चर्यकारक ऐसा उलटा ख्याल, कहिये विषय जानें॥ ३॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जी की साखी—"कोड़ी कुजर कौं गिलै स्याल सिह कौं पाड़। सुन्दर जल तें मच्छली दौरि अग्नि मैं जाइ"। ४। दादू जी का पद २१३—"कीड़ी ये हस्तीये विडार्यो तेन्हें वैठी पाये।—रज्जबजी का पद ५। आसावरी "कीड़ी कुज मार अरास्यो"—रज्जब पद ५ (आसावरी)—"मूसे मीनी खाई"—पद ७ (आसा०) मच्छी मध्य समुद समाना"।—"पगुल पर चढि धाये"।—हरिदासजी निरजनी की साखी—"अज्या सिघ सू झूमै" (१)—'मीन मकर कू खावण लागी" ।४।—"मृतक जमकू दई सासना" ।६।—(योग मूल सुखयोग)।—श्यामचरणदासजी "चीते को मारि मृग नखसिख खाय गयो, बाघनी को मारि बोक सिंह कौं ग्रसैगो। बिल्ली को मारि चूहे प्रेम को नगारो दियो, दादुर हु पाच सर्प मारि के बसैगो"।—(भक्तिसागरादि-पृ०२१२-१३)।—गुरु अर्जुनदेवजी—"गोको चारे सारदूल। कौड़ी का लख हूवा मूल। बकरी को हस्ती प्रतिपालै"—(राग रामकली ग्रन्थ साहिब में गुरु अर्जुनदेवजी का पद।)।—कबीरजी का पद—'चींटी के पग हस्ती बांधे, छेरी बीगै खायौ"। (बीजक, पद ५२ से)।—तथा—"नित उठ सिह स्यार सों जूझै। कविरक पद जन विरला बूझै"। (बी० पद ९५ से)।—तथा—'चींटी के मुख हस्ति समान"। बी० पद १०१ मे)।—श्रीकबीर शब्द—"पानी विच मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवै हाँसी"। (शब्दावली। २९।)।—तथा—"उलट

बुंद हि माहिं समुद्र समानौ राई माहि समानौ मेर।
पानी माहिं तुंबिका बूडी पाहन तिरत न लागी बेर॥
तीनि लोक में भया तमासा सूरय कियौ सकल अंधेर।
मूरष होइ सु अर्थ हि पावै सुंदर कहै शब्द में फेर॥ ४॥

स्यार सिंघ को न्याय"। (शब्दावली। ३१ में।)।—तथा पद—"एक अचंभा देखारे भाई। ठाडा सिंघ चरावै गाई। जलकी मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई"। (कबीर ग्रन्थावली। पद ११ से)।—तथा—"अचरज एक देखु समारा, सुनहां खेदै कुंजर असवारा। ऐसा एक अचंभा देखा, जबुक केहरि सू लेखा" (क० ग्र०। पद १४५ में)।—तथा—"उलटि स्याल स्यघ कू खाइ, तब यहु फलै सब बनराइ"। (क० ग्र०। पद ३४९ से)।—गोरषनाथजी—"डूंगरि मछाजलि सूसा"। (गो० पद ५ में)।—तथा—"बांझकेरा बालड़ा पगला तरवर चढियां। (गो० पद २० में)।—तथा—"गावड़ी का मुख में बाघुला ब्याइला।" (गो० पद २१ में)॥ ३॥

ह० लि० १ टीका—बूंद=आत्मा, दूजी काया समुद्र=परमात्मा दूजो ब्रह्म माया। राई=भक्ति। मेर=मन। पानी=प्रेम। तुंबिका=काया पाहन=हृदय तिरो=कोमल हुवो। सूरज=ज्ञान। अंधेर=पदार्थ का अभाव। मूरष=ससार कानी सू मूर्ख। अर्थ=ब्रह्म॥ ४॥

ह० लि० २ री टीका—बूंद नाम जलबूंद की काया। यद्वा बूंद तुल्य अति लघुजीवात्मा। तामें अति अपार विस्तीर्ण अति बड़ा समुद्र नाम ब्रह्म सो समाना। भजन ध्यान सौं एकता कों प्राप्त हुआ। राई नाम अति सूक्ष्म जो भगवत-भक्ति, तामें अतिविस्ताररूप सकल्पात्मक जो मन, मेर पर्वत सदृश, सो समायो, नाम सर्व सकल्प छोड़िकैं भक्ति में अखड लीन हुवो। पानी नामप्रेम तामें तुंबिका नाम कड़वी सर्व विकारयुक्त महाकटुकरूप काया तूंबड़ी, सो डुबो रोम रोम में महाप्रेम सू मगन होय शुद्ध हुई। पाहन तुल्य अति कठोर जो अभक्त हृदो सो भगवत-प्रेम कों पाय। तिरतां नाम कोमल शुद्ध होतां बार न लागी। जहां प्रेम हावैगो तहा ही कोमलता

होवगी । तीन लोक में एक वड़ो तमासो नाम आश्चर्य हुवो कहा हूवो । जो सूर्य रूप प्रकाशमान ज्ञान सोही अधारो कीयो, इह तमासो । अधारो कहा—ज्ञानरूप प्रकाश न विद्यमान संसार को अभाव कीयो । सूरप होय सो अर्थ नाम याके सिद्धांत को पावै । शब्द मे फेर नाम कल्याण मारिग में अति प्रवीन पुरुष जगत व्यवहार मैं अग्रवर्ती होवै योही फेर ॥ ४ ॥

पीताम्बरी टीका —"भ्रांतिकरि भिन्नभासमान जीवरूपी बूंदहि माहि ब्रह्मरूप समुद्र समानो । एकता कू प्राप्त भयो ।—मैं ब्रह्म हूं ऐसी सूक्ष्म वृत्तिरूप राई माहि शरीररूप शिखर सहित अज्ञानरूप मेरु (पर्वत) समानो कहिये मिथ्यापने के निश्चयरूप अथवा तीनकाल में अभाव निश्चयरूप बाधको विषय भयो ।—पानी संसार समुद्र के चौराशी लक्ष योनिजन्य दु खरूप पानीमाहि देहादि अभिमानवाली अज्ञानी की बुद्धिरूप तुंबिका जन्मादिक के प्रवाह में डूबी कहिये दब गई । शुद्धस्वरूप के अहंकाररूप जो पाहन कहिये पत्थर है ताका "मैं ब्रह्म हू" ऐसा आकार है, औ अज्ञानी कू अतिभारी लगै है, सो पूर्वोक्त जल के ऊपर सालिग्राम की न्याई तरत देर न लागी, कहिये जा क्षण में वह शुद्ध अहंकार उदय हुआ, तिसी क्षणमें जीवन्मुक्ति की प्राप्ति भई । "अहंब्रह्मास्मि" निश्चयरूप तत्वज्ञान ने सर्वजगत का अभाव किया । ताका तीनलोकमे तमासा भया कहिये आश्चर्य भया । यामें हेतुयुक्त रहस्य कहैं है'— जब ज्ञानरूप सूरज उदय होवै है, तब कारण सहित सर्वजगत (जो अज्ञानी की दृष्टि में प्रयत्न सत्यभासै है औ ज्ञानी की दृष्टि में असत्य भासै है, तिस) का अभाव होवै है । सोई सकल अंधेरा कियो ऐसे सिद्ध होवै है । यहां श्रीमद्भगवद्गीता का प्रमाण कहै हैं —"जो सर्वभूतन की रात्रिरूप ब्रह्म है तामें ज्ञानी जागै है । औ जिस जगत मे भूत (प्राणी) जागते हैं, सो ज्ञानी की रात्रि है" । ऐसे दूसरे अध्याय में कह्या है । ज्ञानी संसार ते विमुख होवै है, यातें तिस मार्ग मे सो मूरख कहिये है । ऐसा जो होय सु उक्त अर्थ कू पावै । सुन्दरदासजी कहै हैं कि ऐसै शब्द में फेर है, अर्थ में नही" ॥ ४ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—दोनों ही टीकाओंके अर्थ, अपने २ स्थानों में ठीक ही है । परतु आपस का तो कुछ अन्तर है ही । परन्तु साधारण रीति से अर्थ ऐसा भी

होता है:—ससाररूपी माया का समुद्र अतिसूक्ष्म आत्मारूपी बूंद में ज्ञान होते ही लोप हो गया। और 'राई के औल्हे पर्वत' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। उसके अनुसार गुरु वा शास्त्र के बताये हुए बारीक ज्ञान की सैन प्राप्त होने से भारी अज्ञान के पहाड़ (जो मेरु के समान अज्ञानी के हृदय बीच बसता वा जमा हुआ था) गायब हो गया। तूंबड़ी के छिलके मे हवा भरी रहने से तिरती है। इस देहमे अभिमान (अज्ञान) रूपी वायु भरी थी सो उपदेश के ठोंसे से छिद्र होकर निकली और ज्ञानरूपी जल (आत्मज्ञान) उसमे भर गया सो उस जलरूपी ज्ञान मे गरक हो गई डूब गई। जीवात्मा परमात्मा मे लीन हो गया। अज्ञान के बोझने बुद्धि भारी अर्थात् कैदी थी सो (रामनाम वा ज्ञान के प्रताप से) हलकी व कोमल होकर संसार समुद्र पर से तिर गई। और अर्थ समीचीन है। गीता में भी भगवान ने एक प्रकार का विपर्यय ही कहा है। "या निशा सर्वभूतानां "(इत्यादि) गीता २।६९। और इस श्लोक पर शांकरभाष्य वा अन्य भाष्य वा टीका देखें।—श्मशार सु० दा० जी की साखी—'समद समानो बुन्द मे, राई माहि मेर। सुन्दर यह उलटी भई, सूरय कियो अन्धेर"। ५।—रज्जब पद २ (आसावरी)—"पर्वत उड़ा पख थिर बैठा"।—हरिदासजी निरजनी की साखी—"समद बून्द में मागा"। २।—"मूरख पण्डित की गति पाई'। ३। (योग मूल सुख भोग)।—तथा—"तिल में मेर समाना"। (उक्त)।— तथा—"तन पांणी में भीजे नांहीं।—(उक्त)।—कबीरजी का पद—"पाहन फोरि गंग इक निकसी, चहुदिसि पानी पानी। तेहि पानी दुइ पर्वत बूडे दरिया लहर समानी"। (बीजक शब्द १) तथा—"जिन पवनै जहॅ पर्वत उड़े। जीव जन्तु सब बिरछा बुड़े॥ धरती उलटि अकाश हि जाई। चींटी के मुख हस्ति समाई॥ सूखे सरवर उठै हिलोल। बिनु जल चकवा करै किलोल॥ बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिन देखै का करै बखान॥ कहै कबीर जो पद को जान। सोई सन्त सदा परमान"॥ (बी० शब्द १०१)।—तथा—"अन्धे आंखी सूझै। (बी० शब्द १११)।—गोरखनाथजी का पद—"अष्टकुल पर्वत जल बिन तिरिया, अदबुद अचम्भा भारी"। (गो० पद ३ में)।—तथा—"तिल के नाकै त्रिभुवन साध्या, कीया भाव विधाता"। (गो० पद ४ में)।—तथा—"लाकड़ डूबै सिल तिरै, देखतां जुग जाइ। ऊंट प्रनालै

मछरी बुगला कौं गहि पायौ मूस पायौ कारौ साप।
सब पकरि बिलइया पाई ताके मुये गयौ सताप॥
बेटी अपनी मा गहि पाई बेटै अपनौ पायौ बाप।
सुंदर कहै सुनहु रे संतहु तिनकौं कोउ न लागौ पाप॥ ५॥

नहि गयो, सुमलो पाँलि न माइ"। (गो० पद ७ में)।—तथा—"चींटी का नेत्र मे गजेन्द्र समाइला"—(गो० पद २१ मे)।—तथाच—"मछरी का पांणी पुरै आग, उल्टी चरचा गोरष गावै"। (गो० पद ३९ से)॥ ४॥

ह० लि० १ टीका—मछली=मनसा। बगुला=दम्भ। मूसा=मन। कारो साप=काल। सुवा=प्राण। बिलाई=दुर्मति। बेटी=बुद्धि। मा=माया। बेटा=ज्ञान। बाप=ईरपा।

ह० लि० २ री टीका—मछरी नाम मनसा ताने बगला नाम ऊपर सौं ऊजरो पर मांहिसौं मैला ऐसो दम्भ। ताको गहि पायो नाम जीति जमासौं उठायो दूरि निवार्यो। मूसो नाम मन तानें सांप नाम सर्प सर्पको गरसन करि रह्यो तासौं साप सम पाया सकल जग। इति। सो संसाररूपी सांप मनरूपी मूसैं ने खायो। यही विपर्यय। मनरूपी वय। छानें छान अनेक मनोरथां फिरि आवै यों मूसो। सूवो नाम अति चपल प्राणरूपा ताने पकरि करि अति पुरुषार्थ करिकैं बिलाई नाम ईरषा खाई दूरि करी ता बिलाई का नाश हूवां सर्व सन्ताप गया, परम आनन्द हुआ।—बेटी नाम निरवासिनी बुद्धि तानैं अपनी मा नाम माया ममता वा जासो बुद्धि उपजी वाही माया, मा, वाही कौं खाई, नाम वाही माया ममता कौं दूरि करी। बेटो नाम ज्ञान जा सरीर में उपज्यो वाही वपु, सरीर कौं खायो, फेरि उत्पत्ति होय नहीं, जन्म मरण रहित कीयो। कोउ न लागौ पाप—जो माय बाप खायां वा मार्यां जो पाप होइ सो इहां नहीं है। इह विपर्यय शब्द को विचार कीयां अत्यन्त आनन्द पुन्य सुख का दाता है॥ ५॥

पीताम्बरी टीका—निष्काम-उपासनायुक्त बुद्धिरूप मछरी ने अपने से विरोधी चित्त के विक्षेपनामक दोषरूप बगले कू अभ्यास के बलतें गहि खायो कहिये नाश कियो। पापरूप वस्त्रन कू कतरनेवाला शुद्ध मनरूप जो मूसा है, तिसनें अपने से

विरोधी चित्त के मल नामक दोषरूप कारो साप खायो कहिये नाश कियो। सुवे—जाकी विवेकरूप चञ्चु है। शम औ दमरूप दो पाद हैं। उपरति औ तितिक्षारूप दो पक्ष हैं। श्रद्धा औ समाधानरूप दो नेत्र हैं। वैराग्यरूप पेट है। औ मुमुक्षतारूप पुच्छ है। ऐसे अन्तःकरणरूप सूवे ने इस लोक औ परलोक की इच्छारूप बिलारी पकरि खाई। कहिये निवृत्ति करी। ताके मुवे सन्ताप गयो कहिये तिस इच्छा के नाश हुवे, ज्ञान के प्रतिबन्धक ससार के क्लेश की निवृत्ति भई। बेटी—अन्तःकरण की वृत्तिरूप परिणाम कू प्राप्त भई जो अविद्या, तिस करि ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होवै है। ऐसे ब्रह्मविद्या की माता अविद्या, औ पुत्री विद्या सिद्ध होवै है। तिस विद्या तें अविद्या का नाश होवै है, ऐसे बेटी अपनी मा गहि खाई। बेटे—ज्ञान हुवे पीछे इच्छानुसार निर्विकल्प अभ्यास करि मन का निग्रह होवै है। तदनन्तर मन की अनत वासना का नाश होवै है। ऐसे वासनाक्षयरूप बेटे, मनरूप अपनो बाप खायो। सुन्दरदासजी कहैं हैं—हो सन्तो सुनो! मछरी नें बगला कू खायो, मूसे ने कारो साप खायो, सूवे ने बिलारी खाई, बेटी ने अपनी माता खाई, औ बेटे ने अपनो बाप खायो। तातें तिनक कोउ पाप न लाग्यो ॥ ५ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः— सु० दा० जीकी साखी—"मछली बुगला कौं ग्रस्यौ, देषहु याके भाग। सुन्दर यह उल्टी भई, मूसै षायौ काग"। ६।—रज्जब पद ५ (आसावरी)—"मूसै मीनी खाई"।—"मूसै षायौ कारो साप"।- हरिदासजी निरञ्जनी—"मूसै दौड़ि बिलाई पकड़ी" (२)।—"चिड़े पिचाणों खाया" (२)।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—"दीसत मास न खाय बिलाई। महा कसाब छुरी सट-पाई"।—(ग्रन्थ साहिब—पांचवां महाला)।—कबीरजी का पद—"उदधि माहि ते निकसी छाछरि चौड़े गेह करायो। मेंढुक सर्प रहै यक संगै, बिल्ली श्वान बियाही।... मच्छ अहेरा खेलै। (बीजक पद ५२ से।)।—तथा—"गैया तो नाहर को खायो, हरिना खायो चीता। कागा लघरे फांदिकै, बटेर ने बाज जीता॥ मूसा तो मजारे खायो, स्यारै खायो श्वाना। आदि को उपदेश जु जानै तासू वैसे बाना॥ एकै तो दादुर सी खायो, पाचौं जे भुवगा॥ कहैं कबीर पुकारिके, हैं दोऊ यकसगा"। (बी० पद १११)।—तथापद—"ऐसा अद्भुत मेरे गुर कथ्या, मैं रह्या उभेषै। मूसा

देव माहि तें देवल प्रगट्यौ देवल महिं तें प्रगट्यौ देव।
शिष्य गुरुहि उपदेशन लागौ राजा करै रंक की सेव॥
वध्या पुत्र पंगु इकु जायौ ताकौ घर पोवन की टेव।
सुदर कहै सु पण्डित ज्ञाता जो कोउ याकौ जानै भेव॥ ६॥

हस्ती सौं लटै, कोइ विरला पेपै॥ मूसा पैठा वांवि में, लारै सापणि धाई। उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई॥ चींटी परवत ऊपण्यां, लै राष्यौ चौड़ै। मुरगा मिनकी सू लड़ै, मल्ल पांणीं दौड़ै॥ सुरही चूपै वच्छ तलि, वच्छा दूध उतारै। ऐसा नवल गुणीं भया, सारदूल ही मारै॥ भील लुक्या वन वीझ मैं, सस्सा सर मारै। कहै कवीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि विचारै" ॥—(क० ग्र०। पद १६१)।—गोरखनाथजी का पद—"गोरष वालुडा सतगुर वाणींजी। जीवता न परण्यां तेन्हैं आगी न पांणीं जी॥ कीली दूझै भैंस विरौले, सासूड़ी पालणैं वहूड़ी हिंडौलै। कोइल मारी अंवलो वास्यौ, गगन मछलड़ी वुगलै ग्रास्यौ। करसण याकौ रपवालौ पाधौ, चरिगया ग्रघला पारधी वांधौ। सींगी नादै जोगी पूरा, गोरप परण्यां जहा चंद न सूराजी" ॥ (गो० पद ३७)।—तथा—"मूसा के सवद विलाई नासै, कउवा की डाली पीपल वासै"। (गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका—देव=परमेश्वर। देवल=शरीर। देवल=शरीर पुन। देव=परमेश्वर पुनः। शिष्य=चित्त। गुरु=मन। राजा=रजोगुण वा मन। रंक=जीव। वध्या=आत्मा वा वुद्धि। पुत्र=ज्ञान गुणातीत। घर=शरीर॥ ६॥

ह० लि० २ री टीका.—देव जो परमेश्वरजी सर्व को कारणरूप, तामैंसौं स्वइच्छा ससार उत्पत्ति द्वारा, देवल शरीर प्रगट्यो उत्पन्न हुवो। अव वा देवल ही में, गुरु शास्त्र सत उपदेश विवेक सौं, देव परमेश्वरजी की प्राप्ति हुई। शिष्य चित्त। सो शिष्य क्यू? जो पहली मनरूपी गुरु के आधीन आज्ञावर्ती हो, सो अव अपना विवेक वलकौं पाय गुरु रूप होय अति वल्वंत ताही मनकौं शुद्ध शिक्षादितें शिष्य वनाय आपकै वसि में लावण लाग्यो। राजा नाम रजोगुण वा मन, सो अज्ञान अवस्था में वलवत होय कै आपका स्वरूप ज्ञानरूपी धन करि हीन रंक जो जीव ताकौं आपका हुक्म सौं कर्मां मैं प्रेरकै चलावै हो। अव वोही जीव गुरु उपदेश विवेक वल कौं

प्राप्त हुयो, तब वोही राजागुण मनजीव की सेवा करनें लागो। वध्या नाम बुद्धि। वध्या क्यू ? जो सर्वगुण विकार वृत्ति उत्पत्ति-रहित महानिर्मल शुद्ध, ताके एक पुत्र नाम ज्ञान पुत्र हूवो। सो पगुल क्यू ? सर्वगुण रहित एक रस। घर-जा शरीर रूपी घर म उपज्यो ता घरको पोवण की टेव, अर्थात् ज्ञान उपज्यो तब जन्म-मरण रहित हुयो। सोई पडित ज्ञानी है जो याका अर्थ का भेव नाम सिद्धांत कू जाणैं नाम निश्चै निरण कर ॥ ६ ॥

पीताम्बरी टीका.—सर्व का अधिष्ठान औ कूटस्थ आत्मा रूप (जो) देव (ता) मांहि तें देहरूप देवल प्रगट्यो, कहिये साक्षी विषे, स्वप्न की न्याई, भ्रांति से प्रतीत भयो। तिस देहरूप देवल माहि सत् शास्त्र औ सद्गुरु के बोध (कराने) ते (पूर्व अज्ञान काल में जो प्रगट नहीं था सो) सो आत्मा रूप देव प्रगट्यो, कहिये स्व-स्वरूपकरि अपरोक्ष (प्रगट) भयो। शिष्य—पूर्व अविवेक कालमें प्रबल मनरूप गुरु की शिक्षा कू माननेवाला सभास अत करण सहित विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है। सो जीवरूप शिष्य विवेक काल मे ब्रह्मविद्या कू पायके, तिस मनरूप गुरुहि उपदेशन लाग्यो, कहिये शिक्षा करिके सूधे मार्ग में प्रवृत्ति करावने लाग्यो। पूर्व अज्ञानकाल में अपने अधिष्ठान कूटस्थकू आप दवाय के, अवस्था सहित तीन देहरुप नगरीन का अभिमानरूप राज्य के करनेवाला जो अहकाररूप राजा। सो जीवभावरूप कगालता कू पाया हुवा आत्मारूप रक की—ज्ञानकाल मे ब्रह्मभाव कू प्राप्त हुवा जो आत्मा, ताके वश हुआ, 'म देहादिक हू' इस आकार कू छोडिके 'मैं ब्रह्म हू' इस आकाररूप धारणा की सेव करे हैं। राजसी औ तामसी वृत्ति रूप आसुरी सपदा से रहित सात्विकी बुद्धिरूप वध्या (माता) ने ज्ञानरूप इक पगु पुत्र जायो कहिये वहिर्मुखवृत्ति रूप पगनतें रहित पुत्र उत्पन्न कियो। सो कैसो है ? जाकी उक्त बुद्धिरूपी माता है, शुद्ध अहंकाररूप पिता है, रागादि वृत्तिरूप भगिनिआ हैं, कर्मरूप भाई है, जगतरूप दादा है, औ अज्ञानरूप परदादा है। ताकू इस सघात (शरीर) रूप घर खोवन की टेव पड़ी है। अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे और कुछ रहै नहीं। सुन्दरदासजी कहते हैं कि जो कोई याको भेव कहिये अभिप्राय जानै। सो पुरुष पंडित ज्ञाता कहिये श्रोत्रिय औ ब्रह्मनिष्ट है ॥ ६ ॥

कमल माहि तें पानी उपज्यौ पानी महिं ते उपज्यौ सूर ।
सूर माहि सीतलता उपजी सीतलना में सुख भरपूर ॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहूं सदा एकरस निकट न दूर ।
सुन्दर कहै सत्य यह यौ हीं या मैं रतो न जानहु कूर ॥ ७ ॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जीकी साखी—"गुरु शिष के पायनि पर्यौ, राजा हूवो रक । पुत्र बाम्फ कै पगुलै, सुदर मारी ल्क" । ८ ।—रज्जब पद ४ (आसावरी)—"मूरति माहि देहुरा आया" ।—कबीरजी का पद—"देग विन देहुरा, पत्र विन पूजा, विन पखां भवर विलविया" ।—"बाम्फ का पूत बाप विना जाया, विन पांऊ तरवरि चढिया" । (क० ग्र० । पद १५८)।— गोरषनाथजी का पद—"बाम्फैं वेटो जनमियो, नैंणैं पुरषन दीठी" । (गो० पद ५) ।—तथा "बारा वरसै बाम्फि व्याई । हाथ पग टूटा" । (गो० पद २१ में) ।—

ह० लि० १ टीका —कमल=हृदय । पानी=प्रेम । सूर=ज्ञान (प्रेम से ज्ञान उपजा) । सूर=ज्ञान से ब्रह्मानन्द शांति उपजी ॥ ७ ॥

ह० लि० २ री टीका —कमल नाम हृदा कमल तामें ऊजल सस्कार करि पाणी नाम प्रेम उपज्यौ । पाणी नाम प्रेम सहित भक्ति तामें सूर नाम सूररूप सर्व अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाश हुवो । अर्थात्, ज्ञान उत्पत्ति का साधक प्रेमा भक्ति ही मुख्य है । अवर गौण है । वा सूररूप ज्ञान प्रकाश मैं सीतलता नाम सर्वताप-रहित ब्रह्मानन्द-स्वरूप की प्राप्ति से शांति उपजी । ता शांति रूपी सीतलता में बाह्यभ्यतर निर्विकार भरपूर नाम परिपूर्ण सुख रह्यो है । वा ब्रह्मानन्द प्राप्ति के सुख को नाश किसी काल में भी न होवै । वो सुख कैसाक है, जो सदाकाल एकरस परिणाम रहित अविनाशी है । पुन कैसाक है नेड़ान दूर सर्वत्र वोही है । या में वेद-पुराण श्रुति स्मृति सत साधु सर्व प्रमाण हैं किचित्मात्र भी कूर नाम मिथ्या मति मानौं । तथा "अक्षयानन्दम्' श्रुते ॥ ७ ॥

पीताम्बरी टीका —च्यारि साधनरूप पांखुरी सहित अतःकरणरूप कमल माहिं ते तत्त्व पद के अर्थ के शोधनरूप शुद्धतावाला, श्रवणरूप वेगवाला, मनरूप लहरी-

हस चढ्यौ ब्रह्मा के ऊपर गरुड चढ्यौ पुनि हरि की पीठि।
बैल चढ्यौ है शिव के ऊपर सौ हम देष्यौ अपनी दीठि॥
देव चढ्यौ पाती के ऊपर जरष चढ्यौ डाइनि परि नीठि।
सुन्दर एक अचम्भा हूवा पानी माहैं जरै अङ्गीठि॥ ८॥

वाला, औ असभावना सहित, विपरीत भावनावाला, मल का नाश करनेवाला निदिध्यासनरूप पानी उपज्यो, कहिये उत्पन्न भया। तिस निदिध्यासनरूप पानी माहि तें स्व-स्वरूप के अनुभवरूप सूर उपज्यौ, कहिये सूर्य उत्पन्न भयो। तिस ज्ञानरूप सूर (सूर्य) माहि तें कार्य सहित अविद्या की निवृत्तिरूप शीतलता उपजी। औ शीतलता में सुख भरपूर, कहिये तिसतें परिपूर्ण ब्रह्मानद सुख की प्राप्त होवे है। तो ब्रह्मरूप नित्य औ निरतिशय सुख को क्षय कबहू न होइ, कहिये तिस सुख का किसी काल मे नाश नहीं होवे। काहेतें, यह ब्रह्मसुख सदा एकरस है। औ सर्वकाल अपना आप है। तातें निकट कहिये नजदीक, औ न दूर कहिये देशकाल का अन्तरायवला नहीं है। सुदरदासजी कहते हैं कि यह वार्ता यूंही कहिये उक्त रीति से सत्य है। या मैं रती कहिये रच मात्र भी कूर कहिये असत्य न जानहु॥ ७॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु॰ दा॰ जी की साखी—"कमल माहि पाणी भयौ, पांनी माह भान। भांन माहि शशि मिल गयौ, सुदर उलटौ ज्ञान"। ९।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—"सूखे काठ हरे चलूल। ऊचे थल फूले कमल अनूप"।—(ग्रथ-साहब ५ वां महाला—राग रामकली।)।—

ह॰ लि॰ १ टीका —हस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरड=ज्ञान। हरि=सतोगुण। बैल=शरीर। शिव=तमोगुण। देव=जीव। पाती=प्रकृति। जरप=मन। डाइन=मनसा। पानी=काया। अगीठ=ब्रह्मअग्नि॥ ८॥

ह॰ लि॰ २ टीका —हस नाम जीव, सो ब्रह्मा नाम ब्रह्मारूप रजोगुण, ता परि चढ्यौ नाम गुरु सत शास्त्र विवेक सौं वाकौं जीत्यो। गरुड नाम अति वेग चलत सर्व दुःख कर्म जयकारी ज्ञान, सो हरि नाम जो विष्णु सम्बन्धी सतोगुण ताकों जीत्यो। बैल जो अज्ञता जडतारूप वपु नाम शरीर तामें पुरुषार्थ करिके शिवरूपी

जो तमोगुण ता परि चढ्यो नाम जीत्यो । सो इह विपर्ययरूप व्यवहार सिद्धांत हम देप्यो विवेक दृष्टि सों । देव नाम सदा देदीप्यमान चेतन जीव,सो पाती नाम अंत करण की प्रकृति ता परि चढ्यौ नाम सर्व प्रकृति जीती । जरष पर डायन चढै यह रीति है, परन्तु इहां विपरीति है—जरष थो सकल्पात्मकरूप मन सो टायन नाम अत्यन्त पदार्थो की लालसा सकल्पों की कारणरूप मनसा ताकू जीती । इन सर्व साधना को फल सिद्धात कहे है । सुन्दरदासजी कहै हैं एक बड़ा अचभा देप्या । सो कहा ? पानी नाम जल वूद की काया तामैं अंगीठ नाम सर्वदु ख कर्म विकार वासना को दाहक ब्रह्मानन्द स्वरूप प्राप्तिरूप साक्षात् ज्ञानाग्नि प्रकाश हूवो अर्थात् ब्रह्मानन्द स्वरूप प्राप्त हूवा ॥ ८ ॥

पीताम्बरी टीकाः—सात्विकी वृत्ति सहित मनरूप हस सो रजोगुणरूप ब्रह्मा के ऊपर चढ्यो । कहिये ताकू जीत लियो । पुनि निर्गुण ब्रह्म के अभ्यास युक्त मनरूप गरुड सो सतोगुणरूप हरि (विष्णु) की पीठ पर चढ्यो कहिये तिसकू जीति लियो अर्थात् निर्गुण स्थिति कू प्राप्त भयो । रजोगुण की वृत्ति सहित मनरूप वैल तमोगुणरूप शिव पर चढ्यो है कहिये ताकू जीत लियो है । सो हमने अपनी दीठ, दृष्टि करि, देप्यो । सो ऐसे—रजोगुण की वृद्धि तें तमोगुण का पराजय होवै है । इत्यादिक अभ्यास काल में हमने अनुभव किया है । स्वप्रकाश आत्मचैतन्यरूप देव, देहादिक अनात्म संघातरूप पाती—तुलसी पत्रादिक (सेवा की सौंज) के ऊपर चढ्यो । याका अर्थ यह है—जैसे पूजनकाल में पत्रादि सामग्री तें देव की मूर्त्ति का आच्छादन होइ जावें है तातैं सो देखने में नहीं आवै है, पूजन समाप्ति पीछे जव पत्रादि सामग्री कों उतारि के नीचे पृथिवी पर डाल देवैं तव देव स्पष्ट देखिये हैं । तैसे अज्ञानकाल में देहादिक अनात्म सघात के अभिमान तें आत्मा कू आवरण होवै हैं, तातैं सो अप्रसिद्ध रहै है । औ ज्ञानकाल में जव आवरण निवृत्त होई जावै है तव स्वप्रकाश आत्मा का स्व-स्वरूप करि आविर्भाव होवै है । विवेकरूप मनरूप जरष (एक जात का जगली जानवर होवै है जाकी पीठ पर चढि के डाकिनी सवारी करै है सो) विषयाकार वृत्ति-रूप डायनि कहिये डाकिनी के पर नीठ कहिये अच्छी तरह सें चढ्यो, कहिये ज्ञान की सहायता सें प्रवल होय के वृत्ति कू जीत लीनी । सुन्दरदासजी कहै है कि एक अचभा,

कपरा धोबी कौं गहि धोवै माटी वपुरी घरै कुम्हार।
सुई विचारी दरजिहि सींवै सोना तावै पकरि सुनार॥
लकरी वढई कौं गहि छीलै पाल सु वैठी धवै लुहार।
सुन्दरदास कहै सो ज्ञानी जो कोउ याकौ करै विचार॥ ६॥

आश्चर्य, क्या। सो कहे हैं—दैवी सम्पति के वलतें शीतल अंत करणरूप पाना माहि अगीठ, कहिये उस लोक के औ परलोक के शुभाशुभ कर्म के फल की दाहक औ ब्रह्मानद की प्रकाशक, ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि जरै है कहिये होवै है॥ ८॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जी की साखी—"ब्रह्मा ऊपरि हस चढि, कियौ गगन दिसि गौन। गरुड़ चढ्यौ हरि पीठि पर, सुदर मानैं कौंन। १५। वृषभ भयौ असवार पुनि, सुदर सिव पर आइ। डाइण ऊपरि जरप चढि, भली दई दौराइ" ।१६। हरिदासजी निरजनी की साखी—"पाणी माहीं अगनी प्रकटी"। ४। (योग मूल सु० योग)।—श्यामचरणदासजी का पद—"वैल चढ्यौ शकर के ऊपर, हस ब्रह्म के शीश। सिंह चढ्यौ देवी के ऊपर, गुरु ही की वखशीश। नाव चढी केवट के ऊपर, सुत की गोदी माय"। शब्द ७। पृ० ४१८। (भक्तिसागरादि)।—तथा—"जिहि घर अग्नि जलै जल मांही" (रत्न पृ० ३४६)।—कवीरजी के पद १११ वीजक मे—"पानी मे पावक जरै"।—गोरपनाथजी—"उलटि गंगा चलै, धरणि अवर भरै, नीर मे पैठिके अगनि जार। (गो० ज्ञान चौंतीसा।)।—तथा—"पानी में दौं लागी" (गो० पद ५ मे)।—तथा—"कांमणीं जलै अगीठी तापै, वीचि वैसदर थरथर कापै"—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका:—कपरा=काया। धोवी=मन। मांटी=मनसा। कुम्हार=प्राण। सुई=सुरत। दरजी=जीव। सींवै=जीव—ब्रह्म की एकता करै। सोना=सुमरन। सुनार=मन। लकरी=लै (लय)। वढ़ई=कर्म। पाल=काया वा स्वास। लुहार=जीव वा मन॥ ९॥

ह० लि० २ टीका—कपरा नाम काया तासौं वण्या जो भजन सतसग शुभ-कर्म तिना सौं धोवी जो मन सो निर्मल हूवा। मन धोवी क्यू करि? 'मन निर्मल तन

निर्मल भाई' मांटी जो मनन अरु प्राणायामरूप अभ्यास सो कुम्हार सो वा मन को घरै है। क्यों ? जो यो प्राण है सो सर्व वृतियां को उत्पादक है। क्रियाशक्ति द्वारा करि प्राणादि करि भजन क्रिया की सिद्धि होवै है। सुईरूप अतितीक्षण जो सुरति सो दरजी जो जीव ताकी शक्ति सों सुईरूपी सुरति अपने कार्य मे प्रवर्त्त होवै है। ता अपना प्रेरक जीव ताकू सीवै नाम ब्रह्म में एकता करै है। अथवा भ्रांतिअलंकार भी है। सुई सुरति ताकू जीव दरजी सीवै ब्रह्म मे लगावै। इत्यर्थ.। सोना नाम अति निर्मल निर्विकार स्मरन सो सुनाररूप जो मन जाकै आसिरै स्मरन वैन सो सोना। वा मन सुनार कू तावै नाम शुद्ध करै। 'मन मजन हरि भजन है प्रगट प्रेम की सीर'। लकरी जो लय ताको भगवत के विषै लगाइले, सो वढई नाम कर्म ताकू छोलै नाम दूरि करै कर्म वढई करि। जो वढई नाम पाती सो अनेक घाट घरै, कर्म भी चौरासी का देहां का अनेक घाट घडै, तासौं वढई। पाल नाम काया वा स्वास सो लुहार नाम जीव वा मन ताकू भ्रमावै है, प्राण वायु कै आसरै मन की चचलता होवै है, प्राण थिर कर्यां मन थिर होवै है। 'स्वास मनोरथ वचन करि मन की जीवनि तीन'। याको विचार नाम याका अर्थ को जो सिद्धान्त ताकू विचारि करि धारै, वाको नाम ज्ञानी है ॥ ९ ॥

पीताम्बरी टीका - चिदाभास सहित मनरूप कपरा (वस्त्र) जो, पूर्व अज्ञान दशा मे पुन्यरूप धोबी से पापरूप मल दूर करने के वास्तै, धोया जाता था। सो अव ज्ञानदशा मे आप धोबी कू गहि (पकरि के) धोवै कहिये "मैं अकर्ता हू औ असग हू" ऐसे शुद्ध निश्चय तें पापपुण्य ते निर्लेप रहै है। आत्मा के सन्मुख भई अतरवृति वुद्धिरूप माटी। जो पूर्व अविद्याकाल में वाह्यवृत्तिमय मनरूप कुम्हार के वस भई। तिसकरि अनात्माकार होने रूप आप घड़ाती थी। सो अव विद्या दशा में वपरी कहिये स्वरूणकार होने रूप कार्य में आस होय के मनरूप कूभारन अनात्म पदार्थ सें विमुख करि घडै, कहिये अपने में अंतर्भाव करै है। वुद्धि में जो सूक्ष्म विचार होवै है सो वुद्धि के वृत्तिरूप परिणाम कू पावै है सो वृत्ति भी सूक्ष्म होवै है, यातैं ताकू सूई कही है। सो विचारी कहिये गरीवरी है। काहेतें, सो जिस ओर इस कू ले जावै उस ओर यह चली जावै है। जैसे अज्ञानकाल में जव देहाभिमान होवै है औ

तिसकरि विषयन में वासना होवै है तब मानों तिसी धागे के बलकरि "मैं देह हू औ में कर्त्ता-भोक्ता ससारी जीव हू" इसी तरफ चली आवै है। तहा चलानेवाला चिदाभास सहित अहकार है सोई मानो दर्जी है तिस के वश होय रहै है। सोही ज्ञानकाल में जब स्वरूप का साक्षात्कार होवै है, तब तिसके बलतें तिस चिदाभास सहित अहकार (जीव) रूप दर्जीहि ब्रह्म सें मिलाय देवै है, सोई मानों सीवै है। बुद्धि उपहित साक्षी जो आत्मा है सो स्वभाव तें ही अति शुद्ध है तातें सो ही मानों सोना है। सो पूर्व संसार दशा मे अज्ञान के वश तें चिदाभ सरूप सुनार के अधीन था। तिस के कर्तृत्व औ भोक्तृत्वादिक धर्म अपने मे आरोप कर लेता था, त्रिविधताप-युक्त ससाररूप अग्नि में तापता था। औ अनेक दुखन कू सहता था। सो ज्ञानरूप अग्नि मे पाप-पुण्य सुख-दुख औ गमन-आगमनरूप मल कू जलावने के वास्तै चिदाभासरूप सुनार कू पकरि कहिये अपने मे कल्पित जानि के तावै कहिये शुद्धता के निश्चय ते अधिष्ठानरूप आप मे समावेश करै है॥= भागत्यागलक्षणा करि लक्ष्य का ज्ञान होवै है। सो लक्ष्य शुद्ध चेतन कू कहै हैं, तिसका विवेचन करनेवाली जो बुद्धि है सोई मानो लकरी है। औ जो मायाकरि सर्व प्राणीन कू अतःकरण मे प्रेरणा करै है, औ तिन के कर्मानुसार फल भोग देवै है। ऐसा जो माया उपाधिवाला ब्रह्मचेतन है (ईश्वर) सोई मानो बढ़ई (सुतार—खाती) है। ताकू गहि कहिये कूटस्थ आत्मा मे अभिन्न निश्चय करि कै छीलै, कहिये मिथ्या माया उपाधि तें रहित करै है। जो सर्व पदार्थ मे ब्रह्म भाव करि निरंतर स्मरण होवै है। ता (निरोध) कूं राजयोग मे प्राणायाम कहै हैं। तिस प्राणायाम-युक्त जो बुद्धि है सोई मानो खाल कहिये धमनी है। औ उक्त प्राणायाम के अभ्यास में प्रवृत्ति करावनेवाला जो मन है सोही मानो लुहार है, तिस लुहार कू सु कहिये वे खाल बैठी कहिये स्थित भई हुई धमै कहिये वश करै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई या (विपर्यय कथन के सिद्धातरूप अर्थ कू) को यथार्थ विचार करै कहिये विचार द्वारा निश्चय करै सो पुरुष ज्ञानी है॥ ९॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सु० दा० जीकी साखी—"धोबी कौं उज्जल कियौ, कपरै बपुरै धोइ। दरजी कौं सींयौ सुई, सुन्दर अचिरज होइ। १०। सोनै पकरि

जा घर माहिं बहुत सुख पायौ ता घर मांहिं बसै अब कौन।
लागी सबै मिठाई खारी मीठौ लग्यौ एक वह लौन॥
पर्वत उडै रुई थिर बैठी ऐसौ कोउक बाज्यौ पौंन।
सुन्दर कहै न मानै कोई तातें पकरि बैठि मुख मौंन॥ १०॥

सुनार कौं, काढ्यौ ताइ कलक। लकरी छील्यौ वाढई, सुन्दर निकसी वक"। ११। कबीरजी का शब्द—"सांई दरजी का कोई मरम न पावा। पानी की सुई पवन का धागा। अष्टमास नव सीवत लागा। (शब्दावली। ९।) गोरषनाथजी का पद—"कायागढ भीतरि धोवणिरांणीं। कपड़ा धोवै अवधू बिन सिल पाणीं"। (गो० पद ३४)।

ह० लि० १ टीका—घर=काया। सुख=विषय सुख। मिठाई=विषय स्वाद। लौन=नांम। परबत=पाप तथा आपो अहकार। रुई=आतमा। अथवा गरीबी। पौन=ज्ञान॥ १०॥

ह० लि० २ टीका—जा कायारूपी घर में अज्ञान अवस्था में बहुत सुख मान्यों हो। अब ज्ञान अवस्था प्राप्ति मैं कौंन वास करै, कौंन सुख मानैं, विवेकी कोई भी सुख नहीं मानैं। अज्ञान अवस्था मैं जो अति मीठा प्रिय विषै विकार हा, सो अब ज्ञान अवस्था में सर्व विरस होइ गया। आदि मैं आरभकाल में लवनरूप भगवत्-भजन सोई एक मीठा लागा—'खाती विरियां खारा लागै मीठा लागै मोड़ा ना'। ऐसो कोई आश्चर्य आनन्दस्वरूप ज्ञान आंधीरूप पवन बाज्यो, अतःकरण में उत्पन्न हूवो, जासों पाप आपो अहकाररूप पर्वत बड़ा हा सो उड़ि गया, रुई नाम नम्रता सो थिर बैठी नाम थिर हुई। सो या अति आनन्द विवेकरूपी वार्त्ता को कौंण मानै, कौंण को कहिये, किसी को भी कहण ज्यू है नहीं (यातें) मौन ही बड़ी बात है॥१०॥

पीताम्बरी टीका—अज्ञानकाल में इस शरीर विषे तादात्म्य अध्यास होवे है यातैं यह शरीर सुखरूप भासै है, तातैं सोही मानों ग्रह (घर) है। ऐसे जा घर (शरीर) मांहि ससार-सम्बन्धी बहुत-विषय-सुख पायो। ता घर मांहिं विवेक-युक्त ज्ञान हुवे पीछे अब कौन बसै, कहिये अब तादात्म्य अध्यास कौन करै। भाव यह

है—तौलौं तादात्म्य अध्यास है तौलौं शरीर में सुख भासै है, औ ज्ञान हुवे पीछे भासै नहीं।—इस लोक-सम्बन्धी माला-चदन-स्त्री आदिक सुख हैं, औ परलोक-सम्बन्धी जो अप्सरा अमृतपानादिक सुख हैं। तिस सुख के भोगरूप (ही) मानों मिठाई है। सो भोगरूप मिठाई विवेक औ वैराग्य करिके खारी लागी, कहिये विरस प्रतीत भई। जब जिज्ञासा होवै नहीं तब ब्रह्मस्वरूप अप्रिय भासै है। औ भाव विना रसवाला पदार्थ भी विरस प्रतीत होवै है। यातैं यद्यपि ब्रह्मस्वरूप मधुर-रस-वाला सर्व कू प्रिय है तथापि अज्ञानकाल में क्षार-रस-वाला कहिये अप्रिय भासै है, सोई मानों लौन है। सो ज्ञानकाल मे वह एक ही ब्रह्मरूप लौन मीठो लग्यो, कहिये परमानन्दरूप प्रतीत भयो। अज्ञानकाल मे शरीर के विषे जो अहकार होवै है औ तिसकरि वहिर्मुख मन होवै है सो देह अहकार अथवा वहिर्मुख मनही मानो पर्वत है। सो जिसकरि उडै कहिये निवृत्त होवै है। औ अज्ञानकाल में अभिमानते रहित जो वृत्ति होवै है, अथवा जो अतर्मुख वृत्ति होवै है सो वृत्ति ही मानों रुई है। सो जिस करि थिर वैठी, ऐसौ कौतक पौन कहिये आत्मज्ञानरूप पवन वाज्यो कहिये चलने लग्यो—सुदरदासजी कहै हैं कि यह आश्चर्य करनेवाली वात कोई अज्ञानी-जन मानै नहीं, तातैं मौन पकरि वैठिये कहिये अनधिकारी के पास यह गोप्य अनुभव खोलिये नहीं॥ १०॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सु० दा० जीकी साखी—"जाघर मैं वहु सुख किये, ता घर लागी आगि। सुदर मीठौ नां रुचै, लौन लियौ, सव त्यागि। १२। सुदर पर्वत उडि गये, रुई रही थिर होइ। वावू वज्यौ इहिं भांति कौ, क्यूंकरि मानै कोइ" ।१३। तथा—"मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ, करवो लग्यौ मीठ। सुदर उलटी वात यह, अपने नैननि दीठ"। ४६।—कवीरजी का पद—"घर जाजरौ वलींडौ टेढौ, औलौती डराई। मगरी तजौं प्रीति पाषे सू, डांडी देहु लगाई।" (कवीर ग्रंथावली में पद २२)।—तथा—"मीठी कहा जाहि जो भावै"—(क० ग्र० पद १४७ में)।—गोरषनाथजी "सतो सिला अलौंनी कहिये, जिनि चीन्हीं तिनि मीठी"। (गो० श० । १९६ से) तथा—"लूण कहै अलूणा वावा, घृत कहै मैं लूपा"। गो० पद ३८)।—

रजनी माहिं दिवस हम देष्यौ दिवस माहिं हम देषी राति।
तेल भर्यौ संपूरन तामें दीपक जरै जरै नहिं वाति॥
पुरुष एक पानी महिं प्रगट्यौ ता निगुरा की कैसी जाति।
सुन्दर सोई लहै अर्थ कौं जो नित करै पराई ताति॥ ११॥

ह० लि० १ टीका—रजनी=निर्वृत्ति (अवस्था)। दिवस=ब्रह्मनिष्ठा। दिवस और राति=प्रवृत्ति और अज्ञान। तेल=स्नेह (ब्रह्मानन्द) दीपक जरै=ज्ञान प्रकाशमान होवै। वाति=ब्रह्मानन्दवृत्ति। पुरुष=परब्रह्म। पानी=प्रेम। निगुरा=ब्रह्म। पराई=जगत मिथ्या की। ताति=निंदा॥ ११॥

ह० लि० २ री टीका—रजनी नाम निवृत्ति तामें दिवस नाम ब्रह्मनिष्ठा नाम प्रकाशमान ज्ञान देष्यो। दिवस नाम जो प्रवृत्तिधर्म तामें अज्ञानरूपी रात्रि देषी अर्थात् जहां प्रवृत्ति होय तहा अज्ञान ही होय। तेल नाम स्नेह (अर्थात्) अत्यन्त सचिक्कण जो फेर छूटै नहीं ऐसो ब्रह्मानन्द रस पूरण जामें ऐसो ज्ञानरूप दीपक प्रकाशमान है तामें धाता ध्यानादिरूपा-वृत्ति नहीं प्रकाशै है ध्येयाकार अखंड ज्ञान प्रकाशमान है। यद्वा जामें स्नेहरूपी तेल परिपूर्ण ऐसो जो प्राणरूपी दीपक जरै है शरीर मैं प्रकाशरूप वणि रह्यौ है सो परिणामरूप प्रकाशमान है। अरु वाती जो ब्रह्माकार वृत्ती सो अखंड एक रस प्रकासै है, नहिं जरै नाम नहीं खंडन होय है। पुरुष एक परमेस्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म, सो पानी नाम प्रेमा-भक्ति तामें प्रगट्यो नाम प्राप्त हूवो। निगुरा पाठांतर निगुना नाम त्रिगुनातीत परमात्मा की कैसी जाति न कोई जाति है अरु सर्व जातिरूप वोही है। याका अर्थ कौं सो (पुरुष) लहै जो पराइ नाम आत्मचेतन सौं भिन्न देहादि ससार ताकी ताति नाम नित्य निंदा करै। क्यूंकरि करै? जगत् मिथ्या है यौं करै॥ ११॥

पीताम्बरी टीका—अज्ञानकाल में परब्रह्म ही मानों रात्रि है। काहेतें जो अज्ञानी होवै है सो कदे भी अपने कू ब्रह्मरूप मानै नहीं, किंतु ब्रह्म तैं भिन्न मानै है। औ जो कोई कहै कि "तू आत्मा ब्रह्मरूप है" तो सो सुनि के ताकू बड़ा भय होवै है औ कहै है कि—"मैं तो कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दुखी, पाप-पुन्यवान जीव हू

औ ईश्वर का दास हू, मैं आत्मा हू यह कैसे कह्या जावै ?" । यही मानों तिस रात्रि में भय है । औ जो "मैं आत्मा ब्रह्मरूप होवौं तो सो अपना स्वरूप मेरे कु भासना चाहिये सो तो भासै नहीं । तातैं मैं आत्मा ब्रह्म नहीं हू । यही मानों रात्रि आवरण है । ऐसी पर-ब्रह्मरजनी मांहि ज्ञानकाल में हम दिवस देख्यो । काहेतें कि ज्ञानी अपने कू ब्रह्मरूप मानै हैं, औ 'अहं ब्रह्मास्मि' कहेते कछु डरै नहीं, औ अपना शुद्ध सच्चिदानन्दरूप आत्मस्वरूप जैसा है तैसा देखै है । ऐसे तिस रात्रि कू हम दिवस देख्यो है कहिये जान्यों है ।+ ज्ञानी कू परब्रह्म जैसा है तैसा भासै है, तामे पूर्वोक्त भय अथवा आवरण कछू नहीं होवै है । तातैं सो परब्रह्म ही मानों दिवस है । ता मांहि अज्ञानकाल में जगतरूप कार्य्य सहित अविद्या प्रतीत होती थी । तैसे ही ज्ञान-काल में भी प्रतीत होवै है । परन्तु इतना भेद है —अज्ञानकाल मे सत्यतापूर्वक प्रतीत होती थी, तैसे ज्ञानकाल में प्रतीत होवै नहीं । किन्तु दग्धपट की न्याई बाधितानु-वृत्ति करि प्रतीत होवै है । ऐसे हम राति देखी है । देश, काल और वस्तु के परिच्छेद तैं रहित जो ब्रह्म है सो सपूर्ण व्यापक है, यही मानों सपूर्ण तेल भर्यो है तामें माया औ अविद्या उपहित जो साक्षी चेतन है सोही मानौं दीपक है सो जरै है कहिये तिस माया औ अविद्या के कार्य्यरूप कज्जल कू प्रकाशै है । वे माया औ अविद्यास्वरूप से जड़ औ परप्रकाश होने सें सोही मानों वात कहिये वत्ती हैं, सो जरै नहीं कहि नाश होवै नहीं, काहेतें सामान्य चेतन तिसका विरोधी नहीं है । जब विक्षेप-रहित शान्त अन्तःकरण होवै है तब एकाग्र अन्तरमुख वृत्ति होवै है, तिस वृत्ति का स्वरूप ही मानौं पानी है । ता पानी में एक कहिये सजातीय विजातीय औ स्वगत भेद-रहित पुरुष जो सर्व शरीररूप पुरिन में रहै है, औ अस्ति भाति प्रिय-रूप है, ऐसो ब्रह्मस्वरूप प्रगट्यो । जो पूर्व अज्ञान-कृत आवरण तें ढक्यो थो सो सद्गुरु औ सत्शास्त्र के अनुग्रह ते आविर्भाव कू पायो अपरोक्षानुभव को विषय भयो । उक्त परब्रह्म जो पुरुष है ताकू ही इहां निगुण कहै है, काहे तें कि आप स्वत जाननेवाला है औ ज्ञानरूप है ताकू गुरु की अपेक्षा बनै नहीं । अथवा जो सत्वादिक तीन गुणन तें वा रूपादिक चौवीस गुणनते रहित है तातें निगुणा (निर्गुण) है । ता (निर्गुणरूप) निगुरा की कैसी जात कहैं ? । कोई भी जात कही जावै नहीं ।

काहे तें—अनेकन के मांही जो एक धर्म रहै है सो जाति कहिये है जैसे सर्व ब्राह्मणन के शरीरन में ब्राह्मणत्व जाति है। औ जैसे सर्व घटन में एक घटत्व जाति है—तिनकू ब्राह्मणपना औ घटपना कहै है। सोही ब्राह्मणादिक मांही जाति है। ताके सजातीय विजातीय औ स्वगत ऐसे तीन भेद हैं। अथवा जैसे सत्वादिक तीन गुणन की वा रूपादिक चौबीस गुणन की गुणत्वजाति है, तैसे परब्रह्म की कोई भी जाति नहीं है। जहां जाति है वहां द्वैतता सिद्ध होवै है। "ब्रह्म तौ अद्वैत है" ऐसे श्रुति कहै है यातें ब्रह्म की कोई जाति कही जावै नहीं। तातें तिसकी कैसी जाति कहैं ? ॥—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि जो मुमुक्षु पुरुष नित्त कहिये निरन्तर दीर्घकाल पर्यन्त। पराई कहिये सर्व तें पर श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप की तात करै, कहिये श्रवणादि अभ्यास द्वारा तत्पर होय के चिन्ता कू करै। अथवा अपने स्वरूप तें अन्य समष्टि व्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपंच की सदा असत जड़ दुखादिरूप चिन्ता कू करै। सोही पुरुष ब्रह्म औ आत्मा की एकता के निश्चय (ज्ञान) रूप अर्थ कू लहै। अथवा जन्म मरणादि बन्ध की निवृत्तिरूप औ परमानन्द की प्राप्तिरूप अर्थ (मोक्ष) कू लहै कहिये प्राप्त होवै ॥ ११ ॥

सुन्दरानन्दी टीका।—सु० दा० जी की साखी—"रजनी मैं दीसै दिवस, दिन मैं दीसै राति। सुदर दीपक जलि गयौ रही विचारी बाति"। १७। तथा—"पर निंदा निश दिन करै, सुदर मुक्ति हि जाइ"। २४।—दादूजी का पद ४०६—"दीपक जलै बाति बिन तेल" (अन्तरा ५ वां)।—तथा—"तह अनहद बाजै अद्भुत पेल" (अंतरा ५ वां ही)।—कबीरजी का शब्द—"मोतिया बरसत राबरे देसवा दिन-राती। मुरली सबद सुनि मन आनन्द भयो, जोति बरै बिनु बाती"। शब्दावली। (भेदवानी। १० में)।—तथा—"बिन दीपक बरै अखंड जोत। पाप पुन्न नहिं लागै छोत। चंद्र सूर नहिं आदि अंत। तह कबीर खेलै बसंत"। (शब्दावली। होली १९)।—तथा—"बिन दीपक उजियार, अगम घर देखिये"। (श० मगल ४) तथा—"दीपक बिन ज्योति ज्योति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद गाया"। (क० ग्र०। पद १५८ से)।—गोरषनाथजी—"बिन बैसदर जोति बलत है, गुरपरसादैं दीठी"। (गो० श० १९६ से)।—तथा—"अखंड दीपक बलै बिन बाती। जहां जोगेसुर थापना थापी। जा

उनयौ मेघ घटा चहुं दिश तें घर्षन लगौ अखडित धार।
बूडौ मेरु नदी सब सूकी झर लागौ निश दिन इकसार ॥
कांसा पर्यौ बीजली ऊपर कीयौ सब कुटंब संहार।
सुंदर अर्थ अनूपम याकौ पडित होइ सु करै विचार ॥ १२ ॥

दीपक के पुन्य न पाप। श्रवणासीस नहीं है हाथ। जो दीपक सोइ देखसी, यों कथत श्री गोरषनाथ। ५। (गो० दयाबोध। ५।)।—

ह० लि० १ टीका:—उनयो=उमग्यो। मेघ=मन। घटा=मनसा। धार=भजन। मेरु=अहकार। नदी=नवद्वार। झर=नांव। कासा=काया। बीजली=मनसा। कुटंब=इन्द्रिया। अनूपम=उत्तम। १२।

ह० लि० २ री टीका.—मेघरूपी मन को प्रेम उमग्यो। घटा नाम की अतिगति ता उमड चली। चहुदिसतैं, चहू अतःकरणते। ताकरि अखड भजनरुपाधार वरखन लागी। जब झर लाग्यो नाम रात-दिन अखड भजन की झरी लागी। तब मेरु नाम अति ऊंचो अहकार, बूडि गयो नाम भजन जल में बूडि गयो, षोगयो। नदी नाम नदी की नांई अखड प्रवाहरूप नवद्वारां का जो विषय तिन के प्रवाह की नदी सूकि गई नाम भजन के प्रताप ते निवृत्त होइ गई। कांसा काया शुभ-कर्म क्रिया-कर्म वा आपका पुरुषार्थ करि बीजली जो मनसा तापरि पर्यो नाम मनसा को जीती। ताका जीतना करि निर्वासनिक हुवो। तासों सकल इद्रियां की वृत्ति को सहार नास कीयो नाम सर्व निवृत्ति हुई। याको अर्थ अनूपम नाम श्रेष्ठ है। जो कोई पडित विवेकी होवैगो सोई विचारैगो अर्थ को पावैगो अरु धारैगो ॥ १२ ॥

पीताम्बरी टीका—"ब्रह्मानन्द समुद्र में मग्न भया हुवा जगत मे विचरनेवाला जो आत्मज्ञानी है। ताकू ही इहां मेघ कह्या है। सो आनदरूप जलकरि उनयो (उमग्यो) कहिये भर्‌यो है। जाकी स्वरूपाकारतारूप बादल की घटा छाई रही है। औ जो चैतन्यरूप आकाश में शरीररूप पर्वत की शिखरपर स्थिति है। सो परि-पूर्ण ब्रह्मभावरूप चहुदिशि में वढ्यो कहिये रमने लाग्यो। औ तेलकी धारा की न्यांई निरतर प्रवाहवाली जो अखडित आनंदयुक्त अनेक वृत्ति है। सोई मानों जल की अनेक

धार है। तिनकरि वर्षन लाग्यो, कहिये व्यापक ब्रह्म को अनुभव करने लग्यो ॥—अहंकारादि जो जगत है ताकूं यहां मेरु कहे हैं। सो बूड्यो, कहिये तीनकाल में अभाव निश्चयावृत्तिरूप बाध को विषय भयो। औ बाह्य बाधित विषयाकार होनेवाली जो मन की अनेक वृत्तिओं है सोई मानो सब नदी हैं। सो सूकी कहिये विषयन में अभिनिवेशभूत वासनारूप जल तें रहित भई। ताको निशदिन (रात्रिदिवस) तिन नदीन के उर कहिये बीच में, प्रथम वृत्ति के अंत, औ द्वितीयवृत्ति के आदिक्षण के मध्यावस्था में केवल स्वरूपाकार होनेरूप इकतार (प्रवाह) लाग्यो ॥—ज्ञान हुवे पीछे जो परवैराग्य होवै है साई मानो कांसा है। सो सूक्ष्म राजसी औ तामसी स्वभाववाली चंचल बुद्धिरूप बिजली ऊपर पड्यो। तिसने रागद्वेषलोभादि आसुरी संपदारूप सब कुटुंब को संहार कीनो, कहिये नाश कियो ॥—सुंदरदासजी कहे हैं को, या (कथन) को जो अर्थ है, सो अनुपम कहिये सर्वोत्कृष्ट होने तें उपमा रहित है। तातें जो पुरुष पंडित कहिये स्वरूपाकार अंतःकरणवाला ज्ञानी होय सु याके अर्थ का विचार करै। और पुरुष विचार करी शकै नहीं ॥ १२ ॥

सुन्दरानन्दी टीका :—सु० दा० जाकी साखी—"सुंदर बरिषा अति भई, सूकि गये नदि नार। मेर बूडि जल मैं रह्यौ, झर लागौ इकसार। १८। कांसा पर्यौ पराकिदै, बिजली ऊपरि आइ। घर कौ सब टाबर मुवौ, सुंदर कह्यौ न जाइ"। १९। तथा—"सुंदर बरिषा अति भई, सूकि गई सब साष। नीब फल्यौ बहुभांति करि, लागे दाख्यौं दाष"। ४५। दादूजी की साखी—"ऐसा अचिरज देखिया बिन बादल बरिषै मेह"। ११४। अंग ४॥—कबीरजी का पद—"बिन जल बूंद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा। बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा"। (शब्दावली। ७। पग भेद बानी में।)—तथा—"गगनघटा घहरानी साधो। पूरब दिशि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी। आपन आपन मेंढ सम्हारो, बह्यो जात यह पानी॥ मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निरवानी। दुविधा दूब छोल कर बाहर, बोवो नाम का धानी॥ बाली झार कूट घर लावै, सोई कुशल किसानी। पांच सखी मिलि कीन्ह रसोइयां, एक से एक सयानी। दोनों थार बराबर परसे, जेवैं मुनि अरु ज्ञानी॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निरवानी। जो या पद को

वाड़ी माहै माली निपज्यौ हाली माहि निपज्यौ षेत।
हंसहि उलटि स्याम रङ्ग लागौ भ्रमर उलटि करि हूवौ सेत॥
शशिहर उलटि राह कौं ग्रास्यौ सूर उलटि करि ग्रास्यौ केत।
सुन्दर सुगरा कौं तजि भाग्यौ निगुरा सेती बाध्यौ हेत॥ १३॥

परचा पावै, ताको नाम विज्ञानी" ॥ (शब्दावली। भेदवानी १४।)—गोरषनाथजी का पद—'अगनि विन जलिया, अवर विन जलहर भरिया"। (गो० पद २० मेंसे)। तथा—'नाथ बाले अम्रत वांणी, वरसैंगी कमलिया भीजैगा पांणी"। (गो० पद ३९ मे)।

ह० लि० १ टीका —वाड़ी=काया। माली=जीव। हाली=जीव। षेत=काया। हंस=जीव। स्यामरंग=रामरंग। भवर=मन। शशिहर=मन। राहु=गुण। ग्रास्या=ज्ञान। (पायो)। सूर=ज्ञान, दूजो पौन। केत=कर्म। सुगरा=संसार। निगुरा=ब्रह्म॥ १२॥

ह० लि० २ टीका —वाड़ी काया क्षेत्ररूप ता माहि मालीरूप क्षेत्रज्ञ जो जीव सो निपज्यो समरण साधन कर स्व-स्वरूप को प्राप्त हुवो। हाली जीव क्षेत्रज्ञरूप ताकी चेतन सत्ता करकै खेत नाम क्षेत्ररूप शरीर सो निपज्यो नाम साधन सिद्धि कों प्राप्त हुवो। हंस जो जीव सो माया रंग मे मगन होय रह्यो हो ताकूं गुरु मत उपदेश करि कै अब उलटि कै स्यामरंग लाग्यो-स्याम जो अपना स्वामी अथवा घनश्याम मूर्ति श्रीरामजी ताको रंग लाग्यो। भ्रमर नाम काम-कर्म-कालिमायुक्त जो मन सो सेत नाम भगवत भजन सुमरन करि ऊजल हूवो। संकल्प आत्मक जो मन सोई है शशि-हर नाम चंद्रमा तानैं राह नाम आपको मलीन को करता जो तामसादि गुण तानैं ग्रास्यो नाम निवृत्ति कीया तब शुद्ध हूवो। सदा प्रकाशमान सोई सूर तानै कर्म-कामनारूप केत सो दूर निवारन कर्यो केवल ज्ञान ही ज्ञान प्रकाशमान रह्यो। सुगरा संसार जो अन्य आधीन वर्तै ताकों त्यागि करि भाग्यो नाम अत्यन्त विचार्यो, अरु निगुरा नाम जाके ऊपरि कोई भी नहीं सो ब्रह्म-स्वयं प्रकाश स्वाधीन तासों स्नेह बाध्यो॥ १३॥

पीताम्बरी टीकाः—यह जो सृष्टि है सोई मानो वाड़ी है। ता वाड़ी माहीं चेतन परमात्मारूप माली निपज्यो। कहिये अज्ञान दशा के पक्ष मे जीवभावकू ग्रहण करिके जगत में अपने जन्मादिकू मानि रह्यो है। अथवा सो चेतन परमात्मा ही ज्ञानकाल में विचार-द्वारा सर्वजगत में परिपूर्ण प्रतीत भयो ॥—अज्ञानदशा के पक्ष मे मनरूप काष्ट के हल करि शुभाशुभ कर्मरूप बीज बोवने के वास्तै प्रवृत्तिरूप खेती कू करनेवाला जो क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतन है सोई मानो हलका खेटनेवाला हाली (कृषिकार) है। ता मांही शरीररूप खेत (क्षेत्र) निपज्यो कहिये नानाप्रकार के अनुकूल औ प्रतिकूल जो विषय हैं सो सब मानों तामें अन्य के वृक्ष हैं तिससे जो सुख-दु खरूप फल उत्पन्न होवै है। सोई मानों अनाज के कन हैं। ऐसा जो क्षेत्र है सो "मैं कर्त्ता-भोक्ता हू" इत्यादि भ्रम करि उत्पन्न भयो। अथवा ज्ञानदशाके पक्ष में अपनी उपाधि-भूत जो मन है सोई मानों हल है तिससे ही प्रवृत्ति औ निवृत्तिरूप खेती होवै है। तिसका प्रकाशक जो आत्मा है सोई मानों कृषिकार है। तामें क्षेत्र की न्याई सर्वजगत का आधार जो परमेस्वर है सो अभिन्न होय के प्रतीत भयो ॥—चिदाभास-रूप जो जीव है सोई मानों हस ही है। काहेतें कि हस पक्षी का श्वेतरग होवै है। तैसे इहां जो विषय में आसक्ति है अथवा जो जगत के व्यवहार की प्रवृत्ति मे उत्साह है सो यद्यपि विवेक दृष्टि से त्याज्य है तथापि अविवेक दृष्टि सें नीके लगैं है। ताते सोई मानो जीवरूप हस का श्वेतरग है। सो उलटि के कहिये विषयन में वैराग्य औ जगत के व्यवहार की प्रवृत्ति में उपरति (हुई) जो अज्ञानी की दृष्टि में श्यामरंग है सो लागो कहिये वैराग्य औ उपरतियुक्त कियो ॥—मनरूप जो भ्रमर है सो उलटि-करि कहिये निष्कामकर्म औ उपासना द्वारा मल-विक्षेप दोषरूप श्यामताकू छोडिकरि शुद्धता औ एकाग्रतारूप श्वेत हूवो ॥—ज्ञान के प्रकाशरूप जो मन है सोई मानो शशिहर (चद्र) है। तांने अज्ञानकृत राहु कू उलटि ग्रास्यो कहिये नाश कियो। ज्ञानरूप ही मानो सूर (सूर्य) है तिसने प्रतिदिन उलटि कहिये घटिका दो घटिका वा यातें भी अधिक काल ब्रह्म का जो नियम से अभ्यास होवै है तिसते उत्तम भूमिका में स्थिति पायकरि दृष्ट दु ख की हेतु जो अज्ञानकृत विक्षेप की प्रतीति होवै है। सोई मानों केत (केतु) हैं। ताकू ग्रास्यो कहिये दूर कियो ॥—सुदरदासजी कहै है

अग्नि मथन करि लकरी काढी सो वह लकरी प्रान अधार।
पानी मथि करि घीव निकार्यो सो घृत पइये वारंवार॥
दूध दही की इच्छा भागी जाकौ मथत सकल ससार।
सुन्दर अव तौ भये सुपारे चिंता रही न एक लगार॥ १४॥

रै जो सगुणवस्तु है सोई इहां सुगरा है। ताकू पूर्वोक्त ज्ञानी तजिके भाग्यो कहिये दूर रह्यो। औ जो निर्गुणवस्तु है सोई मानो निगुरा है ता सेती ताने हेत बांध्यो कहिये ऐक्यभावरूप प्रेम कियो॥ १३॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जोकी साखी—"सुदर माली नीपज्यौ, फल अरु फूल समेत। डाली के कोठा भरे, सूके वाड़ी खेत। २०। भ्रमर सु तौ उजल भयौ हस भयौ फिरि स्याम। को जानैं केते भये सुन्दर उलटे काम"। २१।—दादूजी का पद—"मोहनमाली सहज समांनां। काया वाड़ी माँहि माली। ता माली की अकथ कहांणी"। ३७१। हरिदासजी निरजनी—"सींचत वाड़ी सब कुमलावैं। काटत बहु फल लागा"। ५। (योग मल सुरत-योग)।—कवीरजी का शब्द—"चेला रहा सो चुन-चुन खाया, गुरु निरतर खेला। सुगरा होय सो भर-भर पीवै, नुगरा जाय पियासा" (शब्दावली। भेदवानी। २६ में से।)—तथा पद—"उलटी गग समुद्रहि सोपै, ससिहर सूर गरासै। नव ग्रिह मार रागिया बैठे, जल मे व्यव प्रकासै"। (क० ग्र०। पद १६२ से)।—गोरपनाथजी—"गगनमंडल में औंधा कूवा, तहां अमृत का वासा। सुगरा होइ मो भरि-भरि पीवै, निगुरा मरै पियासा"। (गो० शब्दी २३।)।—गोरपनाथजी—"अमावसि के घरि झिलमिलि चन्दा, पून्यू के घरि सूरं। नाद के घरि व्यद गरजै, वाजत अनहद तूर"। (गो० शब्दी। ५५।)।—तथा—"पेड़ विहूना अमिला मोर्‍या, प्यड विहूना माली"। (गो० श० १९५ से)।—तथा—"उल्टै चद्र राह कौं ग्रहै, सूरज उलटि केतु कू ग्रहै। ससिहार सुरज कौं ग्रहै, थिर रहै तत्त भाण जोगेसुर कहै"। (गो० आत्मवोध)।—तथा—"उलटि जंतर धरै सिपर आसण करै, कोटि सर छूटति घाव नांहीं। भैंण के दांतू लोह घरि पीसिवा"। (गो० •या० वो०)।—

ह० लि० १ टीका —अग्नि=विरह अग्नि। लकरी=लय। पानी=प्रेम। घीव=ज्ञान। दूध-दही=कर्मकाण्ड। वा खाटामींठा भोग॥ १४॥

ह० लि० २ री टीकाः—विरहरूप जो अग्नि ताको जो अतिगति उदै करना सोई मथन। ता करि उदै भई जो भगवत के विषै ल्यवृत्ति सोई लकरी काढी नाम लै सिद्ध करी जो बालै है सो प्राण नाम जीव कौं अति आनन्द की दाता आधाररूप है।—पानी जो प्रेम जासौं अतस्करण द्रवीभूत होय जाय सो पानी ताको अत्यन्त-पणौं सोई मथणौं ता करि उत्पन्न हुवो ज्ञान सर्वसिरोमणो घीव वा घी कौं बारबार खाइजै है नाम वा ज्ञानरस ही में अखडलीन रहै है।—दूध जो शुभाशुभ-कर्म, दही नाम तिन कर्मन सू उत्पन्न हुवा पाटा-खारा सुख-दु खादि भोग तिनकी इच्छा भोगी, जा दही कौं सर्वससार मथत नाम भोगै है।—अब तो निहकाम होय सर्वप्रकार की कामनारूप चिंता गई सर्वप्रकार करि सुखी भये ॥ १४ ॥

पीताम्बरी टीका.—अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीन जो ताप हैं तिन करि सर्व अज्ञजीव जलैं हैं सो जलावनेवाली यह देहादि सृष्टि है सोई मानौं अग्नि है। ताकौं मथन कहिये "यह सब जगत मिथ्या है" इत्यादि निश्चय तें विवेचन करि लकरी काढो कहिये जैसे अग्नि का आधार काष्ट है तैसे इस सृष्टिरूप अग्नि का आधार सवित् (चेतन) है। सोई मानौ लकरी है ताकू यथार्थ जानी सोई मानौं काढी है। सो वह लकरी प्राण का आधार है कहिये प्राणादि सर्व प्रपच का अधिष्ठान चेतन है।—२- यह असार नाम-रूपात्मक जो जगत् है सोई मानौ जल है ताकू मथनकरि कहिये विवेचनकरि अस्ति भाति औ प्रियरूप ब्रह्मानन्द ही मानौ घीउ निकास्यो। अथवा मनरूप जो जल है ताकू मथनकरि कहिये साधन-चतुष्टय सपन्न करि ब्रह्मानन्दरूप मोक्ष ही मानो घीउ निकास्यो। अथवा सत् शास्त्र ही मानौ पानी है ताकू मथनकरि कहिये विचारकरि ज्ञानरूप माखन द्वारा ब्रह्मानदरूपी घीउ निकास्यो कहिये प्रगट कियो। सो घृत बारबार खायो कहिये विचार-दशा में अपनो आप जानि के अनुभव कियो।—३- जाकू सकल ससार मथत है संसारीजीव चाहकरि खोजते है ऐसे जो परलोक के भोग हैं सोई मानौ दूध है। औ इस लोक के जो भोग हैं सोई मानौ दही हैं तिनकी इच्छा भागी कहिये भग हो गई।—४- सुदर-दासजी कहैं हैं कि अब तो हम सुखारे कहिये परम आनदित भये। औ एक लगार कहिये किंचित्मात्र भी चिंता न रही अर्थात् सर्वजन्मादि अनर्थ तें छूटे ॥ १४ ॥

पत्र माहि झोली गहि रापै योगी भिक्षा मागन जाइ।
जाग जगत सोवई गोरष ऐसा शब्द सुनावै आइ॥
भिक्षा फुर बहुत करि ताको सो वह भिक्षा चेलहि पाइ।
सुन्दर योगी युग युग जीवे ता अवधू की दूरि बलाइ॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीका—काढी नाम भिन्न करली विवेक-बुद्धि के व्यापार से। 'प्राणा व ब्रह्म"—ब्रह्म प्राणस्वरूप है। आधार और आधेय का भाव यहां लेना। "घी सो घोट रह्यो घट भीतर"—ऐसे ब्रह्मानन्द घृत को निरतर अनुभव करे। दूध जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी ससाररूपी गाय से दूधरूपी कर्मफल निकाल उसके इच्छा का जामन देकर बिलोन कर विगृत करदिया सो मायारूप ससार उसके विकारों सहित त्यागा गया, जिस ससार के कार्यों में ससारी-जीव निरतर लिप्त रहते है। असप्रज्ञात समाधि या अखड ब्रह्मानन्द की प्राप्ति ही मे चिता का अभाव और सुखारे होने का भाव है।—सु० दा० जीकी साखी—"अग्नि मथनकरि नीकरी लकरी सहज सुभाइ। पानी मथि घृत काढियो सो घृत सुदर पाइ'। २२।—कबीरजी का शब्द—"सुन्न सिखर पर गइया ब्यानी, धरती छीर जमाया। माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जगत भरमाया।"। (शब्दावली। भेदबानी। २६ में)।—तथा पद—"अवधू काम-धेन गहि बांधीरे। भांडा भजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधीरे॥ जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै। कौली घाल्या बीडर चालै, ज्यू घेरौ त्यू दरवै। तिहि धेन थैं इच्छा पूगी, पाकडि खूटै बांधीरे। ग्वाडा माहैं आनन्द उपनौ, खूटै दोऊ फाबीरे। साई माई सास पुनि साई, साई याकी नारी। कहै कबीर परम पद पाया, सतो लेहु बिचारी॥ (क० ग्र०। पद १५२।)।—गोरषनाथजी का पद—'एक जु रडिया लडती आई"—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका—पत्र=हृदो। झोली=गुणा की झकझोल। गहिराखै=रोकै। जोगी=जीव। भिख्या=ब्रह्म दर्शन। जागै=प्रवृत्ति मे रहै। सोवई=समाधि में सोवै। गोरख=सत। भिक्षा फुरै=ब्रह्मदर्शन की चाह होवै। चेला=इद्रिय॥ १५॥

ह० लि० २ टीका—पत्र नाम जो शुद्ध हृदो, तामे झोली नाम कर्मन की

नानाप्रकार को झकझोली गुणां की वा, सो राखी नाम रोकी। योगी जो जीव सा भिक्षा नाम ब्रह्मदर्शन मांगन जाय, नाम वाह्य-वृत्ति छोड़ अंतरनिष्ठ होणां सोई जावणां। योगी जब भिक्षा कों जाय तब-तब गोरख ऐसो शब्द करै या रीति है परपरा सों। अरु या जीव जोगी को यह शब्द 'जागै जगत सोवै गोरख' याको अर्थ यह जो ससार है सो प्रवृत्ति-मार्ग में जागै है। नाम अत्यन्त सावधान होयके वर्त्तै है। अरु गोरख योगी है सो जगत मार्ग तरफ अचेत होयकरि ब्रह्मानन्द समाधि मैं सुख सोवै है सदाही ब्रह्मानन्द समाधि मे लीन रहै है।—ता जीव योगी कों वा ब्रह्म-दर्शनरूप भिक्षा बहुत फुरै नाम बहुत परिपूर्ण प्राप्ति होवै है।—योगी की भिक्षा कों चेला खाहि या रीति होवै है अरु योगी की भिक्षा चेला ने खाय चेला नाम इन्द्रियां की वृत्ति सो ब्रह्म-दर्शन जब हुवा तब उन वृत्तियां को अभाव होय गयो।—सो वो जीव योगी ब्रह्मानद स्वरुप कों पाय जन्ममरण रहित होय करि सदा चिरजीव होय के सुखी हुवो। अवधूत नाम सर्वगुण इद्रिय विकार रहित ता योगी को बलाय नाम आधिव्याधि कर्म-कालरूप विघ्न दूरि गया सर्व निवृत्ति होय गया ॥ १५ ॥

पीताम्बरी टीका - साभास अतःकरण सहित आत्मरूप जो-ज्ञानी जीव है सोई मानौ योगी है। औ हृदयरूप पात्र है ता मांहि बुद्धिरूप झोली कू गहि कहिये एकाप्रकरि राखै कहिये अतर्मुख करै। औ निजानद आविर्भाव है सोई मानौ भिक्षा है सो विचाररूप पगन करि मांगन जात है कहिये स्वरूपाकार होवै है।—२। अनत ससारी जीवन का जो समूह है ताकू यहां जगत कहिये है सो जागै कहिये कछुक कर्त्तव्य मानिके तामैं प्रवृत्ति करैं हैं। औ गो कहिये इन्द्रिय हैं ताकू साक्षिता करि रख कहिये प्रकाशनेवाला जो आत्मस्वरूप है ताकू यहां गोरख कहैं है, सो सोवई कहिये सर्व कर्त्तव्य रहित असग ब्रह्मरूप होने तैं स्वमहिमा में ज्यू का त्यू विराजै है। औ जो शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है तामें आइके "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा शब्द सुनावै है कहिये स्वरूप में स्थिति करने के वास्तै बहिर्मुखनकू तिस वाक्यार्थ अभ्यास करावै है।—३। त्रिपुटीभानरहित अखडब्रह्माकार अत करण की वृत्ति जा स्थिति (निर्विकल्प समाधि) है। सो इहां भिक्षा कही है। ताकू कहिये ता वृत्ति की स्थिति के अर्थ पूर्वोक्त ज्ञानीरूप गुरु (पाठांतर 'करि' का) बहुत फिरै है का

निर्दय होइ तिरै पशु घातक दयावंत बूडै भव माहिं।
लोभी लगै सबनि कौं प्यारौ निर्लोभी कौ ठाहर नांहि॥
मिथ्यावादी मिलै ब्रह्म कौं सत्य कहै ते जमपुर जांहि।
सुन्दर धूप माहिं सीतलता जलत रहै जे बैठें छांहि॥ १६॥

तिग अभ्यास की प्रवलतापूर्वक पुन पुन प्रवर्ते है। सो वहि भिक्षा मनरूप चले ते ग्वाड। सो प्रकार यह है—जब मन की वृत्ति स्थिरता में लगै है तब सो एकाग्र होवै है। औ ब्रह्मानंद—अनुभव-क्षण में तिस वृत्ति कू अपने में लय करि लेवै है। भाव यह है—निर्विकल्प समाधि-काल में वृत्ति की प्रतीति होवै नहीं।—४ सुंदरदासजी कहैं है कि ऐसा जो योगी है सो जीवभाव कू छोडिकै अमर आत्मारूप होने तें युग-युग कहिये तीन काल में जीवै है। कहिये अविनाशी ब्रह्मरूप सें अवस्थित होवै है। औ ता ब्रह्मभूत अवधूत योगी की वलाइ कहिये जन्मादि अनर्थरूप आधिव्याधि दूर कहिये निवृत्त भई हैं॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—पत्र मांहि झोली धरैं जोगी मांगै भीप। मोवं गोरप यौं कहै सुदर गुरु की सीप। २३।—दादूजी का पद—"जागत सूते सोवत सूते"। ३०७।—गोरषनाथजी—"माछिंद्रहपूता जोग जुगता, जागै गौरष जुग सूता"। (गोरषनाथजीका छद।)।

ह० लि० १ टीका—निर्दय=सूरवीर। पशु=इन्द्रियां। पशुघातक=इंद्रियजीत। दयावंत=इन्द्रिय पालक। लोभी=भजन का लोभी। मिथ्यावादी=जगत। धूप=इन्द्रिय कमणी। छांहि=इन्द्रिय भोग॥ १६॥

ह० लि० २ टीका—निर्दय नाम अति कठोर सूरवीर होय करि, जो अपण विषयरुपी चारा में विचर रही इंद्रियवृत्ति पशु-पशु क्यू?—पशु भी तृप्ति कोई मानैं नहीं। तिनां को घातिक नाम जीति मारि करि दूरि निवारै सो या संसार समुद्र कों तिरै।—अरु दयावत होय इन्द्रियरूप पशुन कों विषयभोग भक्ष देकै पालै सो या भव मे बूडै।—लोभी भजन को अति काठो होयके लागै अनेक दुःख सकट विघ्न आय पडै तौभी छोडै नहीं सो सवकों प्यारो लागै। प्यारा तीनों लोक में जाके हिरदै नाम।

जाके भजन का लोभ दृढ़ता नाहीं ताकों कहूं भी ठाहर ठिकाणा सुख नांहीं ।—मिथ्या-वादी नाम जगत मिथ्या मिथ्या यों बोलै अखड योंही जाणै सो ब्रह्मकों मिलै । और जग-व्यवहार सों अभ्यास बांधि जगत कों सत्य-कहै सो यमपुर जाय ।—धूप नाम इन्द्रियों को कसणी देकै जीतणों तामें जन्मांतर पर्यंत सीतलता पाकर सुखी रहै ।—छांहि जो इन्द्रियां का विषयभोग तिनां को सुख मानि करि भोगणां सोई छाया बैठणा उनका फल जन्मातर में जरबो करै नाम दुःखी ही रहै ॥ १६ ॥

पीताम्बरी टीका—जो पुरुष निर्दय कहिये अडिग-मनवाला होइ और इन्द्रिय-समूह वा राग-द्वेषादिकन के समूहरूप पशुन का घातक कहिये जीतनेवाला होइ । अथवा जो पुरुष सर्व देहादिक अनात्मवस्तु-समूतारूप पशु का घातक कहिये ज्ञानद्वारा मिथ्यापने का निश्चय करनेवाला । वा तीनुकाल-अभाव का निश्चय करनेवाला होवै । सो पुरुष जन्मादि अनर्थरूप ससार-सागर कू तरै है । कहिये उलघन करै है ।—जो पुरुष दयावत कहिये इन्द्रियन कू निग्रह करने में वा रागादिक जीतने में वा सकल अनात्मा के बाध करने मे सिथिल (असमर्थ) होवै है सो पुरुष भव-सागर मांहि बूड़े कहिये जन्मादि अनर्थनकू पावै है ।—जो पुरुष ब्रह्मानन्द लाभ में लोभी कहिये तिसी के परायण अभ्यासी होवै सो पुरुष सवन को प्यारो कहिये परमेश्वर की न्यांई पूजनीय लगै । जो पुरुष निर्लोभी कहिये उक्त लोभी तें विपरीत होवै ताकू ब्रह्मानन्दरूप ठाहर कहिये स्थान नांहि मिलै । अर्थात् ताकू परमानद की प्राप्ति होवै नहीं ।—माया अविद्या औ तिनके कार्य जो स्थूल सूक्ष्म है ताकू मिथ्या (असत्) कथन का जो वादी होवै सो ब्रह्मकू मिलै कहिये प्राप्त होवै । औ जो मायादिकन कू सत्य कहै ते यमपुर जांहि कहिये नरकादि दुःखन का अनुभव करै हैं ।—सुदरदासजी कहैं है कि श्रवणादि साधन के अभ्यासरूप धूप मांहि । वा ज्ञानरूप प्रकाश में शीतलता कहिये शांति होवै है । जो पुरुष श्रवणादि साधन के अनभ्यासरूप छांहि कहिये छाया में अथवा मूलाऽ अज्ञानरूप अप्रकाशस्वरूप छाया में वैठे कहिये आलसी होय के स्थित होवै सो पुरुष त्रिविध-ताप-रूप अग्नि में जरत रहै कहिये जलता ही रहै ॥ १६ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—"जोई न्है अति निर्दई करै पशुन की घात । सुदर सोई उद्धरै और बहे सब जात । २६" ।—कबीर पद—"धूप

मात बाप तजि धी उमदानी हरषत चली षसम के पास।
या विचारी बड वषतावरि जाके कहै चलन है सास॥
भाई परो भलौ हितकारी सब कुटंब कौ कीयौ नास।
ऐसी विधि घर वस्यौ हमारौ कहि समुझावै सुन्दरदास॥ १७॥

दा न उंह तनाई मति तरवर सच पाऊ। तरवर माहे ज्वाला निकस, तौ क्या लेइ बुझाऊ। जे वन जले त जलकू धावै मति जल सीतल होई। जलही माहिं अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई" —(क० ग्र०। पद ११२ मे)।

(दोनो हस्तलिखित टीकाओं के मीलान से यह निश्चय हो गया कि इनमे २८ नहीं हैं। एक तो संक्षिप्त है और दूसरी विस्तृत है। इसलिए अब आगे से दोनो को मिलाकर एक जगह करदी गई है।)

ह० लि० १-२ टीका:—माय, माया ताको जो ममतास अरु बाप नाम वप शरीर ताका पुरुष को अध्यास तिन सान को छाडिके जो याही शरीर मे उपजी जो शुद्ध-बुद्धी सो उमदानी सो हरषयुक्त हुई थकी सो खसम नाम सर्वदा प्रतिपालनकर्त्ता परमात्मा पूर्णब्रह्म-पति ताके संगि चली नाम ताही मे लीन हुई।—बहूबुद्धि बड़ी सभागणी सुलषणी शुभगुणयुक्त ता बुद्धि की प्रेरी सास नाम सुरति है सो चालै है ब्रह्मस्वरूप मे लीन होय है।—या बुद्धि को सहाईभूत जो ब्रह्मभाव वाते वाका सकल कुटुंब नाम जो इन्द्रियां की वृत्ति तिनको नाश करयो नाम सर्व दूरि निवारन करी। जो कुटुंब को नाश हुवां घर उजडै (परन्तु) यो घर वस्यो ये ही विपर्यय। या प्रकार घर वस्यो। घर ब्रह्म तामै हमारो वास सिद्धि हुवो॥ १७॥

पीताम्बरी टीका—इहां अविद्या कू माइ (माता) कहे हे। औ जीव कू बाप (पिता) कहे हैं। ताकू तजि (त्याग करिके) कहिये अविद्या औ जीव का बाध करिके धी (तिनकी पुत्री) कहिये जो संस्कारवाली बुद्धि की वृत्ति है। सो उमदानी (मदोन्मत्त भई) कहिये ध्येयाकार होने लगी। औ प्रत्यक् अभिन्न जो परमात्मा है सोई मानौ खसम (पति) है। ताके पास कहिये तदाकार होनेकू हरषत चली अर्थात् परमात्माकू अभिमुख भई।—विवेक-रहित जो बुद्धि है सोई मानौ सास (सासु)

है। काहेतें तिसीतें विवेक की उत्पत्ति हुई है तातें सो तिसकी माता है। विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति है। सोई मानौ तिस विवेक की वहू (स्त्री) है। सो विचारी कहिये शांतिवाली है। औ बढि बख्तावरि कहिये स्वाधीन है। पराधीन नहीं है। यातें पूर्वोक्त सासू का कह्या नहीं मानें है। किंतु जाके कहे वे सास चलती है। अर्थात् विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति में अविवेकता का प्रवेश होवै नहीं।—पूर्वोक्त विवेक कू सहायता करनेवाला जो तत्वज्ञान है। सोई मानौ भाई (भ्राता) है सो खरो कहिये निश्चित है। भलो कहिये श्रेष्ठ है। औ हितकारी कहिये मुक्तिरूप कल्याण कू करनेवालो है। तिसने अविद्या को औ ताके कार्य बुद्धि वा बुद्धिवृत्ति औ देहादिरूप सब कुटुंब को नास कीयो। कहिये बाध कियो है।—सुंदरदासजी कहि समुझावें हैं कि। ऐसी विधि कहिये इस प्रकार करि हमारो स्व-स्वरूप-रूपी घर वस्यो। अर्थात सतूरप करि अवशेष रह्यो॥ १७॥

सुन्दरानन्दी टीका.—सु० दा० जीकी साखी—सुंदर समुझावे वहू सुनि हे मेरी सास। माई बाप तजि धी चली अपने पिय के पास। २७।— हरिदासजी निरजनी— "सास वहू के पागे लागै"। २।—(योग मूल सुख भोग)।—कबीरजी का पद—"माई मैं दोनों कुल उजियारी। बारह खसम नेहर में खाये, सोरह खाये ससुरारी। सासु ननद मिलि पटिया बाधल, भसुरा परलो गारी। जारो माग मैं तासु नारि की, सरिवर रची हमारी। जनां पांच कोखिया में राखौं, अरु राखौं दुइचारी। पारपरोसिनि करौं कलेवा सगहि बुधि महतारी। सहजैं वपुरी सेज बिछायो, सूती पाउ पसारी।—(बीजक शब्द ६२)।—तथा—"सांई के सग सासुर आई"। सग न सूती स्वाद न जान्यौं, गयो जोवन सुपने की नाईं। जनां चारि मिलि लगन सुधाई, जनां पाँच मिलि मडप छाई। सखी सहेली मंगल गावैं, दुख-सुख माथै हरदि चढ़ाई। नानारूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भई पति की आई। अरघे दै दै चली सुवासिन, चौकहि राँड भई सग सांई। भयो बियाह चली विन दूलह, बाट जात समधी समुझाई। कहैं कबीर हम गवनैं जैवै, तरव कत लै तूर बजाई॥ (शब्दावली। १२)। तथा पद—"जेठी धीय सासरै पठऊ, ज्यौं वहुरिन आवै फेरी। लहुरी धीय सवै कुल खोयौ, तव ढिग वैठन पाई। कहै कबीर भाग बपरी कौ, किलि किलि सवै चुकाई"।

परधन हरै करै पर निंदा पर धी कौं राखै घर माहिं।
मास खाइ मदिरा पुनि पीवै ताहि मुक्ति कौ संशय नाहिं॥
अकर्म गहै कर्म सब त्यागै ताकी संगति पाप नसाहिं।
ऐसी कहै सु संत कहावै सुंदर और उपजि मरि जाहिं॥ १८॥

(क० ग्र०। पद ९२)।—तथा पद—"सेजें रहों नैन नहिं देखो, यहु दुख कासूं कहूं री॥ सासु की दूखी ससुर की प्यारी, जेठ कै तरस डरौं री। ननद सहेली गरव गहेली, देवर के विरह जरौं री"॥ (क० ग्र०। पद २३० से)।—तथा पद—"अबधू ऐसा ग्यान बिचारी। नां हू परणीं नां हू क्वारी, पूत जन्यौं धौ हारी। काली मूंड का एक न छोड्यौ, अजहूं अखन कँवारी"॥ (उक्त। पद २३१॥)

ह० लि० १, २ टीका—परधन नाम परायो धन। पर जो विवेकी संत तिन को धन जो ज्ञान ताका मनन का उपदेश करिके हृदा में धारण करै। परनिंदा नाम अनात्म देहादि ताकी निंदा, विनाशवंत है जड है मलीन है यों निंदा करै तो आसक्ति निवृत्त होय।—पर नाम विवेकी संत तिनकी धी कहिये जो निर्मल शुद्ध-बुद्धि ता बुद्धि कों अपने घट जो घट तामें राख।—मांस नाम पदार्थों की ममता ताको खाय नाम जीते दूरि निवार। अरु मदिरा नाम मोह जासों बावलो बेसुध होजाय ताकों ज्यूं-त्यूं पुरुषार्थ करि पीवै उपजण देवे नहीं। ऐसा पुरुषार्थ जो करै ता पुरुष के मुक्ति को संशय नहीं वह मुक्तिरूप ही है।—अकर्म नाम निरहंकारता वा ब्रह्मस्वरूप। कर्म नाम साहंकारता वा ब्रह्म व्यतिरिक्त संसार देहादि सो ता कर्म कों त्यागि के वा अकर्म को ग्रहण कर ऐसा पुरुष की संगति कर्‌यां सर्व पाप दूरि होवे।—जो ऐसा कार्य नहीं करते हैं उनका जन्म लेना वृथा है। ऐसा करते हैं वेही संत-महात्मा कहे जाने के योग्य हैं॥ १८॥

पीताम्बरी टीका—पर कहिये जो संत-महात्मा पुरुष हैं तिनके ज्ञान वैराग्यादिक शुभगुणयुक्तरूप धन कूं हरै कहिये ग्रहण करिके अपने चित्तरूप भंडार में राखै। पर कहिये जो अहंकारादि जो जगत्‌रूप अनर्थ हैं तिनकी निंदा करै कहिये तिनके असत् जड औ दुःखतादिक-स्वरूप का कथन करै। पर कहिये जो सत् पुरुष हैं तिनकी

ज्ञानयुक्त जो श्रेष्ठ बुद्धि है। अथवा जो ब्रह्माकार बुद्धि है सोई मानो तिन (सत्पुरुषन) की तिय (स्त्री) है। ताकू हृदयरूप घरमांहि राखे कहिये स्थित करै।—जैसे शरीर में मांस सम्पूर्ण रहै है तैसे ब्रह्म सर्वात्मा है औ सर्वत्र परिपूर्ण है। तिस स्वरूप का जो आनद है सोई मानौ मांस है। ताकू खाय कहिये अनुभव करै। परिपूर्ण स्वरूपानद कू सहायता करनेवाला जो ज्ञान-विचारादिक है ताकू ही इहां मदिरा कहैं हैं। सो पुनि कहिये फिरि पीवै। कहिये स्मरण करै। जाके अमल में मदिरा-मदांध की न्यांई देह की भी स्मृति रहै नहीं। ऐसे उक्त परधन जो हर है परनिंदा करै है परकी स्त्री कू (धी कू) घर में राखै है। मास खावै है। औ मदिरा पीवै है। ताहि मुक्ति को सशय नांहि। कहिये सो मोक्षरूप ही है।—देहेंद्रियादि करि लौकिक व वैदिक कर्म करै। परन्तु "मैं आत्मा अकर्त्ता हू"इस निश्चयरूप अकर्म ताको गहै कहिये ग्रहण करै है। अथवा जो अक्रिय ब्रह्म है ताकू गहै कहिये "सोई मैं हू" ऐसे निश्चयरूप अकर्म ताको ग्रहण करै है। औ म "पापी हू पुन्यवान हू" इस प्रकार के कर्म के अभिमान कू छोडै। अथवा माया का कार्य जो देहादि जगत् है ताकू दृढ मिथ्या निश्चय करै है। सोई मानौ सब कर्म त्यागै है। उक्त प्रकार करि जिसने अकर्मता का ग्रहण औ सब कर्म का त्याग किया है। ताकी सगत करि पाप नसांहि कहिये नाश होवै है।—सुदरदासजी कहैं है कि जो ज्ञानी पुरुष ऐसी रहेणी करै सु सर्वजन करि वा शास्त्र करि सत कहावै। औ जो और अज्ञानी पुरुष हैं बार-बार उपजि के मरजांहि। कहिये जन्मधरिके मरण कू पावैं हैं ॥ १८ ॥

सुन्दरानन्दी टीका.—सु० दा० जीकी साखी—परधी लैकरि घर धरै परधन हरि-हरि पाइ। पर-निंदा निश दिन करै सुदर मुक्तिहि जाइ। २४।—मास भखै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध। जौ ऐसी करनी करै सुदर साई साध। २५।—श्रीकबीर पद—"सुइ पीवै ब्राह्मण मतवाला"—(कबीर ग्रथावली में पद १०)—गोरपनाथजी का पद—"म्हारौ रे वैरागी जोगी, अहिनिस भोगी रे। जोगणि सग न छांडै रै"। (गो० पद ६)।

बढई चरखा भलौ सवार्यौ फिरनै लाग्यौ नीकी भाति।
बहु मास कौ कहि समुझावै तू मेरै ढिङ्ग बैठी काति॥
नेन्हो तार न टूट कबहू पूनी घटै दिवस नहि राति।
सुन्दर विधि सो बुनै जुलाहा खासा निपजै ऊंची जाति॥ १९।

पं० लि० १, २ टीका —बढई नाम जो गुरु। गुरु बढई क्यु ? जो घाट घडि जान बढई। "भाई रे भानि घडै गुरु मेरा" इति। चरखा जिज्ञासी का चित्त सो भलो सवार्यो नाम उपदेश देकर शुद्ध कीयो। सो नीकी भाँति भले प्रकार करि फिरने लागो नाम बाह्य वृत्ति कौं छोडि करि अतर्निष्ठ हुओ।—बहु बुद्धि सास सुरति तासौ यौं कह समझावै-हे सुरति तू मेरे ढिगि हृदा भीतरि बैठिकरि निश्चल होइकरि काति नाम सुमरनरूपी आपनो कृत्य करि।—या ऐसा काति जो अत्यन्त साधन सौं महासूक्ष्म सुमरन ताको तार जो अखड वेग सो टूटै नहीं सदा एकरस रहै। तार पूर्णी के आसिर होत है जो पूणी को अत आवै तो तार को भी अत आवै। इहा सुमरनरूपी तार की पूणीं प्रीति है सो वा प्रीतिरूपा पूणीं घटण पावै नहीं नाम अखड एकरस निद्रूवणी लगी रहै।—ता शुद्ध सुमरनरूपी सूत कौं जीव जुलाहा बुणै नाम निष्कामता सौं परमेश्वर मैं अर्पण करै तब खासा जाति अतिश्रेष्ठ भक्तिरूप वस्त्र निपजै, वा भक्ति कैसीक है, अति ऊची, अति उत्तमा फलानुसधान-रहिता॥ १९॥

पीताम्बरी टीका —सर्वज्ञ औ सर्वशक्तिमान जो ईश्वर है ताकू ही इहां बढई कहिये सुतार कहै है। काहेते कि जैसे सुतार काष्ठ विषे अनेक-भांति के आकार करै है तातैं सो तिन आकारन का कर्ता है। जो कार्य का कर्ता होवै सो ता कार्य कू औ ताके उपादान कू जानिके करै है। इहा रहटिया कार्य है औ काष्ठ उपादान है तिन दोनों को सुतार जानै है। तैसे ईश्वररूप सुतार माया के विषे अनेक रचना करै है तातें सो तिस रचना का कर्ता है। औ तिस रचनारूप कार्य कू औ ताके उपादान माया कू जानै है यातें सर्वज्ञ है। औ सर्व रचना करने मैं अद्भुत सामर्थ्यवाला है तातें सर्वशक्तिमान है। तिस ईश्वर ने मनुष्य शरीररूप कार्य उत्पन्न किया है सोई मानो चरखा कहिये रहटिया है। और सर्व शरीरन तें मनुष्य शरीर भलो सवारया

कहिये उत्तम वनायो है। सो नीकी भांति कहिये अच्छी तरह से फिरने लाग्यो। सो ऐसे.—पूर्वजन्म के शुभकर्मन तें अतःकरण में उत्तम सस्कार हुवे है। तिनतें सत्सगादिक की प्राप्ति हुई है। औ सत्सगादि करि ज्ञान के साधनों में प्रवृत्ति भई है। तातें पुन २ सोई अभ्यास लग्यो है।—तिस अभ्यासवाली जो बुद्धि है सो विवेकरूप पुत्र कू जनै है। ता पुत्र की परिपक्व अवस्था हुवे तें ताका अद्वैत श्रुति के साथ सम्वन्ध करै है। सोई मानौ वहू कहिये पुत्र की पत्नी है। सो पूर्वोक्त अभ्यासयुक्त बुद्धिरूप अपनी सास कों ऐसे कहि समुझावै है—"तू मेरे ढिग (पास) बैठी कात"। कहिये लक्ष्य में स्थित होयके स्वरूप का अनुसधान कर।—स्वरूप के अनुसधानरूप जो स्मरण है। ताको प्रवाह ही मानौ तार है सो कवहू न टूटै कहिये ता स्मरण का कदै भी भग होवै नहीं। औ पूनी (रुई की पूनी) जो स्वरूपाकार वृत्ति है सो रात-दिन घटै नहीं कहिये अतराय-सहित होवै नहीं कहिये एकरस रहै है।—सुदरदासजी कहै हैं कि विधि सू कहिये श्रवण मनन औ निदिध्यासनादिक ज्ञान के साधनों करि स्वरूप के साक्षात्काररूप जुलाहा कहिये कपड़ा बुनै। तव सो खासा निपजै कहिये सर्व अनर्थ की निवृत्ति औ परमानद की प्राप्तिरूप शोभादायक होवै। याकू ही मुक्ति कहै है। सो मुक्ति दो प्रकार की है—एक जीवन्मुक्ति। दूसरी विदेहमुक्ति। शरीर सहित कू वध-भ्रम का जो अभाव होवै है सो जीवन्मुक्ति कहिये है। औ ज्ञान तें अज्ञान की निवृत्ति होयके प्रारव्ध-भाग तें अनतर स्थूलसूक्ष्म शरीराकार अज्ञान का जो चेतन में लय होवै है सो विदेहमुक्ति कहिये है। तिनमें विदेह-मुक्ति तो ज्ञानी कू अवश्य होवै है। तैसे हा भ्रम के नाश-क्षण में जीवन्मुक्ति भी सभव है। परन्तु जो शरीर के प्रारव्ध के अधिक भोग के हेतु होवैं तौ प्रवृत्ति के वलतें जीवन्मुक्ति का आनद प्राप्त होवै नहीं। सा भोगन की न्यूनता तें निवृत्ति के वल करि जीवन्मुक्ति के आनन्दरूप ऊंची जाति कहिये उत्कृष्ट प्रकार का वन्या है॥ १९॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जीकी साखी—वढई कारीगर मिल्यौ चरषा गढ्यौ वनाइ। सुदर वहू सतेवरी उलटो दियौ फिराइ। २८।—हरिदासजी निरजनी की साखी—"सूत जुलाहा वणिया"। ३। (योग मूल सु० यो०।) ।—कवीरजी का पद—"गज नो गज दस गज उन इसकी पुरिया एक वनाई। भीनी पुरिया काम

घर घर फिरै कुमारी कन्या जनें जनें सौं करती संग।
बेस्या सु तौ भई पतिव्रता एक पुरुष कै लागी अंग॥
कलियुग माँहिं सतयुग थाप्या पापी उदौ धर्म कौ भंग।
सुंदर कहै सु अर्थ हि पावै जो नीकै करि तजै अनंग॥ २०॥

न आवै जुलहा चला रिसाई"। (बीजक पद १५)।—तथा —"जा चरखा मरिजाय बढैया ना मरौ मैं कातौं सूत हजार चरखला नाँ जरै। बाबा ब्याह कराइदे अच्छा घर हित काह। अच्छा घर जो नाँ मिलै तुम ही मोहि बियाह॥ प्रथमे नगर पहुचते परिगो शोक सताप। एक अचंभौ देखौ हमने बेटी ब्याहै बाप॥ समधी के घर लमधी आया आये बहू के भाय। गौड़ चुल्हौ ने देरहे चरखा दियौ दिढाय॥ देवलोक मरि-जाहिंगे एक न मरै बढाय। यह मन-रंजन कारने चरखा दियो दिढाय॥ कहै कबीर संतो सुनो चरखा लखै न कोइ। जाको चरखा लखिपरो आवागमन न होइ"॥ (बीजक। शब्द ६८।)।—तथा शब्द—"चरखा नहीं निगोड़ा चलता॥ पांच तत्त का बना है चरखा, तीन गुनन में गलता। माल टूट तीन भया टुकड़ा टकवा होय गया टेढा। माजत-माजत हार गया है, धागा नहीं निकलता। मित्र बढैया दूर बसतु है, किसके घर दे आया। ठोकत-ठोकत हार गया है, तौभी नहीं सम्हलता। कहै कबीर सुनौ भाई साधो, जले बिना नहिं छुटता"॥ (शब्दावली भाग २। भेद का २७।)।—तथा पद—"षाड बुणै कोली में बैठी, मैं खूटा मैं गाडी। ताँणै बाँणै पडी अनवासी, सूत कहै बुणि गाढो"। (कबीर ग्रंथावली में पद १० से)।—गोरषनाथजी का पद—"रहट यहत्र सालवा, सूलै काटा भागा"। (गो० पद ५ में से)।—तथा—"बहू ब्याई नै सासू जाई"। (और देखो वि० सवैया १७ भी)। (गो० पद ३९ में से)।

इ० लि० १-२ टीका—कवारी कन्या नाम (सतगुरु के) दृढ उपदेश बिना जिज्ञासी की कची जो बुद्धि-सो घर-घर फिरै नाम अनेक सत शास्त्रा की सभा मगति तामे जणें-जणें सों नाम अनेक मतमतातरा सों लागती फिरै।—वेस्या नाम पदार्थों में विचरिती फिरै ऐसी जो व्यभिचारिणी बुद्धि तानैं पति जो आपको प्रेरक पालक स्वामी ऐसा जो परमेश्वरजी ताको व्रत धारण कर्यो नाम वृत्तिनिधारि निश्चल होय

एक पुरुष परमात्मा सों ही लागी।—कलियुग नाम मलीन कर्मों में लीन ऐसी जो काया तामें सतयुगरूप ज्ञान-ध्यान-सत्यधर्म थाप्यो नाम थिर कियो। तामें पापी नाम इद्रियों को मारनेवाला इन्द्रियजीत ताका उदै नाम वह सदा सुखी रहै। अरु धर्म नाम (साधारण) इन्द्रियों को पोषण ताको भग नाम नाश (सो उसके हुए) सदा सुखी रहै।—सुंदरदासजी कहै हैं—या का अर्थ कों सो पावै जो नीकै नाम मनसा-वाचा-कर्मणा भले प्रकार करि अनग नाम काम कों तजै नाम त्यागै ॥ २० ॥

पीताम्बरी टीका – आत्मजिज्ञासा-वाली जो बुद्धि है सोई मानो कुमारी कन्या (कुमारिका) है। सो अनेक सत्पुरुषों अथवा ज्ञान के अष्टसाधनरूप अनेक जने-जने सू सग कहिये प्रीति करती घर-घर फिरै है कहिये अनेक शास्त्रन में अथवा तीन शरीरन में तीन अवस्थाओं में औ पचकोशन में विचार करने कू प्रवर्ते है।—जो ब्रह्माकार बुद्धि की वृत्ति है सोई मानौ वेस्या है। जैसे वेस्या व्यभिचारिनी होवै है यातैं एक पुरुष के आश्रय होवै नहीं। तैसे वृत्ति भी अस्थिर होवै है। तातैं एक विषय के आकार रहै नहीं। ऐसे अज्ञानकाल में यद्यपि वृत्ति का चाचल्य देखिये है। तथापि ज्ञान हुये पीछे सो वृत्ति एकाग्र होवै है। जैसे वेस्या कू भी किसी एक पुरुष के ऊपर प्यार होइ जावै है तो और सब पुरुषन का आश्रय छोड़िके तिसी के साथ लगी रहै है। तैसे वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब विषयन में प्रवृत्त नहीं होवै किंतु एक स्वरूप में ही स्थित होवै है। ऐसे वेस्या का औ वृत्ति का सादृश्य होने तैं वृत्ति कू वेस्या कही है। फिर जैसे वेस्या किसी एक पुरुष के वश होवै है तब ताका पातिव्रत भी सिद्ध होवै है। तैसे ही वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब ताकी एकाग्रता भी सिद्ध होवै है।—इस हेतु तें ही मूल में सो तो पतिवरता भई औ एक पुरुष के अग लागी ऐसे कह्या है।—रजोगुण औ तमोगुण की वृत्तिरूप मलिनधर्मवाला जो मन है सोई मानौं कलियुग है। काहेतें कि कलियुग में मलीनता की वृद्धि होवै है। तैसे ही मलीनता-युक्त मन होने तैं कलियुग का औ मन का सादृश्य कह्या है। ता माही विवेक, वैराग्य, क्षमा, धैर्य, उदारता आदि वृत्तिरूप श्रेष्ठधर्म-रूप ही मानौ सतयुग थाप्यो। काहेतें कि सतयुग में श्रेष्ठ धर्मन की वृद्धि होवै है तातें श्रेष्ठ धर्म-रूप ही सतयुग कह्या है। तामे पापी का उदय होवै है। काहे तैं कि जो नाश-

विप्र रसोई करनै लागौ चौका भीतरि बैठौ आइ।
लकरी माहे चूल्हा दीयौ रोटी ऊपर तवा चढाइ॥
पिचरी माँहें हडिया राधी सालन आक धतूरा पाइ।
सुदर जीमत अति सुख पायौ अबकै भोजन कियौ अघाइ॥ २१ ॥

करनेवाला होवे है सो पापी कहिये है। सर्व अविद्या का औ ताके कार्य का नाश करनेवाला। ज्ञान है तातें ताकू ही पापी कहैं हैं। ता ज्ञानरूप पापी की पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्मरूप सतयुग मे वृद्धि होवै है। औ धर्म को भग होवै है काहेतें कि जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है। अविद्या औ ताका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुग में नाश होवे है।—सुदरदासजी कहते हैं कि जो पुरुष नीके करि (अच्छी तरह से) अनग (कामदेव) कू भजै (नोट—पीताम्बरजी ने तजै की जगह भजै ऐसा पाठ विपर्यय से चमत्कार बढ़ाने को किया) सो याका अर्थ पावै। याका भाव यह है—जाका अग नहीं है ताकू अनग कहे हैं। ऐसे कामदेव की न्याई निरवयव जो ब्रह्म है ताकू भज कहिये जो निर्गुण उपासना करै सो अच्छी तरह सें मोक्षरूप अर्थ कू पावै॥ २० ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सु० दा० जीकी साखी—सुदर सबही सौं मिली कन्या अपन कुमारि। वेस्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागिन नारि। २९।—कलियुग मैं सतजुग कियौ सुदर उलटो गग। पापी भये सु ऊबरे धर्मी हूये भग। ३०।—कबीरजी का पद—"कुबिजा पुरुष गले इक लागी, पूजि न मनकी साधा। करत विचार जन्म गो खीना, ई तन रहल असाधा"। (बीजक शब्द ५८ में)।—तथा—"एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जत जीव की नारी। खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।—(क० ग्र० पद ३७०।)।

ह० लि० १–२ टीका:—विप्र जो (वेदादि का ज्ञान प्राप्त) जीव सो परम शुद्ध हो सर्व कर्म काल को मारि अपने हित अपरस सों जब रसोई करनै लागो नाम भाव-भक्ति करनैं को लाग्यो तब चोका जो शुद्ध निर्विकार किया अतःकरण चतुष्टय तामें आइकै बैठ्यो नाम निश्चल हुवो।—लकरी नाम लै तामें चूल्हा नाम चित्त दीयौ

नाम लगायो निश्चल कीयो । रोटी जो रटणि ता ऊपर तामें तत्वज्ञान का तवा चढाया परमेश्वरजी सौं रटणि लागी तव तत्वज्ञान प्राप्त हुवो । खिचरी जो भक्ति और ज्ञान की मिश्रता तामें हडिया नाम काया सो रांधी नाम ता भक्ति-ज्ञान में लीनकरि शुद्ध करी । अरु ता खिचरी की साथि सालन नाम साग सो आक धतूरारूप, पचना जिनका अतिकठिन, जो काम-क्रोधादि सो सव खाया नाम सर्व जीतकरि निवृत्त किया ।—जीमत नाम इनको जीतितां अरु ज्ञानभक्ति की प्राप्ति होतां अति वड़ो सुख पायो नाम वहुत आनद हुवो । अवकै या मनुष्यजन्म में आय अघाय नाम तृप्त होकरि भोजन कियो नाम भक्तिज्ञान सौं कार्य सिद्ध कीयौ नाम भगवत् की प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥

पीताम्वरी टीका—जो शुद्ध अंत करणवाला जिज्ञासु जीव है सोई मानौं विप्र (ब्राह्मण) है । सो मोक्ष-सम्पादनरूप रसोई करने लाग्यो । तव विवेकादि च्यारिसाधन-रूप चोका के भीतर आइके वैठो । कहिये साधन-सम्पन्न भयो ।—नानाप्रकार के जो अनेक कर्म हैं सोई मानौं अनेक लकरिआं हैं । ता माहिं ब्रह्मोपदेशरूपी चूल्हा दीयो । तिसने ज्ञानरूप अग्नि करि कर्मरूप लकरिआं जलाय डाली । तव प्रारब्ध फल की भोग्यतारूप रोटी के ऊपर कर्मवशात् होने के निश्चयरूप तवा कू चढाइ दियो । अर्थात् जव ब्रह्मोपदेशजन्य ज्ञानतैं सव कर्मन का नाश होवै है तव तिस ज्ञानी का ऐसा निश्चय होवै है—"मैं अकर्त्ता हू अभोक्ता हू । जो शेष प्रारब्ध कर्म रहे हैं सो जौलौं भोगन का आयतन शरीर है तौलौं यथावत् भोग देहू । ताकी चिता मेरे कू कर्त्तव्य नहीं" ।—वैराग्यरूप जल, वोधरूप चांवल और उपशमरूप मूग । इन तीनू की मिश्रतारूप खिचरी है । ता मांही हडिया कहिये भोगन विषे दीनता, सत्यता की भ्रांति औ प्रतीति आदि धर्मयुक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपचरूप जो माया है सो रांधी कहिये वाधित करी । औ अनेक रागद्वेषादि दुर्वासनारूप जो महा-उग्र कटुक—आक औ धतूरा हैं तिनका सालन (शाक) वनाइ के खाइ कहिये जीति कें ।—सुन्दरदासजी कहे हैं कि कार्य-सहित अज्ञान की निवृत्तिरूप रसोई, वासना की निवृत्तिरूप शाक सहित जीमत कहिये अनुभव करिके अति सुख पायो कहिये परमा-नन्द की प्राप्ति भई । औ अवके कहिये इस मनुष्य-शरीर में ही ईश्वर, श्रुति, गुरु-औ स्व-अत करण इन सर्व की कृपा से ज्ञान पाइके अघाइ कहिये ससार के भोगन की

तृष्णा करि रहिततारूप तृप्ति कूं पायके जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनद का जो अनुभव है तद्रूप भोजन कियो । याका भाव यह है:—पूर्व अज्ञानकाल मे अनेकदेह प्राप्त हुवे थे तिनमें विषयानद का अनुभव तो बहुत किया है परन्तु स्वरूपानन्द का अनुभव कदे भी हुवा नहीं है । काहेतें कि तिस काल में मूला अज्ञानरूप प्रतिवध था । औ पश्चात् विदेह-मोक्ष में भी सर्वदु:खन की निवृत्ति पूर्वक निरावण, परिपूर्ण आनदस्वरूप करि अवस्थित होवै है । परन्तु अस्तित्वव्यवहार की हेतु जो वृत्ति है ताका अभाव होने तें जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का अनुभव नहीं होवै है । यातें ज्ञानयुक्त देह मे ही जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दरूप विद्यानन्द का अनुभव होने कू शक्य है । तातें सुखेच्छु विद्वान् करि विषयानद कूं त्यागि के ब्रह्म-विचार द्वारा पूर्वोक्त आनन्द का अनुभव अवश्य कर्त्तव्य है । यद्यपि सुषुप्त्यादि में भी आनन्द तो है । तथापि सो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक नहीं है, तातें विलक्षण सुख का हेतु नहीं है । जो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक होवै सो विलक्षण आनन्द कहिये है । इस लक्षण की यह पदकृति है —सुषुप्ति में जो आनन्द है सो आवरण रहित है । औ विषय में जो आनद है सो निरावरण तो है तथापि विषय की प्राप्तिक्षण में जब अतरमुख वृत्ति होवै है तब तामें स्वरूपानन्द का प्रतिबिंब पड़ै है यातें परिपूर्ण नहीं किंतु एक-देश-वृत्ति होनेतें परिच्छिन्न है । तैसे ही पूर्णानद तो अज्ञानी का स्वरूप भी है, तथापि सो निरावरण औ अभिमुख वृत्ति सहित नहीं । औ जो विदेहमुक्ति में निरावरण पूर्णानद है सो सवृत्तिक नहीं किंतु अवृत्तिक है । यातें निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक आनन्दरूप विलक्षणानन्द का लक्षण किये से कहू भी अतिव्याप्ति आदि दोष नहीं है ॥ २१ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सु० दा० जोकी साखी—"विप्र रसोई करत है चौके काढीकार । लकरी मैं चूल्हा दियौ सुदर लगी न वार । ३१ ।—रोटी ऊपर पोइकैं तवा चढ़ायौ आंनि । खिचरी माँहें हडिका सुदर रांधी जांनि । ३२ ।—गोरषनाथजी का पद—"भगरी ऊपरि चूल्हौ धूधावै, पोवणहारी कूं रोटी पावै" । (गो० पद ३९ में से) ।

बैल उलटि नाइक कौं लायौ वस्तु मांहिं भरि गौंनि अपार।
भली भाति कौ सौदा कीयौ आइ दिसतर या ससार॥
नाइकनी पुनि हरषत डोलै मोहि मिल्यौ नीकौ भरतार।
पूजी जाइ साह कौं सौपी सुंदर सिरतें उतस्या भार॥ २२॥

ह० लि० १-२ टीका:—बैल भारवाहक जो अज्ञान-अवस्था में अहकर्तृत्व-पणा को अभिमानी सर्वकर्मन को अधिकारी वणि रह्यो-सोजीव। तानैं नायक नाम जो अज्ञान-अवस्था मे मुखिया वणि रह्यो जो मन ताकों लायो नाम विवेक कों पायकरि कर्तृत्वादिक का सर्व भार मनहीं के उपरि नाख्यो। 'मन उन्मेष जगत भयो विन उन्मेष नसाइ" इति।—ऐसो निरभिमानी शुद्ध जीव तानैं वस्तु नाम परमेश्वर में भाव धारण कियो ता भावरूपी वस्तु में अपार गुण हैं शमदम सपति ज्ञान वाही सों सर्व-सिद्धि होवै है।—ससाररूपी दिशंतर देश नाम मनुष्य जन्म ताकों पायकरि भली-भांति का सौदा नाम परमेश्वरजी में भावभक्ति धारणारूप अति-श्रेष्ठ सौदा कीयो। नायकनी मनसारूप अंतःकरण की वृत्ति सो हर्षायमान हुई शुभकार्यों में वर्तै है। मो कों नीको नाम अतिश्रेष्ठ शुद्ध जो मन सो भर्त्तार मिल्यो नाम (मैंने) पायो। पूजी नाम सर्व सौंज तन-मन प्राण सो साह परमेश्वरजी ताकों सौंपी समर्पण करी। तव सर्वभार जन्म-मरण कर्मफल सुख-दुःख शोक चिंता सर्व दूरि हुवा सुखी भया, यौं भार उतर्‌यो॥ २२॥

पीताम्बरी टीका – साभास अंतःकरण-विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है सोई मानों बैल (बलीवर्द) है। काहेतें कि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, राग, द्वेष इत्यादिक जो अंतःकरण के धर्म्म हैं तैसे ही प्राण, इंद्रिय औ देह के जो धर्म्म हैं तिसरूप भार कू अज्ञानकाल में उठाता था। यातें ताकू बैल कह्या। तिसने उलटि के कहिये विचारद्वारा निजस्वरूप कू जानिके पूर्व अविवेक काल में तादात्म्य-अध्यास करि जीव कू अपने वश करिके वर्तावनेहारा जो स्थूल सूक्ष्म सघात है सोई मानों नायक है। ताकू लायो कहिये अज्ञानकाल में अध्यास करि अंतःकरण, प्राण औ इन्द्रियन के धर्म जो जीवने अपने मान लिये थे सो ज्ञानकाल में यथायोग्य सघात के जानि लिये।—सर्व

का अधिष्ठान जो ब्रह्म है सोई मानों वस्तु है, ता मांहिं अपार (अगणित) गुण भरि, कहिये अपने-अपने जाति, सम्बन्ध औ क्रिया आदिक धर्मरूप जो पदार्थ है सो जिनमें भर हैं, औ जो अहंकारादि अनात्मरूप कपड़े की बनी है। सोई मानो थैलियां है, सो पूर्वोक्त ब्रह्मरूप वस्तु में, जैसे साक्षी में स्वप्न के पदार्थ अध्यस्त हैं तैसे अध्यस्त जानं। प्रारब्ध ही मानो दिसतर है। काहेतें कि यह जो ससाररूप देश है सो ब्रह्मरूप देशसे भिन्न है तातें देशांतर कह्या है। यामें आयके भलीभांति कौं सौदा कीयौ। सो सौदा यह हैः—जब ज्ञान की प्राप्ति होवै है तब सर्व-अनर्थ की निवृत्ति औ परमानद की प्राप्ति होवै है याकू ही मुक्ति वा मोक्ष कहै हैं, सोई मानों एक व्यापार है। तिनके निमित्त तें सर्व अनात्मरूप धनका त्याग किया औ परमानन्दरप माल अपना करि लिया।—दृढ निश्चय स्वरूप जो बुद्धि है सोई मानों नायकनी है सा पुनि हरषत भाल कहिये फिरि आनन्द कू प्राप्त भई, औ मुखसे कहने लगी कि मोहिनाको (श्रेष्ठ) भरतार (पति) मिल्यौ। इहां वेदांत-सिद्धांतरूप पति कह्यो है सो निश्चय स्वरूप बुद्धि कू प्राप्त भयो। मूल में जो पुनि शब्द है ताका अर्थ यह है— निश्चयस्वरूप बुद्धिरप जो नायकनी है सो प्रथम जब द्वैत-सिद्धांत के आधीन भई थी तब तिसी पतिकरि आनदित होइ रही थी। ताकू जब (अब) अद्वैत-सिद्धांत-रूप पति की प्राप्ति भई तब पूर्व पति का त्याग करिके फिरि आनन्दवान भई। तिस अद्वैत-सिद्धात-रूप साइ (साईं=पति) कू, तिसके पास जाइके अनतवासना-रूप पूजी सौंप दीनी। जातें जाका जीवन होवै सो ताकी पूजी कहिये है। अनत-कर्मन की वासना बिना बुद्धि की स्थिति होवै नहीं तातें सो बुद्धि की पूजी कहिये जीवन है। सो ही अद्वैत-सिद्धांत-रूप ज्ञान की प्राप्ति भये तें बुद्धि सर्व वासना का त्याग करै है। काहेतें कि ज्ञान करि सर्व कर्मनका नाश होवै है। कर्मन का नाश भये तें तज्जन्य वासना का भी नाश होवै है। सोई मानों सौंपना है। पति कू अपनी पजी देने का कारण दिखावैं हैं—जौंलौं बुद्धि में अनन्त वासना भरी थी तौंलौं सो अपने चिदाभासरूप शिर पर बड़ो बोझो थो। सो भार सिरतैं उतर्या। कहिये चिदाभासरूप जीव कू अपने स्वरूप के ज्ञानद्वारा सर्व वासना तें मुक्त कियो। ऐसे सुन्दरदासजी कहै हैं॥ २२॥

वनिक एक वनिजी कौं आयौ परें तावरा भारी भेंठि।
भली वस्तु कछु लीनी दीनी पेंचि गठिरिया बाधी ऐंठि॥
सोदा कियौ चल्यौ पुनि घर कौं लेषा कियौ वरीतर वैठि।
सुंदर साह षुसी अति हूवा वैल गया पूजी मे पैठि॥२३॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—नाइक ल्यौं उलटि करि वैल विचारै आइ। गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ। २५।—कबीरजी का पद—"वैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कू लै गई बिलाई।" (कबीर प्रन्थावली पद ११ से)।—तथा—"मेरे जैसे वनिज सौ कवन काज, जह मूल घटै सिरि वधै व्याज। नाइक एक वनिजारे पांच, वैल पचीस कौ सग साथ। नव वहियां दस गौनि आहि, कसनि वहत्तर लागे ताहि। सात सूत मिलि वनिज कीन्ह, कर्म पयादो सग लीन्ह। तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है वनिजवा वनिज झारि। वनिज खुटानौं पूंजी टूटि, घाटू दह दिसि गयौ फूटि। कहै कबीर यहु जनम वाद। सहजि समांनू रहो लाद"। (क० ग्र०। पद ३८३।) [नोट—इस पद को आगे के सवैया २३ से भी मिलावें]—गोरषनाथजी का पद—"गाडि लै पड़वा वाधि लै पूटा, चलैगा दमामा वाजैगा ऊटा"। (गो० पद ३९)।—

ह० लि० १—२ टीका—वनिक व्योपारीरूप जो जीव सो या ससाररूपी दिशान्तर में सुकृत भक्ति वनिजी को आयो तामें प्राचीन मलिन-कर्मन का फलहाणि जो काम क्रोधादिक सोई तावड़ो नाम धूप तपै भारी भेंठि नाम अतिगति (भैर भट) तपै अर्थात् कछू शुभ कारिज में अवसाण आवण दे नहीं।—तथापि जिहिं तिहिं प्रकार पुरुषार्थ करिकैं भली वस्तु कछु लीनी-दीनी लीनी नांव लीया भजन कीया, दीनी भी शुभ उपदेश दीया। यों करि शुभगुण भक्तिरूप गठडिया पोट ऐंठि नाम काठो हृदा में दृढ़ करिकैं बांधी नाम सौंज को ठगाई नहीं।—सोदा नाम भजन ध्यान शुभगुणां कों कीयो घर परमेश्वरजी तामें चल्यो भक्तिभाव करिकै। वरी नाम वटवृक्ष सो अति विस्ताररूप। वुद्धि ताके नीचे नाम बुद्धि में थिर होय करि लेखा नाम विचार कीयो भगवत् में चित्त लगायो।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि तव साह जो जीव

(या बात सों) बहुत खुशी हुआ कि बैल जो वपु शरीर सो पूजी जो परमेश्वरजी तामें पैठि गयो नाम पायो गयो। अर्थ यह जो परमेश्वरजी की प्राप्ति मे जन्म मरण सर्व गया। इत्यर्थः ॥ २३ ॥

पीताम्बरी टीका:—जीवरूप ही मानो एक बनिक है सो इस ससाररूप प्रदेश मे नाना प्रकार के कर्म-फलन के भोगरूप बनिजी करने कों आयो कहिये मनुष्य देह धारण कियो। तिस प्रदेश मे त्रिविध तापरूप तावरा (धूप) परे या ताके बल तें भारी भैठ कहिये अतिशय तपने लग्यो।—साधन सहित जो ज्ञानरूप वस्तु है सो भली कहिये अत्युत्तम है। सो सद्गुरु औ सत्शास्त्ररूप अन्य व्यापारिन तें लीनी अर्थात ज्ञान पाया। इहा कछु शब्द का अर्थ ऐसे है:—उक्त सद्गुरु औ सत्-शास्त्रन-रूप अन्य व्यापारीन तें जो ज्ञानरूप वस्तु लीजिये है सो तिन द्वारा तत्व मस्यादि महावाक्यजन्य उपदेश करि अनुभव मात्र करिये है, कछु और वस्तु की न्याई इस वस्तु का ग्रहण नहीं है। काहेतें कि आकारवाले पदार्थ का सम्यक्ता तें स्थूल शरीर करि ग्रहण होवे है। औ निराकार पदार्थ का तो सूक्ष्म शरीर करि तिसमे अनुभव मात्र का ग्रहण होवे है। तातें सो कछु कहिये थोड़ा कह्या है। तैसे ही कछु वस्तु दीनी, सो वस्तु यह है:—तन-मन औ धनरूपी मानो द्रव्य है। तिम द्रव्यरूप कछु वस्तु सद्गुरु औ सत्-शास्त्ररूप व्यापारीन कू दीनी, अर्थात् तन मन औ धन का अर्पन किया। इहां कछु शब्द का ऊपर की न्याई ही अर्थ है। काहेते कि वास्तव करि तन-मन औ धन अर्पन नही होवे है किन्तु यह मिथ्या वस्तु होनेतें ताके अर्पन का व्यवहार होवे है। तातें कछु कह्या है।—उक्त वस्तु लेके ताकी पट् प्रमाणरूपी रस्सी करि खैंचि गठरिया बांधी। कहिये अबाधित अर्थ कू विषय करनेवाला जा स्मृति से भिन्न ज्ञान (प्रमा) है ताका निश्चय किया। मूल मे जा ऐंठि शब्द है ताका अर्थ यह है: ऐंठि कहिये अच्छी तरह से विचार करिके प्रमाज्ञान का अंगीकार किया है। औ मूल मे जो गठरिया शब्द है सो बहुवाचक है तातें तिस वस्तु की अनेक गठरियां कही चाहिये सो कहैं हैं—प्रमा के कारण जो पट्-प्रमाण है सोई मानों पट्-बन्धन है। तिनमें एक एक प्रमाणरूप बन्धन करि एक एक गठरी बांधी गई। काहेतें—जैसे "चार्वाक" जो है सो एक प्रत्यक्ष प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है।

'कणाद' औ सुगतमत के अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान इन दो प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै हैं। सांख्य-शास्त्र का कर्त्ता "कपिल" प्रत्यक्ष अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। न्याय शास्त्र का कर्त्ता जो "गौतम" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान शाब्दी औ उपमान इन चारि प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। पूर्व-मीमांसा का एकदेशी जो "भट्ट" का शिष्य "प्रभाकर" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान औ अर्थापत्ति इन पांच प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। औ पूर्व मीमांसक जो "भट्ट" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि इन षट् प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। तैसे पूर्व मीमांसक भट्ट की न्याई जो षट्-प्रमाण करि प्रमा की सिद्धता है। सो वेदान्त शास्त्र में भी अंगीकार करी है। ऐसे एक एक प्रमाण करि जो प्रमा की सिद्धता है सोई मानों भिन्न गठरिया हैं।—उक्त ज्ञानरूप वस्तु का जीवरूप व्यापारी ने मोक्षरूप लाभ होने के वास्तै उक्त रीति सें सौदा किया। तब पुनि कहिये फेरि अपने पूर्वस्थानरूप घर कू चल्यो अर्थात् सच्चिदानन्द लक्षणवाला जो ब्रह्म-स्वरूप है ताका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने लाग्यो। औ वारि कहिये जो ब्रह्मानन्दरूप पानी है ताके तर कहिये निममत्वरूप तले में बैठ के लेखा कियो। सो लेखा यह है.—श्रवण, मनन औ निदिध्यासन करि जब परमानन्दरूप मोक्ष होवै है, तब वह ज्ञानी विचार करै है कि पूर्वोक्त वस्तु का जो मैंने लेन देन किया, सो न तौ लेन है न कछु देन है। मै जो तन, मन, धनरूप वस्तु दीनी तामें कछु वस्तुता नहीं है। तैसें ही जो ज्ञानरूप वस्तु लीनी सो मेरे सें कछु अन्य नहीं थीं। तातें विचार किये तें न कछु दिया है न कछु लिया है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि साह जो पूर्वोक्त जीवरूप वनिया है सो अति षुसी कहिये निरतिशय आनन्दवान हुवा। काहेतें कि देहादिक भार का उठानेवाला जो अहंकाररूप वैल था सो आत्मधनरूप पूंजी में पैठ गया। अर्थात् शरीरत्रय (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) के अभिमानरूप अनर्थ की निवृत्ति भई ॥ २३ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुन्दरदासजी ने इस पर साषी नहीं कही।—गोरष-नाथजी का वचन—"तहां बणिज कराई, बिण हट्टाई, माणिक लाधो मम्हाई। को राजाई, मेरौ भाई, वाणिक पुत्रा बिणजंता"। (गो० छन्द १६)

पहराइत घर मुस्यौ साहु कौ रक्षा करनै लागो चोर।
कोतवाल काठौ करि वाध्यौ छूटै नहीं साझ अरु भोर॥
राजा गाव छोडि करि भागौ हूवौ सकल जगत मैं सोर
परजा सुखी भई नगरी मे सुन्दर कोई जुलम न जोर॥ २४॥

ह० लि० १—२ टीका.—पहराइत्त जो आपका कार्य में सदा जागता तत्पर रहै आलस नहीं ऐसा जो काम क्रोध इन्द्रिय वृत्यादि जिना नैं साहु नाम जीव ताको घर मुस्यो सर्व शुभ गुणां को नाश करि दियो। अर चोर जो परमेस्वरजी को नाम—"नारायणा नाम नरो नराणां प्रसिद्ध चौरः कथित. पृथिव्याम्" इति भारते—सो रक्षा करणे लागो शुभगुणां की।—कोतवाल नाम अज्ञान काल मे सर्व काम को कर्त्ता मन ताको काठो करि पकड्यो निश्चल कर्यो, सो चोर (परमेश्वर) कोतवाल (मन) को निश्चल रहै ऐसो कियो विकारां में वाकी प्रवृत्ति होय सकै नहीं।—तब राजा नाम रजोगुण हो सो गांव नाम हृदो वा काया ताकौं छोड़ि करि भाग्यो नाम निवृत्ति हुवो। इतनी वात हुई जब बनी तब वा पुरुष को सपूर्ण ससार मे सोर हुवो नाम वा पुरुष को सर्व ससार में जस प्रवर्त्त हुवो।—प्रजा नाम दैवी-सपदा का गुण, क्षमा दयाशील सतोष, ये सर्व ही वा हृदा वा कायरूपी नगरी मे सदा सुख सो बसै है, जुल्म न जोर, किसी प्रकार की उपाधि नहीं सदाकाल शांतवृत्ति आनन्द रहै है॥ २४॥

पी० टीका—जीवरूप शाह कहिये साहूकार है। ता शाहके अंतःकरणरूप घरमे पहराइत (पहरा करने वाला) जो प्रवृत्ति का परिवार काम-क्रोधादिक सिपाही है। वे आत्म-धन की चोरी करने के वास्ते घुसे। काहेतें जौलौं अज्ञानजन्य कामक्रोधादिक अतःकरण मे रहै हैं तौलौं वही चौकी करनेवाले सिपाई आत्मवस्तु और किसी कू लेने देवें नहीं है किन्तु आप तिस अतःकरणरूप गृह मे पैठिके वे आत्मधन अपने स्वाधीन करि ताकू आवरणरूप पेटी में छिपाइ देवै है। औ शील-क्षमादिक जो निवृत्ति का परिवार है सोई मानो चोर है। काहेतें, वे आत्मवस्तु कू उक्त चौकीवालों सें ले करिके अपने स्वाधीन रखने कू चाहते हैं।। सो आत्मधनयुक्त

अत करणरूप गृहकी रक्षा करने लागे, अर्थात् पूर्वोक्त दुर्गुण कू अत करण तैं निकासि के आत्मा कू अज्ञानकृत आवारणतैं रहित करने लागे ।—इस वातकी जीवरूप साहूकार कू खवर होते ही, सो अहकार-रूप कोटवाल के पास फिरियाद करने कू गयो औ कहने लग्यो कि मेरे धन की रक्षा करनेवाले जो काम-क्रोधादिक हैं वे सव मिलिके मेरे घर में चोरी करने लगे, औ जो शीलक्षमादिक इस धन की चोरी करनेवाले हैं सो रक्षा करने लगे । तिन दोनों पक्षन मे अति कलह हुवा है सो कैसे निवृत्त होवैगा ? औ तिस कलह की शांति के वास्तै मेरे कू क्या कर्त्तव्य है ? सो कृपा करिके कहिये । तव वो कोटवाल वोला कि—शील-क्षमादिक चोरन कू निकासि देहु औ कामक्रोधादिक पहराइतन की रक्षा करहु । काहेतें, शील-क्षमादिकन के स्वाधीन जो आत्मधन होवैगा तो इस धन करि नानाप्रकार के विपयसुख तेरे से भोग्या नहीं जावैगा, औ यह धन कामक्रोधादिकन के स्वाधीन रहैगा तौ वे सव विपयसुख भोगे जावैंगे । यह वात सुनिके वो जीवरूप साहूकार किसी साधुरूप वकील कू पूछने लग्यो कि अब मेरे कू क्या कर्त्तव्य है ? तव वे साधु निष्पक्षपात वुद्धि करिके कहने लगे कि कामक्रोधादिकन कू अपने घरतें निकासि देहु औ शीलक्षमादिकन का अगीकार करहु, क्यूकि वे तेरे शत्रु हैं औ ये तेरे मित्र हैं । वे तेरी पूजी का नाश करैंगे औ ये तेरी पूजी की रक्षा करैंगे । औ अहकाररूप कोटवाल है सो कामक्रोधादिकन का पक्ष करै है काहेतैं कि तिनकी उत्पत्ति अहकार तें हुई है । तातें पक्षपात करनेवाला जो कोटवाल है ताकू ही शिक्षा करनी चाहिये । यह वात सुनने ही साहूकार क्रोधायमान होयके तिस मिथ्या अहंकार-रूप कोटवाल कू सत्यतारूप काठी करि वांध्यौ, कहिये काष्ट के वधन में डाल दियो, औ ताके ऊपर सतसगरूप पहरा-करनेवाला ऐसा मजवूत जमादार रक्खा कि वो तहां से सांझ अरु भोर (सध्या औ प्रात काल) आदि किसी समय में छूटै नहीं ।—यह वात सुनिके देहादि सघात के अभिमान-रूप गाम (नगरी) कू छोडिके मूलाज्ञानरूप राजा भाग्यो ताको सकल जगत में सोर हुवो । काहेतें कि वो अज्ञान फिर कितहू देखने में आयो नहीं ।—ऐसे उक्त प्रकार करि चोरन की न्यांई धन चोरने कू पहराइत घरमें घुसे औ धनकी चोरी करनेवाले रक्षा करने लगे । औ गाम का कोटवाल साहूकार के हाथ तें वधन कू

राजा फिरै विपति कौ मार्यौ घर घर टुकरा मागै भीष।
पाइ पयादौ निशि दिन डोलै घोरा चालि सकै नहि वीष॥
आक अरंड की लकरी चूंषै छाडै वहुत रस भरे ईष।
सुंदर कोउ जगत मैं विरलौ या मूरष कौं लावै सीष॥ २५॥

पाया। सो वात सुनिके तहा का राजा गांव छोड़िके भाग गया। तव तिस नगरी में सव श्रेष्ठगुणरूप परजा सुखी भई। सुन्दरदासजी कहैं हैं कि न कोई जुलम हुवा। न किसी का किसीपर जोर चल्या॥ २४॥

सुन्दरानन्दी टीका.—सुन्दरदासजी की साखी—"पहराइत घरकौं मुस साह न जानै कोइ। चोर आइ रक्षा करै सुन्दर तव सुख होइ"। ३३।—"कोतवाल कौं पकरि के काठौं राष्यौ जूरि। राजा भाग्यौ गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि"। ३४।—हरिदासजी निरजनी—"साह चोर के मन्दिर पैठा। साह रहै तजि भागा।"। ५। (योगमूल) कबीरजी का पद—"को अस करै नगर कोतवलिया। मास फैलाय गीध रखवलिया। मूस भो नाव मजर कडहरिया। सोवै दादुर सर्प पहरिया"। (बीजक पद ९५ से)।—गोरखनाथजी का पद—"ढूकिलै कूकर भूसिलै चोर, काढै धणी पुकारै ढोर"। (गो० पद० ३९ से)

ह० लि० १-२ टीका:—राजा नाम जीव वा मन, सो विपति नाम अनेक प्रकार की तृष्णारूप आपदा ताको मार्यो फिरै नाम चंचल हुवो रहै, घर-घर नवद्वार तिनां का विषय सुख तिना को टुकरो किंचित्-मात्र जो अंश ताकी प्राप्ति होवै सोई टुकरो ताकौं मागतो डोलै, फिरै नवद्वारा में जहा-तहां फिरै।—पाय पयादो नाम आपकी आपकौं संभाल नहीं रहै ऐसी तरह भोगां में अति आतुर चचल होयकै फिरै है। अरु वाको घोरा नाम शरीर जो शक्ति-हीन होय गयो तासों एक पगमात्र चल्यो जाय नहीं तो पण मन तो अति चचल ही रहै।—आक अरंड तुलिया लोक-परलोक में दुःखदायीरूप जो विषय विकार इन्द्रियां का भोग क्रोध-मोहादिक तिनही को अगीकार करै यों या मन को स्वभाव है। अरु जो महा अमृतरूप या लोक परलोक में सुखदाई मिष्टरस-भर्या ईष तुल्य जो भगवत भजन ध्यानादि तिन को न

देवै ऐसो मलीन या मन को स्वभाव है ।—ऐसो मूरख जो यह मन महा अजमन को सीख देकरि शुद्ध करै ऐसा ऐसा पुरुष जगत में विरला है, ऐसे मनकों जीतनों अति कठिन है, जब भगवत् कृपा होय तब मन शुद्ध होय, तामें भगवत् कृपा के अर्थ भजन ध्यान अखड करनों, यही उपाय है अवर नहीं ॥ २५ ॥

पीताम्बरी टीका - चेतन के प्रतिबिंब-युक्त जो मन है ताकों यहां राजा कहै है । सो आशा तृष्णा अभिलाषा औ कामनादि भेद करि भिन्न २ इच्छारूप विपत्ति (दु ख) को मार्‌यो चौदहभुवनरूप भिन्न २ ग्रहन में, अथवा दश-इन्द्रिय-रूप प्रति-ग्रह मे, अथवा राज्यादि पदवी-रूप घर-घर में फिरै कहिये भटकै है । औ परिच्छिन्न विषयभोग-रूप टुकरा की भीष मांगै है ।—शुभ औ अशुभ जो मनोभाव हैं सोई मानौ दो पाँव हैं तिनके अनुसार नानाप्रकार की वृत्तिरूप गति करि निशि (स्वप्न में) दिन (जाग्रत में) पाइ पियादो डोलै है । अर्थात् स्थूल शरीररूप घोडा की सहायता नहीं मिलै है । काहेतैं कि मन में जो नानाप्रकार के संकल्पविकल्प-रूप भाव उत्पन्न होवैं हैं । सो यद्यपि पूर्व-कर्मानुसार होवैं हैं तथापि सो सर्व फलके देनेवाले नहीं होवैं हैं । मनोरथ मात्र होवैं हैं । जैसे किसी भिक्षुक के मन में ऐसा भाव होवै है कि 'नगरी का अधर्मी राजा मर जावै औ ताका राज्य मेरे कू प्राप्त होवै तो मे धर्मन्याय करू' । यामें राजा के मरने की जो इच्छा है सो अशुभ है औ धर्मन्याय की इच्छा है सो शुभ है, परन्तु सो दोन्यू होने कू अशक्य हैं । जो क्रिया का होना है सो फल-रूप है । सुखदु ख के भोग कू कर्म का फल कहै हैं । सो कर्मफलरूप भोग यद्यपि शरीर करि होवे है तथापि कर्मफल देनेवाले मनोरथन तें सो भोग होवै है । फल-रहित मनोरथन सें भोगरूप क्रिया होवै नहीं । औ मन में तो जाग्रत औ स्वप्न इन दोनू अवस्था में अतराय-रहित अनत सकल्प-विकल्प होवै है ।सो सब शरीर की क्रिया के हेतु नहीं हैं । ऐसे ज्ञान विना भटकत ही फिरता है ।औ उक्त स्थूल शरीररूपी जो घोरा है सो निष्फल मनोरथन के बल करिक्रियारूप वीप (चाल) चालि नहीं सकै है । अर्थात् मन की न्यांई शरीर की गति नहीं होवै है ।—पूर्वोक्त नानामनोरथ-जन्य जो वासना है सो फलदायक नहीं होने तें रस-रहित हैं तातें ही तिनकू आक औ अरड की लकरियां कही हैं । सो चूसै है कहिये मनोराज्य करै है । औ ईश्वर की उपास-

पानी जरे पुकार निश दिन ताको अग्नि बुझावै आइ।
… शीतल तू तप्त भयो क्यों वारवार कहै समुझाइ।
मेरी लपट तोहि जौ लागै तौ तू भी शीतल ह्वै जाइ।
… जरनि फेरि नहि उपजै सुंदर सुख मैं रहै समाइ॥ २६॥

…न के साधनरूप बहुत रसभरे ईप (गडा) कू छाडें हैं कहिये त्यागे है।—सुन्दरदासजी कहे हैं कि इस जगत में ऐसो कोऊ विरलो सत्पुरुष है जो या अज्ञानीरूप नूप कों सीप (शिक्षा) लावै। अर्थ यह है—पूर्वोक्त अस्थिर मनवाले कू बोध होना कठिन है, काहेतें कि चचलमनवाले कू उपासनादिक्रम तें साधनद्वारा ज्ञान होने का सभव है। ताकू साधन विना ज्ञान होवै नहीं। ऐसे ज्ञान के जो सत्पुरुष प्रथम साधन करार औ पीछे बोध करै। ऐसा अद्भुत कृत्य ब्रह्मनिष्ठ औ श्रोत्रिय सें होवै है औरसे होवै नहीं, सो मिलना कठिन है। तातें ऐसे अज्ञानी कू बोध करनेवाला विरला कह्या है॥ २५॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जीकी साखी—सुंदर राजा निपति सौं घर-घर मांगै भीप। पाय पयादौ उठि चलै घोरा भौ न बीष। ३६।—इस पर जो ऊपर दोनों टीकाएं दी हुई हैं उनमें इसका अभिप्राय अच्छे प्रकार खोलकर दिया हुआ है। रजोगुण में जीव लिप्त रहै तब ही मोह-माया, विषयसग, तृष्णा आदिक का बल अधिक रहता है। "रजोरागात्मक विद्धि तृष्णासग समुद्भवम्' (इत्यादि) (गीता में)।—लौकिक में भी 'राजेश्वरी सा नरकेश्वरी' ऐसी कहावत है। (नोट-छद के तीसरे पद मे 'बहुतर-सभरे' ऐसा पद विच्छेद से उच्चारण यति सहित होता है।)॥

ह० लि० १—२ टीका —पानी नाम प्रेम सो अत करण मे अतिगति प्रकासे उदय होय प्रेम को जो अतिगति होणो वाही को नाम विरह वा विरह की तरली मे रात-दिन अखड पुकारै नाम आतुर होयकरि, तब वा प्रेमरूपी पाणी के वेग कों अग्नि बुझावै जो वा प्रेम तरली मे ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होय नाम स्वरूप प्राप्त करिके वा विरह अग्नि को निवारै।—वो ज्ञान प्रेम सों कहै हुतो शीतल अब तू तपत क्यू भयो,

प्रेम तो सदा सुखरूप है तथापि लगनि में तपत रहै है तातैं वारंवार ज्ञान प्रेम कों समझावै सो कहै है।—मेरी लपट तोहि लागै नाम जो ज्ञान उदय होय तो प्रेम भी शांतिरूप होय जाय, आदि में प्रेम अरु प्रेम तैं ज्ञान, ज्ञान के उदय से सर्व शात शीतल होय जाय।—फेर प्राप्ति के अनतर जन्म-मरण ससार-सम्बन्धी कोई प्रकार की जरनि नाम ताप उपजै नहीं सदा ब्रह्मानन्द सुख में समाय रहै ॥ २६ ॥

पीताम्बरी टीका—अत करण जो है सो स्वभाव तें ही स्वच्छ है, यातें ताकू यहा पानी कह्या है। सो अंतःकरण ससार के त्रिविध ताप तें जरै है, तातें निशदिन कहिये निरतर "मैं दु खी, कगाल, ससारीजीव हू" ऐसे पुकारै है। अर्थात् अतर मे निश्चय करि जहां तहां कथन करै है। ताकू कहिये तपायमान अत करण जल कूं ज्ञानरूप अग्नि बुझावै आइ, कहिये तिन त्रिविध तापन कू बाध करिके शांत करै है।—औ सो ज्ञानरूप अग्नि पूर्वोक्त अतःकरणरूप जल कू वारवार समुझाइ के कहै है कि मेरी उत्पत्ति तुझतें हुई है, सो मैं तो शीतल शांत हू, तू क्यौं तप्त भयौ है ?। भाव यह है—प्रथम जब मद ज्ञान होवै है तव विचार उत्पन्न होवै है, सो ज्ञान तिस विचार करि वहिर्मुखन कू बोध करै है।—यह जो ससार है सो मिथ्या है, औ तामें जो तीन ताप हैं सो भी मिथ्या हैं। औ सर्वत्र परिपूर्ण जो ब्रह्म है सो सत्य है, सोई मेरा रूप होने तें मेरे विषे संसार औ ताके तीनताप जेवरी में सर्प, शक्ति में रजत औ मरुस्थल में जल की न्याई मिथ्या प्रतीत होवै हैं। ऐसी सशय विपरीत-भावना-रहित मेरी दृढ़ता-रूप लपट, श्रवण-मनन निदिध्यासनादि करि जौ तोहि लागै तौ तू भी (अत करण भी) पूर्वोक्त त्रिविधतापजन्य विक्षेप को नाश करि शीतल (शांत) व्है जाइ।—सुदरदासजी कहै हैं कि एक वेर जो ज्ञानाऽग्नि करि अन्त.करण-रूप जलकी तपत निवृत्त भई कि फेरि सो जरनी (तपत) कबहू नहिं उपजै, अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे अपने निजस्वरूप आत्मा सें विमुख होवै नहीं। काहेतें कि अन्त करण ब्रह्म सुख में समाइ रहै है ॥ २६ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—यहां विपर्यय प्रत्यक्ष यह है कि पानी जो स्वभाव से शीतल होता है जलता (तप्त) कहा गया और अग्नि को शीतल कहा गया जो स्वभाव से तप्त और जलानेवाला है। जलानेवाली वस्तु कैसे शीतल करै ? और जल

पसम पर्यो जोरू के पीछै कह्यो न मानें भोंडी राड।
जित तित फिरै भटकती योंही तैं तौ किये जगत मैं भाड॥
तौ हू भूप न भागी तेरी तू गिलि वैठी सारी माड।
सुदर कहै सीप सुनि मेरी अब तू घर घर फिरबौ छाड॥ ७७॥

तो अग्नि को बुझाकर तप्त मिटा देता है सो उलटा अग्निद्वारा कैसे ताप निवारित किया जाय ?। परन्तु शास्त्रों मे ज्ञान को अग्नि कहा है क्योंकि ज्ञान के प्रताप से अज्ञान नाश होता है सो ही मानो उसका जलना है और अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश भी शास्त्रों में उसही कारण से कहा है कि प्रकाश (तेज) अग्नि-सूर्यादि से निकलता है। यहा प्रमाण यह है। "ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं" (गीता । ४ । १९) "तमस्त्वज्ञानज विद्धि" (गीता । १४ । ८)—ज्ञान की अग्नि से जिसके (पुन्य और पाप) कर्म दग्ध (नाश) हो गये। तम वा तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है और यह ज्ञान का विरोधी है।—सुं० दा० जोकी साखी—पानी पिरे पुकारतौ उपजी जरनि अपार। पावक आयौ पूछने सुन्दर बाम्हे सार । ३७।—जौ तू मेरी शीपलै तौ तू शीतल होइ। फिरि मोही सौं मिलि रहै सुदर दु ख न कोइ। ३८।—कबीरजी का पद—"पानी माहि अगनि को अ कुर, मिलिन बुझावत पानी"। (बीजक (पद) शब्द ५८ मे)।—गोरपनाथजी का पद—"अनिल कहै मैं प्यासा मूवा, अनाज कहै मैं भूषा। पावक कहै मैं जाडे मूवा, कपड़ा कहै मैं नागा"। (गो० पद ३६।)—

छ० लि० १—२ टीका—खसम जो मन सो जोरू नाम मनसा ताके पीछे पर्यो नाम सीख देणें लागो खिजिकैं रीस करिकैं, भोंडी नाम बुरी विपय विकारा करि मलीन।—जहां तहा योंही नाम वृथा ही विपय विकार रूप सकल्पां मे भाजती फिरै, तैं तो मनैं भी जगत भांड कियो, याको यह अर्थ है जो सूक्ष्म वासनारूप जो सकल्प हैं सो मन में उदय होयकैं प्रगटैं सो मनही को वाको दूषण आवै —सारी माड नाम सर्व पदार्थां को तृष्णाद्वारि ते गिलि बैठी नाम खाय बैठी, तेरी भोरू भी भूख भागी नहीं नाम तृप्ति हुई नहीं अब तो तृष्णा को दूरि कर।—तासो मन कहै

है हे मनसा अब तो तृष्णा कों छांड़िकरि निश्चल होहु अरु घरिघरि फिरणों छांडि दे। घरि-घरि नाम स्वर्ग मृत्यु पाताल लोकां में अथवा चौरासी जोनि जन्मां में अथवा ससारी जनां का घर-घर में अथवा नवद्वारों का विषयविकारां मे, इन स्थानों में, सर्वथा फिरिनों छांड़ि दे, ज्यू सर्व सुख कों प्राप्त होय ॥ २७ ॥

पीताम्बरी टीका.—चिदाभास—सहित अन्तःकरण-रूप जो जीव है ताकू ही यहां पसम कह्या है। सो बुद्धिरूप जोरू कै पीछे पर्‌यो। ता जोरू ने शुभाशुभ कर्मन के बलकरि अनत चौरासीलक्ष योनि में भटकायो। औ तिन योनिजन्य अनतयातना (पीड़ा) सहन कराई। ऐसे अगणित दुःख सहन करते हुवे कदाचित् काकतालीय न्यायवत् शुभाशुम कर्मन करि मनुष्य शरीर की प्राप्ति हुई, तामें किसी उत्तम संस्कार के लिये सत्सगादिकन की प्राप्ति भई। तिस क्षण में बुद्धि की अवस्था यत्किंचित् फिरी। तब ताकू सो जीव कहने लगा कि तैंने मेरी बहुत दुर्दशा करी, अब मेरे तें ऐसा दुःख सहन नहीं होवै है। तातें अब तू ज्ञान मे प्रवृत्त होय के अन्तकर्मन की वासना का त्याग करहु तातें मेरा जन्ममरण निवृत्त होवै। इत्यादिक वाक्यन करि विचारपूर्वक आर्त्तजन अपनी बुद्धि कू बहुत कहि समुझावै है। परन्तु वासना के वसि भई भौंडी (भ्रष्ट) रांड (रडा) कह्यौ नहीं मानै है। अर्थात् निरतर सत्सग में प्रवृत्त होय के ज्ञानवान नहीं होवै है। काहेतें कि ज्ञान की प्रति-बधक जो अशुभकर्म-जन्य वासना है सो तिस शरीर में ज्ञान की प्राप्ति का असभव होने तें बुद्धि कू सत्सगादिकन मे प्रवृत्ति करावने नहीं देवै हैं।—औ जित-तित कहिये जिस किस विषय में यूंही भटकती फिरै है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री कामातुर भई हुई स्पर्श विषय के अर्थ जहां तहां भटकती फिरै है औ ताका ही निरतर ध्यान लग्या रहै है। सो जौलौं पति ताके आधीन होवै तौलौं सो कृत्य निर्भयता तें होवै है। परन्तु जब पति कू तिस बात की कछु खबरि होवै है तथापि वासना के बल तैं सो व्यसन शीघ्र छूटै नहीं है। सो देखिके ताका पति बहुत युक्तियों करि समुझावै है। परन्तु सो जब समुझै नहीं तब कोपायमान होयके कहै कि रांड तें तौ मेरे कू जगत मे भाड (फजीहत) कियो है। तैसे जीवरूप षमम भी अपनी बुद्धिरूप जोरू कू व्यभिचारिनी देखिके क्रोध्यायमान होयके कहै है कि इस जगत मे तेनें मेरे कू

पंथी माहि पंथ चलि आयौ सो वह पंथ लख्यौ नहिं जाइ।
वाही पंथ चल्यौ उठि पंथी निर्भय देश पहूंच्यौ आइ॥
तहा दुकाळ परै नहिं कबहूं सदा सुभिक्ष रह्यौ ठहराइ।
सुन्दर दुखी न कोऊ दीसै अक्षय सुख में रहै समाइ॥ २८॥

ऐसा फजीहत कर्या है कि आनें मेरी परिपूर्णतारूप प्रतिष्ठा-अद्वैतरूप नाम-औ अखण्डानंदरूप धन आदिकन का अभाव की न्याईं होई गया है।—ऐसे मेरी प्रभुतारूपी सारी मांड (बडाई) तू गिल बैठी। तौहू तेरी तृष्णारूप भूख न भागी (नाश नहीं भई)। अर्थात् ब्रह्म तें जीव किया तौभी तेरी तृप्ति भई नहीं है। अब क्या पत्थर की न्याईं जड़ करने कू चाहती है? ऐसे अति तीक्ष्ण वचन कहे है।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे बुद्धि! अब मेरी सीख (शिक्षा) सुनि के, कहिये इस मनुष्य जन्म विषे ज्ञान कू पायके अब तू अनेक विषयरूप वा अनेक योनिरूप घर-घर मे फिरबो छाड। अर्थात् ज्ञानुं वे पीछे विषयवासना के अभाव हुवे जन्म मरण की निवृत्ति होवै है। ऐसें कह्या॥ २७॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुन्दरदासजी ने इसपर साखी नहीं कही है। वेदांत-रहस्य और अध्यात्म-परक तात्पर्य उक्त टीकाओं मे स्पष्ट किया सो बहुत अन्थों में यथार्थ प्रदर्शित हुआ है। योग-साधन के रहस्य मे इसका अर्थ इस प्रकार होता है कि—खसम जो नियामक स्वामी आत्मा जोरू (स्त्री भाववाली) मनोवृत्ति पर एकाग्रता करने के निमित्त (उसपर) ऐसा अपना अधिकार जमाता है। योग का परम ध्येय चित्तवृत्तियों को निरोध (रोक) कर एकाग्र अन्तर्मुखी कर देना है जिससे निरतर, गुरु के उपदेशानुसार, साधन द्वारा, अन्तरात्मा का साक्षात्कार अर्थात् अपरोक्षानुभव हो जाय।—गोरखनाथजी का पद—"गगरी कापै पाणीहारी, गवरी कपै गौरा। घरको गुसाईं कौतिग चाहै, काहे न बांधै जौंरा (गोरख पद २६ मे से) (इस में अर्नातर भाषा विपर्य्यय से यही आत्मा का प्रभुत्व और जौरा जो जोरावर मनोवृत्तिरूपी स्त्री को आधीन करने की बात कही है।) तथा—"तल गगरी ऊपर पणिहारि, ऊजड़ खेड़ा नगरी मझारि-" (गो० पद ३९ में से)।—

ह० लि० १—२ टीका—पंथी संत मुमुक्षु तामें पथ नाम परमात्मा की प्राप्ति

की कर्त्ता भक्ति ज्ञान सो आपका सुत वा साधना करि वा मुमुक्षु सत को प्राप्त हुवो। सो जो वो ज्ञान है सो अति सूक्ष्म स्वरूप है ताको लखणों समझणों अति कठिन है।— सो गुरु सत शास्त्र उपदेश करि वा ज्ञान मार्ग कों दृढ निश्चै धारिकै वो मुमुक्षु संतरूपी पथी वाही ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग में चल्या, या प्रकार परमात्मा कों प्राप्त हुवा। ता ब्रह्मदेश में दुकाल परै नहीं नाम किसी बात की ऊँणता रहै नहीं तहा ब्रह्मदेश में सुभिक्ष नाम सदा ही सर्व प्रकार की पूर्णता रहे। "रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्त्तते"। इति। वा ब्रह्मदेश कों जो प्राप्त हुआ तिनां के किसी के भी किसी प्रकार को दुःख नहीं रहै है, वे सदा ही अक्षय नाम अविनाशी सुख मे लीन रहे हैं॥ २८॥

पीताम्बरी टीका मोक्षरूप प्रदेश के ज्ञानरूप मार्ग में गमन करनेवाला जो मुमुक्षु जीव है ताकू इहां पथी कहे हैं। ता मांहिं ज्ञानरूप पथ (मार्ग) चलि आयो। अर्थात् गुरु शास्त्रादि अवातर साधन-द्वारा अतःकरण की चरमावृत्तिरूप करि प्रगट भयो। सो वह पथ लख्यो नहि जाइ। इहां यह रहस्य है—जैसे बिजली की गति, मन की गति औ पक्षी की गति विलक्षण पुरुष करि जानी जावै है। यातैं लक्ष्य है। जल में जो छोटी मच्छरी होवै है ताकी यद्यपि और कोई जानि शकै नहीं तातैं अलक्ष्य कहिये है। तथापि मच्छरी रूपधारी योगी करि जानी जावै है यातैं लक्ष्य है। योगी की गति यद्यपि औरन से जानी जावै नहीं तथापि सो अन्य योगी करि जानी जावै है। तातैं सो दुर्लक्ष्य है। तैसे ज्ञानी की गति विचक्षण नर करि वा योगी करि, वा अन्य ज्ञानी करि साक्षात् जानी जावै नहीं। यातैं यह अलक्ष्य है। तातैं ज्ञानी की गति (पंथ) रूप ज्ञान लखने में आवै नहीं।—उक्त मुमुक्षु जीवरूप जो पथी है सो उठि कहिये अज्ञानरूप पूर्वावस्थान तें उठिके वाही ज्ञानरूप पथ में चल्यो। अर्थात ज्ञानी होय विचरने लग्यो। ऐसे विचरते २ जब शेष कर्मन का क्षय होयगया तब विदेहमोक्षरूप जो निर्भय देश है तहां आइ पहूच्यो, अर्थात् ब्रह्म तें अभिन्न भयो।—तहा कबहू जन्म-मरणादि दुःखरूप दुकाल परै नहिं। काहेतें कि सदा ही परमानदरूप सुभिक्ष (सुकाल) ठहराइ रह्यो है।—सुदरदासजी कहैं हैं कि तिस विदेह-मुक्तिरूप स्थिति में कोऊ दूखी न दीसै। काहेतें कि जो जो पुरुष ज्ञान-

एक अहेरी वन में आयौ षेलन लागौ भली सिकार।
कर में धनुष कमरि में तरकस सावज घेरे बारबार॥
मार्यौ सिंघ व्याघ्र पुनि मार्यौ मारी बहुरि मृगनि की डार।
ऐसें सकल मारि घर ल्यायौ सुन्दर राजहिं कियौ जुहार॥ २९॥

रूप मार्ग करि विदेह मुक्त भये हैं वे सर्व उपाधि रहित ब्रह्मरूप होयके स्थित हैं। सो ब्रह्मस्वरूप अक्षयसुखरूप होने तें तहां दुःख का लेश भी नहीं है, ता में समाइ रहे हैं॥ २८॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—"पथी माहिं पथ चलि आयौ आकस्मात। सुंदर वाही पथ महि उठि चाल्यौ परभात। ३९"।—"चलत-चलत पहुच्यौ तहा जहा आपनौ, भौन। सुन्दर निश्चल व्है रह्यौ फिरि आवै कहि कौन। ४०"।—गोरषनाथजी—"पथ विन पुलिवा अगि विन चलिवा, अनिल त्रिपा विन हटिगा। ससवेद श्री गोरषनाथ कथिया, बूझिले पडित पढ़िया। (गो० शब्दी २२)। तथा-"चलै बटाऊ वामी का बाट,सोवै डोकरिया घौरे पाट"। गो० पद ३९ में से)।-

ह० लि० १—२ टीका—अहेरी नाम संत सो संसाररूपी वन मे आयो प्रगट हुवो सो या वन मे भली जो श्रेष्ट शिकार खेलन लागो सोई कहे हैं। कर नाम अंतःकरण तामे धनुष नाम ध्यान कमर नाम आपकी कठिनता संजमता अति सूरवीरपणो तामे तरकस नाम घणी तर्क-विवेक सों धारण कियो जो आपको निश्चो दृढ़भाव तामें नाम-रटणा आदि बांण परिपूर्ण है तिना करि सावज नाम शिकार खेलण जोग्य जो पशु तिनरूपी सर्व विकार तिनां को घेरन लाग्यो अर्थात् बाह्यवृत्ति मेटि सबको वश्य करनें लाग्यो।—तिन में मुख्य सावज सिंघ व्याघ्र नाम क्रोध-काम आदिक मार्‍या नाम जीति वस कीया, और बहु मृगन की डार नाम सर्व इन्द्रियां का समूह सो मार्‍यो नाम इन्द्रियां की वृत्ति जीती।—ऐसे सर्व कों मारिके नाम स्ववसि करिके घर नाम हृदो तामें ल्यायो नाम सर्व वृत्ति अंतर्निष्ट करी। या प्रकार की शिकार खेलि सर्व कार्य सिद्ध करि आया तब राजारामजी तिनको जुहार कियो नाम जाय हाजिर हुवा अर्थात् सर्व विकार जीत्या यातें परमात्मा की प्राप्ति हुई॥ २९॥

पीताम्बरी टीका.—एक उत्तम सस्कार-युक्त अधिकारी पुरुष अहेरी (शिकारी) ससाररूप वन में आयो । कहिये कर्मवश तें नरदेह कू प्राप्त भयो । सो बधनिवृत्तिरूप भली (अच्छी) शिकार खेलन लाग्यो ।—ता शिकारी ने अत करण की वृत्तिरूप कर (हाथ) में गुरुमुख द्वारा श्रवण किये हुवे महावाक्य के अर्थरूप धनुष धारण करिके । औ हृदयरूप कमरि में अनेक युक्ति औ विचाररूप बाणयुक्त अन्तःकरणरूप तरकस (भाथा) बाँधिके । बारबार श्रवणादि सहकारी-द्वारा । सावज (मारनेलायक जानवर) घेरे कहिये रोके ।—ज्ञानरूप युद्धकरि मूला-अज्ञानरूप सिंह मार्यो । पुनि काम-क्रोधादि बहुरि मृगन की डार (पंक्ति) मारी कहिये बाधित कीनी ।—सुदर-दासजी कहै हैं कि ऐसे सकल प्रपचरूप शिकार कूं मारि (बाध करिके) घर लायो । कहिये पूर्व अज्ञानदशा में अधिष्ठान ब्रह्म तें भिन्न प्रपंच कू मानतो थो । सो अब बाधि-तानुवृत्ति करि अधिष्ठान में कल्पित अनुभव करने लग्यो । औ ब्रह्मरूप राजहि (राजा कू) जुहार कियो । कहिये अपनो आप करि जान्यो । तातें मुक्तिरूप मौज मिली ॥ २९ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुन्दरदासजी की साखी—"वन मैं एक अहेरिये दीन्ही अग्नि लगाइ । सुदर उलटे धनुष सर सावज मारे आइ ।४१" ।—"मार्यौ सिंघ महाबली मार्यौ व्याघ्र कराल । सुदर सबही घेरि करि मारी मृग की डाल । ४२" ।—दादूजी की साखी १२०—"दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खैंचि कसीस । लागी चोट सरीर मैं नष सिष सालै सीस" ।—कबीरजी का शब्द "जिया मत मार मुआ मत लइयो । मांस बिना मत अइयो रे ॥ परली पार इक बेल का बिरवा, वाके पात नहीं है रे । होत पात चुगजात मिरगवा, मृग के सीस नहीं है रे ॥ धनुष बान ले चढ़ा पारधी, धनुआके परच नहीं है रे । सरमर बांन तकातक मारै, मिरगा के घाव नहीं है रे ॥ उर बिन खुर बिन चरन चोंच बिन, उड़न पख नहिं जाके रे । जो कोई हसा मार लियावै, रक्त मांस नहिं ताके रे ॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अतिहि दुहेला रे । जो इस पद को अर्थ बतावै, सोई गुरु हम चेला रे" ॥ (शब्दावली भाग २ । १५ ।) ।—गोरषनाथजी—"एक लष सींगनि दुई लष बान, बेध्या मीन गगन अस्थांन । बेध्या मीन अग्नि के साथ । सत-सत भाषत (श्री) गोरषनाथ" । (गो० शब्दी । १७४ ।) ।—

शुक — वचन अमृत मय ऐसे कोकिल धार रहै मन माहि ।
सारी सन भागवत कबहौ सारस तौऊ पाव नाहि ॥
हंस चुग मुक्ताफल अर्थहिं सुन्दर मानसरोवर न्हाहि ।
—— कवीश्वर विपई जेते ते सब दौरि करकहि जाहि ॥ ३० ॥

हि० लि० ९-२ टीका —या में विपर्यय अलंकार नहीं है या मे हीरावदि धरनाग है जा उनही अक्षरां में अर्थ भी सिद्ध होय अरु किसी का नाम भी सिद्ध होता जाय । इहा शुक जो है सो सूवा को भी कहै और अर्थ इह जो शुक नाम शुकदेवजी ताका वचन भागवतरूपी बड़ा श्रेष्ठ अमृतरूपी है सो वे सिद्धांत वचना को कलि नाम ससार मे कौन है ऐसा जो मन मे धारन करै अर्थात् धारण करना अति कठिन है अरु यामे कोकिल नाम पक्षी का भी सिद्ध होवे है ।—सारी नाम सपूर्ण भागवत सुने इम भी अर्थ है अरु सारो पक्षी (मैना) को भी नाम है । सारस नाम सपूर्ण सिद्धान्त पावणो कठिन है अरु सारस पक्षी को भी नाम सिद्ध होवै है ।—हस नाम हसरूपी सत अरु हस पक्षी को भी नाम है । अर्थ की प्राप्ति को जो सुख सोई मान-सरोवर तामे आनद की प्राप्ति करि मगन रहे है ।—काकरूपी जो रस मथन का कवि अरु काक पक्षी का भी नाम है ॥

पीताम्बरी टीका —यह विपर्यय आदि जो मेरी काव्य है ताका तात्पर्य यद्यपि (विज्ञान) वेदात-सिद्धात में है तातें वेदांतिन कू तौ अति प्रिय लगैगो । तथापि और कवि (चतुर) यथार्थ अर्थ जानने मे समर्थ नहीं होने ते यथा बुद्धि यामे प्रवृत्त होवेगे । सो दिखावे हैं —(इहां से तीन सवैये में विपर्यय नहीं है ॥)—कोई कवि तो शुक (पोपट) के न्याईं होवे है । जैसे शुक पक्षी जितना शब्द सीखै है उतना ही बोले है । अधिक बोलि शके नहीं । तैसे यह कवि पढ़े हुवे विषय का वर्णन करे । अधिक युक्ति करि कहि शके नहीं । परन्तु सो श्रेष्ठ है, काहेते श्रद्धायुक्त जितना सीखै है उतना दृढ़ ग्रहण करिके सोई कथन करे है । तामें सशय औ विपर्यय कछु नहीं होवै । ऐसे ताके वचन भी अमृतमय लगे है । इस कथन तें श्रद्धावान् पुरुष के स्वभाव का सूचन किया ॥—कोई कवि तो कोकिला की न्याईं होवै है । जैसे कोकिल

पक्षी किसी अर्थवाला शब्द बोलै नहीं। औ किसी से सीखै भी नहीं। परन्तु ताका शब्द स्वाभाविक ही ऐसा लगै है कि मानों सुनते ही रहिये। कदे तृप्ति होवै नहीं। तातैं यह कवि बिनाही पढैतें स्वाभाविक ऐसा विषय कथन करै है कि सो किसीसे विरुद्ध होवै नहीं। यद्यपि युक्ति औ प्रमाणादि करि रहित होवै है। तथापि ईश्वरादिक विषय होने तैं ताका कोई द्वेष वा निषेध करै नहीं। तातें सो भी प्रथम कवि की न्यांई श्रेष्ठ ही है। ऐसे मनमाहि धारि रहै। इस कथन तैं निष्पक्षपात-स्वभाववाले पुरुष का सूचन किया ॥—कोई कवि तौ सारो (एक जात के पक्षी) की न्याई होवै है। जैसे सारो पक्षी कछु बोलै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ गायनादि नाद कु सुनै है तिस नाद में मृगन की न्यांई तल्लीन होइ जावै है औ मधुरनाद सुनने के वास्तै ही विचरता रहै हैं। ताकू ऐसा नाद कबहूक सुनने में आवै है। तिस नादजन्य रहस्य का विस्मरण कबहू होवै नहीं। तैसे यह कवि .बहुत वक्ता तौ होवै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ भगवत् कथादिकन कू सुनै है। तिस भगवत्कथा में तल्लीन होई जावै है। औ सो मधुर कथा सुनने के वास्तै ही विचरता रहै है। ताकू ऐसी भागवत् (भगवत् सम्बन्धी) कथा कबहूक सुनने में आवै है। तिस कथा के रहस्य कू कबहू भूलै नहीं। इस कथन तें रहस्याभिलाषी भाविक पुरुष के स्वभाव का सूचन किया ॥—कोई कवि सारस पक्षी की न्यांई होवै है। जैसे सारस पक्षी जो है सो और सब पक्षीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। परन्तु तिस कथन की वासना अन्तर में रहै नहीं। तैसे यह कवि और सब कवीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। परन्तु तिन विषयन की अन्तर में वासना रहै नहीं। अर्थात् ज्ञानी होवै है सो तौ कछु शंका औ तर्कादिक उपजावै नांहि। इस कथन तै ज्ञानी के स्वभाव का सूचन किया ॥—कोई कवि तो हंस की न्याई होवै है। जैसे हंस पक्षी जो है सो भी सारस की न्यांई और सब पक्षीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। स्मरण-शक्ति भी उत्तम होवै है। ताकी चंचू में और एक ऐसा गुन होवै है कि जल में मिल्या हुवा दूध जल तें भिन्न करिके पान करि लेवै है। औ निरंतर मान-सरोवर में वास करिके ता माहि ते मुक्ता-फलन कू चुगै है। तैसे यह कवि जो है सो भी उक्त (सारस्वत) कवि की न्यांई श्रेष्ठ औ चतुर है। याका बोलना अति नम्र होवै है। श्रवण किया विषय विस्मरण होवै

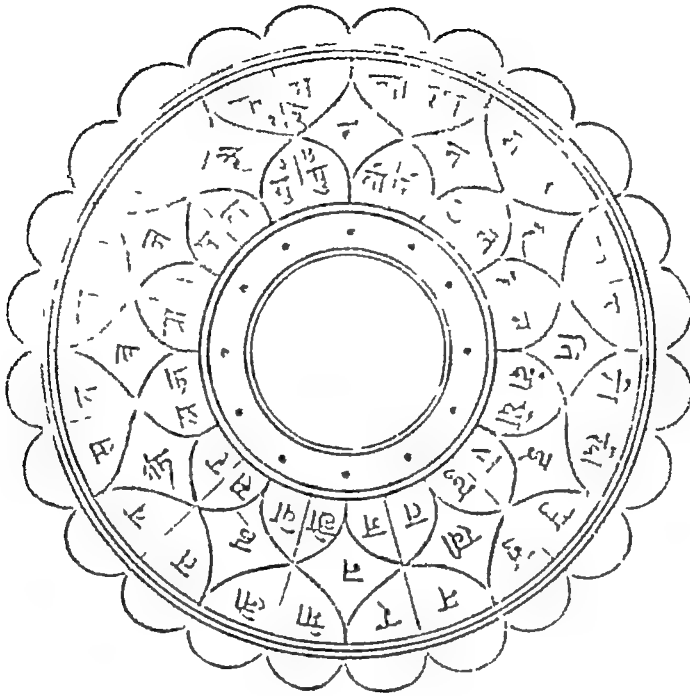
नहीं। ताकी बुद्धि में और एक ऐसा गुन होवै है कि सारासार विवेक करि सार वस्तु का ग्रहण करै औ असार का त्याग करै है। औ निरंतर सतसग मे वास करिके सत्-शास्त्र के सुदर अर्थहि (कू) धारण करै है। इस कथन ते मुमुक्षु पुरुष के स्वभाव का सूचन किया है ॥—कोई कवि तो काक की न्यांई होवै है। जैसे काक पक्षी जो है सो और सब पक्षीन तें अधम होवै है। निरंतर बकता ही रहै है। वाका स्वर अति कटुक होवै है सो सुनि के क्रोध उत्पन्न होवै है। काहू कू भी अच्छा लगै नहीं है। ऐसे जेते होवै सो सब दौरि करकहि कहिये करक नामके वृक्ष के ऊपर जाहि के स्थित होवै हैं। तैसे यह कवि जो है सो और सब कविन तै अधम होवै है। यद्यपि अनेक विषयन करि निरतर बकता ही रहै है तथापि सो-सो शीघ्र विषयन तें रहित होने तें विरस है। सो सुनिके उत्तम पुरुष कू क्रोध उत्पन्न होवै है। कोई सत्पुरुष सराहे नहीं। सो यद्यपि बड़ा चपल औ चचल वक्ता होने तैं विषयी पुरुषन कू तो अति नीके लागै है औ विषयी पुरुष याकू कवीश्वर कहै है। तथापि सो कवि नहीं है किंतु कुकवि है। इस कथन तें विषयी द्वेषी औ दोषदर्शी पुरुषन के स्वभाव का सूचन किया है ॥—इस कथन का भाव यह है—यह विपर्यय आदिक जो मेरी काव्य है सो वांचिके सुनिके वा पढिके अर्थ ग्रहण करनेवाला कोई कवि (चतुर) निकलैगा। सब कविन तें याका अर्थ नहीं होवैगा। जैसे जो शुक की न्यांई कवि है सो श्रद्धावान होने तें जितना गुरुमुखद्वारा पढ़ैगा तितना ही ग्रहण करि लेवैगा। कोकिला की न्यांई जो कवि है सो पक्षपात रहित होने तें न अपेक्षा करैगा न तो उपेक्षा करैगा। मोरो की न्यांई जो कवि है सो तौ रहस्याभिलाषी होने तैं यह सुनते ही यामे लीन होइ जायगा। सारस की न्यांई जो कवि है सो ज्ञानी होने तैं सम्यक् प्रकार तें अगीकार करिके अंतर में वासना-रहित रहैगा। हस की न्यांई जो कवि है सो मुमुक्षु होने तें विवेक बुद्धि करि सारासार विचार करैगा। औ जो काक की न्याई कवि है सो विषयी औ द्वेषी होने तें शीघ्र ही दोष कू ग्रहण करैगा ॥३०॥

सुन्दरानन्दी टीका—इस छद में विपर्यय वाक्य के अभाव मे विशेष टीका अपेक्षित नहीं है ॥ ३० ॥

नष्ट होंहि द्विज भ्रष्ट क्रिया करि कष्ट किये नहिं पावै ठौर।
महिमा सकल गई तिनि केरी रहत पगन तर सव सिर मौर॥
जित तित फिरहि नहीं कछु आदर तिनकौ कोउन घालै कौर।
सुन्दरदास कहै समुझावै ऐसी कोऊ करौ मति और॥ ३१॥

ह० लि० १— २ टीका—अब आगे शुद्ध कथा अर्थ है अध्यात्मपक्ष में। अति उत्तम जीव सोई द्विज जो वो जीव द्विज है सो कष्ट-क्रिया नाम वेदोक्त शुद्ध-क्रिया आचरण धारण कर्यां विना भ्रष्ट होय जाय ता शुद्ध-क्रिया विना अर्थात् मनमतै ही वहिर्मुख क्रिया कर्यां तें ठौर नाम सुख नहीं पावै अर्थात् ता क्रिया विना नीच जोनी को अधिकारी होय अर्थात् सुखी नहीं होय।—ता क्रिया विना ताको सर्व प्रभाव गयो अरु ता प्रभाव बिना सर्व-शिरोमणि है तो पाणि सर्वाधीन सर्व काम-क्रोधादि विकार सुख-दु खा कै आधीन रहै है।—सर्वत्र सर्वलोकां में सर्वजोनी मे वा सर्व घरां में जहां-तहां फिरै ता पाणि कोई स्थान में आदर नहीं पावै धर्म रहित पणा सौं अरु तिनको कोई भी कछू मान्यो दे नहीं कौर नाम कोववा मात्र भी नहीं देवै।—ऐसी नाम अपणां धर्म को त्याग कोई भी मतिकरो शुभ-धर्म का त्याग में सर्व दु ख हैं धारण में सर्व सुख है॥ ३१॥

पीताम्बरी टीका'—जीवरूपी मानो द्विज कहिये जो ब्राह्मण है। सो अपने स्वरूप के विस्मरण-रूप भ्रष्टक्रिया करि नष्ट होय। कहिये अपने सर्वाधिष्ठान-पने कू छोड़िके ससारी (जीव) भाव कू प्राप्त होवै है। सो पीछे अनेक वहिरग-साधनरूप कष्ट कू किये भी ठौर कहिये "मैं कर्त्ताभोक्ता ससारी हू" इस भावकू छोडिके ब्रह्मस्वरूप करि स्थिति कू पावै नहीं।—तिनकेरी कहिये जीवरूप ब्राह्मण की परमेश्वर-रूप करि ब्रह्मादिक की स्तुति औ पूजा की विषयता-रूप जो पूर्व महिमा थी। सो सकल गई। काहेतें, वास्तव परमात्मा होने ते सव शिरमार कहिये सर्व का शिरोमणि-रूप है। सो पगन तर रहत कहिये सर्वदेव आदिकन के पाद के तले दीन की न्यांई पूजक होइके स्थित भयो है।—जित तित कहिये चोराशी-लक्ष योनि-रूप पराये (पचभूतन) के ग्रहन में फिरै है। परन्तु कहू भी स्वरूपस्थिति-जन्य स्वतन्त्रता-रूप कछु आदर



(१४) कंकण बन्ध नम्बर २

दुमिला छन्द

गुर ज्ञान गहै अति होइ सुखी मन मोह तजै सब काज सरै ।
धुर ध्यान रहै पति खोइ मुखी रन लोह बजै तब लाज परै ॥
सुर तान उहै हति होइ रुखी, तन छोह सजै अब आज मरै ।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी, जन बोह रजै जब राज करै ॥१४॥

———o———

[इसके पढ़ने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

न्यू राजस्थान प्रेस

सुन्दर ग्रन्थावली

कंकण बन्ध (२)

पढने की विधिः—

जैसी कंकण-बन्ध प्रथम के पढने की विधि है वैसी ही इसकी है। उसही को संक्षेप में देते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण में बारह शब्द दो २ अक्षरों के हैं। चारों चरणों के किसी भी संख्या के शब्दों मे दूसरा अक्षर एक ही है। कंकण मे की ऊपर नीचे बड़ी छोटी सब पखड़ियों (पत्तियों) के दो २ टुकडे हैं पिछले दो और पहिले दो यों चार २ टुकड़ों से एक २ चौकोर सा घर घिरा हुआ है। प्रत्येक ऐसे चौकोर घर का अक्षर चार बेर पढा जाता है। चारों चरणों के प्रथम शब्दों के प्रथम (आद्य) अक्षर—गु-धु-सु-पु-पखड़ियों के टुकड़ों में पास २ हैं। इन पर चरणों के प्रथम अक्षर होने से १-२-३-४ के अंक लगा दिये हैं। उक्त चारों आद्य अक्षर क्रम से इनके आगे पासवाले चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढे जायगे। इसही प्रकार आगे के शब्द क्रमश छन्द वार पढे जायगे। (१) प्रथम चरण मे गु प्रथमाक्षर को चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढें। इसी तरह आगे ग्यारह शब्द इस प्रथम चरण के पढें। (२) २ रे चरण में धु अक्षर के साथ उसही र अक्षर को साथ पढकर आगे के ११ शब्दों को भी उसही तरह पढें। (३) ३ रे चरण मे सु प्रथम अक्षर को उसही र के साथ पढ़कर आगे के शब्द पढें। (४) ४ थे में पु को र के साथ और आगे वैसे ही ॥

—:-:—

शास्त्र वेद पुरान पढै किनि पुनि व्याकरन पढै जे कोइ।
संध्या करै गहै षट कर्म हि गुन अरु काल विचारै सोइ॥
रासि काम तबही बनि आवै मन मैं सब तजि राषै दोइ।
सुन्दरदास कहै सुनि पंडित राम नाम बिन मुक्त न होइ॥ ३२॥

॥ इति विपर्यय शब्द कौ अंग॥ २२॥

मिलै नहीं। औ तिनकू कोउ इष्टदेवादिक भी स्वकर्मरूप शुभ बिना कोर कहिये एक कवल भी घालै कहिये मांग्यो न देवै।—सुंदरदासजी कहिके समुझावै हैं कि—ऐसी कहिये स्वरूप के विस्मरण-रूप भ्रष्ट क्रिया और कोऊ पुरुष भी मति करौ। किंतु विचार आदिके जिस किस प्रकार करि सदा स्वरूप मे ही रत रहो॥ ३१॥

सुन्दरानन्दी टीका:—इसमे विपर्यय शब्द न होने से अन्य टीका टिप्पण अपेक्षा नहीं रखता। जो विद्वानों की ऊपर टीका दी है अलम् है॥ ३१॥

ह० लि० १-२ टीका:—शास्त्र न्याय मीमासादि ६। वेद ऋग्यजुरादि ४। पुराण भागवतादि १८। व्याकरण पाणिन्यादि ९। इन सबन को जे कोई पढै।—सध्या नित्य नियम। पट्कर्म वर्णाश्रमा का भिन्न भिन्न कर्म हैं तथा ब्राह्मणा का यजन अध्यापनादि। गुनै सत्वादि गुण। कालभूतादि। इन सबन को बिचारे नाम यथायोग्य शुभ-कर्म्मन को करै।—सर्व शुभकर्म कर्या यथायोग्य सर्व ही फल देवै हैं परि साक्षात्कार कार्य तो तबही सिद्ध होवैगो जब सर्व तज अरु ररो ममो दोय अक्षर अखंड हृदय में धारैगो तब।—रामनाम सर्व को सिद्धात शिरोमणि है जीवन्मुक्ति कल्याण सुख को कर्त्ता यही है सो याही को निस्चै करि निरतर अखंड धारणो सही॥ ३२॥ राम नाम बिन मुक्ति नहीं होइ। अत्र प्रमाणं। (१) तपन्तुतापैः प्रपतन्तु पर्वता दटतु तीर्थानि पठतु चागमान्। यजतु यागैर्विवदतु योगैर्हरि बिना नैव मृति तरति। इति भागवते। (२) आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इद-मेव समुत्पन्न ध्येयो नारायणो हरिः। इति भारते व्यासः। (३) किं तात वेदागम-शास्त्र विस्तरै स्तीर्थै रनेकै रपि किं प्रयोजनम्। यथात्मनो वाछसि मोक्षकारण गोविंद

गोविंद इदं स्फुट रट। इति विष्णुरहस्ये प्रल्हाद वाक्य। (४) अनन्य चेताः सतत यो माम् स्मरति नित्यशः तस्याह सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। १। समोऽहं सर्वभूतेषु न में द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजति तु माम् भक्त्या मयिते तेषु चाप्यहं। इति भगवद्गीताया श्रीकृष्णवचनम्॥ इति विपर्यय अगकी टीका सम्पूर्ण॥३२॥२२॥

पीताम्बरी टीकाः—"अब इस अग की समाप्ति में पूर्वोक्त ज्ञान विषे जो असमर्थ होय ताकू परमेश्वर की उपासना-रूप साधन कर्त्तव्य है। ऐसे दिखावते हुये अपनी (दादूजी की) सम्प्रदाय के इष्ट जो राम (चन्द्र) हैं। ताके स्मरणपूर्वक गोप्य अर्थ करि शिरोमणि सिद्धात कू दिखावें हैं:—साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा औ वेदात-ये जो षट्शास्त्र हैं रु कहिये अरु ऋग, यजु, साम औ अथर्वण ये चारि जो वेद हैं। ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लैंग, बाराह, स्कंध, बामन, कौर्म्य, मात्स्य, गारुड, औ ब्रह्मांड ये जो अष्टादश पुराण हैं तिनकू कोई पुरुष किन कहिये क्यू न पढै! पुनि पाणिनी आदिक जो नव व्याकरण हैं तिनकू जे कोई पढै।—प्रातःकाल, मध्यान्हकाल औ सायंकाल तीन समय में सध्या गायत्री कूं करै। औ स्नान, जप, होम आदिक षट्कर्महि गहै कहिये जो आचरै। सोइ देश, काल, कर्म आगम औ आहारादिक की सात्विकता राजसता औ तामसता में उपयोगी सत्वादि गुनन कू अरु काल कहिये काल-करि उपलाक्षित देशादिक कू। अथवा शांत, घोर औ मूढवृत्तिरूप गुण औ कर्म में उपयोगी औ अनुपयोगी शुभाशुभ काल कू जो विचारै।—यद्यपि यह पूर्वोक्त आचार भी श्रेष्ट है औ परपरा करि ज्ञान द्वारा मोक्ष का कारण है तथापि सो साक्षात् मोक्ष का वा ज्ञान का साधन नहीं होने तैं, तिस तैं पूर्व कार्य होवै नहीं। औ सीरा कहिये अतिशय करि श्रेष्ट काम तबै बनि आवै कहिये सिद्ध होवै जब मन मे सब पूर्वोक्त साधन आग्रह तजि कहिये छोडिके "राम" इन दोइ अक्षरन कू हृदय मे राखै कहिये तदाकार होयके रहै। यह मोक्ष-साधन की प्राप्ति का निकट द्वार है।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे पडित! सुन! सर्व शास्त्र का सिद्धात यह है:—राम नाम बिनु मुक्ति न होइ। याका गोप्य अर्थ यह है:—ब्रह्म औ आत्मा की एकता के जाननेवाला योगी तदाकार वृत्ति करि जिस सत्य आनद चिदात्मा विषै रमते हैं। सो चिद्रूप पर-

अथ अपने भाव को अंग ॥ २३ ॥

इन्दव

एकहि आपुनो भाव जहां तहां बुद्धि के योग तें विभ्रम भासै।
जो यह क्रूर तौ क्रूर उहा पुनि याके पिजै तें उहा पुनि पासै॥
जो यह साधु तौ साधु उहा पुनि याके हंसे तें उहा पुनि हासै।
जैसो ई आपु करै मुख सुदर तैसो ई दर्पन माहि प्रकासै॥ १ ॥

मनहर

जैसें स्वान कांच के सदन मध्य देपि और
भूकि भूकि मरत करत अभिमान जू।

ब्रह्म राम कहिये है। तिस राम के नाम कहिये प्रसिद्धि अर्थ यह जो साक्षात्कार तिस विना मुक्ति होवै नहीं। यातें राम के साक्षात्कार अर्थ कूं भजै ॥ ॥ ३२" ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—जो अर्थ उक्त टीकाओं मे दिया है सो अपने २ स्थान मे उपयुक्त और सगत है। इसमे विपर्यय शब्द नहीं है। इस कारण अन्य टीका टिप्पण की कुछ आवश्यकता नही है ॥ ३२ ॥ इस २२ वें अग की टीका को स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता के विशिष्ट वचन पर समाप्त करते हैं:—'सुदर सब उल्टी कही, समुझैं सत सुजान। और न जानैं बापुरे, मरे बहुत अज्ञान"। साखी ५० ॥

॥ इति विपर्यय शब्द के अंग २२ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥ २२ ॥

(१) आपनो भाव=आत्मानुभव की प्राप्ति के समय ज्ञेय ज्ञाता एक हो जाते हैं अथवा भ्रमज्ञान निवृत्त होता है तब 'युष्मद' और 'अस्मद' में कुछ भेद नहीं रहता है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं। 'सर्वंखल्विद ब्रह्म नेह नानास्तिकिंचन'—यह सब जगत् का पसारा निश्चय करके ब्रह्म है और जो नानारूप सृष्टि मे भासते है सो अन्य कुछ नहीं हैं आत्मा का ही विकास मात्र हैं।

जैसैं गज फटिक शिला सौं अरि तोरै दंत
जैसें सिंघ कूप माहि उझकि भुलांन जू
जैसैं कोऊ फेरी पात फिरत देखै जगत
तैसैं ही सुन्दर सब तेरौ ई अज्ञान जू।
आप ही कौ भ्रम सु तौ दूसरौ दिषाई देत
आप कौ विचारै कोऊ दूसरौ न आन जू॥
नीच ऊंच बुरौ भलौ सज्जन दुर्जन पुनि
पंडित मूरष शत्रु मित्र रंक राव है।
मान अपमान पुन्य पाप सुख दुख दोऊ
स्वरग नरक बंध मोक्ष हू कौ चाव है॥
देवता असुर भूत प्रेत कीट कुञ्जर ऊ
पशु अरु पक्षी स्वान सूकर बिलाव है।
सुन्दर कहत यह एकई अनेक रूप
जोई कछु देषिये सु आपनौ ई भाव है॥ ३॥
याही कै जगत काम याही कै जगत क्रोध
याही कै जगत लोभ याही मोह माता है।
याकौ याही वैरी होत याकौ याही मित्र होत
याकौ याही सुख देत याही दुख दाता है॥
याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देषियत
याही देव दैत्य यक्ष सकल संघाता है।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौ दिषाई देत
सुन्दर कहत याही आतमा विख्याता है॥ ४॥

---

(२) अरि=अड़ाकर (दांत को)।

(४) जगत=जागता है, उत्पन्न होता है। संघाता=संघात, समूह—"संघात-श्चेतना धृति" (गीता)। विख्याता=विख्यात, प्रमाणित।

याही कौ तौ भाव याकौं शंक उपजावत है
याही कौ तौ भाव याहि निःशंक करतु है।
याही कौ तौ भाव याकौं भूत प्रेत होइ लागौ
याही कौ तौ भाव याकी कुमति हरतु है॥
याही कौ तौ भाव याकौं वायु कौ वघूरा करै
याही कौ तौ भाव याहि थिर कैं धरतु है।
याही कौ तौ भाव याकौं धार मैं बहाइ देत
सुन्दर याही कौ भाव याहि लै तरतु है॥ ५॥

आपु ही कौ भाव सु तौ आपु कौं प्रगट होत
आपु ही आरोप करि आपु मन लायौ है।
देवी अन्य देव कोऊ भाव कै उपासै ताहि
कहै मैं तौ पुत्र धन इन ही तैं पायौ है॥
जैसैं स्वान हाड कौं चचोरि करि मानै मोद
आपु ही कौ मुख फोरि लोहू चाटि पायौ है।
तैसैं ही सुन्दर यह आपु ही चेतनि आहि
आपुने अज्ञान करि और सौं बंधायौ है॥ ६॥

इन्दव

नीचै तें नीचै रु ऊंचे तें ऊपरि आगे तें आगे है पीछे तें पीछौ।
दूरि तें दूर नजीक तें नीरेहि आडे तें आडो है तीछे तें तीछौ॥
बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यौं कोउ जानैं त्यौंही करि ईछौ।
जैसो ही आपुनो भाव है सुन्दर तैसो हि है दग षोलि कै वीछौ॥ ७॥
आपुनै भाव तें सूर सौ दीसत आपुनै भाव तें चन्द्र सौ भासै।
आपुनै भाव तें तार अनन्त जु आपुने भाव तें विद्युलता सै॥

---

(५) थिर कैं=थिर (स्थिर) करके।

(७) ईछौ='ईक्षतु' का अपभ्रंश=देखै। वीछौ=सं० 'वीक्षतु' का अपभ्रंश=देख।

आपुनै भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें जोति प्रकासै ।
तैसौ हि ताहि दिषावत सुन्दर जैसौ हि होत है जाहि कौ आसै ॥ ८ ॥
आपुने भाव तें सेवक साहिब आपुने भाव सबै कोउ ध्यावै ।
आपुने भाव तें अन्य उपासत आपुने भाव तें भक्तहु गावै ॥
आपुने भाव तें दुष्ट संघारत आपुने भाव तें बाहर आवै ।
जैसौ हि आपुनौ भाव है सुन्दर ताहि कौं तैसौ हि होइ दिषावै ॥ ९ ॥
आपुने भाव तें दूर बतावत आपुने भाव नजीक बषांन्यौं ।
आपुने भाव तें दूध पिवायौ जु आपुने भाव तें बीठल जांन्यौं ॥
आपुने भाव तें चारि भुजा पुनि आपुने भाव तें सींग सौ मांन्यौं ।
सुन्दर आपुने भाव कौ कारन आपुहि पूरन ब्रह्म पिछांन्यौं ॥ १० ॥
आपुने भाव तें होइ उदास जु आपुने भाव तें प्रेम सौं रोवै ।
आपुने भाव मिल्यौ पुनि जानत आपुने भाव तें अन्तर जोवै ॥
आपुने भाव रहै नित जागत आपुने भाव समाधि मैं सोवै ।
सुन्दर जैसौ ई भाव है आपुनौ तैसौ ई आपु तहां तहां होवै ॥ ११ ॥
आपुने भाव तें भूलि पर्यौ भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी ।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव तें बुद्धि थिरानी ॥
आपुने भाव तें आप बिसारत आपुने भाव तें आतमज्ञानी ।
सुन्दर जैसौ हि भाव है आपुनौ तैसौ हि होइ गयौ यह प्रानी ॥ १२ ॥

॥ इति अपने भाव को अंग ॥ २३ ॥

---

(८) तार=तारे। विद्युल्लता=बिजली का समूह। आसै=आसपास, निकट, समान। वा आश्रय। वा आशय।

(१०) बीठलजान्यौं=भक्त की कथा से सबध है जिसके आग्रह से भगवान ने प्रत्यक्ष दूध पिया था।

(११) जोवै=देखै।

(१२) बुद्धि थिरानी=बुद्धि स्थिर हुई वा की। स्थितप्रज्ञ हुआ।

अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

इन्दव

जा घट की उनहार है जैसी हि ता घट चेतनि तैसौ हि दीसै ।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह मैं चींटी कीरी सै ॥
सिव की देह में सिव सौ मानत कीस की देह मैं मानत कीसै ।
जैसि उपाधि भई जहा सुन्दर तैसौ हि होइ रह्यौ नखसीसै ॥ १ ॥

जैसें हि पावक काठ के योग तें काठ सौ होइ रह्यौ इक ठौरा ।
दीरघ काठ मैं दीरघ लागत चौरेसे काठ मैं लागत चौरा ॥
आपनौ रूप प्रकाश करै जब जारि करै तब और कौ औरा ।
तैसें हि सुन्दर चेतनि आपु सु आपु कौं नांहिं न जानत बौरा ॥ २ ॥

मनहर (प्रश्न)

अजर अमर अविगत अविनाशी अज
कहत सकल जन श्रुति अवगाहे तें ।
निरंजन निर्मल अति शुद्ध निरबन्ध नित
ऐसौउ कहत और ग्रन्थनि के थाहे तें ॥

(अंग २४)—(१) चींटी कीरी सै=यहां चींटी कीरी (कीड़ी) ऐसा पढ़ें, अथवा चींटी की रीसै-ऐसा भी पढ सकते हैं। परन्तु रीसै से अर्थ की पूर्ण संगति न होगी ॥ नखसीसै=खास, विशिष्ट ।

(२) बौरा=बावला, वा बावला हो गया। अर्थात् अपने स्वस्वरूप को भूल-गया और जो पुद्गल धार लिया उसही को आपा मान लिया—अध्यास से भ्रमजाल में प्रविष्ट हो गया।

(३) और (४)—३ रे छंद में प्रश्न करता है और ४ थे उसका उत्तर देता है—कि चेतन ब्रह्म सर्वज्ञ निर्विकार निर्भ्रान्त है फिर उसही को स्वस्वभाव को

व्यापक अखण्ड एक रस परिपूरन है
सुन्दर सकल रमि रह्यौ ब्रह्म ताहे तें।
सहज सदा उद्दोत याही तें अचम्भा होत
"आपुही कौ आपु भूलि गयौ सु तौ काहे तें" ॥ ३ ॥
जैसैं मीन मांस कौ निगलि जात लोभ लागि
लोह कौ कंटक नहीं जानत उमाहे तें।
जैसैं कपि गागरि मैं मूठी बांधि रावै सठ
छाडि नहीं देत सु तौ स्वाद ही के वाहे तें॥
जैसें बक नालियर चूंच मारि लटकत
सुन्दर सहत दुख देपि याही लाहे तें।
देह कौ संयोग पाइ इन्द्रिनि कै वसि पर्‌यौ
"आपुही कौं आपु भूलि गयौ सुख चाहे तें" ॥ ४ ॥

इन्दव

ज्यौं कोउ मद्य पिये अति छाकत नांहिं कछू सुधि है भ्रम ऐसौ।
ज्यौं कोउ पाइ रहै ठग मूरि हि जानै नहीं कछु कारन तैसौ॥
ज्यौं कोउ बालक शकउ पावत कंपि उठै अरु मानत भैसौ।
तैसैं हि सुन्दर आपुकौ भूलि सु देषहु चेतनि मानत कैसौ॥ ५ ॥

विस्मृति किस कारण से होगई। तो उसका उत्तर देते हैं कि—यह जीवात्मा देह में प्रवेशकर इन्द्रियों के सुख में मग्न होकर निजरूप को भूल गया, उस इन्द्रिय सुख से यह दशा हुई। (३)—ताहे तें=तिस हित (सलमता वा कारण) से। (४) लाहे तें=लाभ से, लोभ से। आगे के छदों में भी जो वर्णन है वह भी मानों इसही प्रश्न के उत्तर में है।

(५) ठग मूरि=ठग की दी हुई (जहर लगी) मूली या कद। उसका असर होने पर ठगा जाय। शकउ=शंका वा भय की कल्पना से कुछ का कुछ मान ले। बच्चों को हाऊ, हावू आदि कह डराते हैं।

ज्यौं कोउ कूप मैं झांकि भलापत वैसी हि भांति सु कूप भलापै।
ज्यौं जल हालत है लगि पौंन कहै भ्रम तें प्रतिबिंब हि कांपै॥
देह के प्रान के जे मन के कृत मांनत है सब मोहि कौं व्यापै।
सुन्दर पेच पर्‌यौ अतिसै करि "भूलि गयौ भ्रम तें भ्रमि आपै" ॥ ६ ॥
ज्यौं द्विज कोउक छाडि महातम शूद्र भयौ करि आपु कौं मान्यौं।
ज्यौं कोउ भूपति सोवत सेज सु रंक भयौ सुपने मंहि जान्यौं॥
ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भँचक आन्यौं।
तैसं हि सुन्दर देह सौं ह्वै करि या भ्रम आपुहि आपु भुलान्यौं॥ ७ ॥
एकहि व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै।
ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बांधत है कछु औरई औरई भासै॥
ज्यौं रजनी मंहि बूझि परै नहिं जौं लगि सूरज नाहि प्रकासै।
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुन्दर ह्वै रह्यौ सुन्दरदासै॥ ८ ॥

मनहर

इन्द्रिनि कौ प्रेरि पुनि इन्द्रिनि के पीछै पर्‌यौ
आपुनि अविद्या करि आपु तनु गह्यौ है।
जोई जोई देह कौं शंकट कछु परै आइ
सोई सोई मानें आपु यातें दुख सह्यौ है॥
भ्रमत भ्रमत कहुं भ्रम कौ न आवै वोर
चिरकाल बीत्यौ पै स्वरूप कौं न लह्यौ है।

---

(६) देह के कृत्य मोहि कौं व्यापै—आत्मा को देह से पृथक् न समझ कर देह को ही आप मान लेता है। यही तो अध्यास है। (७) महातम=ब्राह्मणपने का माहात्म्य, गौरव, बड़प्पन। अतित=अत्यत। भँचक=अचभा।

(८) विश्व नहीं···सुंदरदासजी इस सृष्टि को ब्रह्म का एक विलास या लीला, खेल-तमाशा मानते हैं। सृष्टि का समवायि या निमित्त कारण वही है। अपने आपही में इसका पसारा करता है और आपही में लय कर लेता है।

सुन्दर कहत देषौ भ्रम की प्रबलताई
"भूतनि में भूत मिलि भूत सौ ह्वै रह्यौ है" ॥ ६ ॥
जैसैं शुक नलिका न छाडि देत चुगल तें
जानै काहू औरै मोहि बांधि लटकायौ है।
जैसैं कपि गुजनि कौ ढेर करि मानै आगि
आगै धरि तापै कछू शीत न गमायौ है ॥
जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हु तौ पूरब कौ
उलटि अपूठौ फेरि पच्छिम कौ आयौ है।
तैसैं हि सुन्दर सब आपु ही कौ भ्रम भयौ
"आपु ही कौं भूलि करि आपु ही बधायौ है" ॥ १० ॥
जैसैं कोऊ कामिनी के हिये पर चूपे बाल
सुपने मैं कहै मेरौ पुत्र काहू ह्यौ है।
जैसैं कोऊ पुरुष कैं कण्ठ विषै हुती मनि
ढूढत फिरत कछु ऐसौ भ्रम भयौ है ॥
जैसैं कोऊ बायु करि बावरौ बकत डोलै
औरकी औरई कहै सुधि भूलि गयौ है।
तैसैं ही सुन्दर निज रूप कौ विसारि देत
"ऐसौ भ्रम आपु ही कौं आपु करि ल्यौ है" ॥ ११ ॥

---

(९) शकट=सकट, कष्ट। स्वरूप को न लह्यो है=वेदांत मत से ज्ञान के उदय से भ्रमका नाश होते ही स्वस्वरूप अनुभव होते ही ब्रह्मत्व की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

(१०) कपि-गुजन —कहते हैं कि वन में बदर चिरमठी का ढेर लगा लेते हैं और उनको अग्नि समझकर उनसे शीत की निवृत्ति मानते हैं, लालरंग आग का सा देखकर। दिशा भूलि जात— चित्त भ्रम से दिशा-भूल हो जाता है। पूर्व को पश्चिम, उत्तर को दक्षिण समझ बैठता है।

(११) ह्यो है=हर्यो है, हरणकर ले गया है।

दीन हीन छीन सौ ह्वै जात छिन छिन माहिं
देह के संजोग पराधीन सौ रहतु है।
सीत लगै घाम लगै भूप लगै प्यास लगै
शोक मोह मानि अति पेद कौं लहतु है॥
अन्ध भयौ पगु भयौ मूक हौं वधिर भयौ
ऐसौ मानि मानि भ्रम नदी मैं वहतु है।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचम्भो आहि
"भूलि कैं स्वरूप कौं अनाथ सौ कहतु है" ॥ १२ ॥
जैसैं कोऊ सुपने मैं कहै मैं तौ ऊंट भयौ
जागि करि देपै उहै मनुष स्वरूप है।
जैसैं कोऊ राजा पुनि सोइ कै भिपारी होइ
आपि उघरे तें महा भूपति कौ भूप है॥
जैसे कोऊ भंचक सौ कहै मेरौ सिर कहा
भंच है गये तें जानै सिर तौ तद्रूप है।
तैसे हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु
"भ्रम के गये तें यह आतमा अनूप है" ॥ १३ ॥
जैसैं काहू पोसती की पाग परी भूमि पर
हाथ लैकै कहै एक पाग मैं तौ पाई है।
जैसैं सेषचिल्ली हू मनोरथनि कीयौ घर
कहै मेरौ घर गयौ गागरि गिराई है॥
जैसैं काहू भूत लग्यौ वकत है आकवाक
सुधि सब दूरि भई और मति आई है।

---

(१२) देह के संजोग—आश्चर्य यही है कि आत्मा चेतन है परन्तु अमग है और शरीर जड़ है। फिर सुख दुःखादिकों का अनुभव कौन करता है। जीवात्मा देह ही को अपना स्वरूप मान लेता है यही तो अज्ञान वा भ्रम का फल है।

(१३) भूलौ=भूल्यो, भूल गया।

तैसै हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलो आपु
"भ्रम कै गयें तें यह आतमा सदाई है" ॥ १४ ॥

आपु ही चेतन्य यह इन्द्रिनि चेतन्य करि
आपु ही मगन होइ आनन्द बढायौ है।
जैसैं नर शीत काल सोवत निहाली वोढि
आपु ही तपत करि आपु सुख पायौ है ॥
जैसें बाल लकरी को घौरा करि डाकि चढै
आपु असवार होइ आपु ही कुदायौ है।
तैसैं ही सुन्दर यह जड कौ सयोग पाइ
"पर सुख मांनि मानि आपु ही भुलायौ है" ॥ १५ ॥

कहू भूल्यौ कामरत कहू भूल्यौ साधि जत
कहू भूल्यौ गृह मध्य कहू वनवासी है।
कहू भूल्यौ नीच जानि कहू भूल्यौ ऊच मांनि
कहू भूल्यौ मोह बांधि कहू तौ उदासी है ॥
कहू भूल्यौ मौन धरि कहू बकवाद करि
कहू भूल्यौ मकै जाइ कहू भूल्यौ कासी है।

---

(१४) शेषचिल्ली—लाहोर में इस नाम का फकीर हुआ बताते हैं। यहां उस कहानी से प्रयोजन है जो मजदूर तेल का घड़ा सिर पर लै विचारता है कि इसके उत्तरोत्तर लाभ से मैं सम्पन्न हो जाऊंगा। फिर विवाह करूंगा, पुत्र पौत्रादि होंगे। बुढापे में पौत्र भोजन को बुलाने को आवैगा तब मैं गर्दन हिलाऊंगा। उस गर्दन का हिलाना था कि घड़ा गिरकर फूट गया। मालिक ने कहा घड़ा फुट गया, इस मजदूर ने कहा मेरा घर ही गिर पड़ा।

(१५) निहाली=तोशक, सौड़, मिरज़ई। डाकि चढै=कूदकर उसपर चढ़ै मानों सच्चे ही घोड़े पर। जड़ को सयोग पाइ=वेदांत मत में जड़ और चेतन का भेद समझना ही मुख्य है और उस ही को विवेक कहते हैं। शरीरादि सब जड़ हैं, आत्मा

सुन्दर कहत अहंकार ही तें भूल्यौ आप
एक आवै रोज अरु दूजै वडी हांसी है ॥ १६ ॥
मैं वहुत सुख पायौ मैं वहुत दुख पायौ
मैं अनन्त पुन्य कीये मेरै पोतै पाप है।
मैं कुलीन विद्यावन्त पण्डित प्रवीन महा
मैं तौ मूढ अकुलीन हीन मेरौ वाप है॥
मैं हौं राजा मेरी आन फिरै चहुं चक्र माहिं
मैं तौ रंक द्रव्यहीन मोहिं तौ सन्ताप है॥
सुन्दर कहत अहंकार ही तें जीव भयौ
अहंकार गये यह एक ब्रह्म आप है॥ १७ ॥
देह ई सुपुष्ट लगै देह ही दूवरी लगै
देह ही कौं शीत लगै देह ही कौं तावरौ।
देह ही कौं तीर लगै देह कौ तुपक लगै
देह कौं कृपान लगै देह ही कौं घावरौ॥
देह ही स्वरूप लगै देह ही कुरूप लगै
देह ही जोवन लगै देह वृद्ध डावरौ।
देह ही सौं बांधि हेत आपु विषै मानि लेत
सुन्दर कहत ऐसौ वुद्धि हीन वावरौ॥ १८ ॥

ही चेतन है। जड़ में चेतन की भ्रांति ही मिथ्या ज्ञान है सो ही वधन का कारण है।

(१६) एक आवै हांसी वा रोज=हाय आत्मा को ऐसा अज्ञान क्यों यही रोना। उधर यही अज्ञान हास्यास्पद है।

(१७) अहंकार—यहां उस अज्ञान वा भ्रम का कारण अहंकार कहा है। अहंकार महत्तत्व से है। यही सव सृष्टि का मूल आदि तत्व है। यहां अस्मिता से भी प्रयोजन है—मैं ऐसा, मैं यूं" इत्यादि।

(१८) आपु विषै मानिलेत—देह जड़ है इसमें क्रिया नहीं। चेतन अकर्त्ता है

इन्दव

आपु हि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तैं कछु अन्य परेपै ।
ढूढत ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेपै ॥
औरउ कष्ट करै अतिसै करि प्रत्यक आतम तत्व न पेपै ।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि "है कर कंकण दर्पण देपै" ॥ १९ ॥
सूत्र गरे महि मेलि भयौ द्विज ब्राह्मण ह्वै करि ब्रह्म न जान्यौ ।
क्षत्रिय ह्वै करि क्षत्र धर्‌यौ सिर है गय पैदल सौ मन मान्यौ ॥
वैश्य भयौ वपु की वय देषत झूठ प्रपंच वनिज्य हि ठान्यौं ।
शूद्र भयौ मिलि शूद्र शरीर हि सुन्दर आपु नहीं पहिचान्यौं ॥ २० ॥
ज्यौं रवि कौ रवि ढूंढत है कहुं तप्ति मिलै तनु शीत गवांऊ ।
ज्यौं शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तप्ति बुझाऊं ॥
ज्यौ कोउ सानि भयें नर टेरत है घर मैं अपनै घर जांऊं ।
त्यौ यह सुन्दर भूलि स्वरूप हि "ब्रह्म कहै कव ब्रह्म हि पाऊं ॥ २१ ॥
आपु न देषत है अपनौ मुख दर्पन काट लग्यौ अति थूला ।
ज्यौ दृग देपत तें रहिजात भयौ जव ही पुतरी परि फूला ॥
छाइ अज्ञान रह्यौ अति अन्तर जानि सकै नहिं आतम मूला ।
सुन्दर यौ उपज्यौ मन कै मल "ज्ञान विना निज रूप हि भूला" ॥ २२ ॥

उसमें भी क्रिया नहीं । इनके सम्बन्ध की ग्रथी में अहंकार बनता है उसही से अज्ञान प्रगट कर यह उल्टा-पल्टी कर देता है ।

(१९) निज अज्ञान का इन छन्दों (१९-२०-२१ आदिक २६ तक) में कैसा अच्छा वणन भ्रम और अज्ञान का किया है कि योगवाशिष्ट आदि ग्रन्थों में ढूढे से ही मिलै ॥

(२०) है गय=हय—घोड़ा । गय—गयंद, हाथी ।—

(२१) सांनि—सनक, वोरापन । पाठांतर "जों सनिपात भये" ।

(२२) काट=जग, मैंट (प्राचीन काल में दर्पण फोलाद के होते थे उनपर जग

दीन हुवौ बिललात फिरै नित इन्द्रिनि कै वस छीलक छोलै।
सिंह नहीं अपनौ वल जानत जंबुक ज्यौं जितही तित डोलै॥
चेतनता विसराइ निरन्तर लै जडता भ्रम गांठि न पोलै।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि देह स्वरूप भयौ मुख वोलै॥ २३॥
मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गय भूमि महा रजधानीं।
हौं दुखियो दिन रैंनि भरौं दुख मोहि विपत्ति परी नहीं छांनीं॥
हौं अति उत्तम जाति वडौ कुल हौं अति नीच क्रिया कुल हांनीं।
सुन्दर चेतनता न सभारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २४॥
गर्भ विषैं उतपत्ति भई पुनि जन्म लियौ शिशु शुद्धि न जांनीं।
वाल कुमार किशोर युवादिक वृद्ध भयें मति वुद्धि नसांनीं॥
जैसि हि भांति भई वपु की गति तैसौ हि होइ रह्यौ यह प्रानीं।
सुन्दर चेतनता न सम्भारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २५॥
ज्यौं कोउ त्याग करै अपनौ घर वाहर जाइकै भेप वनावै।
मूंड मुडाइ कै कान फराइ विभूति लगाइ जटाउ वधावै॥
जैसैइ त्याग करै वपु कौ पुनि तैसौइ मानि तिसौ ह्वै जावै।
त्यौं यह सुन्दर आपु न जानत भूलि स्वरूप हि और कहावै॥ २६॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

के दाग लगाने से साफ नहीं रहते, सैकल होनेपर साफ होते) फूला=आंख की पूतरी पर छिनका दाग।

(२३) छीलक छोलै=मुहाविरा—वृथा काम करै।

(२५) नसांनी=नष्ट हो गई।

(२६) तिसौ=तैसा।

अथ सांख्य को अंग ॥ २५ ॥

मनहर

क्षिति जल पावक पवन नभ मिलि करि
शब्द रु सपरस रूप रस गन्ध जू।
श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान
वाक्य पाणि पाद पायु उपस्थ हि वन्ध जू ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौवीस तत्व
पच विस जीव तत्त्व करत है धध जू।
षड विंस कौ है ब्रह्म सुन्दर सु निहकर्म
व्यापक अखंड एक रस निरसध जू ॥ १ ॥
श्रोत्र दिक् त्वक् वायु लोचन प्रकासै रवि
नासिका अश्वनी जिह्वा बरण वषानिये।
वाक अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेन्द्र वल
मेढ्र प्रजापति गुदा मित्र हू कौं ठानिये ॥

अग २५ वा सांख्य—इसही का ऊपर ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ में 'सांख्ययोग' ४ था उपदेश में वर्णन है। इसकी व्याख्या आगे करते हैं।

(१) सांख मत से—५ महाभूत + ५ कर्मेन्द्रियें + ५ ज्ञानेन्द्रियें + १ मन + ५ तन्मात्राए + १ अहकार + १ महत्तत्व + १ प्रकृति + १ पुरुष=२४+१=२५ हैं। साख्य-कारिका ३ री में ये आये हैं-"मूल प्रकृति रविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृति पुरुष" ॥ ३ ॥

अर्थात्—मूल प्रकृति १ + महत् आदि ७ (महत्तत्व, अहकार, शब्दस्पर्श, रूप रस गध ये ५ तन्मात्राए) + १६ पदार्थ (५ ज्ञानेंद्रियां + ५ कर्मेंद्रियां + १ मन+५ महाभूत)+१ पुरुष=२५ हुए। और "सांख्यसूत्र" में प्रथम अध्याय के ६० वें सूत्र में—'सत्वरजतमसां साम्यावस्था प्रकृति॰ प्रकृतेर्महान्। महतोऽहकारो।

मन चन्द्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि
अहंकार रुद्र को प्रभाव करि मानियें।
जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकासत है
सुन्दर सु आतमा हि न्यारौ करि जानिये ॥ २ ॥

इन्दव

श्रोत्र सुनै दृग देषत है रसना रस घ्राण सुगन्ध पियारौ।
कोमलता त्वक् जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारौ ॥
पानि ग्रहै पद गौन करैं मल मूत्र तजे उभऊ अध द्वारौ।
जाके प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुन्दर सोइ रहै घट न्यारौ ॥ ३ ॥
बुद्धि भ्रमैं मन चित्त भ्रमै अहंकार भ्रमै कछु जानत नाहीं।
श्रोत्र भ्रमैं त्वक् घ्राण भ्रमै रसना दृग देषि दशौं दिश जाहीं ॥
वाक् भ्रमै कर पाद भ्रमैं गुद द्वार उपस्थ भ्रमै कछु काहीं।
तेरे भ्रमाये भ्रमै सबही गुन सुन्दर तू क्यों भ्रमै इन माहीं ॥ ४ ॥
बुद्धि कौ बुद्धि रु चित्त कौ चित्त अहं कौ अहं मन कौ मन वोई।
नैंन कौ नैंन है बैंन कौ बैंन है कान को कान त्वचा त्वक होई ॥
घ्राण कौ घ्राण है जीभ कौ जीभ है हाथ कौ हात पगौं पग दोई।
सीस कौ सीस है प्राण कौ प्राण है जीव कौ जीव है सुन्दर सोई ॥५॥

मनहर (प्रश्न)

कैसें कै जगत यह रच्यौ है जगत गुरु
मौ सों कहौ प्रथम ही कौन तत्त्व कीनौं है।
प्रकृति कि पुरुष कि मह तत्त्व अहंकार
किधौं उपजाये सत्त रज तम तीनौं है ॥

अहंकारात्वं च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं । तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि । पुरुष. । इति पंचविंशतिर्गणः" ॥ ६० ॥ ऐसा आया है। परन्तु सुन्दरदास जी श्रीमद्भागवत पुराण में कथित सांख्य के अनुसार तथा वेदांत की छाया से जीव (पुरुष) सहित

किधौं व्योम वायु तेज आपु कै अवनि कीन
किधौं पच विपय पसार करि लीनौ है।
किधौ दश इन्द्री किधौं अन्तहकरण कीन
सुन्दर कहत किधौ सकल विहीनौ है॥ ६॥

(उत्तर)

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई
प्रकृति तें महतत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हू तें तीन गुन सत्व रज तम
तम हू तें महाभूत विपय पसार है॥
रज हूं तें इन्द्री दश पृथक-पृथक भई
सत्व हू तें मन आदि देवता विचार है।
ऐसैं अनुक्रम करि शिष्य सौं कहत गुरु
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥ ७॥

(प्रश्न)

मेरौ रूप भूमि है कि मेरौ रूप आपु है कि
मेरौ रूप तेज है कि मेरौ रूप पौन है।
मेरौ रूप व्योम है कि मेरौ रूप इन्द्री है कि
अंतहकरण है कि वैठौ है कि गौन है॥

---

२५ तत्व कहते हैं जिनमें अतः करण चतुष्टय भी है। और २६ वां तत्व ब्रह्म को कहा है।—"पचभि पचभिब्रह्मन्-चतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिक गण प्राधानिक विदु"॥ (भा० ३। २६। ११)। अंतःकरण चतुष्टय माना है।

(६ और ७) शिष्य के प्रश्न के उत्तर में गुरु ने उत्तर दिया है। उसमें ब्रह्म को आदि कारण पुरुष और प्रकृति का बताया है। यह वात सांख्य के ग्रन्थों से नहीं पाई जाती है। यह साधारण वेदांत का मत है। सांख्य में तो प्रकृति (प्रधान) को आदि कारण माना है। पुरुष चेतन असग कहा गया है। पुरुष (जीव) असंख्य

मेरौ रूप निगुण कि अहंकार महतत्त्व
प्रकृति पुरुष किधौं बोलै है कि मौंन है।
मेरौ रूप थूल है कि शून्य आहि मेरौ रूप
सुन्दर पूछत गुरु मेरौ रूप कौन है॥ ८॥

(उत्तर)

तू तौ कछु भूमि नाहि आपु तेज वायु नाहिं
व्योम पंच विषै नाहिं सौ तौ भूम कूप है।
तू तौ कछु इन्द्री अरु अंतहकरण नाहिं
तीनौ गुण ऊ तू नाहि सोऊ छांह धूप है॥
तू तौ अहंकार नाहि पुनि महतत्त्व नाहिं
प्रकृति पुरुष नाहिं तू तौ सु अनूप है।
सुन्दर विचारि ऐसें शिष्य सौं कहत गुरु
"नाहि नाहि करतें रहै सु तेरौ रूप है"॥ ९॥

नाना है। सुन्दरदासजी का कथन गीता और भागवत से पुष्ट होता है, परतु साख्य मे नहीं होता॥

अहकार से तीनो गुणो की उत्पत्ति कही सो साख्य के मतानुसार नही है। साख्य मे तो प्रकृति ही मे तीनो गुणों को माना है। अहंकार से मन और दशो इन्द्रियां तथा पाच तन्मात्राए इस तरह ये १६ उत्पन्न होती हैं। (कारिका २४)। अहकार मे तीनो गुण विद्यमान अवश्य ही रहते हैं। गुणो की न्यूनाधिकता ही से भिन्न-भिन्न सृष्टि होती है॥

(९) साख्य सूत्र १ अ० सूत्र १३८—१३९—१४०—१४१ आदि का यह भावार्थ है। नाहि नाहि—श्रुति के नेति नेति का अनुवाद है। 'शरीरादि व्यतिरिक्त पुमान्।" "सहतपरार्थत्वात्"। "त्रिगुणादि विपर्ययात्"। "अधिष्ठानाच्चेति"।—स्थूल शरीर से लेकर प्रकृति पर्यन्त सबसे पुरुष (आत्मा) भिन्न है। सहतवस्तु (जो अनेक पदार्थों से बने उस) का अन्य ही भोक्ता होता है। आत्मा सहत पदार्थ

तेरौ तौ स्वरूप है अनूप चिदानंद घन
देह तौ मलीन जड या विवेक कीजिये।
तू तौ निहसंग निराकार अविनाशी अज
देह तौ बिनाशवत ताहि नहिं धीजिये॥
तू तौ षट ऊरमी रहत सदा एक रस
देह के विकार सब देह सिर दीजिये।
सुन्दर कहत यौ विचारि आपु भिन्न जानि
पर की उपाधि कहा आप ऐंचि लीजिये॥ १०॥

देह ई नरक रूप दुख कौन वारपार
देह ई जु स्वर्ग रूप झूठौ सुख मान्यौं है।
देह ई कौं बध मोक्ष देह ई अप्रोक्ष प्रोक्ष
देह ई के क्रिया कर्म शुभाशुभ ठांन्यौं है॥
देह ही मैं और देह पुसी ह्वै विलास करै
ताहि कौं समुझि विन आतमा वपान्यौं है।
दोऊ देह तें अलिप्त दोऊ कौ प्रकाश कहै
सुन्दर चेतन्य रूप न्यारौ करि जान्यौं है॥ ११॥

नहीं है। अत आत्मा अन्यों का भोक्ता है। पुरुष में सुख दुःख मोहादिक नहीं है ये सब गुणों में हैं अत पुरुष प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों से भिन्न है। पुरुष अधिष्ठाता प्रेरक है इस कारण से यह आत्मा अधिष्ठेय प्रेरित से भिन्न है जैसे राजा प्रजा से और सारथि रथ और घोड़ों से भिन्न हैं। पुरुष चेतन है और इसही को ज्ञान होता है इन्द्रियादि जड़ है। अत जड़ पदार्थों से पुरुष (आत्मा) भिन्न है।

(१०) षट ऊर्मी=छह ऊर्मियां (दुःख) ये हैं—शीत, ऊष्ण, क्षुधा, तृषा, लोभ और मोह।

(११) देह में और देह—स्थूल देह में सूक्ष्म शरीर। इनका प्रकाश और इनसे भिन्न पुरुष (आत्मा) है। (देखो सांख्य कारिका ३९—४० और ५२)।

देह हलै देह चलै देह ही सौं देह मिलै
देह खाइ देह पीवै देह ई भरत है।
देह ही हिंवारे गरै देह ही पावक जरै
देह रन माहि जूझै देह ही परत है॥
देह ही अनेक कर्म करत विविध भांति
चम्बक की सत्ता पाइ लोह ज्यौं फिरत है।
आतमा चेतन्यरूप व्यापक साक्षी अनूप
सुन्दर कहत सु तौ जन्मै न मरत है॥ १२॥
देह सौं न देह कछु देह कौ ममत्व छाडि
देह तौ दमामौ दीये देह देह जात है।
घट सौं घटत घरी घरी घट नास होत
घट कै गये तें घट की न फेरि बात है॥
पिंड पिंड माहि पुनि पिंड कौं उपावत है
पिंड पिंड पात पुनि पिंड ही कौ पात है।
सुन्दर न होइ जासौं सुन्दर कहत जग
सुन्दर चेतन्य रूप सुन्दर विख्यात है॥ १३॥[1]

---

(१२) चम्बक=चुम्बक, मिकनातीसो पत्थर जो लोहे को खैंचता है। यह लोहे का भी बनता है। यहां चेतन आत्मा से प्रयोजन है। देह जड़ है परन्तु चेतन आत्मा की सत्ता या आभास से क्रियावान होती है। तब अनेक चेष्टाएं करती है। चेतन की सत्ता से पृथक् हो तब जड़ ही रह जाती है जैसे मृतक शरीर।

(१३) न देह=मत दे, अर्थात् इस जड़ शरीर के अर्थ कुछ मत कर, आत्मा के अर्थ कर। दमामो=नक्कारा, अर्थात् धड़ा-धड़ डंके की चोट रूपांतरित होकर बदलती जाती है, स्थिर नहीं है। पिंड=शरीर, पुद्गल, देह। सुन्दर=परम पवित्र आत्मा। इस देह का नाम 'सुन्दर' रक्खा है सो इससे कुछ प्रेम मत कर। वास्तव में सुन्दर जो आत्मा है उस चेतन पुरुष उसका साक्षात्कार कर। [1]यह चित्रकाव्य भी है।

(प्रश्नोत्तर)

देह यह किन कौ है देह पंच भूतनि कौ
पंच भूत कौन तें हैं तामसाहंकार तें।
अहकार कौन तें है जासौ महतत्त्व कहैं
महतत्व कौन तें है प्रकृति मझार तें॥
प्रकृति हू कौन तें है पुरुष है जाकौ नाम
पुरुष सौ कौन तें है ब्रह्म निराधार तें।
ब्रह्म अब जान्यौ हम जान्यौ है तौ निश्चै करि
निश्चै हम कीयौ है तौ चुप मुख द्वार तें॥ १४॥

एक घट माहि तौ सुगन्ध जल भरि राख्यौ
एक घट माहि तौ दुर्गन्ध जल भर्यौ है।
एक घट माहि पुनि गंगोदिक राख्यौ आनि
एक घट माहि आनि मदिराऊ कर्यौ है॥
एक घृत एक तेल एक माहि लघुनीति
सबही मैं सविता कौ प्रतिबिंब पर्यौ है।
तैसें हिं सुन्दर ऊंच नीच मध्य एक ब्रह्म
देह भेद देषि भिन्न भिन्न नाम धर्यौ है॥ १५॥

भूमि परें अप अप हू कै परै पावक है
पावक कै परै पुनि वायु हू वहतु है।
वायु परे व्योम व्योम हू कै परै इन्द्री दश
इन्द्रिन कै परै अन्त करण रहतु है॥

---

(१४) इस सवैये मे वही मत अपना सुन्दरदासजी ने प्रतिपादन किया है - ऊपर ७ वें सवैये में वर्णित है। साख्य शास्त्र में 'ब्रह्म' शब्द 'बुद्धि' का न [illegible] आया है। प्रकृति को अनादि कहा है। चुप मुखद्वार तें=ब्रह्म साक्षात्कार होता है वह वर्णन में नहीं आ सकता। वह गूगे का गुड़ है॥

(१५) गुण कर्म स्वभाव के भेद से शरीरों के भेद हैं। लघुनीति=मूत्र।

अन्तहकरण परै तीनौं गुन अहंकार
अहंकार परै महतत्व कौं लहतु है।
महतत्व परै मूल माया माया परै ब्रह्म
ताहि तें परातपर सुन्दर कहतु है॥ १६॥

भूमि तौ विलीन गन्ध गन्ध हू विलीन आप
आप हू विलीन रस रस तेज पातु है।
तेज रूप रूप वायु वायु हू सपर्श लीन
सो सपर्श व्योम शब्द तम हि विलात है॥
इन्द्री दश रज मन देवता विलीन सत्व
तीन गुन अहं महत्तत्व गिलि जात है।
महतत्व प्रकृति प्रकृति हू पुरुष लीन
सुन्दर पुरुष जाइ ब्रह्म मैं समात है॥ १७॥

आतमा अचल शुद्ध एक रस रहै सदा
देह विवहारनि मैं देह ही सौ जानिये।
जैसैं शशि मण्डल अभंग नहिं भंग होइ
कला आवै जाहि घटि वढि सो वषानिये॥
जैसैं द्रुम सु थिर नदी के तटि देषियत
नदी के प्रवाह माहि चलतौ सौ मानिये।
तैसैं आतमा अतीत देह कौं प्रकाशक है
सुन्दर कहत यौं विचारि भ्रम भानिये॥ १८॥

---

(१६) इस छन्द में सुन्दरदासजी ने 'परात्पर' की सिद्धि बहुत चतुराई और सचाई से की है। पर का अर्थ श्रेष्ठ और उत्तम का भी है।

(१७) परात्पर की परंपरा की तरह यह लय का तारतम्य बहुत अच्छा दरसाया गया है।

(१८) चन्द्रमा की कला सूर्य के तेज, अपनी गति और पृथ्वी की गति से

आतमा शरीर दोऊ एकमेक देपियत
जब लग अन्तहकरण में अज्ञान है।
जैसैं अन्धियारी रैंन घर मैं अन्धेरौ होइ
आपिनि कौ तेज ज्यौं कौ त्यौं ही विद्यमान है ॥
जदपि अन्धेरै मांहि नैंन कौं न सूझै कछु
तदपि अन्धेरै सौं अलिपत षपान है।
सुन्दर कहत तौ लौ एकमेक जानत है
जौं लौं नहिं प्रगट प्रकाश ज्ञान भान है ॥ १९ ॥

देह जड देवल में आतमा चेतन्य देव
याहि कौ समुझि करि यासौं मन लाइये।
देवल कौ विनसत वार नहिं लागै कछु
देव तौ सदा अभंग देवल में पाइये ॥
देव की सकति करि देवल की पूजा होइ
भोजन विविध भाति भोग हू लगाइये।
देवल तें न्यारौ देव देवल में देपियत
सुन्दर विराजमान और कहा जाइये ॥ २० ॥

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सौ न चन्दन सनेह सौ न सेहरा।

घटती बढ़ती है। आत्मा अखंड और अक्षर है वह देह के संसर्ग से देहाभिमान का अध्यास पाती है। टटि=तट पर।

(१९) ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश होने से अविवेकरूपी अंधकार मिट जाता है। जड़ देह को चेतन आत्मा समझ लेना पूर्ण अविवेक है, ज्ञान के उदय से यह जाता रहता है ॥

(२०) देवल ते न्यारो=देव तो चेतन है देह (देवल) जड़ है, इससे भिन्न है। परन्तु सर्व व्यापी होने से जड़ में भी व्यापक है। इससे देवल में भी है और बाहर वा न्यारा भी है।

हृदै सौ न आसन सहज सौ न सिंघासन
भावसी न सौंज और शून्य सौ न गेहरा ॥
सील सौ सनान नाहिं ध्यान सौ न धूप और
ज्ञान सौ न दीपक अज्ञान तम के हरा ।
मन सी न माला कोऊ सोहं सौ न जाप और
"आतमा सौ देव नाहिं देह सौ न देहरा" ॥ २१ ॥

स्वासो स्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप
याहि माला वार वार दिढ कै धरतु है ।
देह परै इन्द्री परैं अन्तहकरण परैं
एक ही अखण्ड जाप ताप कौं हरतु है ॥
काठ की रुद्राक्ष की रु सूत हू की माला और
इनकै फिराये कौन कारिज सरतु है ।
सुन्दर कहत तातें आतमा चेतनि रूप
"आपुकौ भजन सु तौ आपु ही करतु है" ॥ २२ ॥

क्षीर नीर मिलि दोऊ एकठे ई होइ रहे
नीर छाडि हंस जैसें क्षीर कौं गहतु है ।
कंचन मे और धात मिलि करि वान पर्‌यौ
शुद्ध करि कंचन सुनार ज्यौं लहतु है ॥
पावक हू दार मध्य दार ही सौ होइ रह्यौ
मथि करि काढैं वाही दार कौं दहतु है ।

---

(२१) यह छन्द सुन्दरदासजी को आगरेवाले कवि बनारसीदासजी ने भेजा था। इसका उत्तर सुन्दरदासजी ने भेजा सो 'साधु' के अंग २० में सवैया १५ वा— धूलि जैसो धन ''भेजा था।

(२२) बाह्य साधनों से मुक्ति नहीं होती। सांख्य मत में पुरुष (आत्मा) का प्रकृति से विच्छिन्न होना ही मोक्ष है, अन्य प्रकार की कोई मोक्ष मानी नहीं है।

ज्यौं नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिले सु दिपाहीं।
चोट अनेक परै घन की सिर लोह वधै कछु पावक नाहीं ॥
पावक लीन भयौ अपनै घर शीतल लोह भयौ तव ताहीं।
त्यौं यह आतम देह निरतर सुन्दर भिन्न रहै मिलि माहीं ॥ ३० ॥
आतम चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहुं लिप्त न होई।
है जड चेतन अतहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लियें गुन दोई ॥
देह अशुद्ध मलीन महा जड हालि न चालि सकै पुनि वोई।
सुन्दर तीनि विभाग किये विन भूलि परै भ्रम तैं सव कोई ॥ ३१ ॥

सवइया

ब्रह्म अरूप अरूपी पावक व्यापक जुगल न दीसत रंग।
देह दार तें प्रगट देपियत अंत करण अग्नि द्वय अग ॥
तेज प्रकाश कल्पना तौ लगि जौ लगि रहै उपाधि प्रसग।
जह के तहा लीन पुनि होई सुन्दर दोऊ सदा अभंग ॥ ३२ ॥
देह सराव तेल पुनि मारुत वाती अंतःकरण विचार।
प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भयौ सकल उजियार ॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक वहुत भाति विस्तार।
सुन्दर अद्भुत रचना तेरी तू ही एक अनेक प्रकार ॥ ३३ ॥

पुरुष (आत्मा) अनन्त वा वहुत्व करके माने है। प्रत्येक शरीर में भिन्न पुरुष है। वेदांत मत में एक अद्वितीय आत्मा ही उपाधि के भेद से शरीरों में भिन्न २ भासती हैं।

(३०) अग्नि (पावक) दृष्टांत दोनों मतों में दिया जाता है। परन्तु वेदांत मत से सर्व में एक ही आत्मा उपाधि भेद से है और सांख्य मत से भिन्न भिन्न शरीरों में भिन्न भिन्न पुरुष हैं।

(३१) शुद्ध=सतोगुण प्रधान। अशुद्ध=तमोगुण प्रधान।

(३२) दार=लकड़ी। लकड़ी की मथनी की रगड़ से आग प्रगट होती है।

(३३) सराव=दीपक जलाने की सराई।

तिल में तेल दूध में घृत है दार माहि पावक पहिचानि।
पुहप माहि ज्यों प्रगट वासना इक्षु माहि रस कहत वपानि॥
पोसत माहि अफीम निरतर वनस्पती में सहत प्रवानि।
सुन्दर भिन्न मिल्यौ पुनि दीसत देह माहि यौं आतम जानि॥ ३४॥
जाग्रत स्वप्न सुपोपति तीनों अतःकरण अवस्था पावै।
प्राण चलै जाग्रत अरु स्वपनै सुपुपति में पुनि अह निसि धावै॥
प्राण गये तें रहै न कोऊ सकल देप तें थाट विलावै।
सुन्दर आतम तत्व निरतर सौ तौ कतहूं जाइ न आवै॥ ३५॥
पन्द्रह तत्व स्थूल कुभ में सूक्ष्म लिंग भर्‌यौ ज्यों तोय।
उहा जीव उहा आभा दीसै ब्रह्म इन्दु प्रतिविंवे दोइ॥
घट फूटें जल गयौ विलै ह्वै अंतहकरण कहै नहिं कोइ।
तव प्रतिविंव मिलै शशि विंवहि सुन्दर जीव ब्रह्ममय होइ॥ ३६॥

मनहर

जैसें व्योम कुम्भ के वाहिर अरु भीतर हू
कोऊ नर कुम्भ कौं हजार कोस लै गयौ।
ज्यौ ही व्योम इहा त्यौ ही उहा पुनि है अखंड
इहा न विछोह न तौ उहा मिलाप है भयौ॥
कुम्भ तौ नयौ न पुरानौ होइ के विनसि जाइ
व्योम तौ न ह्वै पुरानौ न तौ कछु ह्वै नयौ।
तैसें ही सुन्दर देह आवै रहै नाश होइ
आतमा अचल अविनाशी है अनामयौ॥ ३७॥
देह के सयोग ही तें शीत लगै घाम लगै
देह के संयोग ही तें क्षुधा तृपा पौंन कौं।

(३५) प्राण=जीवत्व जो चेतन आत्मा का प्रकृति में आभास मात्र है। इसी को आगे के ३६ वें सवैये में प्रतिविंव मात्र कहा है। घट का जल मानो लिंग (सूक्ष्म) शरीर है उसमें चांद का प्रतिविंव जीव है।

देह कै सयोग ही तें कटुक मधुर स्वाद
देह कै संयोग कहै पाटो पारो लौन कौं ॥
देह कै सयोग कहै मुख तें अनेक बात
देह कै सयोग ही पकरि रहै मौन कौं।
सुन्दर देह कै संग सुख मानै दुख मानै
देह कौ संयोग गयौ सुख दुख कौन कौं ॥ ३८ ॥

आपु की प्रसंसा सुनि आपु ही पुसाल होइ
आपु ही की निंदा सुनि आपु मुरझाइ है।
आपु ही कौं सुख मानि आपु सुख पावत है
आपु ही कौं दुख मानि आपु दुख पाइ है ॥
आपु ही की रक्षा करै आपु ही की घात करै
आपु ही हत्यारौ होइ गंगा जाइ न्हाइ है।
सुन्दर कहत ऐसैं देह ही कौं आपु मांनि
निज रूप भूलि कै करत हाइ हाइ है ॥ ३९ ॥*

॥ इति सांख्य ज्ञान को अंग ॥ २५ ॥

---

* ये तीनों छन्द (३७, ३८, ३९) मूल (क) वा (ख) पुस्तक फतहपुरवाली में नहीं हैं, उसमें ३६ तक ही हैं। छपी हुई पुस्तकों वा स्फुट काव्य में है।

(३७) (३८) (३९) आत्मा में कर्त्तापन का अभिमान दरसता है, सो इसका कारण सांख्य मत से, "उपराग" है। "उपराग" नाम आत्मा का जो चित् है अर्थात् प्रकृति वा बुद्धि (महत्) तत्व में प्रतिबिंब पड़ने से वा सान्निध्य से जो कर्तृत्व का रग भासना है सो ही है।—"उपरागात्कर्तृत्व चित्सान्निध्यात् २"। सांख्य सूत्र ॥ १ ॥ १६३ ॥ यही बात वेदांत के अध्यास से समझी जाती है। इतर का इतर में—आत्मा का अनात्मा में और अनात्मा का आत्मा में आरोप किया जाय यही अध्यास है। चित् के सकाश से जड़ प्रकृति काम करती है, तो अहता के

अथ बिचार को अंग ॥ २६ ॥

मनहर

प्रथम श्रवण करि चित्त एकाग्र धरि
गुरु सन्त आगम कहैं सु उर धारिये।
दुतिय मनन बारंबार ही बिचारि देषै
जोई कछु सुनैं ताहि फेरि कैं संभारिये ॥
त्रितिय ताहि प्रकार निदध्यास नीकैं करै
निहसंग बिचरत अपुनपौ तारिये।
सो साक्षातकार याही साधन करत होइ
सुन्दर कहत द्वैत बुद्धि कौं निवारिये ॥ १ ॥

देषै तौ विचार करि सुनै तौ बिचार करि
बोलै तौ बिचार करि करै तौ बिचार है।
षाइ तौ बिचार करि पीवै तौ बिचार करि
सोवै तौ बिचार करि तौ ही तौ उबार है ॥
बैठै तौ बिचार करि ऊठै तौ बिचार करि
चलै तौ बिचार करि सोई मत सार है।
देइ तौ बिचार करि लेइ तौ बिचार करि
सुन्दर बिचार करि याही निरधार है ॥ २ ॥

उद्भाव से आत्मा करता भास जाता है। वास्तव में आत्मा अकर्ता है। अनामयो=अनामय=निर्लेप, शुद्ध, निर्गुण ।

(१) इस छन्द में वेदांत की प्रक्रिया के साधनचतुष्टय—श्रवण, मनन, निदिध्यासन समादि षट्-सम्पत्ति—को संक्षेप में कहा है। चौथा साक्षात्कार नाम देकर संक्षेप किया है।

एक ही विचार करि सुख दुख सम जानै
एक ही विचार करि मल सव धोइ है।
एक ही विचार करि ससार समुद्र तिरै
एक ही बिचार करि पारगत होइ है॥
एक ही विचार करि बुद्धि नाना भाव तजै
एक ही बिचार करि दूसरौ न कोइ है।
एक ही बिचार करि सुन्दर संदेह मिटै
एक ही विचार करि एक ब्रह्म जोइ है॥ ३॥

इन्दव

रूप कौ नास भयौ कछु देपिय रूप तौ रूप हि मांहि समावै।
रूप के मध्य अरूप अखडित सौ तौ कहूं कछु जाइ न आवै॥
वीचि अज्ञान भयौ नव तत्त्व कौ वेद पुरान सबै कोउ गावै।
सोउ बिचार करै जव सुन्दर सोधत ताहि कहू नहिं पावै॥ ४॥
भूमि सु तौ नहिं गध कौ छाडत नीर सु तौ रस तें नहि न्यारौ।
तेज सु तौ मिलि रूप रह्यौ पुनि बायु सपर्स सदा सु पियारौ॥

---

(३) "जाई है"—इसके दो अर्थ भासते हैं—१—जो ब्रह्म है उसे। २—ब्रह्म का प्रत्यक्ष देखै।

(४) "रूप तो रूपहि मांहि"=जगत् सारा नाम रूपात्मक है। क्षर है। रूप किसी पदार्थ को मिट कर तत्व रूप में विकृत होता है। यही रूप का रूप में समाना वा बदलना है। रूप नाशमान है, वस्तु (वास्तव तत्व) नाशमान नहीं है। नवतत्व=पचभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश), मन, बुद्धि, चित्त, अहकार। ताहि कहू नहीं पावै।—साधारण विचार से आत्म साक्षात्कार नहीं होता है। विशेष साधन, भगवत् कृपा तथा गुरु कृपा और भाग्य से ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। यही वात कई जगह पहिले इस ग्रन्थ मे आई है।

व्यौम रु शब्द जुदे नहिं होत सु ऐसैं हिं अन्तःकरण विचारौ ।
ये नव तत्व मिलै इन तत्वनि सुन्दर भिन्न स्वरूप हमारौ ॥ ५ ॥
क्षीण सपुष्ट शरीर कौ धर्म जु शीत हू ऊष्ण जरा मृति ठानैं ।
भूप तृषा गुन प्रान कौं व्यापत शोक रु मोह उभै मन आनैं ॥
वुद्धि विचार करै निस वासर चित्त चित्तै सु अहं अभिमानैं ।
सर्व कौ प्रेरक सर्व कौ साक्षिय सुन्दर आपु कौ न्यारौ हि जानैं ॥ ६ ॥
एकहि कूप कै नीर तें सींचत ईक्ष अफीम हि अंब अनारा ।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटूक षटा अरु षारा ॥
त्यौं हि उपाधि संयोग तें आतम दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा ।
काढि लिये जु विचार विवस्वत सुन्दर सुद्ध स्वरूप है न्यारा ॥ ७ ॥
रूप परा कौ न जानि परै कछु ऊठत हैं जिहिं मूल तें छानी ।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरन्नि पुरुष्प संयोग पश्यंति वषानी ॥
नाद सयोग हृदै पुनि कंठ जु मध्यमा याहि विचार तें जानी ।
अक्षर भेद लियें मुख द्वार सु बोलत सुन्दर वैषरी वानी ॥ ८ ॥
ज्यौं कोउ रोग भयौ नर कै घर वैद कहै यह वायु विकारा ।
कोउ कहै ग्रह आइ लगे सव पुन्य कियें कछु होइ उवारा ॥
कोउ कहै इहिं चूक परी कछु देवनि दोष कियौ निरधारा ।
तैसें हिं सुन्दर तत्वनि के मत भिन्न हिं भिन्न कहैं जु विचारा ॥ ९ ॥

---

(५) "इन तत्वनि"=इन नव तत्वों से हमारा (आत्मा का) स्वरूप भिन्न (पृथक्) है।

(६) निर्गुण ब्रह्म का लक्षण कहा है।

(७) विवस्वत=सूर्य। आत्मा उपाधि-रहित हो तब वही आत्मा ही है। जैसे सूर्य के आगे से वद्दल आदि दूर हो जाने से शुद्ध प्रकाशमान दिखाई देता है।

(८) चार प्रकार की वाणियां—परा, पश्यती, मध्यमा और वैखरी—तुरिय, कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों में क्रमशः वर्त्तती है।

जे विपई तम पूरि रहे तिनि कौ रजनी महि बादर छायौ।
कोउ मुमुक्षु किये गुरुदेव तिन्हें भय जुक्त जु शब्द सुनायौ॥
बादल दूरि भये उन्ह के पुनि तारनि सौं रजु सर्प दिपायौ।
सुन्दर सूर प्रकाशत ही भ्रम दूरि भयौ रजु कौ रजु पायौ॥ १०
कर्म सुभासुभ को रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी।
भक्ति सु तौ यह है अरुणोदय अत निसा दिन सधि विचारी॥
ज्ञान सु भान सदोदित वासर वेद पुरान कहैं जु पुकारी।
सुन्दर तीन प्रभाव वपानत यौं निहचै संमुझै विधि सारी॥ ११॥

मनहर

देह ई कौं आपु मानि देह ई सौं होइ रह्यौ
जडता अज्ञान तम शूद्र सोई जांनिये।
इन्द्रिनि के व्यापारनि अत्यन्त निपुनि वुद्धि
तमो रज दुहु करि वैश्य हू प्रमानिये॥
अतह्करण माहि अहंकार वुद्धि जाकै
रजोगुण वर्द्धमान क्षत्री पहिचानिये।
सत्व गुण वुद्धि एक आतमा विचार जाकै
सुन्दर कहत वह ब्राह्मन वपानिये॥ १२॥

---

(१०) ज्ञान की क्रमिक दशा वा अवस्था और उपाधि की न्यूनाधिक्यता से ऐसा होता है।

(११) यह छन्द स्वामीजी का अत्यत प्रसिद्ध और सार भरा है। इसमें त्रिकाण्ड प्रकरण—कर्म, भक्ति (उपासना) और ज्ञान- को वहुत सुन्दरता से वर्णन किया है। प्रभाव=अवस्था, प्रकरण वा कक्षा।

(१२) गुणों के पचीकरण से ज्ञान (वा ज्ञानी) की चार अवस्थाएं (जातिए) कही हैं।

आतमा कै विषै देह आइ करि नाश होइ
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है।
जैसैं साप कंचुकी कों लियें रहै कोऊ दिन
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है॥
जैसें द्रुम हू कै पत्र फूल फल आइ होत
तिन के गये तें द्रुम औरउ लहतु है।
जैसैं व्योम माहि अभ्र होइ कैं विलाइ जात
ऐसौ सौ विचार कछु सुन्दर कहतु है॥ १३॥

परी की डरी सौं अंक लिपि कैं विचारियत
लिपत लिपत वहै डरी घसि जात है।
लेपौ समुझ्यो है जब संमुझि परी है तव
जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है॥
दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ
वह दार जारि पुनि पावक समात है।
तैसैं ही सुन्दर वुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि
करत करत वह बुद्धि हू विलात है॥ १४॥

आपु कौं संमुझि देषि आपु ही सकल माहि
आपु ही मैं सकल जगत देपियतु है।

---

(१३) आत्मा समुद्र समान विशाल और महान है। देह बुदबुदा सा है।

(१४) यह उदाहरण स्वामीजी ने बहुत उच्चकोटि का दिया है। और इसमें दार्शनिक मर्म भला भरा है। इस पर जिज्ञासु को बहुत ही गहरा विचार रखना चाहिए। परात्पर ब्रह्म के लिये "योबुद्धेःपरतस्तुसः"। जो बुद्धि से परे है सोही वह (परमात्मा) है। अर्थात् बुद्धि उसके खोजने मे मर मिटती है तब वह मिलता है। बुद्धि (अहंकार वृत्ति) मिटने पर ही आत्मा का प्रकाश मिलता है।

जैसें व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है
बादल अनेक नाना रूप लेखियतु है ॥
जैसें भूमि घट जल तरंग पावक दीप
वायु में बघूरा यौं ही विश्व रेखियतु है ।
ऐसें ही विचारत विचार हू विलीन होइ
सुन्दर ही सुन्दर रहत पेखियतु है ॥ १५ ॥
देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसौ नाम भयौ
घट के संयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है ।
ईश्वर हू सकल विराट में विराजमान
मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है ॥
महाकाश माहिं सब घट मठ देखियत
बाहिर भीतर एक गगन समायौ है ।
तैसें ही सुन्दर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव
त्रिविधि उपाधि भेद ग्रन्थनि में गायौ है ॥ १६ ॥

प्रश्न

देह दुख पावै किधौं इन्द्री दुख पावै किधौं
प्रान दुख पावै जब लहै न अहार कौं ।
मन दुख पावै किधौं बुद्धि दुख पावै किधौं
चित्त दुख पावै किधौं दुख अहंकार कौं ॥

---

(१५) रेखियतु है=रेखांकित होता है=रूपधारी हो जाता है। अरूप में से रूप निकलता है ।

(१६) वेदांत मत की यह प्रसिद्ध कोटि है—घटाकाश मठाकाश और महाकाश । ये ब्रह्म, ईश्वर और जीव को समझाने को दृष्टांत हैं कि उपाधि के भेद से इनका भेद प्रतीत होता है । वास्तव में घटाकाश और मठाकाश भी महाकाश (के अंतर्गत) भेद वा विभागमात्र हैं ।

गुण दुख पावै कियौं सूत्र दुख पावै कियौं
प्रकृति दुख पावै कि पुरुष अधार कौं ।
सुन्दर पूछत कछु जानि न परत तातैं
कौन दुख पावै गुरु कहौ या विचार कौं १७ ॥

उत्तर

देह कौं तौ दुख नाहि देह पंचभूतनि की
इन्द्रिनि कौ दुख नाहि दुख नाहि प्रान कौं ।
मन हू कौ दुख नाहि बुद्धि हू कौं दुख नाहि
चित्त हू कौं दुख नाहिं नाहि अभिमान कौं ॥
गुणनि कौ दुख नाहि सूत्र हू कौं दुख नाहि
प्रकृति कौं दुख नाहि दुख न पुमान कौं ।
सुन्दर विचारि ऐसैं शिष्य सौं कहत गुरु
दुख एक देषियत वीच के अज्ञान कौं ॥ १८ ॥

पृथवी भाजन अंग कनक कटक पुनि
जल हू तरंग दोऊ देषि कै बषानिये ।
कारण कारज ये तौ प्रगट ही थूल रूप
ताही तें नजर माहि देषि करि आनिये ॥
पावक पवन व्योम ये तौ नहिं देषियत
दीपक बघूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमानिये ।
आतमा अरूप अति सूक्ष्म तें सूक्ष्म है
सुन्दर कारण तातैं देह मैं न जानिये ॥ १९ ॥

(१७-१८) सतरहवें छन्द में शिष्य का प्रश्न है । और अठारहवें में गुरु ने उत्तर देकर समझाया है ।

(१९) कटक=कड़ा, वलिया । सोने का बनता है । सोना कारण और कड़ा कार्य्य है । 'कारण तातैं देह में न जानिये"=आत्मा अणोरणीय अत्यंत सूक्ष्म है, स्थूल न होने से देह में इन्द्रिय और बुद्धि आदिकों से प्रत्यक्ष नहीं होता है ।

जैन मत उहै जिनराज कौं न भूलि जाइ
दान तप शील साची भावना तें तरिये ।
मन वच काय शुद्ध सब सौं दयालु रहै
दोष बुद्धि दूरि करि दया उर धरिये ॥
जोध नाम तब जब मन कौ निरोध होइ
बोध कौं बिचारि सोध आतमा कौ करिये ।
सुन्दर कहत ऐसें जीवत ही मुक्त होय
मुये तें मुक्ति कहै तिनि कौं परिहरिये ॥ २० ॥
योगी जागै योग साधि भोगी जागै भोग रत
रोगी जागै दुख माहि रोग की उपाधि मैं ।
चोर जागै चोरी कौं पाहरू जागै रापिबे कौं
निरधन जागै धन पाइबे की व्याधि मैं ॥
दिवाली की राति जागै मन्त्र वादी मंत्र जपि
क्यौ ही मेरौ मन्त्र फुरै देषौं मंत्र साधि मैं ।
बिविधि उपाइ करि जागत जगत सब
सोवै सुख सुन्दर सहज की समाधि मैं ॥ २१ ॥*
योगी तू कहावै तौ तू याहि योग कौ विचारि
आतमा कौ जोरि परमातमा ही जानिये ।
न्यासी तू कहावै तौ तू देह कौ सन्यास करि
बाहर भीतर एक ब्रह्म पहिचानिये ॥

---

(२०) जीवन्मुक्ति (जैनशसन के सहारे) बताई है । परिहरिये=त्यागिये । छोड़िये ।

* २१ छन्द से लगा कर २७ तक ७ छन्द मूल (क) पुस्तक में नहीं हैं (ख) पुस्तक में हैं । सम्भवतः एक पत्र ही लिखने में रह गया होगा । अन्तिम छन्द उस पुस्तक का २१ वां और इसका २८ वां "देह वोर देषिय तो " दोनों में है ॥

जगम कहावे तौ तू एक शिव ही कौं देपि
थावर जगम सब द्वैत भ्रम भानिये ॥
जैनी तू कहावै तौ तू दोष बुद्धि दूरि करि
सुन्दर कहत जिनराज उर आनिये ॥ २२ ॥
ज्ञानी तू कहावै तौ तू एक या जतन करि
याही जत नीकौ एक आतमा कौं हेरिये ।
तपस्वी कहावे तौ तू एक याही तप साधि
याही तप नीकौ मन इन्द्रीन कौ घेरिये ॥
जपी तू कहावै तौ तू चित्त एक ठौर आनि
स्वासो स्वास सोहं जाप याही माला फेरिये ॥
संजमी कहावे तौ तू एक या संजम करि
सुन्दर कहत देह आतमा निवेरिये ॥ २३ ॥
ब्राह्मण कहावें तौ तू ब्रह्म कौ विचार करि
सत रज तम तीनो ताग तोरि डारिये ।
पंडित कहावे तौ तू याही एक पाठ पढि
अत वेद में कह्यौ सु वाही को विचारिये ।
ज्योतिषी कहावै तौ तू ज्योति कौ प्रकाश करि
अन्तहकरण अन्धकार कौं निवारिये ॥
आगमी कहावं तौ तू अगम ठौर कौं जानि
सुन्दर कहत याही अनुभव धारिये ॥ २४ ॥
ब्राह्मण कहावे तौ तू आपु ही कौं ब्रह्म जानि
अति ही पवित्र सुख सागर में न्हाइये ।

---

(२४) ताग=तागा=गुण (सत, रज, तम तीनो गुण हैं । गुण तागे या धागे को भी कहते है) अन्त वेद में=वेदांत में ।

क्षत्री तूं कहावै तौ तूं प्रजा प्रतिपाल करि
सीस पर एक ज्ञान क्षत्र कौ फिराइये ॥
वैश्य तू कहावै तौ तू एकही व्यापार जानि
आतमा कौ लाभ होइ अनायास पाइये।
शूद्र तूं कहावै तौ तू शूद्र देह त्याग करि
सुन्दर कहत निज रूप मैं समाइये ॥ २५ ॥
ब्रह्मचारी होइ तौ तू वेद कौ विचार देपि
ताही कौ समझि जोई कह्यौ वेद अंत है।
गृही तू कहावै तौ तू सुमति त्रिया कौं व्याहि
जाकै ज्ञान पुत्र होइ उही भाग्यवंत है॥
वानप्रस्थ होइ तौ तू काया वन वास करि
कर्म कंद मूल पाहि फल हू अनंत है।
सन्यासी कहावै तौ तू तीन्यौ लोक न्यास करि
सुन्दर परमहंस होइ या सिधंत है ॥ २६ ॥
रामानन्दी होइ तौ तू तुच्छानंद त्याग करि
राम नाम भजि रामानन्द ही कौं ध्याइये।
निंवादतो होइ तौ तूं कामना कटुक त्यागि
अमृत कौ पान करि अधिक अघाइये ॥
मध्वाचारी होइ तौ तू मधुर मत कौ विचारि
मधुर मधुर धुंनि हृदै मध्य गाइये।
बिष्णुस्वामी होइ तौ तू व्यापक विष्णु कौं जानि
सुन्दर विष्णु कौ भजि विष्णु में समाइये ॥ २७ ॥

---

(२५) क्षत्र=यहां छत्र से अभिप्राय है।

(२६) "काया वन बासि करि"=काया को विषयों रूपी वृक्षों वा जीव-जन्तुओं से उजाड़ कर के वन बना है। और कर्म को खाजा, अर्थात् निर्मूल कर दे, नष्ट कर दे।

(२७) निंवादत्ति=निंवादित्य मार्ग का=निंवार्काचार्य का अनुगामी। यहां निम्ब

या ओर देखिये तौ देह पंच भूतनि की
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ई प्रधान है।
प्रान ओर देखिये तौ प्रान सब ही कौ एक
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ व्यापत समान है॥
मन ओर देखिये तौ मन कौ स्वभाव एक
संकल्प विकल्प करि सदा ई अज्ञान है।
आतमा विचार कीयें आतमा ई दीसै एक
सुन्दर कहत कोऊ दूसरौ न आन है॥ २८॥

॥ इति विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ ब्रह्म निःकलंक कौ अंग ॥२७॥

मनहर

एक कोऊ दाता गाइ ब्राह्मण कौं देत दान
एक कोऊ दया हीन मारत निशंक है।
एक कोऊ तपस्वी तपस्या माहि सावधान
एक कोऊ कामी क्रीडै कामिनी कै अंक है॥
एक कोऊ रूपवंत अधिक बिराजमान
एक कोऊ कोढी कोढ चूवत करक है।

शब्द से उत्प्रेक्षा की है। नींब कड़वा होता है। और निम्बार्क स्वामी ने साधु के भोजनदान के हेतु से सूर्य को नींब के वृक्ष पर दिखा दिया था। इसही से यह निम्बार्क नाम प्रसिद्ध हो चला। मित्र से श्लेषार्थ लिया है। विष्णु-स्वामी—एक सम्प्रदाय वैष्णवों की, राधिका को भी मानते हैं। विष्णु-स्वामी दक्षिण में एक प्रसिद्ध भक्त हुए हैं।

आरसी मैं प्रतिबिंब सब ही कौ देषियत
सुन्दर कहत ऐसैं ब्रह्म निःकलंक है ॥ १ ॥

रवि कै प्रकाश तैं प्रकाश होत नेत्रनि कौ
सब कोऊ सुभासुभ कर्म कौं करत है।
कोऊ यज्ञ दान जप तप जम नेम व्रत
कोऊ इन्द्री वसि करि ध्यान कौ धरत है॥
कोऊ परदारा परधन कौं तकत जाइ
कोऊ हिंसा करि कैं उदर कौं भरत हैं।
सुन्दर कहत ब्रह्म साक्षी रूप एकरस
वाही मैं उपजि करि वाही मैं मरत है ॥ २ ॥

जैसैं जल जतु जल ही मैं उतपन्न होंहि
जल ही मैं विचरत जल के आधार हैं।
जल ही मैं क्रीडत विविधि विवहार होत
काम क्रोध लोभ मोह जल मैं सहार है॥
जल कौं न लागै कछु जीवन कै राग दोष
उन ही के क्रिया कर्म उन ही की लार है।
तैसैं ही सुन्दर यह ब्रह्म मैं जगत सब
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार हैं॥ ३ ॥

(१) यह दर्पण का दृष्टांत वेदांतादि में प्रसिद्ध है। कोई भी अपना मुख में देखै परन्तु दर्पण को कोई लेप वा मल उसमें नहीं आता है। जैसे वह निर्मल है वैसे ही ब्रह्म निर्मल निर्लेप है।

(२) यह सूर्य्य का दूसरा दृष्टांत है। यह भी उतना ही प्रसिद्ध है। सूर्य सबको प्रकाशन करता है कर्मदायी है सबको कर्म में प्रेरित करता है। परतु सूर्य में कोई राग नहीं व्यापता है। वह प्रकाशक जगत का चक्षु है वैसे ही परमात्मा (ब्रह्म)

क—सड़ा वा मरा हुआ शरीर।

३) लार=साथ, लैरां।

स्वेदज जरायुज अंडज उद्भिज पुनि
चारि पानि तिन के चौरासी लक्ष जंत हैं।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न
देह पंच भूतन की उपजि षपत हैं॥
सीत घाम पवन गगन में चलत आइ
गगन अलिप्त जामें मेघ हू अनंत हैं।
तैसें ही सुन्दर यह सृष्टि एक ब्रह्म माहिं
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत हैं॥ ४॥

॥ इति ब्रह्म निःकलंक को अंग ॥ २७ ॥

॥ अथ आत्मानुभव को अंग ॥ २८ ॥

इन्दव

है दिल में दिलदार सही अँखियां उलटी करि ताहि चितइये।
आब में खाक में बाद में आतस जान में सुन्दर जानि जनइये॥
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥ १॥
जासौं कहूं सब में वह एक तौ सो कहै कैसौ है आंपि दिपइये।
जौ कहूं रूप न रेष तिसै कछु तौ सब झूठ कै मानें कहइये॥

(४) षपत=खपजाते, नष्ट हो जाते। महंत=जो महान ज्ञानी हैं सो।

आत्मानुभव अंग। (१) दिलदार=प्यारा। चितइये=देखिये निहारिये। आब=पानी, खाक=पृथ्वी। बाद=हवा। आतस=आतिश, अग्नि तेज। गीता आदि में भगवान की विभूतियों का वर्णन याद पड़ता है।

जौ कहू सुन्दर नैंननि माझि तौ नैंनहू बैंन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये ॥ २ ॥
होत विनोद जु तौ अभिअन्तर सो सुख आपु मैं आपु ही पइये।
बाहिर कौ उमग्यौ पुनि आवत कंठ तें सुन्दर फेरि पठइये ॥
स्वाद निवेरें निवेर्यौ न जात मनौं गुर गूगे हि ज्यौं नित पइये।
क्या कहिये कहतें न बनें कछु जो कहिये कहतें ही लजइये ॥ ३ ॥
व्योम सो सोम्य अनत अखंडित आदि न अन्त सु मध्य कहा है।
को परिमान करै परिपूरन द्वैत अद्वैत कछू न जहा है ॥
कारण कारय भेद नहीं कछु आपु मैं आपु हि आपु तहा है।
सुन्दर दीसत सुन्दर माहि सु सुन्दरता कहि कौन उहा है ॥ ४ ॥

(प्रश्णोत्तर)

एक कि दोइ न एक न दोइ उहीं कि इहीं न उहीं न इहीं है।
शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं कि तहीं न जहीं न तहीं है ॥
मूल कि डाल न मूल न डाल वहीं कि महीं न वहीं न महीं है।
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म तौ है कि नहीं कछु है न नहीं है ॥ ५ ॥
एक कहू तौ अनेक सौ दीसत एक अनेक नहीं कछु ऐसौ।
आदि कहू तिहि अन्त हू आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसौ ॥

---

(२) हइये=है ही। रह जाता है।

(३) पठइये=उलटा भेजिये।

(४) सोम्य=शात, गभीर।

(५) महीं=अदर प्रविष्ट। वा वारीक (मिहीन)। है न नहीं है=नासदीप सूक्त ऋग्वेद सा भाव है। अर्थात् यह कहते वनता है कि नहीं है, और यह कहैं कि है तो वताना असभव है। इसलिये है और नहीं के वीच में है। वा दोनों ही कहा जाना या न कहा जाना कुछ वनता ही नहीं।

गोपि कहूं तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न बैसौ।
जोइ कहै सोइ है नहिं सुन्दर है तौ सही परि जैसे कौ तैसौ॥ ६॥

मनहर

एक कै कहै जौ कोऊ एक ही प्रकाशत है
दोइ कै कहै जौ कोऊ दूसरौ ऊ देपिये।
अनेक कहै जौ कोऊ अनेक आभासै ताहि
जाकै जैसौ भाव ताकौ तैसौ ई विशेपिये॥
वचन विलास कोऊ कैसें ही वपानि कहौ
व्योम माहि चित्र कहू कर्स करि लेपिये।
अनुभौ किये तें एक दोइ न अनेक कछु
सुन्दर कहत ज्यौं है त्यों हि ताहि पेपिये॥ ७॥
वचन ई वेद विधि वचन ई शास्त्र पुनि
वचन ई स्मृति अरु वचन पुरान जू।
वचन ई और ग्रन्थ वचन ई व्याकरन
वचन ई काव्य छन्द नाटक वपान जू॥
वचन ई संसकृत वचन ई पराकृत
वचन ई भाषा सब जगत में जान जू।
वचन कै परै है सु वचन मैं आवे नाहि
सुन्दर कहत वह अनुभौ प्रमान जू॥ ८॥

---

(६) गोपि=गोप्य, छिपा हुआ, अप्रत्यक्ष। बैसो=बैठा हुआ, स्थिर। ऊभो=खड़ा हुआ, अस्थिर। "नेति नेति" का सा वर्णन है।

(७) व्योम मांहि चित्र=आकाश में तसवीर का वनाना। ख पुष्पवत्।

(८) वचन के परे="यतो वाचा निवर्त्त ते"—जिसको वाणी नहीं पहुंच सकती। जो कहने वा प्रवचन से जाना नहीं जा सकै। "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य"—यह आत्मा व्याख्यान से समझी नहीं जा सकती है।

इन्द्री नहिं जानि सकै अल्प ज्ञान इन्द्रीन कौ
प्रान हू न जानि सकै स्वास आवै जाइ है।
मन हू न जानि सकै संकल्प विकल्प करै
बुद्धि हू न जानि सकै सुन्यौ सु बताइ है॥
चित्त अहंकार पुनि एऊ नहिं जानि सकै
शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइ है।
सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जानि सकै
"दीवा करि देपिये सु ऐसी नहिं लाइ है" ॥ ६ ॥

इन्दव

श्रोत्र न जानत चक्षु न जानत जानत नाहि जु सूघत घ्रानैं।
ताहि सपर्श तुचा न सकै पुनि जानत नाहि न जीभ वपानैं॥
ना मन जानत बुद्धि न जानत चित्त अह कहि क्यौ पहिचांनैं।
सव्द हु सुन्दर जानि सकै नहिं "आतमा आपु कौं आपु ही जानैं"॥१०॥
सूर कै तेज तें सूरज दीसत चन्द के तेज तें चन्द उजासै।
तारे के तेज तें तारे उ दीसत विज्जुल तेज तें विज्जु चकासै॥

---

(९) इन्द्रिय (चक्षुरादि पच ज्ञानेन्द्रिय) स्थूल पदार्थों को जान सकती हैं। आत्मा अति सूक्ष्म है। इनके अधिकार में नही। प्र ण—यहा पच-महाप्राणों से अभिप्राय हैं। उनकी भी इतनी शक्ति कहां कि अनत तेजोमय का अनुभव करें। मन—सकल्प विकल्पात्मक, चचल, अस्थिर इसही कारण अशक्त है। बुद्धि—बुद्धि से परे है इस से जाना नहीं जा सकता। चित, अहकार-ये दोनों भी स्वल्पशक्ति के होने से अनुभव करने में असमर्थ हैं। दीवा=दीपक। लाइ=लाय, महा ज्वलत अग्नि। वह स्वयम् प्रकाश ज्योति:स्वरूप है। "न तद्भासयते सूर्य्योन शशाङ्कोन पावकः" उसको सूर्य्य चन्द्रमा और अग्नि के तेज भी दिखा नहीं सकते हैं।

(१०) यह ९ वें छन्द की व्याख्या ही में समझिए।

दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरो उभासे।
तैसें हि सुन्दर आतम जानहुं आपु के तेज तें आपु प्रकासे॥ ११ ॥
कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें सृष्टी।
कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी॥
कोउ कहै यह ऐसें हि होत है क्यों करि मानिये बात अनिष्टी।
सुन्दर एक किये अनुभौ बिनु जानि सकै नहिं बाहिज दृष्टी॥ १२ ॥
कोउ तौ मोक्ष अकास बतावत को कहै मोक्ष पताल के माहीं।
कोउ तौ मोक्ष कहै पृथवी पर कोउ कहै कहुं और कहा हीं॥
कोउ बतावत मोक्ष शिला पर को कहै मोक्ष सिटै पर छाहीं।
सुन्दर आतम के अनुभौ बिन और कहू कोउ मोक्ष हि नाहीं॥ १३ ॥
मुये तें मोक्ष कहै सब पडित मूये तें मोक्ष कहै पुनि जैना।
मूये तें मोक्ष कहें ऋषि तापस मूये तें मोक्ष कहैं शिव सैना॥
मूये तें मोक्ष मलेछ कहैं तेउ धोपै हि धोपै बपानत बैना॥
सुन्दर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना॥ १४ ॥
जाग्रत तौ नहिं मेरै विषै कछु स्वप्न सु तौ नहिं मेरै विषै है।
नाहिं सुषोपति मेरै विषै पुनि विश्व हु तैजस प्राज्ञ षपै है॥

---

(११) यह भी "दीवा करि देषिये सु ऐसी नहि लाइ है" इस वाक्य की ही व्याख्या समझें।

(१२) तिष्टी=स्थापित की, निर्मित की। अनिष्टी=ऐसे ही होना अस्वभाविक है। कोई कारण अवश्य ही मानना पड़ैगा। बस वही कारण ब्रह्म है। कारण का न मानना अनिष्ट है, बुद्धि ग्राह्य नहीं है। बाहिज दृष्टि=बाह्य दृष्टि, बहिर्मुख बुद्धि, भौतिक बुद्धि, अंतर्मुख हुये विना जान ही नहीं सकती।

(१४) शिव सैना=शैवमत मे जो रहस्य कहा है। वाममार्ग से भी अभिप्राय हो सकता है। मलेच्छ=मुसलमान। क्यामत के दिन इनके यहां इन्साफ होकर जिनको नजात मिलनी है मिलैगी। आत्मानुभव=यही एक अवस्था विशेष है जो ही मोक्ष वा मुक्ति जगत् है।

मेरै विषै तुरिया नहिं दीसत याहि ते मेरौ स्वरूप अपै है।
दूर तें दूर परे तें परै अति सुन्दर कोउ न मोहि लषै है॥ १५॥

मनहर

कोउ तौ कहत ब्रह्म नाभि के कंवल मध्य
कोउ तौ कहत ब्रह्म हृदै में प्रकास है।
कोउ तौ कहत कंठ नासिका के अग्रभाग
कोउ तौ कहत ब्रह्म भृकुटी में वास है॥
कोउ तौ कहत ब्रह्म दशयें द्वार के वीच
कोउ तौ कहत भौंर गुफा में निवास है।
√पिंड तें ब्रह्मंड तें निरंतर विराजै ब्रह्म
सुन्दर अखंड जैसें व्यापक आकास है॥ १६॥

पाव जिनि गह्यौ सु तौ कहत है ऊषर सौ
पूंछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है।
सूंडि जिनि गही तिन दगली की बाह कह्यौ
दन्त जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिपायौ है॥
कान जिनि गह्यौ तिनि सूप सौ वनाइ कह्यौ
पीठि जिनि गही तिनि विटोरा वतायौ है।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुन्दर सयानौ जानै
"आंधरनि हाथी देपि झगरा मचायौ है" ॥ १७॥

---

(१५) यही छन्द और इसका वर्णन ऊपर "ज्ञानसमुद्र" के पंचम उल्लास में ८ वां छन्द और तत्सम्बन्धी छन्द हैं। "जाग्रत तौ नहिं ।

(१६) नाभि के कवल=नाभिचक्र। दशयें द्वार=ब्रह्मरंध्र। भौंर गुफा=नादानुसंधान क्रिया में भ्रमर गुफा का वर्णन है। पिंड ब्रह्मांड ते निरंतर=शरीरों में और समग्र सृष्टि में व्यापक है, कहीं विशिष्ट स्थिति नहीं। (१७) ऊषर=ऊखली, लकड़ी की बनी हुई वा पत्थरकी खड़ी। दगली=अगरखा। सूप=छाज, छाजला। विटोरा=ऊपलों (छांणों) के चुने समूहको ऊपर से लीप देते हैं। पिशवडा।

न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वर वाद
मीमांसक शास्त्र महिं कर्मवाद कह्यौ है।
वशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध
पातञ्जलि शास्त्र महि योगवाद लह्यौ है॥
सांख्य शास्त्र माहि पुनि प्रकृति पुरुष वाद
वेदांत शास्त्र तिनहि ब्रह्मवाद गह्यौ है।
सुन्दर कहत षट् शास्त्र माहि भयौ वाद
जाकै अनुभव ज्ञान वाद मैं न वह्यौ है॥ १८॥
प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म ऐसैं ऋग्वेद कहत
अहं ब्रह्म अस्मि इति युयुर्वेद यों कहै।
तत्वमसि इति साम वेद यों वषानत है
अयमात्मा हि ब्रह्म वेद अथर्व्वन लहै॥
एक एक वचन मैं तीन पद हैं प्रसिद्ध
तिन कौ विचार करि अर्थ तत्व कौं गहै।
चारि वेद भिन्न भिन्न सब कौ सिद्धांत एक
सुन्दर समुझि करि चुपचाप ह्वै रहै॥ १९॥

(१८) छहों शास्त्रों मे भिन्न—भिन्न वाद (मत) हैं। परन्तु जिसका आत्मानुभव हो गया उसको किसी के मत से प्रयोजन नहीं शब्द (वचन) और अनुभव (सिद्धि की प्राप्ति) मे यही भेद है। कहनी और करणी का भेद जो है सो ही यहा अभिप्राय है।

(१९) ये चार महावाक्य उपनिषदों मे आये हैं। ये उपनिषद तत्तत् वेदों के साथ हैं। महावाक्यविवेक पचदश्यादि से। प्रथम तैत्तिरीय मे ?।१।—दूसरा बृहदारण्यक में १।४।१०।—तीसरा छांदोग्य ६।८।३। मे—चौथा माडूक्योपनिषद ।२। में है। इस प्रकार चारों वेदों के चार उपनिषदों में ये महावाक्य हैं। सो स्वामीजी ने सम्भवत "पचदशी" ग्रन्थ के महावाक्यविवेक मे भी आप देखा है सो है। लिखा

इन्द्रिनि कौ भोग जब चाहैं तब आइ रहै
नाशवत तातैं तुच्छानन्द यौं सुनायौ है।
देवलोक इन्द्रलोक विधिलोक शिवलोक
बैकुंठ के सुख लौं गणितानन्द गायौ है॥
अक्षय अखंड एकरस परिपूरन है
ताही तें पूरनानन्द अनुभौं तें पायौ है।
याही के अंतरभूत आनन्द जहां लौं और
सुन्दर समुद्र माहि सर्व जल आयौ है॥ २०॥
एक तौ माया विसाल जगत प्रपंच यह
चारि षांनि भेद पाइ द्वैत भासि रह्यौ है।
दूसरौ विषै विलास इन्द्रिनि की विषै पंच
शव्द हू सपर्श रूप रस गंध गह्यौ है॥
तीजौ बाइक विलास सु तौ सब वेद माहि
बरनि कैं जहांलग वचन तें कह्यौ है।
चौथौ ब्रह्म कौ विलास तिहू कौ अभाव जहां
सुन्दर कहत वह अनुभौ तें लह्यौ है॥ २१॥

है। एक वाक्य तीन पद है—तथा "तत्वमसि" में तत्+त्वम्+असि। वह+तू+है। है शव्द वह को तू के साथ मिला कर एक करता है। अर्थात् यह जीव है सो ब्रह्म है। यों जीव ब्रह्म की एकता को प्रतिपादन किया। ऐसे शेष तीन महावाक्य भी जानना।

(२०) इन्द्रियों का आनद चाहे जब होकर शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी से तुच्छ है। और इन्द्रलोकादि का भोग परिमित समय तक रहता है भोग पूर्ण हो जाने के उपरांत मर्त्यलोक में आकर जन्म लेना पड़ता है। परन्तु आत्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है तब वह पूर्ण आनन्द है फिर नष्ट नहीं होता है। इस ही वास्तै ब्रह्मानन्द ही सब आनन्दों से परम श्रेष्ठ है।

(२१) विलास=आनन्द वा भोग, व्यवसाय। माया विलास=विषयानन्द के सहगामी है।

जीवत ही देवलोक जीवत ही इन्द्रलोक
जीवत ही जन तप सत्यलोक आयौ है।
जीवत ही विधिलोक जीवत ही शिवलोक
जीवत वैकुंठलोक जो अकुठ गायौ है॥
जीवत ही मोक्षशिला जीवत ही भिस्ति माहिं
जीवत ही निकट परमपद पायौ है।
आतम कौ अनुभव जिनि कौ जीवत भयौ
सुन्दर कहत तिनि ससय मिटायौ है॥ २२॥
इच्छा ही न प्रकृति न महतत्व अहंकार
त्रिगुण न व्योम आदि शवदादि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उद्भिज
पशु ही न पक्षी ही न पुरुष ही न जोइ है।
सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौं कौं त्यौं ही देपियत
न तौ कछु भयौ अब है न कछु होइ है॥ २३॥
क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम
व्योम भ्रम तिन कौ शरीर भ्रम मानिये।

---

(२२) इस छन्द में जीवन्मुक्ति का वर्णन और उसकी श्रेष्ठता कही है जो आत्मा के अनुभव से प्राप्त होती है। अकुठ=विशाल, स्वतत्र। मोक्षशिला=जैन धर्म के अनुसार उनके तीर्थकरों को जिस स्थान में निर्वाण वा कैवल्य मिलता है वही मोक्षशिला कही है। भिस्ति=वहिश्त, स्वर्ग (मुसल्मानी धर्म में यह नाम है)।

(२३) "न तौ कछु भयो... "। जगत् का पसारा, जिस माया का, ब्रह्म के आभास वा सकाश से है, वह माया मिथ्या है। वह तीन काल ही में नहीं वर्त्तती है। केवल ब्रह्म ही तीनों काल में व्यापता रहता है।

इन्द्री दश तेऊ भ्रम अन्तहकरण भ्रम
तिन हू के देवता सु भ्रम तें बपानिये ॥
सत्व रज तम भ्रम पुनि अहकार भ्रम
महतत्व प्रकृति पुरुप भ्रम भानिये।
जोई कछु कहिये सु सुन्दर सकल भ्रम
अनुभौ किये तें एक आतमा ही जानिये ॥ २४ ॥
भूमि हू विलीन होइ आपु हू विलीन होइ
तेज हू विलीन होइ वायु जो वहतु है।
व्यौम हू विलीन होइ त्रिगुण विलीन होइ
शव्द हूं विलीन होइ अहं जो कहतु है ॥
महतत्व लीन होइ प्रकृति विलीन होइ
पुरुप विलीन होइ देह जौ गहतु है।
सुन्दर सकल जो जो कहिये सु लीन होइ
आतमा के अनुभव आतमा रहतु है ॥ २५ ॥

---

(२४) यहा ससार के सब पदार्थों को भ्रम कहा है। अर्थात् अध्यास मात्र हैं। अविद्या से उत्पन्न मिथ्या दिखावा ही है।

(२५) "पुरुष विलीन होई "। यहां पुरुप शब्द से जीव समझना। जीव ब्रह्म की एकता होने पर जीवदशा ब्रह्म में लीन हो जाती है और केवल ब्रह्म ही रह जाता है। "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षर सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत"। गीता। यहां तीन पुरुष कहे उसमें पहिला पुरुष माया। दूसरा पुरुष जीव। और तीसरा परात्पर परमात्मा (ब्रह्म)। "ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन"। यह जीव परमात्मा का एकांशरूप से समझा जाय जब भी अश जो (जीव) है सो अशी (ब्रह्म) में लीन ही होता है। उस परमात्मारूप महासागर मे जीव एक जलकण समान है। जीव का ब्रह्म से भेद माया के ससर्ग मात्र ही से है। माया का ससर्ग मिटते ही जीव और ब्रह्म वस्तुत एक ही हैं। यहां ऐसी ही समझ बताई गई है।

माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन
जड की अपेक्षा करि चेतन्य वपानिये।
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान वध की अपेक्षा मोक्ष
द्वैत की अपेक्षा सु तौ अद्वैत प्रमानिये॥
दुख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मानिये।
सुन्दर सकल यह वचन विलास भ्रम
वचन अवचन रहित सोई जानिये॥ २६॥

आतमा कहत गुरु शुद्ध निरवन्ध नित्य
सत्य करि मानैं सु तौ शव्द हूं प्रमाण है।
जैसैं ब्योम ब्यापक अखण्ड परिपूरन है
ब्योम उपमा तें उपमान सो प्रमाण है॥
जाकी सत्ता पाइ सव इन्द्रिय चेतन्य होइ
याहि अनुमान अनुमान हू प्रमाण है।
अनुभव जानै तव सकल सन्देह मिटै
सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है॥ २७॥

---

(२६) माया और ब्रह्म के परस्पर के भेद को उदाहरणों से कहा है। चैतन्य=चेतन। प्रवांनिये=प्रमाणिये।

(२७) यहां चार प्रमाण वताये हैं—(१) शब्द प्रमाण। सो वेद वाक्य वा आप्त-वाक्य जैसे "सत्यज्ञानमनत ब्रह्म"। (२) उपमान प्रमाण जैसे 'ख ब्रह्म' अथवा "यथाकाशस्थितो नित्य—" इत्यादि। (३) अनुमान प्रमाण। जैसे "मनो वै ब्रह्म"। ब्रह्म मन नहीं है तो भी ऐसा कहने से यह प्रयोजन है कि ब्रह्म का मन अनुमान कराता है। (४) प्रत्यक्ष प्रमाण जैसे "अहं ब्रह्मास्मि" इसमे ब्रह्म साक्षात्कार प्रत्यक्ष है। वेदांत में (५) अर्थापत्ति—जिसके विना जो न हो। जैसे ब्रह्म के विना प्रकृति से सृष्टि नहीं हो सकती। और (६) अनुपलब्धि-एक पदार्थ में दूसरे के अभाव की

एक घर दोइ घर तीन घर चारि घर
पच घर तजै तब छठौ घर पाइ है।
एक एक घर कै आधार एक एक घर
एक घर निराधार आपु ही दिपाइ है॥
सु तौ घर साक्षी रूप घर घर मैं अनूप
ताहू घर मध्य कोऊ दिन ठहराइ है।
ताकै परै साक्षि न असाक्षि न सुन्दर कछु
वचन अतीत कहू आइ है न जाइ है॥ २८॥
एक तौ श्रवन ज्ञान पावक ज्यौ देपियत
माया जल बरसत वेगि बुझि जात है।
एक है मनन ज्ञान विज्जुल ज्यौ घन मध्य
माया जल बरषत ता मैं न बुझात है॥

प्रतीति (भाव को अप्रतीति) होय—जैसे ब्रह्म में अविद्या की अनुपलब्धि है। "वेदांत परिभाषा" तथा विचार सागर और "वृत्ति प्रभाकरादि" में इन छहों प्रमाणों का अच्छा प्रतिपादन है।

(२८) यहां "घर" शब्द देकर उत्तरोत्तर शारीरिक ज्ञान वा ज्ञान-स्थिति और आत्मा का सम्वन्ध परमात्मा से बताया है। पहला घर शरीर। दूसरा इन्द्रिया। तीसरा मन। चौथा बुद्धि। पांचवा चित्त। छठा अहकार। सातवां जीवात्मा। आठवां परात्पर ब्रह्म जो वचनातीत, रूपातीत, ध्यानातीत है। अथवा ज्ञान की सात भूमिकाए और उनसे परे परब्रह्म। अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष जो एक दूसरे में (कादे के छिलके की तरह) धसे हुये हैं। इन पांचों के भीतर ही भीतर साक्षी चेतन कूटस्थ परमात्मा है। 'पचदशी' ग्रन्थ में (पच-कोषविवेक में) निरूपण है। तदनुसार ही स्वामीजी ने कहा है। और 'विचार-सागर' में पचम तरग में अच्छा कथन किया है। और आत्मा को पचकोष से पृथक् कहा है—"पचकोष ते आतम न्यारो ।"

एक निदिध्यास ज्ञान वडवा अनल सम
प्रगट समुद्र माहि माया जल पान है।
आतमानुभव ज्ञान प्रलय अगनि जैसें
सुन्दर कहत द्वैत प्रपच विलात है॥ २९॥
चकमक ठोके तें चमतकार होत कछु
ऐसौ है श्रवन ज्ञान तब ही लौं जानिये।
कफ मन लागै जब प्रगटै पावक ज्ञान
सिलगत जाइ वह मनन वषानिये॥
वर्द्धमान भये काठ कर्मनि जरावत है
वह निदिध्यास ज्ञान ग्रन्थनि मैं गानिये।
सकल प्रपंच यह जारि कैं समाइ जात
सुन्दर कहत वह अनुभौ प्रमानिये॥ ३०॥

---

(२९) वाडवा अनल=वाडवाग्नि, जो समुद्र के पेंदे मे रहती है, और समुद्र जल को तपाती और सोसती है। "ज्ञानाग्नि दग्ध कर्म्माणं (गीता)। ज्ञान की प्राप्ति होते ही शुभाशुभ कर्मों का नाश हो जाता है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन तीनों ज्ञान को वढानेवाले साधन है। इनके अनतर वा इनके वल से आत्मा का साक्षात्कार हो जाने से फिर कर्म उत्पन्न नहीं हो पाते। "क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरि"। विज्जुल=विद्युत, विजली। माया जल=मायारूपी जल, अथवा जल जो माया (प्रकृति) का एक तत्व है।

(३०) कफमन=यह शब्द हिन्दी वा अन्य किसी भाषा का नहीं प्रतीत होता है। मूल पुस्तकों और पुराणी छपी हुई मे यही पाठ है। हिन्दी के किसी भी कोश मे या उर्दू फारसी के कोशों मे यह शब्द नहीं मिला। अत इसकी लिखावट पर विचार किया तो यही अनुमान उपयुक्त हुआ कि आदि मे ग्रन्थकार ने 'कपासन' लिखा होगा तव 'पा' का 'फ' हो गया लिखने मे और 'स' का 'म' हो गया लिखने ही से क्योंकि ऐसा वन जाना सहज ही है। पहाड़ी भाषा मे चकमाक से जिन पत्तों की

भोजन की बात सुनि मन में मुदित होत
मुख में न परै जौं लौं मेलिये न ग्रास है।
सकल सामग्री आनि पाक कौं करन लाग्यौ
मनन करत कब जीऊं यह आस है॥
पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ
मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है।
भोजन पूरन करि तृपत भयौ है जब
सुन्दर साक्षातकार अनुभौ प्रकास है॥ ३१॥
श्रवन करत जब सब सौं उदास होइ
चित्त एकाअग्र आनि गुरु मुख सुनिये।
बैठि के एकत ठौर अन्तहकरन माहिं
मनन करत फेरि उहै ज्ञान गुनिये॥
ब्रह्म कौं परोक्ष जनि कहत है अह ब्रह्म
सोह सोह होइ सदा निदिध्यास धुनिये॥
इहै अनुभव इहै कहिये साक्षातकार
सुन्दर पालै तें गलि पानी होइ मुनिये॥ ३२॥

बनी रुई पर आग झड़ती है उसको 'कपास' या 'बचा' कहते हैं। और 'कपासन' एक भेद रुई या कपास का भी है। इसको बदूक के साथ रस्सी के आकार की हो तो 'जामगी' भी कहते है। तब अर्थ होता है—कपास रूपी बुद्धि पर मन रूपी चकमाक झाड़ने से आग की चिनगारी पड़ै तब ज्ञानरूपी अग्नि सुलगने लग जाय। किसी किसी मुद्रित पुस्तक में 'कफ माहिं' ऐसा पाठ भी दिया है और कफ का अर्थ "बेल्वेडियर प्रेसकी छपी पुस्तक में 'सोख्ता' दिया है सो नितान्त अनुचित है क्योंकि 'कफ' का ऐसा अर्थ कभी नहीं होता।

(३१) चारों ज्ञान के साधनों को भोजन की चारों अवस्थाओं से उपमा देना कितना सुन्दर हुआ है।

(३२) एकाअग्र=एकाग्र, इधर उधर न डुलै। धुनिये=उसकी धुन में तल्लीन

विप्र रसोई करनै लागौ चौका भीतरि बैठौ आइ।
लकरी माहे चूल्हा दीयौ रोटी ऊपर तवा चढाइ॥
पिचरी मांहे हंडिया रांधी सालन आक धतूरा पाइ।
सुंदर जीमत अति सुख पायौ अवकै भोजन कियौ अघाइ॥ २१॥

करनेवाला होवै है सो पापी कहिये है। सर्व अविद्या का औ ताके कार्य का नाश करने-वाला। ज्ञान है तातें ताकू ही पापी कहैं हैं। ता ज्ञानरूप पापी की पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्म-रूप सतयुग में बुद्धि होवै है। औ धर्म को भग होवै है काहेतें कि जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है। अविद्या औ ताका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुग में नाश होव है।—सुंदरदासजी कहते हैं कि जो पुरुष नीके करि (अच्छी तरह से) अनग (कामदेव) कू भजै (नोट—पीताम्बरजी ने तजै की जगह भजै ऐसा पाठ विपर्यय के चमत्कार बढ़ाने को किया) सो याका अर्थ पावे। याका भाव यह है—जाका अग नहीं है ताकू अनग कहे हैं। ऐसे कामदेव की न्याई निरवयव जो ब्रह्म है ताकू भजै कहिये जो निर्गुण उपासना करै सो अच्छी तरह सें मोक्षरूप अर्थ कू पावै॥ २०॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—सुंदर सनही सौं मिली कन्या अपन कुमारि। वेस्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागिन नारि। २९।—कलियुग मैं सतजुग कियौ सुंदर उलटी गंग। पापी भये सु ऊवरे धर्मी हूये भग। ३०।—कबीरजी का पद—"कुबिजा पुरुष गले इक लागी, पूजि न मनकी साधा। करत विचार जन्म गो खीसा, ई तन रहल असाधा"। (वीजक शब्द ५८ में)।—तथा—"एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जत जीव की नारी। खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।—(क० ग्र० पद ३७०।)।

ह० लि० १—२ टीकाः—विप्र जो (वेदादि का ज्ञान प्राप्त) जीव सो परम शुद्ध हो सर्व कर्म काल को मारि अपने हित अपरस सों जब रसोई करनै लागो नाम भाव-भक्ति करनै को लाग्यो तब चोका जो शुद्ध निर्विकार किया अतःकरण चतुष्टय तामें आइकै बैठ्यो नाम निश्चल हुवो।—लकरी नाम लै तामें चूल्हा नाम चित्त दीयो

नाम लगायो निश्चल कीयो। रोटी जो रटणि ता ऊपर तामें तत्वज्ञान का तवा चढाया परमेश्वरजी सों रटणि लागी तब तत्वज्ञान प्राप्त हुवो। खिचरी जो भक्ति और ज्ञान की मिश्रता तामें हडिया नाम काया सो रांधी नाम ता भक्ति-ज्ञान में लीनकरि शुद्ध करी। अरु ता खिचरी की साथि सालन नाम साग सो आक धतूरारूप, पचना जिनका अतिकठिन, जो काम-क्रोधादि सो सब खाया नाम सर्व जीतकरि निवृत्त किया।—जीमत नाम इनको जीतितां अरु ज्ञानभक्ति की प्राप्ति होतां अति वड़ो सुख पायो नाम वहुत आनद हुवो। अवकै या मनुष्यजन्म में आय अघाय नाम तृप्त होकरि भोजन कियो नाम भक्तिज्ञान सों कार्य सिद्ध कीयौ नाम भगवत् की प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥

पीताम्बरी टीका—जो शुद्ध अतःकरणवाला जिज्ञासु जीव है सोई मानौ विप्र (ब्राह्मण) है। सो मोक्ष-सम्पादनरूप रसोई करने लाग्यो। तब विवेकादि चारिसाधन-रूप चोका के भीतर आइके वैठो। कहिये साधन-सम्पन्न भयो।—नानाप्रकार के जो अनेक कर्म हैं सोई मानौ अनेक लकरिआं हैं। ता माहिं ब्रह्मोपदेशरूपी चूल्हा दीयो। तिसने ज्ञानरूप अग्नि करि कर्मरूप लकरिआं जलाय डाली। तब प्रारब्ध फल की भोग्यतारूप रोटी के ऊपर कर्मवशात् होने के निश्चयरूप तवा कू चढाइ दियो। अर्थात् जब ब्रह्मोपदेशजन्य ज्ञानतैं सब कर्मन का नाश होवै है तब तिस ज्ञानी का ऐसा निश्चय होवै है—"मैं अकर्त्ता हूं अभोक्ता हू। जो शेष प्रारब्ध कर्म रहे हैं सो जौलौं भोगन का आयतन शरीर है तौलौं यथावत् भोग देहू। ताकी चिता मेरे कू कर्त्तव्य नहीं"।—वैराग्यरूप जल, बोधरूप चांवल और उपशमरूप मूग। इन तीनू की मिश्रतारूप खिचरी है। ता मांही हडिया कहिये भोगन विषे दीनता, सत्यता की भ्रांति औ प्रतीति आदि धर्मयुक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपचरूप जो माया है सो रांधी कहिये वाधित करी। औ अनेक रागद्वेषादि दुर्वासनारूप जो महा-उग्र कटुक—आक औ धतूरा हैं तिनका सालन (शाक) बनाइ के खाइ कहिये जीति के।—सुन्दरदासजी कहे हैं कि कार्य-सहित अज्ञान की निवृत्तिरूप रसोई, वासना की निवृत्तिरूप शाक सहित जीमत कहिये अनुभव करिके अति सुख पायो कहिये परमानन्द की प्राप्ति भई। औ अवके कहिये इस मनुष्य-शरीर में ही ईश्वर, श्रुति, गुरु-औ स्व-अत करण इन सर्व की कृपा से ज्ञान पाइके अघाइ कहिये ससार के भोगन की

तृष्णा करि रहिततारूप तृप्ति कू पायके जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का जो अनुभव है तद्रूप भोजन कियो। याका भाव यह है—पूर्व अज्ञानकाल में अनेकदेह प्राप्त हुवे थे तिनमें विषयानद का अनुभव तो बहुत किया है परन्तु स्वरूपानन्द का अनुभव कदे भी हुवा नहीं है। काहेतें कि तिस काल में मूला अज्ञानरूप प्रतिबंध था। औ पश्चात् विदेह-मोक्ष में भी सर्वदु:खन की निवृत्ति पूर्वक निरावण, परिपूर्ण आनदस्वरूप करि अवस्थित होवै है। परन्तु अस्तिव्यवहार की हेतु जो वृत्ति है ताका अभाव होने तें जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का अनुभव नहीं होवै है। यातें ज्ञानयुक्त देह में ही जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दरूप विद्यानन्द का अनुभव होने कूं शक्य है। यातें सुखेच्छु विद्वान् करि विषयानद कू त्यागि के ब्रह्म-विचार द्वारा पूर्वोक्त आनन्द का अनुभव अवश्य कर्त्तव्य है। यद्यपि सुषुप्त्यादि मे भी आनन्द तो है। तथापि सो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक नहीं है, यातें विलक्षण सुख का हेतु नहीं है। जो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक होवे सो विलक्षण आनन्द कहिये है। इस लक्षण की यह पदकृति है:—सुषुप्ति में जो आनन्द है सो आवरण रहित है। औ विषय में जो आनद है सो निरावरण तो है तथापि विषय की प्राप्तिक्षण मे मन अंतर-मुख वृत्ति होवै है तब तामें स्वरूपानन्द का प्रतिबिंब पड़े है यातें परिपूर्ण नहीं किंतु एक-देश-वृत्ति होनेतें परिच्छिन्न है। तैसे ही पूर्णानद तो अज्ञानी का स्वरूप भी है, तथापि सो निरावरण औ अभिमुख वृत्ति सहित नहीं। औ जो विदेहमुक्ति में निरा-वरण पूर्णानंद है सो सवृत्तिक नहीं किंतु अवृत्तिक है। यातें निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक आनन्दरूप विलक्षणानन्द का लक्षण किये से कहू भी अतिव्याप्ति आदि दोष नहीं है ॥ २१ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सु० दा० जोकी साखी—"विप्र रसोई करत है चौके काढीकार। लकरी में चूल्हा दियौ सुदर लगी न वार। ३१।—रोटी ऊपर पोइकैं तवा चढ़ायौ आनि। खिचरी माहें हडिका सुदर रांधी जानि। ३२।—गोरषनाथजी का पद—"मगरी ऊपरि चूल्ही धूधावै, पोवणहारी कू रोटी पावै"। (गो० पद ३' में से)।

बैल उलटि नाइक कौं लायौ बस्तु मांहि भरि गौनि अपार।
भली भांति कौ सौदा कीयौ आइ दिसतर या ससार॥
नाइकनी पुनि हरषत डोलै मोहि मिल्यौ नीकौ भरतार।
पूजी जाइ साह कौं सौंपी सुदर सिरतैं उतर्‍यो भार॥ २२॥

ह० लि० १-२ टीका:—बैल भारवाहक जो अज्ञान-अवस्था मे अहकर्तृत्व-पणां को अभिमानी सर्वकमन को अधिकारी बणि रह्यो-सोजीव। तानैं नायक नाम जो अज्ञान-अवस्था में मुखिया बणि रह्यो जो मन ताकों लायो नाम विवेक कों पायकरि कर्तृत्वादिक का सर्व भार मनहीं के उपरि नाख्यो। 'मन उन्मेष जगत भयो बिन उन्मेष नसाइ' इति।—ऐसो निरभिमानी शुद्ध जीव तानैं बस्तु नाम परमेश्वर में भाव धारण कियो ता भावरूपी वस्तु में अपार गुण हैं शमदम सपति ज्ञान वाही सों सर्व-सिद्धि होवै है।—संसाररूपी दिशतर देश नाम मनुष्य जन्म ताकों पायकरि भली-भांति का सौदा नाम परमेश्वरजी में भावभक्ति धारणारूप अति-श्रेष्ठ सौदा कीयो। नायकनी मनसारूप अतःकरण की वृत्ति सो हर्षायमान हुई शुभकार्यों में वर्तै है। मो कों नीको नाम अतिश्रेष्ठ शुद्ध जो मन सो भर्त्तार मिल्यो नाम (मैंने) पायो। पूजी नाम सर्व सौंज तन-मन प्राण सो साह परमेश्वरजी ताकों सौंपी समर्पण करी। तब सर्वभार जन्म-मरण कर्मफल सुख-दुःख शोक चिंता सर्व दूरि हुवां सुखी भया, यों भार उतर्‍यो॥ २२॥

पीताम्बरी टीका।- साभास अतःकरण-विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है सोई मानों बैल (बलीवर्द) है। काहेतें कि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, राग, द्वेष इत्यादिक जो अतःकरण के धर्म्म हैं तैसे ही प्राण, इंद्रिय औ देह के जो धर्म्म हैं तिसरूप भार कू अज्ञानकाल में उठाता था। यातें ताकू बैल कह्या। तिसने उलटि के कहिये विचारद्वारा निजस्वरूप कू जानिके पूर्व अविवेक काल में तादात्म्य-अध्यास करि जीव कू अपने वश करिके वर्तावनेहारा जो स्थूल सूक्ष्म सघात है सोई मानों नायक है। ताकू लायो कहिये अज्ञानकाल में अध्यास करि अंतःकरण, प्राण औ इन्द्रियन के धर्म जो जीवने अपने मान लिये थे सो ज्ञानकाल में यथायोग्य सघात के जानि लिये।—सर्व

का अधिष्ठान जो ब्रह्म है सोई मानों वस्तु है, ता माहिं अपार (अगणित) गुण भरि कहिये अपने-अपने जाति, सम्बन्ध औ क्रिया आदिक धर्मरूप जो पदार्थ हैं सो जिनमें भरे हैं, औ जो अहंकारादि अनात्मरूप कपड़े की बनी है। सोई मानो थलियां हैं, सो पूर्वोक्त ब्रह्मरुप वस्तु में, जैसे साक्षी में स्वप्न के पदार्थ अध्यस्त हैं तैसे अध्यस्त जान। या ससार ही मानो दिसतर है। काहेतें कि यह जो ससाररूप देश है सो ब्रह्मरूप देशसे भिन्न है तातें देशातर कह्या है। यामें आयके भलीभांति कौ सौदा कीयो। सो सौदा यह है --जब ज्ञान की प्राप्ति होवै है तब सर्व-अनर्थ की निवृत्ति औ परमानद की प्राप्ति हावै है याकू ही मुक्ति वा मोक्ष कहै हैं, सोई मानों एक व्यापार है। तिसके निमित्त तें सर्व अनात्मरूप धनका त्याग किया औ परमानन्दरूप माल अपना करि लिया।—दृढ निश्चय स्वरूप जो बुद्धि है सोई मानों नायकनी है सो पुनि हरषत डोलै कहिये फिरि आनन्द कू प्राप्त भई, औ मुखसे कहने लगी कि माहिनीका (श्रेष्ट) भरतार (पति) मिल्यो। इहां वेदांत-सिद्धातरूप पति कह्यो है सो निश्चय स्वरूप बुद्धि कू प्राप्त भयो। मूल में जो पुनि शब्द है ताका अर्थ यह है — निश्चयस्वरूप बुद्धिरूप जो नायकनी है सो प्रथम जब द्वैत-सिद्धांत के आधीन भई थी तब तिसी पतिकरि आनदित होइ रही थी। ताकू जब (अब) अद्वैत-सिद्धात-रूप पति की प्राप्ति भई तब पूर्व पति का त्याग करिके फिरि आनन्दवान भई। तिस अद्वैत-सिद्धांत-रूप साह (साईं=पति) कू, तिसके पास जाइके अनतवासना-रूप पूजी सौंप दीनी। जातें जाका जीवन होवै सो ताकी पूजी कहिये है। अनत-कर्मन की वासना विना बुद्धि की स्थिति होवै नहीं तातें सो बुद्धि की पूजी कहिये जीवन है। सो ही अद्वैत-सिद्धांत-रूप ज्ञान की प्राप्ति भये तें बुद्धि सर्व वासना का त्याग करै है। काहेतें कि ज्ञान करि सर्व कर्मनका नाश होवै है। कर्मन का नाश भये ते तज्जन्य वासना का भी नाश होवै है। सोई मानों सौंपना है। पति कू अपनी पूजी देने का कारण दिखावै हैं—जौंलौं बुद्धि में अनन्त वासना भरी थी तौंलौं सो अपने चिदाभासरूप शिर पर बड़ो बोझो थो। सो भार सिरतें उतर्या। कहिये चिदाभासरूप जीव कू अपने स्वरूप के ज्ञानद्वारा सर्व वासना तें मुक्त कियो। ऐसे सुन्दरदासजी कहै है॥ २२॥

वनिक एक वनिजी कौं आयौ परैं तावरा भारी भैंठि।
भली वस्तु कछु लीनी दीनी पैंचि गठिरिया बांधी ऐंठि॥
सोदा कियौ चल्यौ पुनि घर कौं लेषा कियौ वरीतर वैठि।
सुंदर साहु षुसी अति हूवा बैल गया पूंजी में पैठि॥ २३॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—नाइक लाद्यौ उलटि करि वैल विचारैं आइ। गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ। ३५।—कबीरजी का पद—"वैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई।" (कवीर ग्रन्थावली पद ११ से)।—तथा—"मेरे जैसे वनिज सौं कवन काज, जह मूल घटै सिरि वधै व्याज। नाइक एक वनिजारे पाच, वैल पचीस कौ संग साथ। नव वहियां दस गौंनि आहि, कसनि बहत्तर लागे ताहि। सात सूत मिलि वनिज कीन्ह, कर्म पयादो संग लीन्ह। तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है वनिजवा वनिज झारि। वनिज खुटानौं पुजी टूटि, घाटू दह दिसि गयौ फूटि। कहै कबीर यहु जनम बाद। सहजि समांनू रही लाद'। (क० ग्र०। पद ३८३।) [नोट—इस पद को आगे के सवैया २३ से भी मिलावैं]—गोरषनाथजी का पद—"गाडि लै पड़वा वाधि लै षूटा, चलैगा दमामा वाजैगा ऊटा"। (गो॰ पद ३९)।—

ह० लि० १—२ टीका—वनिक व्योपारीरूप जो जीव सो या ससाररूपी दिशान्तर में सुकृत भक्ति वनिजी को आयो तामें प्राचीन मलिन-कर्मन का फलहाणि जो काम क्रोधादिक सोई तावड़ो नाम धूप तपै भारी भैंठि नाम अतिगति (भैंर भट) तपै अर्थात् कछू शुभ कारिज में अवसाण आवण दे नहीं।—तथापि जिहिं तिहिं प्रकार पुरुषार्थ करिकैं भली वस्तु कछु लीनी-दीनी लीनी नाव लीया भजन कीया, दीनी भी शुभ उपदेश दीया। यों करि शुभगुण भक्तिरूप गठड़िया पोट ऐंठि नाम काठी हृदा में दृढ़ करिकैं बांधी नाम सोंज को ठगाई नहीं।—सोदा नाम भजन ध्यान शुभगुणां कों कीयो घर परमेश्वरजी तामें चल्यो भक्तिभाय करिकै। वरी नाम वटवृक्ष सो अति विस्ताररूप। बुद्धि ताके नीचे नाम बुद्धि में थिर होय करि लेखा नाम विचार कीयो भगवत् में चित्त लगायो।—सुन्दरदासजी कहै है कि तव साहु जो जीव

(या बात सों) बहुत खुशी हुआ कि बैल जो वपु शरीर सो पजी जो परमेश्वरजी तामें पैठि गयो नाम पायो गयो। अर्थ यह जो परमेश्वरजी की प्राप्ति में जन्म मरण सर्व गया। इत्यर्थः ॥ २३ ॥

पीताम्बरी टीका.—जीवरूप ही मानौं एक वनिक है सो इस संसाररूप प्रदेश में नाना प्रकार के कर्म-फलन के भोगरूप वनिजी करने कौ आयो कहिये मनुष्य देह धारण कियो। तिस प्रदेश में त्रिविध तापरूप तावरा (धूप) पर्‌ या ताके बल तैं भारी भैंठ कहिये अतिशय तपने लग्यो।—साधन सहित जो ज्ञानरूप वस्तु है सो भली कहिये अत्युत्तम है। सो सद्गुरु औ सतशास्त्रनरूप अन्य व्यापारिन त लीनी अर्थात ज्ञान पाया। इहां कछु शब्द का अर्थ ऐसे हैं—उक्त सद्गुरु औ सत्-शास्त्रन-रूप अन्य व्यापारीन तें जो ज्ञानरूप वस्तु लीजिये हैं सो तिन द्वारा तत्त्व मस्यादि महावाक्यजन्य उपदेश करि अनुभव मात्र करिये है, कछु और वस्तु की न्यांई इस वस्तु का ग्रहण नहीं है। काहेतें कि आकारवाले पदार्थ का सम्यकृता तें स्थूल शरीर करि ग्रहण होवै है। औ निराकार पदार्थ का तौ सूक्ष्म शरीर करि तिनके अनुभव मात्र का ग्रहण होवै है। तातें सो कछु कहिये थोड़ा कह्या है। तैसे ही कछु वस्तु दीनी, सो वस्तु यह हैः—तन-मन औ धनरूपी मानौं द्रव्य है। तिस द्रव्यरूप कछु वस्तु सद्गुरु औ सत्-शास्त्ररूप व्यापारीन कू दीनी, अर्थात् तन मन औ धन का अर्पन किया। इहां कछु शब्द का ऊपर की न्यांई ही अर्थ है। काहेते कि वास्तव करि तन-मन औ धन अर्पन नहीं होवै है किन्तु यह मिथ्या वस्तु होनेतें ताके अर्पन का व्यवहार होवै है। तातें कछु कह्या है।—उक्त वस्तु लेके ताकी षट् प्रमाणरूपी रस्सी करि खैंचि गठरिया बांधी। कहिये अबाधित अर्थ कू विषय करनेवाला जो स्मृति से भिन्न ज्ञान (प्रमा) है ताका निश्चय किया। मूल मे जो ऐंठि शब्द है ताका अर्थ यह हैः- ऐंठि कहिये अच्छी तरह से विचार करिके प्रमाज्ञान का अंगीकार किया है। औ मूल में जो गठरिया शब्द है सो बहुवाचक है तातें तिस वस्तु की अनेक गठरिया कही चाहिये सो कहैं हैं—प्रमा के कारण जो षट्-प्रमाण है सो मानौं षट्-बन्धन हैं। तिनमें एक एक प्रमाणरूप बन्धन करि एक एक गठरी बांधी गई। काहेतैं—जैसे "चार्वाक" जो हैं सो एक प्रत्यक्ष प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करें हैं।

'कणाद' औ सुगतमत के अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान इन दो प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै हैं। साख्य-शास्त्र का कर्त्ता "कपिल" प्रत्यक्ष अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। न्याय शास्त्र का कर्त्ता जो "गौतम" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान शाब्दी औ उपमान इन चारि प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। पूर्व-मीमांसा का एकदेशी जो "भट्ट" का शिष्य "प्रभाकर" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान औ अर्थापत्ति इन पांच प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। औ पूर्व मीमांसक जो "भट्ट" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि इन पट् प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। तैसे पूर्व मीमांसक भट्ट की न्याई जो पट्-प्रमाण करि प्रमा की सिद्धता है। सो वेदान्त शास्त्र में भी अगीकार करी है। ऐसे एक एक प्रमाण करि जो प्रमा की सिद्धता है सोई मानों भिन्न गठरियां हैं।—उक्त ज्ञानरूप वस्तु का जीवरूप व्यापारी ने मोक्षरूप लाभ होने के वास्तै उक्त रीति सें सौदा किया। तव पुनि कहिये फेरि अपने पूर्वस्थानरूप घर कू चल्यो अर्थात् सच्चिदानन्द लक्षणवाला जो ब्रह्म-स्वरूप है ताका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने लाग्यो। औ वारि कहिये जो ब्रह्मानन्दरूप पानी है ताके तर कहिये निममत्वरूप तले में वैठ के लेखा कियो। सो लेखा यह है—श्रवण, मनन औ निदिध्यासन करि जव परमानन्दरूप मोक्ष होवै है, तव वह ज्ञानी वचार करै है कि पूर्वोक्त वस्तु का जो मैंने लेन देन किया, सो न तौ लेन है न कछु देन है। मैं जो तन, मन, धनरूप वस्तु दीनी तामें कछु वस्तुता नहीं है। तैसें ही जो ज्ञानरूप वस्तु लीनी सो मेरे सें कछु अन्य नहीं थीं। तातें विचार किये तें न कछु दिया है न कछु लिया है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि साह जो पूर्वोक्त जीवरूप वनिया है सो अति षुसी कहिये निरतिशय आनन्दवान हुवा। काहेतें कि देहादिक भार का उठानेवाला जो अहकाररूप वैल था सो आत्मधनरूप पुजी में पैठ गया। अर्थात् शरीरत्रय (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) के अभिमानरूप अनर्थ की निवृत्ति भई ॥ २३ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—सुन्दरदासजी ने इस पर साषी नहीं कही।—गोरष-नाथजी का वचन—"तहां वणिज कराई, विंण हट्टाई, माणिक लाधो मभाई। को राजाई, भेदों भाई, वाणिक पुत्रा विणजता"। (गो० छन्द १६)

नैन हीन को तौ घर बाहिर न सूझ कछु
जहा जहा जाइ तहा तहा अध कूप है ॥
जाके चक्षु है प्रकाश अधकार भयो नाश
वाको जहा रहै तहा सूरज की धूप है ।
सुन्दर अज्ञानी ज्ञानी अन्तर बहुत आहि
वाकै सदा राति वाके दिवस अनूप है ॥ २१ ॥

ज्ञानी अरु अज्ञानी की क्रिया सब एकसी ही
अज्ञ आसा और ज्ञानी आस न निरास है ।
अज्ञ जोई जोई करै अहकार बुद्धि धरै
ज्ञानी अहकार बिनु करत उदास है ॥
अज्ञ सुख दुख दोऊ आपु विप मानि लेत
ज्ञानी सुख दुख को न जानै मेरे पास है ।
अज्ञ को जगत यह सकल सताप करै
सुन्दर ज्ञानी को सब ब्रह्म को विलास है ॥ २२ ॥

ज्ञानी लोक सग्रह को करत व्यौहार विधि
अतहकरण मे सुपन की सी दौर है ।
देन उपदश नाना भाति के वचन कहि
सब कोउ जानत सकल सिरमौर है ॥

---

(२१) सूरज की धूप है । यहां सूर्य के समान प्रकाश अभिप्रेत है ।

(२२) अज्ञ आसा=अज्ञानी आशा तृष्णा मे लिप्त रहता है । उदास=उदासीन भाव, समभाव । न जानै मेरे पास है=ज्ञानी सुख और दुःख को "गुणा गुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जते" (गीता) प्रकृति के गुणों का व्यापार समझ कर उनको आप (आत्मा) से न्यारा भिन्न ही समझता रहता है । अर्थात् उनका प्रभाव कुछ भी पड़ता नहीं ।

हलन चलन पुनि देह सौं करावत है
ज्ञान में गरक नित लिये निज ठौर है।
सुन्दर कहत जैसें दंत गजराज मुख
"पाइबे के और ई दिपाइबे के और हैं" ॥ २३ ॥

इन्द्रिनि कौ ज्ञान जाकै सु तौ पसु कै समान
देह अभिमान पान पान ही सौ लीन है।
अंतहकरण ज्ञान कछुक विचार जाकै
मनुप व्यौहार सुभ कर्मनि आधीन है ॥
आतमा बिचार ज्ञान जाकै निस वासर है
सोई साधु सकल ही वात मैं प्रवीन है।
एक परमातमा कौ ज्ञान अनुभव जाकै
सुंदर कहत वह ज्ञानी भ्रम-छीन है ॥ २४ ॥

जाही ठौर रवि कौ उदोत भयौ ताही ठौर
अंधकार भागि गयौ गृह वन वास तें।
न तौ कछु वन तें उलटि आवै घर माहि
न तौ वन चलि जाइ कनक अवास तें ॥
जैसें पषी पाप टूटि जाही ठौर पर्यौ आइ
ताही ठौर गिरि रह्यौ उडिबे की आस तें।
सुन्दर कहत मिटि जाइ सब दौर धूप
"धोपौ न रहत कोऊ ज्ञान के प्रकास तें" ॥ २५ ॥

---

(२३) लोक संग्रह=संसार यात्रा, संसार का व्यवहार। "लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्त्तुमर्हसि" (गीता)। ज्ञानी संसार के सब आवश्यक कर्मों को अवश्यकर्त्ता है परन्तु भेद यही है कि "पद्मपत्रमिवाम्भसा" जल में कमल के पत्ते की तरह रहकर भी जल से लिपता नहीं है। दौर=दौड़, क्रिया, काम। ज्ञानी को जाग्रत भी तो स्वप्न समान भासता है।

(२५) ज्ञान का लक्षण कहते हैं। ज्ञान सूर्य प्रकाश समान है। स्थान के परि-

जैसें काहू देश जाइ भाषा कहै और सी ही
समुझै न कोऊ वासों कहै का कहतु है ।
कोऊ दिन रहि करि बोली सीषै उनही की
फेरि समुझावै तब सबको लहतु है ॥
तैसें ज्ञान कहैं तें सुनत विपरीति लागै
आप आपुनो ई मत सब को गहतु है ।
उन ही के मत करि सुन्दर कहत ज्ञान
तबही तौ ज्ञान ठहराइ कैं रहतु है ॥ २६ ॥

एक ज्ञानी कर्मनि में ततपर देषियत
भक्ति कौ प्रभाव नाहि ज्ञान में गरक है ।
एक ज्ञानी भकति कौ अत्यन्त प्रभाव लीये
ज्ञान माहि निश्चै करि कर्म सौं तरक है ॥
एक ज्ञानी ज्ञान ही में ज्ञान कौ उचार करै
भक्ति अरु कर्म इनि दुहु तें फरक है ।
कर्म भक्ति ज्ञान तीनौं वेद में बषानि कहे
सुन्दर बतायौ गुरु ताही में लरक है ॥ २७ ॥

बर्तन आदि की अपेक्षा नहीं । कनक अवास=स्वर्ण का महल । पषी=पक्षी, पखेरू । टूटि=टूटी, टूट पड़ी ।

(२६) इस छन्द में स्व० सु० दा० जी ने मनुष्य में ज्ञान किस प्रकार आता है वा बढ़ता है इस बात का आध्यात्मिक वा मानसिक रहस्य का, क्रम का वा सिद्धांत निरूपण किया है । प्राप्ति अभ्यास अथवा साधन के आधीन है ।

(२८) छन्द पाद के अक्षर पूर्ति के लिए "भक्ति" को "भकति' लिखा गया है ('एक ज्ञानी भकति कौं'—यहां) । तरक=अरबी तर्क शब्द=त्याग । वा स० तर्क, दलील, छानबीन, विवेक । फरक=अ० फर्क भिन्नता । लरक=लगा अभ्यस्त । 'सुन्दर बतायो गुरु' इसका सम्बन्ध 'ज्ञानभक्ति कर्म' वेद के बताए से भी हो सकता

जैसैं पषी पगनि सौं चलत अवनि आइ
तैसैं ज्ञानी देह करि कर्मनि करत है।
जैसैं पषी चूंच करि चुगत अहार पुनि
तैसैं ज्ञानी उर मैं उपासना धरत है॥
जैसैं पषी पषनि सौं उडत गगन माहिं
तैसैं ज्ञानी ज्ञान करि ब्रह्म मैं चरत है।
सुन्दर कहत ज्ञानी तीनौं भांति देषियत
ऐसी विधि जानैं सब संशय हरत है॥ २८॥

इन्दव

एक क्रिया करि क्रिषि निपावत आदि रु अन्त ममत्व वध्यौ है।
एक क्रिया करि पाक करै जब भोजन लौं कछु अन्न रध्यौ है॥
एक क्रिया मल त्यागत है लघुनीति करै कहु नाहिं फध्यौ है।
त्यौं यह जानि क्रिया अरु संग्रह सुन्दर तीनि प्रकार सध्यौ है॥ २९॥
दोइ जने मिलि चौपरि पेलत सारि धरैं पुनि ढारत पासा।
जीतत है सु पुसी मन मैं अति हारत है सु भरै जु उसासा॥

है। अथवा सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है और गुरु के बताए विशिष्ट वा विलक्षण रहस्य (सैन) भी अभिप्राय लिया जा सकता है। 'ल्रक' यह शब्द हिन्दी भाषा मे अव्यवहृत प्रतीत होता है।

(२८) इस छन्द में ज्ञानी के लिये कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का उदाहरण पक्षी (पखेरू) से दिया है। स्वभावत. ज्ञानी आकाश मे उडनेवाले पांखांवाले के समान है, परन्तु ससार यात्रा और शरीर यात्रा करने को पृथ्वी पर आना और चुगना यह भी करता है। अर्थात् कर्म और पुन भक्ति गौण है। प्रधान ज्ञान है।

(२९) जानि=जानकारी, ज्ञान। तीनि प्रकार=कर्म, भक्ति और ज्ञान। सध्यौ=मिला हुआ। क्रिषि निपावत=खेती कर अन्न उत्पन्न करै।

एक जनो दुहु वोर ही पैलन हारि न जीति करै जु तमासा।
तैसें अज्ञानी कें द्वैत भयौ भ्रम सुन्दर ज्ञानी के एक प्रकासा ॥ ३० ॥

सवईया

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत।
कर्म पवास पुटपरी लाई तान वहु विधि भयौ अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भर्यौ जभाई लेत।
सुन्दर अव निद्रा वस नाहीं ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥ ३१ ॥
ज्ञानी कर्म करै नाना विधि अहंकार या तन कौ पोवै।
कर्मन कौ फल कछू न वछ अन्तहकरन वासना धोवै॥
ज्यौं कोई पेती कौ जोतै लै करि बीज भूमि करि वोवै।
सुन्दर कहै सुनौ दृष्टान्त हि "नागौ न्हाइ सु कहा निचोवै" ॥ ३२ ॥

॥ इति ज्ञानी को अग ॥ २९ ॥

अथ निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

मनहर

भावै देह छूटि जाहु काशी माहि गगातट
भावै देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर मे।

---

(३०) अज्ञानी=जो आपस मे खेलते है वे परस्पर स्पर्द्धा होने से द्वैतवाले अज्ञानी है। ज्ञानी=वह तमाशा देखनेवाला (भेद रहित होने से) ज्ञानी।

(३१) चार अवस्थाओं के उदाहरण—(१) विषयसुख (२) कर्म (३) भक्ति (उपासना) (४) ज्ञान। पुटपरी=(१) पगचपी। अथवा (२) भंग धतूरे का पुट दी हुई वा मदिरा अफ्यूनदार।

\- छन्द ३३ (क) पुस्तक मे नहीं है (ग) आदि मे ह।

अग ३० वा—निरसंशै=नि:सशय=सशय रहित।

भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन मध्य
भावै देह छूटि जाहु स्वपच के घर में ॥
भावै देह छूटौ देश आरज अनारज में
भावै देह छूटि जाहु वन में नगर में।
सुन्दर ज्ञानी कै कछु सशै नहिं रह्यौ कोइ
स्वरग नरक सब भाजि गयौ भर में ॥ १ ॥
भावै देह छूटि जाहु आज ही पलक मांहि
भावै देह रहौ चिरकाल जुग अन्त जू।
भावै देह छूटि जाहु ग्रीषम पावस रितु
सरद सिसिर सीत छूटत वसन्त जू ॥
भावै दक्षनायन हू भावै उत्तरायन हू
भावै देह सर्प सिंह बिज्जुली हनन्त जू ॥
सुन्दर कहत एक आतमा अखण्ड जानि
याहि भांति निरसंशै भये सब सन्त जू ॥ २ ॥

---

(१) मगहर=मगधदेश। यहां मरने से मुक्ति नहीं होती ऐसा कहीं २ लिखा है। भर=मरुस्थल वा भाड़। (देखो अर्थ आगे) कांशीमांहि=काशीमरण से मुक्ति मानी गई है, ऐसे ही गगाजल वा गगातट पर मृत्यु से मोक्ष मानी गई है। भर=(यहां) भाड़ का अर्थ प्रतीत होता है। भर का अर्थ लड़ाई युद्ध का भी है। ग्रामीण मारवाड़ी में मरुस्थल निर्जल निर्जन स्थान को भी भर कहते हैं। जहां जाने से नाश वा अभाव हो जाय, उसी से प्रयोजन है।

(२) उत्तरायन=सूर्य जब उत्तरायण में आवै और मनुष्य की मृत्यु हो तो सद्गति मानी जाती है। सूर्य उत्तरायण में धनुराशि पर आने के प्राय ९ दिन पीछे आ जाता है और उस दिन तारीख २२ दिसम्बर होती है। यह अयन शिशिर, वसत और ग्रीष्म तीन ऋतुओं में छह महीने तक रहता है। ता० २१ जून तक रहता है। फिर सूर्य दक्षिणायन में आने लगता है। भीष्मजी उत्तरायण में सूर्य आया तब ही मरे थे। इसका महात्म्य गीता अ० ८ श्लो० २४ में भी दिया है—

इन्दव

कै यह देह धरौ वन पर्वत कै यह देह नदी में वहौ जू।
कै यह देह धरौ धरती महिं कै यह देह कृशान दहौ जू॥
कै यह देह निरादर निंदहु कै यह देह सराहि कहौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह चलौ कि रहौ जू॥ ३॥
कै यह देह सदा सुख सम्पति कै यह देह विपत्ति परौ जू।
कै यह देह निरोग रहौ नित कै यह देह हि रोग चरौ जू॥
कै यह देह हुतासन पैठहु कै यह देह हिंवारै गरौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह जिवौ कि मरौ जू॥ ४॥

॥ इति निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ ३१ ॥

इन्दव

प्रीति की रीति नहीं कछु रापत जाति न पाति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कानि लग्यौ सब पारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहु जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाव कौ पैंडौ ही न्यारौ"॥ १॥

"अग्निर्ज्योतिरह शुक्ल षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छति ब्रह्म ब्रह्मविदोजना." ॥ २४ सर्प, सिंह, विजली, धुवां, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि में मरने से या तो सद्‌गति नहीं हो या फिर जनमै।

(३) कृशान=कृशानु=अग्नि। हुतासन=हुताशन=प्रवल अग्नि।

[अंग ३१] (१) कुल गारौ=कुल गारी=कुलाम्नाय छोड़ने से जो निन्दा हो (उसकी कुछ परवाह नहीं) "अरु आवै कुलगारी"। सूरदास अथवा—कुलरूपी कीच।

ज्ञान दियौ गुरुदेव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम पोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ॥
पाव विना चलि कै तहिं ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ २॥
एक अखण्डित ज्यौं नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेप न सेत न पीत न रक्त न कारौ॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ विन जौ लग नाहि न ज्ञान उज्यारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ३॥
द्वंद्व विना विचरै बसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोप न म्हारौ न थारौ॥
योग न भोग न त्याग न संग्रह देह दशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ४॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न पक्ष अपक्ष न तूल न भारौ।
झूठ न सांच अवाच न वाच न कंचन काच न दीन उदारौ॥
ज्ञान अज्ञान न मान अमान न शान गुमान न जीत न हारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ५॥

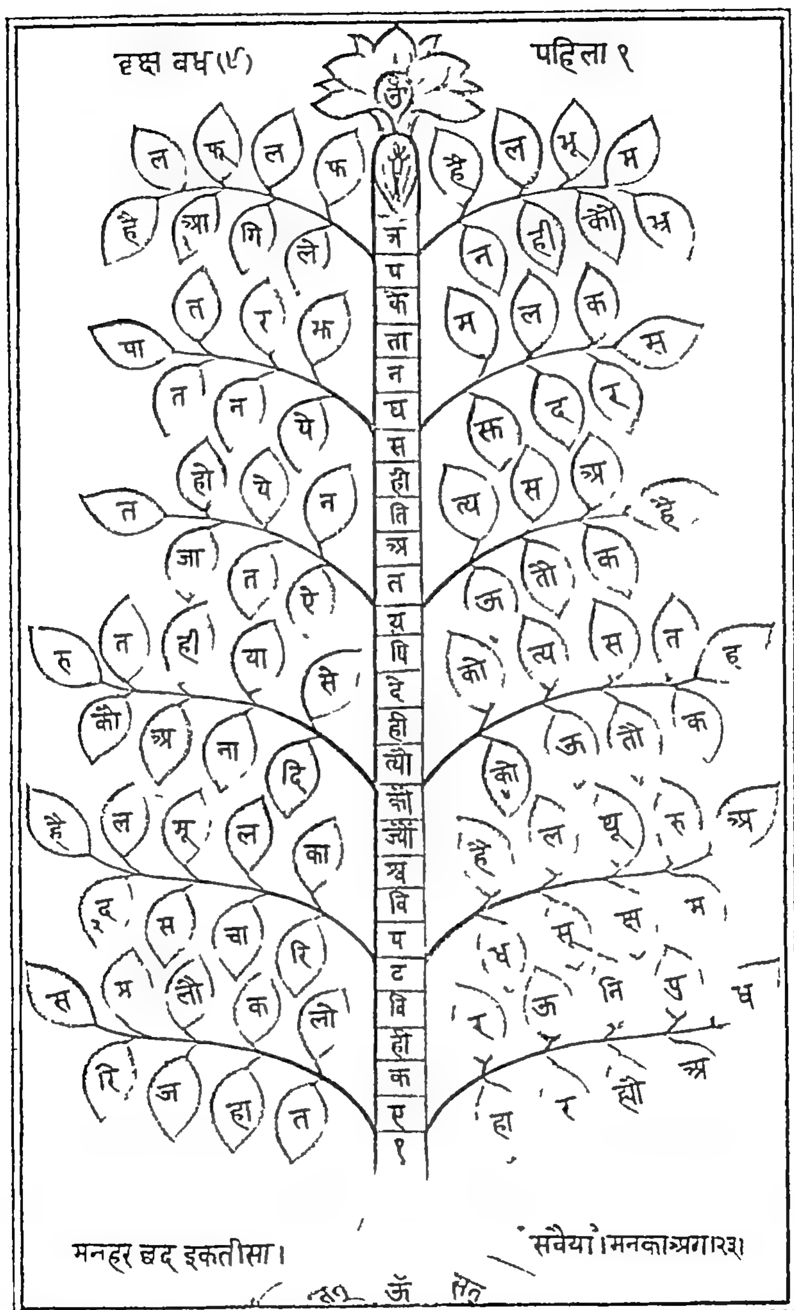
॥ इति प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ २१ ॥

---

(३) पैंडौ=पैंडा=मार्ग, रीति। मुष्टि=मुट्ठी, मुट्ठी में, गुप्त। दृष्टि=दृष्ट, दृश्यमान, प्रगट। ज्ञान=तत्वज्ञान।

(४) म्हारो=(राजस्थानी)—मेरा, अपना। थारो=तुम्हारा, पराया। ढक्यौ=ढका हुआ। वस्त्र पहिने हुए।

(५) तूल=रुई (जैसा हलका)। अवाच=वचनातीत, कहने में न आवै। अथवा वाच्य, कहने योग्य शिष्ट वाक्य।


वृक्ष बंध (९)
पहिला १
मनहर छंद इकतीसा।
सवैया। मनका अंग।२३।

वृक्षवन्ध (?)

मनहर छन्द

एक ही विटप विश्व ज्यों को त्यौं ही देखियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल ह ।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है ।।
दस चारि लोक लौं प्रसरि जहा तहां रह्यो
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है ।
कोऊ तो कहत सत्य कोऊ तो कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही को भ्रम भूल है ।। ६ ।।

पढने की विधि —

इस वृक्ष वध के छन्द को वृक्ष के तने की जड़ के ऊपर ए अक्षर से प्रारंभ करना चाहिये । ए अक्षर पर १ का अङ्क नीचे को लगा हुआ है । ऊपर पढते जांय त्र तक पढैं, फिर बांई ओर को फ अक्षर से पत्तों में पढे । प्रथम चरण है मे पूरा करें जहां पूर्ण-विराम का विन्दु लगा है । प्रत्येक चरण के आदि के अक्षर के नीचे १-२-३-४ के अङ्क और अन्त के अक्षर पर पूर्ण विराम के विन्दु (फुलस्टाप) लगा दिये गये हैं जिससे पढ़ने मे सुविधा रहै । पत्तों के अक्षरों के पढने में यह सावधानी रखनी जाय कि टहनी के (पढ़ने में) सबसे पिछले पत्ते के अक्षर को पास की दूसरी टहनी के निकटवाले पत्ते के अक्षर से मिला कर पढ़ें । पत्तों के अक्षरो का क्रम लगातार कवि महात्मा ने ऐसा ही रक्खा है । दूसरा चरण छठे पत्ते के आ अक्षर से पढकर ३७ वें पत्ते (पांचवी टहनी के ५ वें) में पूरा करें । इसही प्रकार ३ रे चरण को द से प्रारम्भ करके आठवीं टहनी के ९ नवे अक्षर में पूर्ण करें । और चौथे चरण को उक्त टहनी के आगे ९ वीं टहनी के प्रथम अक्षर को से प्रारम्भ करके १२ वीं टहनी के अन्तिम पत्ते के अक्षर में पूर्ण करें । चतुर रचनाकार ने टहनियों के पत्तो की गणना दोनों ओर के प्रथम तीन की (प्रथम कीट और आगे के दो २ की ७-७) २२-२२ । और पिछले तीन की ९-९ यों २७ रक्खी है । यों तने की २६+ दोनों ओर ९८=१२४ हैं । इस युक्ति से चरणान्त अक्षर, वाम पार्श्व मे टहनी के अन्त के पत्ते में और दाहिने मे तने के पास के ऊपर के प्रथम पत्ते मे आया है कहीं भी मध्य में नहीं आया है । इससे छन्द के पढने और टर्स में सुन्दरता आ गई है ।

मनहर (प्रश्नोत्तर)

शिष्य पूछै गुरुदेव गुरु कहै पूछ शिष्य
मेरे एक संशय है, पूछै क्यौं न अब ही।
तुम कह्यौ एक ब्रह्म अब हूं मैं कहूं एक
एक तौ अनेक (ता) क्यों इह तौ भ्रम सब ही ॥
भ्रम इह कौन कौं है भ्रम ही कौं भ्रम भयौ
भ्रम ही कौ भ्रम कैसैं तू न जानै कब ही।
कैसैं करि जानौं प्रभु गुरु कहै निश्चौ धरि
निश्चय मैं धार्यौ अब एक ब्रह्म तब ही ॥ ९ ॥
ब्रह्म है ठौर कौ ठौर दूसरौ न कोऊ और
बस्तु कौ विचार कीयें वस्तु पहिचानिये।
पंचतत्व तीन गुन बिस्तरे विविधि भांति
नाम रूप जहा लगौ मिथ्या माया मांनिये ॥
शेष नाग आदि दे कै बैकुण्ठ गोलोक पुनि
बचन विलास सब भेद भ्रम भानिये।

बात शंकर मत (विवर्त्तवाद) से एक अंश मे प्रतिकूल भले ही पड़े परन्तु वास्तव में इसकी समर्थक श्रुतियां हैं। दत्त—दत्तात्रेय। दत्तात्रेय-संहिता में इस विश्व को ब्रह्म का विराट्स्वरूप मात्र कहा है। वशिष्ठ—वशिष्ठजी ने भी योगवाशिष्ठ में अनेक स्थानों मे ऐसा ही कहा है। अर्जुन को गीता और अनुगीता मे। उद्धव को भागवत में इस ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश श्रीकृष्ण ने दिया है।

(९) शिष्य के नानात्वरूपी भ्रम को गुरु निवारण करता है कि यह सृष्टि भ्रम (मिथ्या-दृश्यमान सत्य और वास्तव असत्य—क्षर) है। जीव ईश्वर दशा उपाधियों साहित्य होने से नानापने का आभास होता है। कार्य-कारणता के भ्रम मिट जाने पर सच्चा और पूर्ण बोध हो जाता है। "कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते"। इस वचन से।

पावक एक प्रकाश बहू विधि दीप चिराक मसाल हु बारी।
सुन्दर ब्रह्म बिलास अखंडित खडित भेद की बुद्धि सु टारी ॥ ४ ॥
एक सरीर मैं अंग भये बहु एक धरा परि धाम अनेका।
एक शिला महिं कोरि किये सब चित्र बनाइ धरे ठिकठेका ॥
एक समुद्र तरंग अनेकनि कैसैं क कीजिये भिन्न विवेका।
द्वैत कछू नहिं देषिये सुन्दर ब्रह्म अखडित एक कौ एका ॥ ५ ॥
ज्यौं मृतिका घट नीर तरंग हि तेज मसाल किये जू वहूता।
वायु बघूरनि गांठि परी बहु बादल व्योम सु व्योम जीमूता ॥
वृक्ष सु वीज है बीज सु वृक्ष है पूत सु बाप है बाप सपूता।
वस्तु विचारत एक हि सुन्दर तानै रु बानै तौ देषिये सूता ॥ ६ ॥
भूमि हू चेतनि आपु हु चेतनि तेज हु चेतनि है जु प्रचडा ॥
वायु हु चेतनि व्योम हु चेतनि शब्द हु चेतनि पिंड ब्रह्मंडा ॥
है मन चेतनि बुद्धि हू चेतनि चित्त हू चेतनि आहि उडडा।
जो कछु नाम धरै सोइ चेतनि चेतनि सुन्दर ब्रह्म अखडा ॥ ७ ॥
एक अखडित ब्रह्म विराजत नाम जुदौ करि विश्व कहावै।
एक ई ग्रन्थ पुरान बषानत एक ई दत्त वसिष्ट सुनावै ॥
एक ई अर्जुन उद्धव सौं कहि कृष्ण कृपा करि कं समुझावै।
सुन्दर द्वैत कछू मति जानहुं एक ई व्यापक वेद बतावै ॥ ८ ॥

---

(४) (५) (६)—इन तीनों छन्दों में विशेषत समष्टि और व्यष्टि की युक्तियों से अखण्ड ब्रह्म का जगत् का पसाग नाना भेद रूपादि में दरसाया है। कार्य-कारणता सम्बन्ध (जैसे बीज-वृक्ष न्याय से) भी दिखाया है। ठिकठेका=ठीक ठीक। जीमूत=बादल।

(७) (८)—इन दो छन्दों में "सर्वं खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" इस श्रुति का प्रगटरूप से वर्णन है। ससार में जड़ वा अनात्म पदार्थ कोई नहीं है सब चैतन्य (चेतन—ब्रह्म) ही है। चेतन कारण है चेतन ही कार्य (जगत्) है। यह

विप्र रसोई करने लागौ चौका भीतरि बैठौ आइ।
लकरी माहे चूल्हा दीयौ रोटी ऊपर तवा चढाइ॥
पिचरी माहें हडिया राधी सालन आक धतूरा पाइ।
सुंदर जीमत अति सुख पायौ अबके भोजन कियौ अघाइ॥ २१॥

करनेवाला होवै है सो पापी कहिये है। सर्व अविद्या का औ ताके कार्य का नाश करनेवाला। ज्ञान है तातैं ताकूं ही पापी कहैं हैं। ता ज्ञानरूप पापी की पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्मरूप सतयुग में वृद्धि होवै है। औ धर्म को भग होवै है काहेतें कि जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है। अविद्या औ ताका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुग में नाश होव है।—सुंदरदासजी कहते हैं कि जो पुरुष नीके करि (अच्छी तरह से) अनग (कामदेव) कूं भजै (नोट—पीताम्बरजी ने तजै की जगह भजै ऐसा पाठ विपर्यय के चमत्कार बढाने को किया) सो याका अर्थ पावै। याका भाव यह है:—जाका अंग नहीं है ताकूं अनग कहै हैं। ऐसे कामदेव की न्याईं निरवयव जो ब्रह्म है ताकूं भजै कहिये जो निर्गुण उपासना करै सो अच्छी तरह सें मोक्षरूप अर्थ कूं पावै॥ २०॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सु० दा० जीकी साखी—सुंदर सबही सौं मिली कन्या अपन कुमारि। वेस्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागिन नारि। २९।—कलियुग मैं सतजुग कियौ सुंदर उलटो गग। पापी भये सु ऊबरे धर्मी हूये भग। ३०।—कबीरजी का पद—"कुबिजा पुरुष गले इक लागी, पूजि न मनकी साधा। करत बिचार जन्म गो खीसा, ई तन रहल असाधा"। (बीजक शब्द ५८ में)।—तथा—"एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जग जीव की नारी। खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।—(क० ग्र० पद ३७०।)।

ह० लि० १—२ टीकाः—विप्र जो (वेदादि का ज्ञान प्राप्त) जीव सो परम शुद्ध हो सर्व कर्म काल को मारि अपने हित अपरस सौं अब रसोई करनैं लागो नाम भाव-भक्ति करनैं को लाग्यो तब चौका जो शुद्ध निर्विकार किया अतःकरण चतुष्टय तामें आइकैं बैठ्यो नाम निश्चल हुवो।—लकरी नाम दै तामें चूल्हा नाम चित्त दीयौ

न तौ कोऊ उरझ्यौ न सुरझ्यौ कहौ सु कौंन
सुन्दर सकल यह "ऊवावाई जांनिये" ॥ १० ॥
प्रथम हिं देह मैं तें वाहिर कौं चौंकि पर्‌यौ
इन्द्रिय ब्यौपार सुख सत्य करि जान्यौ है।
कौंन ऊ सयोग पाइ सद्गुरु सौं भेट भई
उन उपदेश दे कै भीतर कौ आन्यौ है ॥
भीतर कैं आवत हि बुद्धि को प्रकास भयौ
हौ कौंन देह कौंन जगत किन मान्यौ है।
सुन्दर विचारत यौ उपज्यौ अद्वैत ज्ञान
आपु कौ अखड ब्रह्म एक पहिचान्यौ है ॥ ११ ॥

हसाल

सकल संसार विस्तार करि वरनियौ स्वर्ग पाताल मृति पूरि भ्रम रह्यौ है।
एक तें गिनत गिनि जाइये सो लों फेरि करि एक कौं एक ही गह्यौ है ॥
यह नहिं यह नहिं यह नहिं यह नहिं रहै अवशेष सो वेद हू कह्यौ है।
सुन्दर सही सौं विचारि कै अपुनपौ "आपु मैं आपु कौं आपु ही लह्यौ है"॥१२॥
एक तू दोइ तू तीन तू चारि तू पच तू तत्व मैं जगत कीयौ।
नाम अरु रूप ह्वै वहुत विधि विस्तर्‌यौ तुम विना और कोऊ नाहिं वीयौ ॥
राव तू रक तू दानि तू दीन तू दोइ कर मेलि तें दीयौ लीयौ।
सकल यह सृष्टि तुम मांहि उपजै पपै कहत सुन्दर वडौ विपुल हीयौ ॥१३॥

---

(१०) "ऊवावाई"—यह ऊवावाई शब्द "वावनी" ग्रन्थ के १५ वें छन्द मे आया है। वहा टीका देखें। पोपांवाई की तरह एक यह "ऊवावाई" भी हुई है।

(१३) वीयौ=दूजा, दूसरा। विपुल हीयौ=वहुत वड़ा हृदय। ईश्वर का महान् विशाल विचार है जिससे महान् विश्व हुआ। अथवा सुन्दरदासजी कहते हैं कि विराट विश्व का महान् विचार करते करते मेरा हृदय भी महान् हो जाता है।

मनहर

तोही में जगत यह तू ही है जगत माहि
तौ में अरु जगत में भिन्नता कहा रही।
भूमि ही तें भाजन अनेक भांति नाम रूप
भाजन विचारि देषें उहै एक है मही॥
जल तें तरंग भई फेन बुद्बुदा अनेक
सो ऊ तौ विचारें एक वहै जल है सही।
महा पुरुष जेतें है सब कौ सिद्धांत एक
सुन्दर खल्विद ब्रह्म अन्त वेद है कही॥ १४॥

जैसें ईक्षुरस की मिठाई भांति भांति भई
फेरि करि गारें ईक्षुरस हि लहत है।
जैसे घृत थीजि कें डरा सौ बधि जात पुनि
फेरि पिघरें तें वह घृत ई रहत है॥
जैसें पानी जमि कें पषान हू सौ देषियत
सो पषान फेरि करि पानी ह्वै वहत है।
तैसें हि सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय वेद यौं कहत है॥ १५॥

जैसें काठ कोरि ता में पूतरी बनाइ राषी
जो विचार देषिये तौ उहै एक दार है।
जैसें माला सूत ही की मनिकाऊ सूत ही के
भीतर हू पोयौ पुनि सूत ही कौ तार है॥
जैसें एक समुद्र के जल ही कौं लौंन भयौ
सो ऊ तौ विचारे पुनि उहै जब पार है।

---

(१४) खल्विद ब्रह्म="सर्वं खल्विदं ब्रह्म" श्रुतिवाक्य उपनिषद का है। यह सब सृष्टि जो भासती है सारी ब्रह्म है—ब्रह्मरूपा है।

(१५) ईक्षु=ईख, गन्ना, साठा। थीजिके=जमकर, गाढ़ा होकर।

तैसैं हि सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय याहि निरधार है ॥ १६ ॥

जैसैं एक लोह के हथ्यार नाना विधि कीये
आदि अन्त मध्य एक लोह ई प्रवानिये ।
जैसैं एक कंचन के भूषन अनेक भये
आदि अन्त मध्य एक कंचन ई जानिये ॥
जैसैं एक मैंन के सवारे नर हाथी हय
आदि अन्त मध्य एक मैंन ही वषानिये ।
तैसैं ही सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय निश्चै करि मानिये ॥ १७ ॥

ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देषियत
जैसो विधि देषियत फूलरी महीर मैं ।
जैसी विधि गिलम दुलीचे मैं अनेक भांति
जैसी विधि देषियत चूनरी हू चीर मैं ॥
जैसी विधि कांगरे ऊ कोट पर देषियत
जैसी विधि देषियत बुदबुदा नीर मैं ।
सुन्दर कहत लीक हाथ पर देषियत
जैसी विधि देषियत शीतला शरीर मैं ॥ १८ ॥

---

(१६) पूतरी=पुतली, मूर्त्ति । दार=दारु, काठ । (१७) मैंन=मैंण, मोम ।

(१८) फूलरी महीर में=महीर=मट्ठा । फूलरी=मक्खन की छाटी डलियां जो दही बिलोते मे पड़ती हैं । अथवा महीरुह=वृक्ष । फूलरी=फूल अथवा चीर वा ओढने में फूल बूटे । गिलम=बढिया मखमल से भी उत्तम बेल बूटदार कारीगरी के मुलाइम रेशमी कपड़े वा गालीचे जो बादशाहों वा अमीरों के लिए बनते थे— "गिलगिली गिलमैं हैं' (पद्माकर) दुलीचा=गालीचा । चूनरी=बंधाई डोरे की से कपड़े की रंगाई में फूल से बनते हैं ।

ब्रह्म अरु माया जैसैं शिव अरु शक्ति पुनि
पुरुष प्रकृति दोउ करि कैं सुनाये हैं।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ
नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाये हैं॥
जैसैं कोऊ अर्द्ध नारी नाटेश्वर रूप धरै
एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाये हैं।
तैसैं हि सुन्दर वस्तु ज्यौं है त्यौं ही एक रस
उभय प्रकार होइ आपु ही दिपाये हैं॥ १९॥

इन्दव

ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन नित्य निरंजन और न भासै।
ब्रह्म अखण्डित है अध ऊरध वाहिर भीतरि ब्रह्म प्रकासै॥
ब्रह्म हि सूक्षम थूल जहां लग ब्रह्म हि साहिब ब्रह्म हि दासै।
सुन्दर और कछू मति जानहुं ब्रह्म हि देषत ब्रह्म नमासै॥ २०॥
ब्रह्म हि माहि विराजत ब्रह्म हि ब्रह्म विना जिनि और हि जानौं।
ब्रह्म हि कुंजर कीट हु ब्रह्म हि ब्रह्म हि रंक रु ब्रह्म हि रानौं॥
काल हु ब्रह्म स्वभाव हु ब्रह्म हि कर्म हु जीव हु ब्रह्म वषानौं।
सुन्दर ब्रह्म विना कछु नाहि न ब्रह्म हि जानि सवं भ्रम भानौं॥ २१॥
आदि हुतौ सोइ अंतर है पुनि मध्य कहा कछु और कहावै।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण माहि समावै॥
कारय देषि भयौ चिचि विभ्रम कारण देषि विभ्रम्म बिलावै।
सुन्दर या निहचै अभिअंतर द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै॥ २२॥

---

(१९) अर्धनारी नाटेश्वर=वामांग मे पार्वती दाहिने अग मे शिव। ऐसी मूर्ति को अर्धनारीश्वर कहते हैं। नाट=स्वांग, नक़ल। शिव की ऐसी मूर्ति का नाम "नाटेश्वर" दिया है।

(२०) निरीह=चेष्टारहित। तटस्थ। साक्षीमात्र। निरामय=निर्मल,

(२१) रानौं=राणा, बड़ा राजा। (२२) कारण देखि विभ्रम्म बिलावै=कारण

मनहर

द्वैत करि देपै जब द्वैत ही दिपाई देत
एक करि देपै तब उह एक अग है।
सूरज कौ देपै जब सूरज प्रकाशि रह्यो
किरण कौ देपै तो किरण नाना रग है ॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसौ नाम धर्यौ
भ्रम कै गये तैं एक ब्रह्म सरवग है।
सुन्दर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ
"ब्रह्म अरु माया के तौ माथें नहिं शृ ग है" ॥२३॥
श्रोत्र कछु और नाहि नेत्र कछु और नाहि
नासा कछु और नाहि रसना न और है।
त्वक कछु और नाहि वाक कछु और नाहि
हाथ कछु और नाहि पावन की दौर है ॥
मन कछु और नाहि वुद्धि कछु और नाहि
चित्त कछु और नाहि अहकार तौर है।
सुन्दर कहत एक ब्रह्म विन और नाहि
आपु ही मैं आपु व्यापि रह्यौ सव ठौर है ॥२४॥

इन्दव

व्यापिन व्यापिक व्यापि हु व्यापक आतम एक अखडित जानौं।
ज्यौं पृथवी नहि व्यापिन व्यापक भाजन व्यापि हु व्यापक मानौ ॥

जो ब्रह्म उसका साक्षात्कार होने से काय जो ससार लय हो जाता है अर्थात् मिट जाता है। "पर दृष्ट्वा निवर्त्तते"। यही मोक्ष है।

(२४) पावन की दौर है=पांव भी शरीर के अग मात्र हैं। उनमे चलने दौड़ने की क्रिया विशेष है। अहकार तौर है=अहकार मे तोरा वा त्योरा अभिमान का स्वभाव वा लक्षण है।

कचन व्यापि न व्यापक दीसत भूषन व्यापि हु व्यापक ठानौं।
सुन्दर कारण व्यापि न व्यापक कारय व्यापि हु व्यापक आनौं ॥२५॥*

॥ इति अद्वैतज्ञान को अंग ॥ ३२ ॥

॥ अथ जगन्मिथ्या को अंग ॥ ३३ ॥

मनहर

कियौ न विचार कछु भनक परी है कान
धार आई मुनि कै डरपि विप पायौ है।
जेसं कोऊ अनछतो ऐसे ही बुलाइयत
वार बीति गई पर कोऊ नहिं आयौ है॥
वेद हि वरनि कै जगत तरु ठाढौ कियौ
अंत पुनि वेद जर मूल तें उठायौ है।
तेसं हि सुन्दर याकौ कोऊ एक पावें भेद
जगत कौ नाम सुनि जगत भुलायौ है॥ १ ॥

---

(२५) व्यापि=व्याप्य, जिसमें अन्य वस्तु व्यापै, बसै वा प्रवेश करै, सृष्टि, ससार। व्यापिक=व्यापक, ब्रह्म, ईश्वर। यहां व्याप्य व्यापक भाव का विवरण है। विशेपता यही है कि कार्य्य (सृष्टि) को ही व्यापक वा व्याप्य दोनो कहा है। इसही का विवरण आगे के अंग "जगन्मिथ्या" के छन्द ४ मे भी है।

* छन्द २४ और २५ दोनो (क) पुस्तक में इस अंग मे नही हैं। २३ वें छन्द पर ही समाप्ति है। ये (ख) आदि पुस्तकों मे मिले हैं।

[अग ३३] (१) धार=बहुत समय। अनछतौ=जो वास्तव में है ही नहीं ऐसे पुरुष की कल्पना करके। जगत तरु=जगतरूपी वृक्ष। "अश्वत्थमेनम् सुविरूढमूलमसगशस्त्रेण दृढेन छित्वा··" (गीता अ० १५) इस अश्वत्थ का वर्णन

ऐसौ ही अज्ञान कोऊ आइ कैं प्रगट भयौ
दिव्य दृष्टि दुरि गई देषै चम दृष्टि कौं।
जैसैं एक आरसी सदा ई हाथ मांहि रहै
सामैं हो न देषै फेरि फेरि देषै पृष्टि कौं॥
जैसैं एक व्योम पुनि बादर सौ छाइ रह्यौ
व्योम नहिं देषत देषत वहु वृष्टि कौं।
तैसैं एक ब्रह्म ई विराजमान सुन्दर है
ब्रह्म कौं न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौं॥ २॥
अनछतौ जगत अज्ञान तें प्रगट भयौ
जैसैं कोऊ बालक बेताल देषि डर्यौ है।
जैसैं कोऊ स्वपने मैं दाव्यौ है अथारै आइ
मुख तें न आवै बोल ऐसौ दुख पर्यौ है॥
जैसैं अंधियारी रैंन जेवरौ न जानै ताहि
आपु ही तें साप मानि भय अति कर्यौ है।
तैसैं हिं सुन्दर एक ज्ञान कै प्रकास बिन
आपु दुख पाय पाय आपु पचि मर्यौ है॥ ३॥

ऋग्वेद, अथर्ववेद तैत्तिरीय ब्राह्मण, कठोपनिषद, महाभारत और पुराणों में भी है। गीता में कठोपनिषद के अनुसार है। यह वृक्ष ससाररूप है जिसकी जड़ माया अविद्या है। जो ज्ञान और प्रसग से कट जाती है। (शंकरभाष्य और गीता रहस्य देखो)।

(२) दुरि=छिपगई। चम दृष्टि=चर्म दृष्टि, स्थूल दृष्टि। यहा उपाधि के कारण यथार्थ ज्ञान न होने से अभिप्राय है। (देखो वेदांत सार)। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि वा ज्ञान से शुद्ध की हुई वुद्धि के विना ब्रह्म नहीं अनुभवित हो सकता। स्थूल दृष्टि से मिथ्या यह जगत् ही सत्य दीखता है।

(३) अथारै=सूर्यास्त पीछे। अन्धेरे में।

मृत्तिका समाइ रही भाजन के रूप माहि
मृत्तिका कौ नाम मिटि भाजन ई गह्यौ है।
कनक समाइ त्यौं ही होइ रह्यौ आभूषन
कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है॥
बीज ऊ समाइ करि वृक्ष होइ रह्यौ पुनि
वृक्ष ई कौं देषियत बीज नहीं लह्यौ है।
सुन्दर कहत यह यौंही करि जानौ सब
ब्रह्म ई जगत होइ ब्रह्म दुरि रह्यौ है॥ ४॥
कहत है देह माहि जीव आइ मिलि रह्यौ
कहां देह कहा जीव वृथा चौंकि पर्‌यौ है।
बूडवे कै डर तें तिरन कौ उपाइ करै
ऐसैं नहि जानै यह मृगजल भर्‌यौ है॥
जेवरे कौ सापु जेसैं सीप विषै रूपौ जानि
और कौं और इ देषि यौंही भ्रम कर्‌यौ है।
सुन्दर कहत यह एक ई अखंड ब्रह्म
ताही कौं पलटि कै जगत नाम धर्‌यौ है॥ ५॥

॥ इति जगन्मिथ्या को अंग ॥ ३३ ॥

(४-५) १ से ५ तक वही एक विचार पृथक् उदाहरणों दृष्टांतो से दरसाया है। इनमें ईश्वर ही जगत्‌रूप होना कहा है। अर्थात् निमित्त और उपादान कारण भी वही है। भासमान जगत् माया का विवर्त्तरूप है वा मिथ्या है इन्द्रजाल, मृगतृष्णा (मरीचिका) के जल के समान, अथवा उपाधि के आरोप से रस्सी का साप वा सीप की चांदी प्रतीत हो वैसे सत्य वस्तु ब्रह्म में असत्य वस्तु संसार भासता है। वास्तव में जगत् है नहीं। बेताल=भूत-प्रेत। कहां देह कहां जीव=मिथ्यात्व की धृति को प्रश्न करके दरसाते हैं कि देह भ्रम वा मिथ्या है उसमें जीव (ब्रह्म वा

॥ अथ आश्चर्य को अंग ॥ ३४ ॥

मनहर

बेद कौ बिचार सोई सुनि कै संतनि मुख
आपु हू बिचार करि सोई धारियतु है।
योग की युगति जानि जग तैं उदास होइ
शून्य मैं समाधि लाइ मन मारियतु है॥
ऐसैं ऐसैं करत करत केते दिन बीते
सुन्दर कहत अज हूं विचारियतु है।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु
हाथ न परत तातैं हाथ झारियतु है॥ १॥

मन कौ अगम अति वचन थकित होत
बुद्धि हू विचार करि वहु षोंडियतु है।
श्रवन न सुनै जाहि नैंन हू न देषै ताहि
रसना कौरस सरवस छोंडियतु है॥
त्वक कौ सपर्श नाहि घ्रांण को न बिषै होइ
पगनि हूं करि जित तित ढोंडियतु है।

आत्मा) का आना कैसा ? अर्थात् यह एक मिथ्या विचार मात्र है। संसार माया-जाल है। वस्तुत. कुछ नहीं है। फिर भी "ससारसागर" से डर कर इसमें डूबने से बचने के लिये अनेक उपाय मनुष्य किया करता है। सो अवस्तु की भ्रम भरी कल्पना मात्र होने से केवल वृथा विढम्बना ही है। ज्ञानरूपी प्रकाश से मिथ्या भ्रम का नाश हो कर वास्तविक सत्य वस्तु ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। तब आप ही जगत् का मिथ्या होना निश्चित होता है।

[अङ्ग ३४] (१) परमात्मा की प्राप्ति में मनुष्य के विचार की अशक्तता वर्णित है।

सुन्दर कहत अति सूक्षम स्वरूप कछु
हाथ न परत तातैं हाथ मींडियतु है ॥ २ ॥
गुफा कौं संवारि तहं आसन उ मारि करि
प्रांण हूं कौं धारि धारि नाक सींटियतु है ।
इन्द्रिनि कौं घेरि करि मन हूं कौं फेरि करि
त्रिकुटी मैं हेरि हेरि हियो छींटियतु है ॥
सब छुटकाइ पुनि शून्य में समाइ तह
समाधि लगाइ करि आंपि मींटियतु है ।
सुन्दर कहत हम और ऊ किये उपाय
हाथ न परत तातें हाथ पीटियतु है ॥ ३ ॥
बोलै ही न मौन धरै बैठै ही न गौन करै
जागै ही न सोवै सुतौ दूरि ही न नीरौ है ।
आवै ही न जाइ न तौ थिर अकुलाइ पुनि
भूपौ ही न पाइ कछु तातौ ही न सीरौ है ॥
लेत ही न देत कछु हेत न कुहेत पुनि
स्याम ही न सेत सु तौ रातौ ही न पीरौ है ।
दूबरौ न मोटौ कछु लांबौ ही न छोटौ तातें
सुन्दर कहै सु कहा काच ही न हीरौ है ॥ ४ ॥

---

(२) पींडियतु=क्षीण होती है । छींडियतु=विखरता वखेरता है । हींडियतु=हांडियतु=फिरता वा भ्रमता है । मींडियतु=मलता है । हाथ मलना=अफसोस करना । (यह मुहाविरा मक्खी के दोनों हाथ मारने से उपमा देते हैं ।)

(३) सींटियतु=साफ करता । छींटियतु=पछाट कर शुद्ध करता । मींटियतु=मींटतगाता, मदना । पीटियतु=एक हाक दूसरे पर मारता, पश्चात्ताप करता ।

इतना उपाय किया जाता है । फिर भी ईश्वर प्राप्ति नहीं होती । तब अफसोस करता है । यही आश्चर्य है ।

(४) से (७)—इन सब ही छन्दों मे ब्रह्म की अगाध अगम्य अचिन्तनीय

भूमि ही न आप न तौ तेज ही न ताप न तौ
वायु हू न व्योम न तौ पंच कौ पसारौ है।
हाथ ही न पाव न तौ नैंन बैंन भाव न तौ
रक ही न राव न तौ वृद्ध ही न वारौ है॥
पिंड ही न प्र.न न तौ जांन न अजांन न तौ
बंध निरबान न तौ हरवौ न भारौ है।
द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभीत तातें
सुन्दर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है॥ ५॥

इन्दव

पाप न पुन्य न थूल न सून्य न बोल न मौन न सोवै न जागै।
एक न दोइ पुरुष्य न जोइ कहै कहा कोइ न पीछै न आगै॥
वृद्ध न बाल न कर्म न काल न ह्रस्व विसाल न जूझै न भागै।
बंध न मोक्ष अप्रोक्ष न प्रोक्ष न सुन्दर है न असुन्दर लागै॥ ६॥
तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य डरै न परै है।
जोति अजोति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है॥
रूप अरूप कछू नहिं दीसत भेद अभेद करै न हरै है।
शुद्ध असुद्ध कहै पुनि कौंन जु सुन्दर बोलै न मौन धरै है॥ ७॥

शक्ति वा लीला का दिग्दर्शन है कि अल्पज्ञान जन की बुद्धि के विचार से परे है। काच ही न हीरौ—विवेक बुद्धि भी पूरी २ नहीं हो सकती है। अस्ति नास्ति, सत्य, असत्य, वास्तविकता वा अवास्तविकता के होने का विचार मनुष्य करता ही रहता है। और पार नहीं पाता है। पच को पसारो=पचतत्व का फैलाव, सृष्टि निर्माण। बारौ=बालक। बध=बधा हुआ। निर्वान=मुक्त। ह्रस्व=छोटा। विसाल=बड़ा। जूझै=लड़ै, युद्ध करै। अप्रोक्ष=अपरोक्ष, प्रत्यक्ष। प्रोक्ष=परोक्ष। गुप्त। जिवे=भूतादि की तरह जीवसज्ञा का नहीं है। रूप अरूप=आकारवाला कहैं तो बनता नहीं और निराकार कहैं तो प्रत्यक्ष होता नहीं।

पोजत पोजत पोजि रहे अरु पोजत हैं पुनि पोजि है आनैं।
गावत गावत गाइ गये वहु गावत हैं अरु गाइ हैं गानैं॥
देषत देषत देषि थके सब दीसै नहीं कहुं ठौर ठिकानैं।
बूझत बूझत बूझि कैं सुन्दर हेरत हेरत हेरि हिरानैं॥ ८॥
पिंड मैं है परि पिंड लिपै नहिं पिंड परै पुनि त्यौंहि रहावै।
श्रोत्र मैं है परि श्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि मैं है परि दृष्टि न आवै॥
बुद्धि मैं है परि बुद्धि न जानत चित्त मैं है परि चित्त न पावै।
शब्द मैं है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हू सुन्दर दूरि बतावै॥ ९॥
भूमि हु तैसैं हिं आपु हुं तैसैं हिं तेज हु तैसैं हिं तैसैं हिं पौंना।
व्योम हु तैसैं हिं आहि अखंडित तैसैं हिं ब्रह्म रह्यौ भरि भौंना॥
देह संयोग वियोग भयौ जब आयौ सु कौंन गयौ तब कौंना।
जो कहिये तौ कहै न बनैं कछु सुन्दर जानि गही मुख मौंना॥ १०॥
एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौंन बतावनि हारौ।
जो कोउ जीव करै जु प्रमांन तौ जीव कहा कछु ब्रह्म तैं न्यारौ॥
जो कहै जीव भयौ जगदीस तें तो रवि मांहि कहां कौ अंधारौ।
सुन्दर मौंन गही यह जानि कै कौंन हु भांति न होत निबारौ॥ ११॥
जो हम पोज करैं अभिअन्तर तौ वह पोज उरै हि बिलावै।
जो हम बाहिर कौं उठि दौरत तौ कछु बाहिर हाथि न आवै॥

---

(८) हिरानैं=विकल हुए हैरान हुए। (परन्तु मिला नहीं)।

(९) शब्द=शब्द प्रमाण, वेद वाक्य।

(१०) जानि गही मुख मौना=जिन्होंने ब्रह्म को जाना वे कुछ वर्णन ही नहीं कर सकते। जिनको खबर (ज्ञान) हुआ, वे बेखबर (अज्ञानी) से हुए रहते हैं। अथवा उनका पता ही नहीं पड़ता है।

(११) तो रवि मांहिं कहा को अन्धारो=आत्मा स्वयं प्रकाश है, ब्रह्म अकर्ता है, फिर जीव का जगदीश से उत्पन्न होना ऐसा कहना नहीं बनता। जीव ब्रह्म तो एक ही हैं। निबारो=निर्धार, निर्णय।

जो हम काहु कौं पूछत हैं पुनि सोउ अगाध अगाध वतावै।
ताहि तें कोउ न जानि सकैं तिंहि सुन्दर कौनसि ठौर रहावै ॥ १२ ॥

नैंन न वैंन न सैंन न आस न वास न स्वास न प्यास न यातैं।
सीत न घाम न ठौर न ठाम न पुस न वाम न वाप न मातैं ॥
रूप न रेप न शेष अशेष न स्वेत न पीत न स्याम न तातैं।
सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख वातैं ॥ १३ ॥

वेद थके कहि तन्त्र थके कहि ग्रन्थ थके निस वासर गातैं।
शेष थके शिव इन्द्र थके पुनि पोज कियौ वहुभाति विधातैं ॥
पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके वहु वोलि गिरातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख वातैं ॥ १४ ॥

योगि थके कहि जैन थके ऋृषि तापस थाकि रहे फल पातैं।
न्यासि थके बनवासी थके जु उदासि थके बहु फेर फिरातैं ॥
सेप मसाइक और उलाइक थाकि रहे मन मैं मुसकातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख वातैं ॥ १५ ॥

॥ इति आश्चर्य को अग ॥ ३४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित ' सवैया ' (अपर नाम "सुन्दरविलास") ग्रन्थ समाप्त ॥ सर्वछन्द सख्या ५६३ ॥

---

(१२) खोज उरै ही विलावै=हमारा ढुढना ठेठ नहीं पहुचता। षड्दर्शनकारों के मत का भेद इस ही से प्रगट है कि निश्चय वात एकने भी नहीं रहीं। जिनकी जहां तक पहुच हो सकी उसही को सिद्धान्त वता कर अलम् कर दिया। अगाध अगाध= 'नेति नेति' वेद तक मे कहा है। फिर मनुष्य की क्या चलाई।

(१३) मातैं=माता से। तातैं=ताता, तप्त।

(१४) गातैं=गाते २। विधातैं=नाना विधियों से प्रकारों से। वा विधाता ब्रह्मा ने। पीर=मुसलमानी धर्म का गुरु। मीर=सय्यद जो पैगम्बर मुहम्मद के वंशज हैं। गिरा तैं=वाणी से।

(१५) योगी=राजयोग के अभ्यास से ईश्वर प्रणिधान द्वारा योग का सिद्धान्त ईश्वर सिद्धि है। उसके कर्त्ता भी ईश्वर साक्षात्कार यथार्थ नहीं कर सकै वा कर सके तो कुछ कह ही नहीं सके। जैनी=जैनधर्म में ईश्वर इस आत्मा की सिद्धि प्राप्त करनेवाले सिद्ध को ही कहते हैं। पृथक् ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं मानते हैं। फल पाते=वन में कन्दमूल फलपत्र खाकर उग्र तपस्या करनेवाले भी नहीं कह सके। न्यासी=सन्यासी। त्यागी। उदासी=त्यागी साधु जो जगत् से उदासीन (विरक्त) हो चुका। सेप मसाइक=(फा० वा अ०) शेख—मुसल्मानों के धर्मज्ञाता पण्डित। मशाइख बहुवचन शेख का। उ लाइक=पाठान्तर "मलाइक" (फरिश्ते) मन में मुसकाते=परमात्मा तत्व को तो जान लिया इससे मन में तो प्रसन्न हैं परन्तु वचनातीत होने से ईश्वर कुछ कहने में नही आता।—जान लेने पर वचन से कहने में नहीं आ सकता है यही आश्चर्य है॥ इति॥ सुन्दरदासजी के सवैया ग्रन्थ के ३४ वें अंग "आश्चर्य का अङ्ग" सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्त हुआ॥ ३४॥

॥ इति कविवर महात्मा स्वामी सुन्दरदासजी विरचित "सवैया" ग्रन्थ "सुन्दरानन्दी टीका" सहित सम्पूर्णम्॥



स्थायी

अथ साषी

॥ अथ गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

दोहा

दादू सद्गुरु बन्दिये सो मेरे सिर मौर।
सुन्दर बहिया जाय था पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये मन क्रम बिसवा बीस।
सुन्दर तिनकै चरण ह्वै सदा रहौ मम सीस ॥ २ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये सब सुख आनन्द मूल।
सुन्दर पद रज परसतें निकसि गई सब सूल ॥ ३ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये सकल सुखनि की रासि।
सुन्दर पद रज परसतें दुःख गये सब नासि ॥ ४ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये सकल सिरोमन राइ।
बार बार कर जोरि कैं सुन्दर बलि बलि जाइ ॥ ५ ॥

नोट—इस 'साषी" ग्रन्थ के अङ्गों को 'सवैया' ग्रन्थ के अङ्गों के साथ मिलाकर पढ़ने से बहुत आनन्द रहैगा। "सवैया" ग्रन्थ के ३४ अङ्ग (अध्याय हैं) और इस "साषी" ग्रन्थ के ३१ ही अङ्ग हैं। परन्तु प्राय: सब अङ्गों के विचार आपस में बहुत स्थलों और प्रकरणों मे मिलते जुलते हैं। इस कारण समझने और विचारने में, आपस के मीलान और साथ २ पढ़ने से, बहुत सुविधा रहैगी।

सुन्दर सद्गुरु बन्दिये नमस्कार प्रणपत्ति।
बिघ्न बिलै ह्वै जात हैं मन बच क्रम करि सत्य॥ ६॥

सुन्दर सद्गुरु बन्दिये सोई बन्दन जोग।
औषध शब्द पिवाइ करि दूरि किया सब रोग॥ ७॥

सुन्दर सद्गुरु बन्दिये ग्रहिये दृढ़ करि पाव।
मस्तक हस्त लगाइ जिनि किये रंक तें राव॥ ८॥

सुन्दर सद्गुरु बन्दिये जिनके गुन नहिं छेह।
श्रवन हुं शब्द सुनाइ करि दूरि किया सन्देह॥ ९॥

सुन्दर सद्गुरु बन्दिये निर्मल ज्ञान स्वरूप।
नैंननि मैं अंजन किया देख्या तत्त्व अनूप॥ १०॥

सुन्दर सद्गुरु आपु तें किया अनुग्रह आइ।
मोह निशा मैं सोवते हमकों लिया जगाइ॥ ११॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें गहे सीस के बाल।
बूडत जगत समुद्र मैं काढि लियो ततकाल॥ १२॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें मुक्त किये गृह कूप।
कर्म कालिमा दूरि करि कीये शुद्ध स्वरूप॥ १३॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें बन्धन काटे सर्व।
मुक्त भये संसार मैं विचरत हैं निहगर्व॥ १४॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें अलप पजीना षोल।
दुख दरिद्र जाते रहे दीया रत्न अमोल॥ १५॥

---

(६) प्रणपत्ति=प्रणिपात, दण्डवत। "प्रणत्ति" का अनुप्रास "सत्ति" के साथ होता तो अच्छा रहता।

(१३) गृहकूप=गृहस्थाश्रमरूपी कुए से निकाल दिया। कालिमा=कालुष्य, पाप।

(१५) खोल=खोलकर (अमूल रत्न (ज्ञान) दे दिया जिससे (अज्ञानरूपी) दरिद्र दूर हुआ)।

सद्गुरु आया मिहरि करि सुन्दर पाया पूरि।
शब्द सुनाया आपना भरम उड़ाया दूरि॥ १६॥

सुन्दर सद्गुरु मिहरि करि निकट बताया राम।
जहा तहा भटकत फिरै काहे कौं बेकाम॥ १७॥

शंक न आनै जगत की सद्गुरु शब्द बिचारि।
सुन्दर हरि रस सो पिवै मेल्है सीस उतारि॥ १८॥

सद्गुरु शब्द सुनाइ करि दीया ज्ञान बिचार।
सुन्दर सूर प्रकासिया मेट्या सब अन्धियार॥ १९॥

सद्गुरु कही मरंम की हिरदै बैसी आइ।
रीति सकल ससार की सुन्दर दई बहाइ॥ २०॥

सुन्दर सद्गुरु सो मिल्या जो दुर्ल्लभ जग माहिं।
प्रभू कृपा तें पाइये नहितर पइये नाहिं॥ २१॥

सुन्दर सद्गुरु तौ मिलै जो हरि देहि सुहाग।
मनसा बाचा कर्मना प्रगटै पूरन भाग॥ २२॥

सुन्दर सद्गुरु सारिषा उपकारी नहिं कोइ।
देषै तीनों लोक मैं सरि भरि कछू न होइ॥ २३॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं मुक्त करत नहि बार।
जीव बुद्धि जाती रहै प्रगटै ब्रह्म बिचार॥ २४॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं दूरि करै अज्ञान।
मन बच क्रम यज्ञास ह्वै शब्द सुनैं जो कान॥ २५॥

---

(१६) पूरि=पूरा, पूर्णरूप से।

(१७) जहा तहा=अन्य मतों के ज्ञाताओं वा तीर्थादि मे।

(१८) सीस उतारि=आपा मार कर।

(२१) नहींतर (रा०) नहीं तो।

(२२) सुहाग=सौभाग्य। (२५) यज्ञास=जिज्ञासु, ज्ञान की इच्छावाला पुरुष।

सुन्दर सद्गुरु के मिलै भाजि गई सब भूप।
अमृत पान कराइ कै भरी अधूरी कूप ॥ २६ ॥

सुन्दर सद्गुरु जब मिल्या पडदा दिया उठाइ।
ब्रह्म घौंट मांहिं सकल जग चित्राम दिपाइ ॥ २७ ॥

सुन्दर सद्गुरु सारिपा कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान पजीना पोलिया सदा अटूट भडार ॥ २८ ॥

वेद नृपति की वंदि मैं आइ पर सब लोइ।
निगहवांन पडित भये क्यों करि निकसै कोइ ॥ २९ ॥

सद्गुरु भ्राता नृपति कै वेडी काटै आइ।
निगहवान देषत रहैं सुन्दर देहिं छुडाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द का ब्यौरि बताया भेद।
सुरझाया भ्रम जाल तें उरझाया था वेद ॥ ३१ ॥

वेद मांहि सब भेद हैं जाने बिरला कोइ।
सुन्दर सो सद्गुरु विना निरवारा नहि होइ ॥ ३२ ॥

सुन्दर सद्गुरु यो कह्या शब्द सकल का मूल।
सुरझै एक विचार तें उरझै शब्दस्थूल ॥ ३३ ॥

---

(२६) कूब=कूख, कुक्षि। पेट की कोल।

(२७) घौंट=(रस की) अमृत की घट पिला कर। अथवा ब्रह्म का रंग ऐसा अन्तहकरण में घोट दिया कि ससाररूपी इन्द्रजाल की वास्तविकता—मिथ्यात्व—स्पष्ट प्रत्यक्ष हो गई। ('घी सो घोट रह्यो घट भीतर"—)

(२९) वन्दि=कैद, बन्धन। कर्म उपासना के विधानों में जकड़ बन्द कर दिये गये। आचार्यों की रामदुहाई से उस बन्धन से मुक्त होना कठिन हो गया। उससे गुरुदेव ने खलास किया।

(३१) ब्यौरि=ब्यौरि, ब्यौरे वार, भलीभांति।

(३२) निरवारा=निवेरा, बचाव, छुटकारा।

(३३) शब्दस्थूल=स्थूल (व्यावहारिक, मोटे) ज्ञान से।

सुन्दर ताला शब्द का सद्गुरु षोल्या आइ।
भिन्न २ समुझाय करि दीया अर्थ बताइ॥ ३४॥

गोरषधंधा वेद है वचन कह्यो बहु भाति।
सुन्दर उरझ्यौ जगत सब वर्णाश्रम की पाति॥ ३५॥

क्रिया कर्म बहु विधि कहे वेद वचन विस्तार।
सुन्दर समुझै कौंन विधि उरझि रह्यौ संसार॥ ३६॥

कर्मकाण्ड के वचन सुनि आटी परी अनेक।
सुन्दर सुनै उपासना तब कछु होइ विवेक॥ ३७॥

सुन्दर सद्गुरु जब मिलै पेच बतावै आइ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ कौं आटी दे सुरझाइ॥ ३८॥

अंत वेद के वचन तें उपजै ज्ञान अनूप।
सुन्दर आटी सुरझि कैं तब ह्वै ब्रह्म स्वरूप॥ ३९॥

गोरषधंधा लोह मैं कडी लोह ता माहिं।
सुन्दर जाने ब्रह्म मैं ब्रह्म जगत ह्वै नाहिं॥ ४०॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द तें सारे सब विधि काज।
अपना करि निर्वाहिया बाह गहे की लाज॥ ४१॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द सौं दीया तत्व बताइ।
सोवत जाग्या स्वप्न तें भ्रम सब गया बिलाइ॥ ४२॥

सुन्दर जागे भाग सिर सद्गुरु भये दयाल।
दूरि किया विष मंत्र सौं थकत भया मन व्याल॥ ४३॥

सुन्दर सद्गुरु उमगि कै दीनी मौज अनूप।
जीव दशा तें पलटि करि कीये ज्ञान स्वरूप॥ ४४॥

सुन्दर सद्गुरु श्रम बिना दूरि किया संताप।
शीतलता हृदये भई ब्रह्म विराजै आप॥ ४५॥

---

(३५) गोरखधन्धा=एक खिलोना या उलझन का खेल जिसमें लोहे की खास तरकीब से कड़ियां पुई रहती हैं। उनको सुलझाना कठिन है। (४५) व्याल=सर्प।

परमातम सौं आतमा जुदे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दलाल ॥ ४६ ॥

परमातम अरु आतमा उपज्या यह अविवेक।
सुन्दर भ्रम तें दोइ थे सद्गुरु कीये एक ॥ ४७ ॥

हम जाण्या था आप थे दूरि परै है कोइ।
सुन्दर जब सद्गुरु मिल्या सोह सोह होइ ॥ ४८ ॥

स्वय ब्रह्म सद्गुरु सदा अमी शिष्य बहु सति।
दान दियौ उपदेश जिनि दूरि कियौ भ्रम हति ॥ ४६ ॥

राग द्वेप उपजै नहीं द्वैत भाव को त्याग।
मनसा वाचा कर्मना सुन्दर यहु वैराग ॥ ५० ॥

सदा अपंडित एक रस सोहं सोह होइ।
सुन्दर याही भक्ति है वूझै विरला कोइ ॥ ५१ ॥

अह भाव मिटि जात है तासौ कहिये ज्ञान।
बचन तहां पहुचै नहीं सुन्दर सो विज्ञान ॥ ५२ ॥

पट सत सहस्र इकीस है मनका स्वासो स्वास।
माला फेरै राति दिन सोहं सुन्दरदास ॥ ५३ ॥

ज्ञान तिलक सोहै सदा भक्ति दई गुरु छाप।
व्यापक विष्णु उपासना सुन्दर अजपा जाप ॥ ५४ ॥

सुन्दर सूता जीव है जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परै सद्गुरु कह्या अनूप ॥ ५५ ॥

मन को सर्प कहा है। इसका विषयरूपी विष गुरु के दिए ज्ञानरूपी गारुड़ी मन्त्र से उतर गया।

(५३) मनका=माला के मणिये। प्रत्येक स्वास एक मणिका (मणिया)। ६७०२१ स्वास दिन रात में लेते हैं। उनको माला के मणिके समक्ष प्रत्येक में सोऽहं का अजपा जाप जपै।

सुन्दर समुझै एक है अन समझै कौ द्वीत।
उभै रहित सद्गुरु कहै सो है वचनातीत ॥ ५६ ॥

बोलत बोलत चुप भया देषत मूदे नैन।
सुन्दर पावै एक को यहु सद्गुरु की सैन ॥ ५७ ॥

मूरष पावै अर्थ कौं पंडित पावै नाहिं।
सुन्दर उलटी बात यह है सद्गुरु के माहि ॥ ५८ ॥

जो कोउ विद्या देत है सो विद्या गुरु होइ।
जीव ब्रह्म मेला करै सुन्दर सद्गुरु सोइ ॥ ५९ ॥

गुरु शिष्य हि उपदेश दे यह गुरु शिप व्यवहार।
शब्द सुनत संसय मिटै सुन्दर सद्गुरु सार ॥ ६० ॥

सुंदर गुरु सु रसाइनी बहु बिधि करय उपाय।
सद्गुरु पारस परसतें लोह हेम ह्वै जाय ॥ ६१ ॥

सुन्दर मसकति दार सौं गुरु मथि काढै आगि।
सद्गुरु चकमक ठोकतें तुरत उठै कफ जागि ॥ ६२ ॥

सुंदर गुरु जल पोदि कें नित उठि सींचै षेत।
सद्गुरु वरषै इन्द्र ज्यौं पलक माहिं सरसेत ॥ ६३ ॥

---

(५६) वचनातीत=अनिर्वचनीय, जो कहने मे नहीं आ सके। द्वीत=द्वैत, भेदज्ञान, जीव ब्रह्म की भिन्नता।

(५८) मूरष=संसार से विमुख। पण्डित=शब्दज्ञान मे तो प्रवीण परन्तु दिव्यज्ञान से रहित। (विपर्यय है)

(६१) लोह, हेम=द्वैतभावरूपी जीव लोह है सो गुरु पारस से मिलकर स्वर्ण हो जाता है अद्वैत प्राप्त होता है।

(६२) मसकति=मशक्कत, उपाय। दार=दारु, काठ। अरणी (से आग उत्पन्न)। कफ=सूत का लच्छा जो आग से जल उठता है।

(६३) सरसेत=सर तालाब पानी से सराबोर हो जाता है।

सुदर गुरु दीपक किये घर मैं को तम जाइ।
सद्गुरु सूर प्रकास तें सबै अधेर बिलाइ ॥ ६४ ॥

सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै सनमुख देषै दृष्टि।
सद्गुरु हृदय उमगि करि करै अमी को वृष्टि ॥ ६५ ॥

सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै शब्द ग्रहै मन लाइ।
तासौं सद्गुरु तुरत ही ज्ञान कहै संमुझाइ ॥ ६६ ॥

सुन्दर शिष जिज्ञास है निश्चय आवै नाहिं।
तौ सद्गुरु कहिवौ करौ ज्ञान न उपजै माहिं ॥ ६७ ॥

सुन्दर शिष जिज्ञास है परि जो बुद्धि न होइ।
तौ सद्गुरु क्यौं पचिमरौ शब्द ग्रहै नहिं कोइ ॥ ६८ ॥

जन सुन्दर निश्चय विना क्यौं करि उपजै ज्ञान।
सद्गुरु दोष न दीजिये शिष्य मूढ मति जान ॥ ६९ ॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है तिनकौ आशय गूढ।
जो कृत देषै देह के सो क्यौं पावै मूढ ॥ ७० ॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है वोलै अमृत वैंन।
सूरय कौ देषै नहीं मूदि रहै जो नैंन ॥ ७१ ॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै ब्रह्म विचार।
मूरष औगुन काढिलै देषि देह व्यवहार ॥ ७२ ॥

सद्गुरु सुद्ध स्वरूप है शिष देषै गुन देह।
सुन्दर कारय क्यौ सरै कैसैं वधै सनेह ॥ ७३ ॥

सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय परि शिष कीचम दृष्टि।
सूधी वोर न देषई देषै दर्पन पृष्टि ॥ ७४ ॥

सुन्दर सद्गुरु क्यौ द्रसै शिष की दृष्टि मलीन।
देषत हैं सब देह कृत षान पान सौ लीन ॥ ७५ ॥

---

(६४) घर मैं को=घर के अन्दर का।

(७४) पिरि=परन्तु। (७५) द्रसै=दृष्टि में आवै, प्रकाशित हो, प्रगट करै।

सुन्दर सूक्ष्म दृष्टि है तब सद्गुरु दरसाइ।
देषै देहस्थूल कौ यौं शिष गोता पाइ॥ ७६॥

सद्गुरु ही तें पाइये राम मिलन की घाट।
सुन्दर सब कौ कहत है फोडा बिना न हाट॥ ७७॥

सद्गुरु जाउ कृपा करै सो जानै सब भेव।
सुन्दर क्यों करि पाइये एक बिना गुरुदेव॥ ७८॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै ह्वै प्रकास।
वे अलिप्त है देह सौं ज्यौं अलिप्त आकास॥ ७९॥

दूध माहि ज्यौं जल मिलै रंगनि मैं ज्यौं नीर।
सद्गुरु हंस जुदा करै सुन्दर पाणी षीर॥ ८०॥

सुन्दर सद्गुरु कै मिलैं संसै हूवा छिन्न।
यौं निश्चय करि जानिया देह आतमा भिन्न॥ ८१॥

सुन्दर काढै सोधि करि सद्गुरु सोनी होइ।
शिष सुवर्ण निर्मल करै टाका रहै न कोइ॥ ८२॥

सुन्दर सद्गुरु बैद ज्यौं पर उपकार करेइ।
जैसौ ही रोगी मिलै तैसी औषध देइ॥ ८३॥

सद्गुरु देषै नाडि कौं दूरि करै सब व्याधि।
सुन्दर ताकौं छोडि दे जाकै रोग असाधि॥ ८४॥

---

(७७) फोडा=कौड़ी, धन, पैसा, पूंजी।

(८१) देह आतमा भिन्न=देह जड़ है, आत्मा चेतन है। आत्म अनात्म का विवेक प्रधान साधन है।

(८२) टाका=मैल का भाग, खोटा मिलाव।

(८३) करेइ=आरम्भ करता है। (यह क्रिया विलक्षण प्रयुक्त है) (रा० रूप=अर्थ करै ही करैं)।

(८४) नाडि=नाड़ी, नब्ज।

सद्गुरु साह गजेन्द्र है सुन्दर वस्तु अपार।
जोई आवै लैंन कौ ताकौं तुरत तयार ॥ ८५ ॥

सदगुरु ही तें अकलि ह्वै सद्गुरु ही तें वुद्धि।
सुन्दर सद्गुरु तें समुझि सद्गुरु तें सब सुद्धि ॥ ८६ ॥

सद्गुरु ही तें ज्ञान ह्वै सदगुरु ही तें ध्यान।
सुन्दर सद्गुरु तें लगै योग समाधि निदान ॥ ८७ ॥

सद्गुरु महिमा कहन कौं रसना हुई न कोरि।
सुन्दर क्यो करि बरनिये जो बरनिये सु थोरि ॥ ८८ ॥

सद्गुरु महिमा अगम अति क्यौं करि कहौं बनाइ।
सुन्दर मुख तैं सरस्वती कहत कहत थकि जाइ ॥८९॥

नभ मनि चिंता मनि कहैं हीरा मनि मनि लाल।
सकल सिरोमनि मुकुटमनि सद्गुरु प्रकट दयाल ॥ ९० ॥

सुर तरु पारस कामधुक् कहियत नाव जिहाज।
सुन्दर इनतें डूबिये सद्गुरु सारै काज ॥ ९१ ॥

नां कछु हुवा न होइगा सद्गुरु सम सिरमौर।
सुन्दर देष्या सोधि सब तोलें तुलत न और ॥ ९२ ॥

सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई भजिराम।
सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम माहि विश्राम ॥ ९३ ॥

सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय नारायणमय ध्यान।
ईश्वरमय जगदीशमय गोविन्दमय गलतान ॥ ९४ ॥

---

(८६) सुद्धि=सुध बुध (ज्ञान)।

(८८) न कोरि=(यथा—"नई, न कोर") वा कोटि जिव्हा भी समर्थ नहीं। वा कोरि=कोई (भी)।

(९०) नभ मनि=सूर्य।

(९२) न कछु हुआ न होइगा=सद्गुरु समान अन्य कोई न तो हुआ न होगा। तोलें=तौलने से।

सुन्दर सद्गुरु ज्ञानमय चेतनिमय चिद्रूप।
निर्गुन नित्यानन्दमय तन्मय तत्व अनूप॥ ६५॥

सुन्दर सद्गुरु सूरमय उदित भये हैं ऐंन।
मनसा वाचा कर्मना पोलत सब के नैंन॥ ६६॥

सुदर सद्गुरु शशिमयी सुधा श्रवै मुख द्वार।
पोष देत हैं सबनि कौं प्रगटे पर उपकार॥ ६७॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत हैं घट माहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब कौं लिपै छिपै कछु नाहिं॥ ६८॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न है दीसत घट मैं बास।
घट सौं सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास॥ ६९॥

सुन्दर सद्गुरु करि कृपा दीया दीरघ दांन।
हृदै हमारै आइया निश्चय अद्वय ज्ञांन॥ १००॥

सुन्दर सद्गुरु आप तें अति ही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब जीव ब्रह्म नहिं भिन्न॥ १०१॥

सुन्दर सद्गुरु हैं सही सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर वचन सुनाइ कैं सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥ १०२॥

॥ इति गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

---

(९७) पर उपकार=परोपकार के अर्थ।

(१०१) आपतें=अनायास ही। अपनी मौज ही से। मुझ शिष्य ने कोई प्रार्थना या सेवा भी नहीं की। ऐसे उदार हैं।

॥ अथ सुमरन को अंग ॥ २ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यों कह्या सकल सिरोमनि नाम ।
ताकौ निस दिन सुमरिये सुखसागर सुखधाम ॥ १ ॥

राम नाम श्रवनौ सुन्यौ रसना कियौ उच्चार ।
सुन्दर पीछै सुरति सौं हृदय प्रगट रकार ॥ २ ॥

नाव निरंतर लीजिये अन्तर परै न कोइ ।
सुन्दर सुमरन सुरति सौं अंतर हरि हरि होई ॥ ३ ॥

हृदये मैं हरि सुमरिये अन्तरजामी राइ ।
सुन्दर नीके जत्न सौं अपनौ वित्त छिपाइ ॥ ४ ॥

काहू कौ न दिपाइये राम नाम सी वस्त ।
सुन्दर वहुत कलाप करि आई तेरै हस्त ॥ ५ ॥

रंक हाथ हीरा छड्यौ ताकौ मोल न तोल ।
घर घर डोलै वेचतौ सुंदर याही भोल ॥ ६ ॥

राम नाम रटवौ करै निस दिन सुरति लगाइ ।
सुन्दर चालै गाव जिहिं तहा पहूचै जाइ ॥ ७ ॥

राम नाम सतनि धर्यौ राम मिलन के काज ।
सुन्दर पल मैं पार ह्वै वैठै नाम जिहाज ॥ ८ ॥

राम नाम तिहुं लोक मैं भवसागर की नाव ।
सद्गुरु पेवट बाह दे सुंदर वेगो आव ॥ ९ ॥

[अङ्ग २ रा] (२) रङ्कार=रामनाम की निरन्तर ध्वनि । राम मन्त्र का अजपाजाप वा रटना ।

(६) छड्यो=चढा । आया, प्राप्त हुआ । भोल=भोलप, भूल ।

राम नाम बिन लैन कौं और वस्तु कहि कौंन।
सुंदर जप तप दान व्रत लागे पारे लौंन ॥ १० ॥
राम नाम मिश्री पियें दूरि जाहिं सब रोग।
सुदर औषध कटुक सब जप तप साधन जोग ॥ ११ ॥
नाम लिया तिन सब किया सुदर जप तप नेम।
तीरथ अटन सनान व्रत तुला बैठि दत हेम ॥ १२ ॥
नाम बराबर तोलिया तुलै न कोऊ धर्म।
सुदर ऐसें नाम का लहै न मूरष मर्म ॥ १३ ॥
राम भजन परिश्रम विना करिये सहज सुभाइ।
सुन्दर कष्ट कलेस तजि मन की प्रीति लगाइ ॥ १४ ॥
सब सुख हरि कैं भजन में कष्ट कलेस न कोइ।
सुदर देषैं कष्ट कौं जगत दुखी तब होइ ॥ १५ ॥
सुदर सबही संत मिलि सार लियो हरि नाम।
तक्र तजी घृत काढि कै और किया किहिं काम ॥ १६ ॥
राम नाम पीयूष तजि विष पीवैं मति हीन।
सुदर डोलैं भटकतें जन जन आगे दीन ॥ १७ ॥
राम नाम कौं छाडि कै और भजें ते मूढ।
सुन्दर दुख पावैं सदा जन्म जन्म वै हूढ ॥ १८ ॥
राम नाम हीरा तजै कंकर पकरै हाथ।
सुदर कबहु न कीजिये उन मूरष कौ साथ ॥ १९ ॥
राम नाम भोजन करै राम नाम जल पान।
राम नाम सौं मिलि रहै सुंदर राम समान ॥ २० ॥
राम नाम सोवत कहै जागैं हरि हरि होइ।
सुदर बोलत ब्रह्म मुख ब्रह्म सरीखा सोइ ॥ २१ ॥

---

(१२) दत=दान। (१८) हूढ=हूड,—हठी, उजड्ड, अनाड़ी आदमी।
(२१) ब्रह्म सरीषा होइ=रामनाम के निरन्तर जप से वैसा ही हो जाय।

बैठत बनमाली कहै ऊठत अविगति नाथ।
चलतें चिंतामनि जपैं सुन्दर सुमिरन साथ ॥ २२ ॥
नारायण सौं नेह अति सन्मुख सिरजनहार।
परब्रह्म सौं प्रीतडी सुदर सुमिरन सार ॥ २३ ॥
राम नाम सौं रत भया हर्षत हरि कै नाम।
गलित भया गोविंद सौ सुदर आठौं याम ॥ २४ ॥
लीन भया विचरत फिरै छीन भया गुन देह।
हीन भई सब कल्पना सुदर सुमिरन येह ॥ २५ ॥
भजन करत भय भागिया सुमिरन भागा सोच।
जाप करत जौंरा टल्या सुदर साची लोच ॥ २६ ॥
सुदर महिमा नाम की क्यौं करि बरनी जाइ।
सेस सहस मुख कहत हैं सो भी पार न पाइ ॥ २७ ॥
सुदर महिमा नाम की कहत न आवै अंत।
शिव सनकादिक मुनि जना थकित भये सब संत ॥ २८ ॥
राम भजन जाकै हदै ताकै टोटा कौन।
मूरतिवती लक्ष्मी सुन्दर वाकै भौन ॥ २९ ॥

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"—ब्रह्म का जाननेवाला ब्रह्मरुप हो जाता है। आगे साषी ४३ तथा ५६ को देखें। दादूवाणी। सुमिरण साषी ५०—"जीव ब्रह्म की लार"।

(२२) (२३) (२४) इनमें आद्यक्षरों से नामों के यमक दिये हैं।

(२५) सुमिरन का रहस्य कहा है। सत्यनिष्ठा, अन्तःकरण की तदाकारवृत्ति—"लौ" लगी रहै।

(२६) जौंरा=भयानक आक्रमण, जैसे मस्त भैंस वा भैंसा। लोच=कोमलावृत्ति, सच्ची चतुराई।

(२९) मूरतिवन्ती लक्ष्मी=साक्षात् लक्ष्मी वा सर्व ऋद्धि-सिद्धिवाला वैभव।

राम नाम जाकै हृदै सुन्दर वंदहि देव।
पहल डिगावै आइ कै पीछै लागै सेव॥ ३०॥

राम नाम जाकै हृदै वाकै कौंन अनाथ।
अष्ट सिद्धि नव निधि सदा सुन्दर वाकै साथ॥ ३१॥

राम नाम जाकै हृदै जगत पुसी सब होत।
सुन्दर निंदा करत जे तेई करैं डंडोत॥ ३२॥

राम नाम जाकै हृदै ताहि नवैं सब कोइ।
ज्यों राजा की त्रास तें सुन्दर अति डर होइ॥ ३३॥

सुन्दर भजिये राम कौं तजिये माया मोह।
पारस कै परसे विना दिन दिन छीजै लोह॥ ३४॥

सुन्दर हरि कै भजन तें संत भये सब पार।
भवसागर नवका विना बूडत है संसार॥ ३५॥

सुन्दर हरि कै भजन तें निर्मल अंतहकर्ण।
सबही कौं अधिकार है उधरै चारौं वर्ण॥ ३६॥

सुन्दर भजन सवै करहु नारायण निरपेछ।
प्रीति परम गुरु लेत है अतिज हो कि मलेछ॥ ३७॥

प्रीति सहित जे हरि भजें तब हरि होंहि प्रसन्न।
सुन्दर स्वाद न प्रीति विन भूप विना ज्यों अन्न॥ ३८॥

सुन्दर हरि प्यारा लग्या सोवत जाग्या जन्न।
प्रीति तजी संसार सौं न्यारा कीया मन्न॥ ३९॥

राम भजन तें रामजी मुदित होत मन माहिं।
सुन्दर जाकै प्रीति अति ताकौं छाडै नाहिं॥ ४०॥

---

(३०) पहल डिगावैं=परीक्षा करने को प्रथम उस भक्त को किंचित विघ्न देते हैं।

(३४) लोह—यहां काया से अभिप्राय है। पारस—रामनाम है।

राम भजन राम हि मिलै तामैं फेर न सार।
सुन्दर भजै सनेह सौं वाकौ मिलत न वार॥ ४१ ॥

एक भजन तन सौ करै एक भजन मन होइ।
सुन्दर तन मन कै परै भजन अखडित सोइ॥ ४२ ॥

भजत भजत ह्वै जात है जाहि भजै सो रूप।
फेरि भजन की रुचि रहै सुन्दर भजन अनूप॥ ४३ ॥

सुन्दर भजि भगवंत कौं उधरे सत अनेक।
सही कसौटी सीस पर तजी न अपनी टेक॥ ४४ ॥

भजन किये भगवत वसि डोली जन की लार।
सुन्दर जैसैं गाय कौ बच्छा सौ अति प्यार॥ ४५ ॥

सुन्दर जन हरि कौं भजै हरिजन कौ आधीन।
पुत्र न जीवै मात विन माता सुत सौ लीन॥ ४६ ॥

राम नाम शकर कह्यौ गौरी कौ उपदेस।
सुन्दर ताही राम कौं सदा जपतु है सेस॥ ४७ ॥

राम नाम नारद कह्यौ सोई ध्रुव कै ध्यान।
प्रगट भये प्रह्लाद पुनि सुन्दर भजि भगवान॥ ४८ ॥

राम नाम रकै भज्यौ भज्यौ त्रिलोचन राम।
नामदेव भजि राम कौं सुन्दर सारे काम॥ ४९ ॥

राम हि भज्यौ कबीरजी राम भज्यौ रैदास।
सोझा पीपा राम भजि सुन्दर हृदय प्रकास॥ ५० ॥

सद्गुरु दादू राम भजि सदा रहै लैलीन।
सुन्दर याही समझि कैं राम भजन हित कीन॥ ५१ ॥

---

(४५) डोली=फिरे, साथ रहे।

(४९) रके=राका वाका, भक्त हुए हैं। त्रिलोचन=भक्त हुआ है। नामदेव=प्रसिद्ध भक्त। (५०) सोझा, पीपा=प्रसिद्ध भक्त हुए हैं।

सुन्दर सुरति समेटि कैं सुमिरन सौं लैलीन।
मन वच क्रम करि होत है हरि ताके आधीन ॥ ५२ ॥

सुमिरन तें संसय मिटै सुमिरन में आनन्द।
सुन्दर सुमिरन के किये भागि जाहिं दुख द्वंद ॥ ५३ ॥

सुमिरन तें श्रीपति मिलै सुमिरन तें सुखसार।
सुमिरन तें परिश्रम विना सुन्दर उतरै पार ॥ ५४ ॥

सुमिरन ही में शील है सुमिरन में संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष ॥ ५५ ॥

जाही कौ सुमिरन करै ह्वै ताही कौ रूप।
सुमिरन कीयें ब्रह्म कै सुन्दर ह्वै चिद्रूप ॥ ५६ ॥

॥ इति सुमिरन कौ अंग ॥ २ ॥

॥ अथ विरह कौ अंग ॥ ३ ॥

दोहा

मारग जोवै विरहनी चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जक नहीं कल न परत निस भोर ॥ १ ॥

सुन्दर विरहनि अति दुखी पीव मिलन की चाह।
निस दिन बैठी अनमनो नैननि नीर प्रवाह ॥ २ ॥

---

(५५) जीवन—मोष=जीवन मुक्ति।

[३ रा अङ्ग]—(१) निस भोर=दिन रात (भोर=प्रातःकाल, ब्राह्म्य मुहूर्त्त, दिन का आरम्भ)

(२) अनमनी=उनमनी, उदास।

सुन्दर पिय कै कारणैं तलफै वारह मास।
निस दिन लै लागी रहै चातक की सी प्यास ॥ ३ ॥

सुन्दर व्याकुल विरहनी दीन भई बिललाइ।
दत तिर्णा लीयें कहै रे पिय आप दिपाइ ॥ ४ ॥

विरहै मारी वान भरि भई और की और।
वैद विथा पावै नहीं सुन्दर लगी सु ठौर ॥ ५ ॥

सुन्दर विरहनि मरि रही कहू न पइये जीव।
अमृत पान कराइ कै फेरि जिवावै पीव ॥ ६ ॥

सुन्दर नख सिख पर जरै छिन छिन दाभै देह।
विरह अग्नि तवही बुझै जव वरषै पिय मेह ॥ ७ ॥

विरह वघूरा लै गयौ चित्त हि कहू उडाइ।
सुन्दर आवै ठौर तव पीय मिलै जव आइ ॥ ८ ॥

सुन्दर विरहनि दूबरी विरह देत तन त्रास।
अजा रहै ढिग सिंह कै कहौ चढै क्यौ मास ॥ ९ ॥

सुन्दर बिरहनि दुखभरी कहै दुख भरै वैन।
पिय कौ मारग देष तें असुवा आवत नैंन ॥ १० ॥

सुन्दर विरहनि कै निकट आई विरहनि कोइ।
दुखिया ही दुखिया मिली दहुवनि दीनौ रोइ ॥ ११ ॥

---

(४) दन्त तिर्णा=दाँतों में तिनका लेकर, अति दीन होकर।

(५) वान भरि=कमान में तीर लगाकर, खैंच कर तीर मारा। लगी सु ठौर= वह चोट (वाण की) ऐसी (सुन्दर, उत्तम) ठोर पर लगी है कि इलाजी से उसका इलाज नहीं हो सकता है। यह दर्द वह दर्द है जिसकी दवा ही नहीं। मर्ज वढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

(७) पर=पख (यहा विरहनि को पक्षी माना है जो पिया के लिए उड़ती है)। अथवा, पर=प्र, बहुत।

सुन्दर विरहनि वंदि मैं विरहै दीनी आइ।
हाथ हथकरी तौक गलि क्यौं करि निकस्यौ जाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर विरहनि वंदि मैं निस दिन करै पुकार।
पीय रह्यौ कहुं वैसि कै बंदि छुडावनहार ॥ १३ ॥

विरहा विरहनि सौं कहत सुन्दर अति अरि भाव।
जब लग तोहि न पिय मिलै तब लग घालौं घाव ॥ १४ ॥

विरहा दुखदाई लग्यौ मारै ऐंठि मरोरि।
सुंदर विरहनि क्यौं जिवै सब तन लियौ निचोरि ॥ १५ ॥

सुन्दर विरहनि कौं विरह भूत लग्यौ है आइ।
पीय विना उतरै नहीं सब जग पचि पचि जाइ ॥ १६ ॥

निस दिन विरहा भूत लगि विरहनि मारी गोडि।
सुन्दर पीय जबें मिलै तब ही भागै छोडि ॥ १७ ॥

सुन्दर विरहनि अध जरी दुःख कहै मुख रोइ।
जरि बरि कें भस्मी भई धुवा न निकसै कोइ ॥ १८ ॥

सुन्दर काची विरहनी मुख तें करै पुकार।
मरि माहैं मठ ह्वै रहै बोलै नहीं लगार ॥ १९ ॥

ज्यौं ठगमूरी पाइ कै मुखहि न बोलै बैंन।
टुगर टुगर देष्या करै सुन्दर विरहा ऐंन ॥ २० ॥

---

(१२) बन्दि=कैद।

(१४) अरि भाव=शत्रु के भाव से।

(१७) गोडि=गोड़ियों से खूद कर (मारी) गोड़ा=घुटना पांवका।

(१९) मरि माहैं मठ ह्वै रहै=मर कर मठ होना मुहाविरा है। स्तब्ध वा सुन्न हो जाना।

(२०) टुगर, टुगर=टम टम, निमेष मारता हुआ। देष्या=देखा करै, देखता रहै।

हाकी वाकी रहि गई ना कछु पिवै न पाइ ।
सुन्दर विरहनि वह सही चित्र लिपी रहि जाइ ॥ २१ ॥

राम सनेही, तजि गये प्रान हमारा लेइ ।
सुन्दर विरहनि वापुरो किसहि सदेसा देइ ॥ २२ ॥

भूप पियास न नींदडी विरहनि अति वेहाल ।
सुन्दर प्यारे पीव विन क्यों करि निकसै साल ॥२३ ॥

वहुतक दिन बिछुरें भये प्रीतम प्रान अधार ।
सुदर विरहनि दरद सौं निस दिन करै पुकार ॥ २४ ॥

सुन्दर तलफे विरहनी विलक तुम्हारे नेह ।
नैंन श्रवै घन नीर ज्यों सूकि गई सव देह ॥ २५ ॥

सव कोई रलिया करै आयौ सरस वसत ।
सुन्दर विरहनि अनमनी जाकौ घर नहिं कत ॥ २६ ॥

घर घर मगल होत है वाजहि ताल मृदग ।
सुनि सुनि विरहनि पर जरै सुन्दर नख सिख अग ॥२७॥

अपने अपने कत सौ सव मिलि पेलहिं फाग ।
सुन्दर विरहनि देपि करि डसी विरह के नाग ॥ २८ ॥

चोवा चन्दन कुमकुमा उडत अवीर गुलाल ।
सुन्दर विरहनि के हदै उठत अग्नि की झाल ॥ २९ ॥

पीय लुभाना सुनि सपा काहू सो परदस ।
सुन्दर विरहनि यौं कहै आया नहीं सन्देस ॥ ३० ॥

जा दिन तें मोहि तजि गये ता दिन तें जक नांहि ।
सुन्दर निस दिन विरह की हूक उठत उर मांहि ॥३१ ॥

---

(२३) साल=कसक, (साल निकलना=खटका, कसक मिट जाना) ।
(२५) विलक=रह रह कर, फूट फूट कर रावै ।
(२६) रलिया=रग रलियां, आनन्द भर २ कर मौज करना, ।
(३०) परदेस=परदेश में ।(३१)जक=चैन । हूक=ज्वाला का लूक, भवूका, हूला ।

बार लगाई बल्लभा विरहनि फिरै उदास।
सुन्दर गई बसंत ऋतु अब आयौ चोमास॥ ३२॥

दिस दिस तें बादल उठे बोलत चातक मोर।
सुन्दर चमकित विरहनी चित्त रहै नहिं ठौर॥ ३३॥

दामिनि चमकै चहुं दिसा बून्द लगत है बान।
सुन्दर व्याकुल विरहनी रहै क निकसै प्रान॥ ३४॥

एक अन्धेरी रैनि है दूजै सूनौ भौंन।
सुन्दर रटै पपीहरा विरहनि जीवै कौंन॥ ३५॥

पावस नृप चढि आइयौ साजि कटक मम गेह।
सुन्दर विरहनि थरसली कंपि उठी सब देह॥ ३६॥

चलें हवाई दामिनी बाजै गरज निसांन।
सुदर विरहनि क्यौं जिवै घर नहिं कंत सुजान॥ ३७॥

बादल हस्ती देषिये सुन्दर पवन तुरंग।
दादुर मोर पपीहरा पाइक लीयें सङ्ग॥ ३८॥

घेर्‌यौ गढ दश हूं दिशा विरहा अग्नि लगाइ।
सुन्दर ऐसै सङ्कट हि जौ पिय करै सहाइ॥ ३९॥

साई तू ही तू करौं क्यों ही दरस दिषाव।
सुन्दर विरहनि यों कहै ज्यौं ही त्यौं ही आव॥ ४०॥

पीय पीय रसना रटै नैंना तलफै तोहि।
सुन्दर विरहनि अति दुखी हाइ हाइ मिलि मोहि॥ ४१॥

जोबन मेरा जात है ज्यौं अजुरी का नीर।
सुन्दर विरहनि बापुरी क्यौं करि बन्धै धीर॥ ४२॥

---

(३६) थरसली=हिल गई, कपकपा गई।

(३८) पाइक=पैदल, नोकर चाकर।

(४२) बंधै=धारै, पकडै। धीर=धैर्य, धीरज।

जिस विधि पीव रिझाइये सो विध जानी नाहिं।
जोवन जाइ उतावला सुन्दर यहु दुख माहिं ॥ ४३ ॥

किये सिंगार अनेक मैं नख सिख भूषन साजि।
सुन्दर पिय रीझै नहीं तौ सब कौनैं काजि ॥ ४४ ॥

सुन्दर विरहनि बहु तपी मिहरि कछूइक लेहु।
अवधि गई सब बीति कैं अब तौ दरसन देहु ॥ ४५ ॥

सुन्दर विरहनि यौं कहै जिनि तरसावौ मोहि।
प्रान हमारे जात हैं टेरि कहतु हौ तोहि ॥ ४६ ॥

ढोलन मेरा भावता वेगि मिलहु मुझ आइ।
सुन्दर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाइ ॥४७॥

लालन मेरा लाडिला रूप बहुत तुझ माँहि।
सुन्दर रावै नैंन मैं पकल उघारै नाहिं ॥ ४८ ॥

सुन्दर विगसै विरहनी मन मैं भया उछाह।
फूल विछाऊ सेजरी आज पधारें नाह ॥ ४९ ॥

सुन्या सन्देसा पीव का मन मैं भया अनंद।
सुन्दर पाया परम सुख भाजि गया दुख दंद ॥ ५० ॥

दया करहु अब रामजी आवौ मेरै भौन।
सुन्दर भागै दुख सब विरह जाइ करि गौन ॥ ५१ ॥

अब तुम प्रगटहु रामजी हृदै हमारै आइ।
सुन्दर सुख सन्तोष ह्वै आनँद अंग न माइ ॥ ५२ ॥

॥ इति विरह कौ अंग ॥ ३ ॥

---

(४३) विध=विधि। (४५) मिहरि=दया। (४७) ढोलन=ढोला, प्यारा। "ढोला मारू"में ढोला से प्यारा पिया ही लिया जाता है, यद्यपि ढोल नाम विशेष है। जैसे लाल से लालन। (४९) विगसै=विकसै, आनन्द मगन होकर (काकड़ी की तरह फूल कर फूटै)। (५१) गौंन=गवन, गमन।

॥ अथ वंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

दोहा

सुन्दर अंदर पैसि करि दिल मौं गौता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये साईं सिरजनहार ॥ १ ॥

सुन्दर दिल मौं पैसि करि करै वंदगी षूब।
तौ दिल मौं दीदार है दूरि नहीं महबूब ॥ २ ॥

जिस वंदे का पाक दिल सो वंदा माकूल।
सुन्दर उसकी वंदगी साईं करै कबूल ॥ ३ ॥

वंदा साईं का भया साईं वंदे पास।
सुन्दर दोऊ मिलि रहे ज्यौं फुल हु मैं वास ॥ ४ ॥

हर दम हर दम हक तू लेइ धनी का नाव।
सुन्दर ऐसी वंदगी पहुचावै उस ठाव ॥ ५ ॥

वंदा आया वंदगी सुनि साईं का नाव।
सुन्दर पोज न पाइये ना कहुं ठौर न ठाव ॥ ६ ॥

उलटि करै जो वदगी हर दम अरु हर रोज।
तौ दिल ही मैं पाइये सुन्दर उसका पोज ॥ ७ ॥

सुन्दर वदा चुस्त है जौ पैठे दिल माहिं।
तौ पावे उस ठौर ही वाहिर पावै नाहिं ॥ ८ ॥

सुन्दर निपट नजीक है उठै जहा थी स्वास।
वहा हि गोता मारि तू साईं तेरै पास ॥ ९ ॥

[अङ्ग ४] (३) माकूल=(अ०) योग्य। कबूल=स्वीकार, मंजूर।
(६) आया वन्दगी=वन्दगी मे लगा, प्रयुक्त हुआ।
(७) उलटि करै=बाहर की वन्दगी (सेवा, अर्चना, उपासना) न करके अन्दर हृदय मे ध्यान धरै। (९) जहा थी=जहां से।

सखुन हमारा मांनिये मत षोजै कहु दूर।
सांईं सीने बीच है सुन्दर सदा हजूर ॥ १० ॥

सुन्दर भूल्या क्यौं फिरै साईं है तुझ माहिं।
एक मेक ह्वै मिलि रह्या दूजा कोई नाहिं ॥ ११ ॥

सुन्दर तुझ ही माहिं है जो तेरा महबूब।
उस षूबी कौ जानि तू जिस षूबी तें षूब ॥ १२ ॥

जौ बंदा हाजिर पड़ा करै धणी का काम।
सांईं कौ भूलै नहीं सुन्दर आठौ याम ॥ १३ ॥

जौ यह उसका ह्वै रहै तौ वह इसका होय।
सुन्दर बातौं ना मिलै जब लग आपन षोय ॥ १४ ॥

सुन्दर बंदा बंदगी करै दिवस अरु रात।
सो बंदा कहिये सही और बात की बात ॥ १५ ॥

करै बंदगी बहुत करि आपा आणै नांहिं।
सुन्दर करी न बंदगी यौं जाणै दिल मांहिं ॥ १६ ॥

बंदा आवै हुकम सौं हुकम करै तहां जाइ।
सुन्दर उजर करै नहीं रहिये रजा षुदाइ ॥ १७ ॥

साईं बंदे कौ कसै करै बहुत बेहाल।
दिल मैं कछु आंणै नहीं सुन्दर रहै षुस्याल ॥ १८ ॥

सुन्दर बंदा बंदगी सदा रहै इकतार।
दिल मैं और न दूसरा सांईं सेती प्यार ॥ १९ ॥

मुख सेती बंदा कहै दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सौ पावै नहीं सांईं की दरगाह ॥ २० ॥

---

(१४) आप न=आप (अपनपा, अहंकार) न (नहीं)।

(१५) बात की बात=कहने मात्र, कोरी बात।

(१७) हुकम=हुक्म, मर्जी (ईश्वर की)

सुन्दर ज्यौं मुख सौं कहै त्यौं ही दिल मैं आप।
सोई बंदा सरषरू साईं रीझै आप ॥ २१ ॥

कै साईं की बंदगी कै साईं का ध्यांन।
सुन्दर बंदा क्यौं छिपै बंदे सकल जिहांन ॥ २२ ॥

बहुत छिपावे आप कौं मुझे न जांणै कोइ।
सुन्दर छाना क्यौं रहै जग मैं जाहर होइ ॥ २३ ॥

औरत सोई सेज पर बैठा षसम हजूर।
सुन्दर जान्यां ष्वाब मौं षसम गया कहुं दूर ॥ २४ ॥

तलब करै बहु मिलन की कब मिलसी मुझ आइ।
सुन्दर ऐसे ष्वाब मौं तलफि तलफि जिय जाइ ॥ २५ ॥

कल न परत पल एक हूं छाडै सास उसास।
सुन्दर जागी ष्वाब सौं देषै तौ पिय पास ॥ २६ ॥

मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ ॥ २७ ॥

सुन्दर दिल की सेज पर औरत है अरवाह।
इस कौं जाग्या चाहिये साहिब बे परवाह ॥ २८ ॥

जौ जागै तौ पिय लहै सोयें लहिये नांहि।
सुन्दर करिये बंदगी तौ जाग्या दिल मांहि ॥ २९ ॥

---

(२१) सरषरू=सुर्खरू (फा०) आबदार चेहरेवाला, प्रसन्न, इज्जतदार (उत्तम काम की खुशी से)।

(२२) बन्दे=बन्दना करै, नवै।

(२४) ष्वाब (फा०)=स्वप्न, सपना। षसम=(अ०) स्वामी, पीव।

(२५) तलब करै=ढूंढै। (मिलन की=मिलने के लिए)।

जागि करै जो बदगी सदा हजूरी होइ।
सुन्दर कबहु न बीछुरै साहिब सेवग दोइ ॥ ३० ॥

॥ इति बंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

॥ अथ पतिव्रत कौ अंग ॥ ५ ॥

दोहा

सुन्दर हरि आराध करि है देवनि कौ देव।
भूलि न और मनाइये सबै भींति कै लेव ॥ १ ॥

सुन्दर और कछू नहीं एक बिना भगवंत।
तासौं पतिव्रत राषिये टेरि कहैं सब संत ॥ २ ॥

सुन्दर और न ध्याइये एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राषिये मन क्रम बिसवा बीस ॥ ३ ॥

सुन्दर कछु न सराहिये एक बिना भगवान।
लच्छन लागै तुरत ही सबहिं सराहै आन ॥ ४ ॥

सुन्दर और सराहतें पतिव्रत लागै षोट।
बालु सरायौ रेनुका बधी न जल की पोट ॥ ५ ।

---

(३०) "हाजिरा हजूर" के लिए "सदा हजूरी"। साहिब सेवग दोइ=सेव्य सेवक (बन्दा और माबूद) जीव ईस्वर का भेद (दोइ=द्वैत) नहीं रहै।

[अङ्ग ५] (१) लेव=लेवड़ा, पपड़ी ('भीत का लेव' मुहाविरा है तुच्छता के अर्थ में)

(४) लच्छन लागै=ऐब (दोष) लग जाय (यदि पतिव्रता अन्य को सराहै तो)। निर्दोष होने से ससार बड़ाई करै। आंन=अन्य (ससार के लोग)।

सुन्दर जब पतिव्रत गयौ तब पोई सपतग।
मानहु टीका नील कौ विप्र दियौ निज अग॥ ६॥

सुन्दर जिन पतिव्रत कियौ तिनि कीये सब धर्म।
जब हि करै कछु और कृत तब ही लागै कर्म॥ ७॥

सुन्दर सब करनी करी सबै करी करतूति।
पतिव्रत राष्यौ राम सौं तब आई सब सूति॥ ८॥

पतिव्रत ही मैं योग है पतिव्रत ही मैं जाग।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वहै त्याग वैराग॥ ९॥

पतिव्रत ही मे यम नियम पतिव्रत ही मैं ध्यान।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं तीरथ सकल सनान॥ १०॥

पतिव्रत ही मैं तप भयौ पतिव्रत ही मैं मौन।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं और कष्ट कहि कौन। ११॥

पतिव्रत ही मैं शील है पतिव्रत मे संतोष।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वहै ई कहिये मोष॥ १२॥

पतिव्रत माहिं क्षमा दया धीरज सत्य बषांनि।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं याही निश्चय आंनि॥ १३॥

सुन्दर पतिव्रत राषि तू सुधरै जाइ ज्यौं बात।
सुख मैं मेलै कोर जब तृपति होइ सब गात॥ १४॥

सुन्दर रीझै रामजी जाकै पतिव्रत होइ।
रुलत फिरै ठिक बाहरी ठौर न पावै कोइ॥ १५॥

---

(८) सूति=सूत आना=सीधा और साफ होना, जैसे वेजा बुनने मे सूत (धागा) न टट कर साफ सीधा आ जाय। अर्थात् उपासना से ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर सब सिद्धि हो गई। (९) जाग=यज्ञ।

(१४) ज्यौं=(रा०) इससे, इस अर्थ वा प्रयोजन से। अत।

(१५) रुलत फिरै=यौंही वृथा इधर उधर, ठिक बाहरी=बाहर (स्थूल) ससार मे स्थिर स्थान (गति, वा मंजिल) न प्राप्त होकर।

सुन्दर जो बिभचारिनी फरका दीयौ डारि।
लाज सरम वाकै नहीं डोलै घर घर बारि ॥ १६ ॥
बिभचारणि नाकी बिना लाज सरम कछु नांहिं।
कालौ मुख कीयां फिरै सकल जगत कै मांहि ॥ १७ ॥
विभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पीय सुजांन।
सुन्दर पतिबरता कहै काटौं तेरै कांन ॥ १८ ॥
विभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पिय अति पाक।
सुन्दर पतिबरता कहै काटौं तेरौ नाक ॥ १९ ॥
विभचारिणि यौं कहतु है शोभित मेरौ कंत।
सुन्दर पतिबरता कहै तोडौं तेरै दंत ॥ २० ॥
विभचारिणि यौं कहत है मेरौ पिय अति रौंन।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरी जिह्वा लौंन ॥ २१ ॥
विभचारिणि कहै देषि तू मेरै पिय कै बाल।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरै माथै ताल ॥ २२ ॥

---

(१६) फरका=चीर (ओढ़नी) का वह विभाग जिसको स्त्री आगे लज्जा के लिए लहंगे में टाकती हैं।

(१७) नाकी बिना=बिन नाक की, नकटी। बेइज्जत।

(१८) काटौं तेरे कान=मैं तुझ से बढ़ कर हू (कान काटना=किसी से बढ़ कर होना, मुहावरा है)।

(१९) काटौं तेरौ नाक=मैं प्रतिष्ठित हू प्रतिष्ठा रहित बदनाम है।

(२०) तोडौं तेरे दन्त=मार कर सीधी कर दू। अर्थात् तू दण्ड के योग्य है।

(२१) रौंन=रमणीय। जिव्हा लौंन तुझे लूण (नमक) चबाया जाय जो ऐसी भ्रष्ट बात कहती है।

(२२) बाल=शिर के केश (कैसे सुन्दर हैं)। ताल=थाप। तेरा सिर पीटा जाने योग्य है

विभचारिणि कहै देषि तू मेरे पिय कौ गात।
सुन्दर पतिवरता कहै तेरी छाती लात॥ २३॥

विभचारिणि कहै देषि तू मेरे पिय को द्वार।
सुन्दर पतिवरता कहै तेरे मुख में छार॥ २४॥

पतिवरता पति सनमुखी सुन्दर लहै सुहाग।
विभचारिणि विमुखी फिरै ताके बडे अभाग॥ २५॥

पतिवरता छाड़ै नहीं सुन्दर पति की सेव।
विभचारिणि औगुन भरी पूजै देवी देव॥ २६॥

जाचिग कौ जाचै कहा सरै न कोई काम।
सुन्दर जाचै एक कौ अलष निरञ्जन राम॥ २७॥

सब ही दीसै दालदी देवी देव अनंत।
दारिद्र भंजन एकही सुन्दर कमलाकंत॥ २८॥

पतिवरता पति के निकट सुन्दर सदा हजूरि।
विभचारिणि भटकति फिरै न्याय परै मुख धूरि॥ २९॥

पतिवरता देषै नहीं आन पुरुष की वोर।
सुन्दर वह विभचारिणि तकत फिरै ज्यौं चोर॥ ३०॥

पति की आज्ञा में रहै सो पतिवरता जानि।
सुन्दर सनमुख है सदा निस दिन जोरे पानि॥ ३१॥

प्रभू बुलावै वोलिये ऊठि कहै तव ऊठि।
बठावै तौ बैठिये सुन्दर यो जी चूठि॥ ३२॥

---

(२९) न्याय परे मुख धूरि=न्याय (निर्णय यह कि) अन्त मे, अततो गत्वा। मुख धूल पड़ना=मुंह पर धूल (बदनामी) होना।

(३१) पानि=पाणि, हाथ।

(३२) जी चूठि=जीव को (वा जी जान से) पीव की मर्जी के चिपट जाय, अर्थात् दृढ़ता के साथ आज्ञा पालन करें।

प्रभू चलावै तव चलै सोइ कहै तव सोइ।
पहरावै तव पहरिये सुन्दर पतिव्रत होइ ॥ ३३ ॥
दिवस कहै तव दिवस है रैंनि कहै तव रैंन।
सुन्दर आज्ञा मैं रहै कवहु न फेरै वैंन ॥ ३४ ॥
रीसि करै अत्यन्त करि तौ प्रभु प्यारौ लाग।
हसि करि निकट वुलाइले सुन्दर माथै भाग ॥ ३५ ॥
सुन्दर पतिव्रत राम सौं सदा रहै इकतार।
सुख देवै तौ अति सुखी दुख तौ सुखी अपार ॥ ३६ ॥
रजा राम की सीस पर आज्ञा मेटै नांहिं।
ज्यौं रापै त्यौं ही रहै सुन्दर पतिव्रत माहिं ॥ ३७ ॥
साहिव मेरा रामजी सुन्दर पिजमतिगार।
पाव पलोटै प्रीति सौं सदा रहै हुसियार ॥ ३८ ॥
करै हजूरी वन्दगी और न कोई काम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै सुन्दर सदा गुलाम ॥ ३९ ॥
पति कौ वचन लियें रहै सा पतिवरता नारि।
सुन्दर भावै पीव कौं आवै नहीं अवगारि ॥ ४० ॥
जौ पिय कौ व्रत ले रहै कन्त पियारी सोइ।
अजन मजन दूरि करि सुन्दर सनमुख होइ ॥ ४१ ॥
अपना वल सब छाडि दे सेवै तन मन लाइ।
सुन्दर तव पिय रीझि करि रापै कण्ठ लगाइ ॥ ४२ ॥
प्रीतम मेरा एक तू सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

---

(३५) लाग=लागै। भाग=भाग्य।

(४०) अवगारि=ओगाल, नफरत, अवज्ञा।

(४१) अजन मजन=टीका टमका, वाह्य आडम्वर। इन्द्रियों का व्यापार, देवी देवता की उपासना इत्यादि।

हृदये मेरे तू वसै रसना तेरा नाम।
रोम रोम में रमि रह्या सुन्दर सब ही ठाम ॥ ४४ ॥

जह जह भेजे रामजी तहं तह सुन्दर जाइ।
दाणा पाणी देह का पहली धस्या वनाइ ॥ ४५ ॥

अपणा न्यारा कछु नहीं डोरी हरि कै हाथ।
सुन्दर डोलै बादरा वाजीगर कै साथ ॥ ४६ ॥

ज्यौं हीं आवै राम मन सुन्दर त्यौं ही धारि।
जो ही भावं पीव कों सोई भावै नारि ॥ ४७ ॥

सुन्दर प्रभु मुख सौं कहै सोई मीठी बात।
डार कहै तौ डार ही पात कहै तौ पात ॥ ४८ ॥

जौ प्रभु कौ प्यारौ लगै सोई प्यारौ मोहि ॥
सुन्द ऐसें समुझि करि यौं पतिवरता होहि ॥ ४९ ॥

सुन्दर प्रभु की चाकरी हासी पेल न जानि।
पहलैं मन को हाथ करि पीछैं पतिव्रत ठानि ॥ ५० ॥

सुन्दर कछू न कीजिये क्रिया कर्म भ्रम आन।
करने कौं हरि भक्ति है समझन कौं है ज्ञान ॥ ५१ ॥

॥ इति पतिव्रत को अंग ॥ ५ ॥

---

(४५) जह जह=जिन जिन जन्मांतर में, योनियों में। दाणा पाणी=खान पान। शरीर के पालन के लिए प्रत्येक योनि मे भोजनादि का प्रबन्ध।

(४८) डार=डाली। (डाल २ पात २ मुहाविरा है) अथवा चाहे डाली न हो उसको डाली ही कहे यदि प्यारा ईश्वर डाली ऐसा कहे तो।

(५०) चाकरी हांसी पेल न जान=सेवा धर्म बहुत कठिन है, कोई खिलवाड़ नहीं है। "सेवाधर्म्मो परम गहनो योगिना मप्यगम्य"।

(५१) आन=अन्य। भक्ति और ज्ञान से भिन्न अन्य सब कर्म और धर्म

॥ अथ उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा वरनहिं साध।
जामें पइये परम गुरु अविगति देव अगाध ॥ १ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा कहिये काहि।
जाकौं बछै देवता तू क्यौं पोवै ताहि ॥ २ ॥

सुन्दर मनुषा देह यह पायौ रतन अमोल।
कोडी सटै न पोइये मांनि हमारौ वोल ॥ ३ ॥

सुन्दर साची कहतु है मति आनै कछु रोस।
जौ तैं पोयो रतन यह तौ तोही कौं दोस ॥ ४ ॥

वार वार नहिं पाइये सुन्दर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत यह सोदा करि लेह ॥ ५ ॥

सुन्दर निश्चय आन तूं तौहि कहू करि प्यार।
मनुष जन्म की मौज यह होइ न वारम्वार ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह में सारे वधन वाढि।
आयौ हाथ सिला तलै काढि सकै तौ काढि ॥ ७ ॥

सुन्दर तू भटकति फिरयौ स्वर्ग मृत्यु पाताल।
अवकै या नर देह में काढि आपनौ साल ॥ ८ ॥

मिथ्या और भ्रममूलक है। "भक्तिमय ज्ञान" ही दादू-सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है अनेक प्रसगों में सुन्दरदासजी ने बता दिया है।

(७) वाढि=बढ़ कर है। परन्तु इस ही में सब बन्धन खुल सकते हैं। 'शिला तले हाथ आना'=दब जाना फस जाना। जन्म-मरण का बन्धन फस जाना। एक मनुष्य देह ऐसी है जो आवागमनरूपी बन्धन से मुक्त कर सकती है।

(८) साल=(शल्य) सूल, काटा। साल काढना=कांटा निकालना। त्रिविध दुःख वा आवागमन का खटका मिटाना।

सुन्दर कछु संप्या नहीं वहुतक धरे शरीर।
अवकै तूं भगवंत भजि विलम करै जिनि वीर॥ ९॥

सुन्दर या नर देह है सब देहनि कौ मूल।
भावै यामैं समझि तू भावै यामैं भूल॥ १०॥

सुन्दर मनुषा देह धरि भज्यौ नहीं भगवंत।
तौ पशु ज्यौं पूरै उदर शूकर स्वान अनंत॥ ११॥

सुन्दर या नर देह अब पुल्यौ मुक्ति कौ द्वार।
यों ही वृथा न पोइये तोहि कह्यौ कै बार॥ १२॥

सुन्दर साची कहत है जौ मानै तौ मानि।
यहै देह अति निंद्य है यहै रतन की पांनि॥ १३॥

सुन्दर मनुपा देह यह तामैं दोइ प्रकार।
याते वूडै जगत महिं यातैं उतरै पार॥ १४॥

सुन्दर बधै देह सौं तौ यह देह निपिद्धि।
जौ याकी ममता तजै तौ याही मैं सिद्धि॥ १५॥

भूलत काहे वावरे देपि सुरंगी देह।
वध्यौ फिर अनादि कौ सुन्दर याके नेह॥ १६॥

सुन्दर वध्या देह सौ कवहु न छूटा भाजि।
और क्रियौ सनमध अब भई कोढ मैं पाजि॥ १७॥

मात पिता वंधव सकल सुत दारा सौ हेत।
सुन्दर वध्या मोहि करि चेतै नहीं अचेत॥ १८॥

---

(९) विलम=विलम्ब=अवेर, देर। (१४)दुष्कर्मों से डूवे। शुभकर्मों से तिरै।

(१६) देह जड़ है, आत्मा चेतन है। देह में आत्मा का अध्यास करना मिथ्या और वन्धन का कारण होता है।

(१७) 'कोढ में पाजि'=महाराजरोग कोढ़ में खाज का होना=विषम दु'ख में अन्य अधिक दु'ख का आ जाना।

सुन्दर स्वारथ सौं वधे विन स्वारथ को नाहिं ।
जव स्वारथ पूजे नहीं आपु आपु कौं जाहिं ॥ १९ ॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समझत नाहिं न मूरि ।
तू इनसौं लाग्यौ मरै ये सव भागै दूरि ॥ २० ॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समुझत नहीं लगार ।
जिनहिं लडावे लाड तू ते ठोकि हैं कपार ॥ २१ ॥

सुन्दर माया मोह तजि भजिये आतम राम ।
ये सगी दिन चारि के सुत दारा धन धाम ॥ २२ ॥

सुन्दर नदी प्रवाह में मिल्यौ काठ सजोग ।
आपु आपु कौं ह्वै गये त्यौ कुटंव सव लोग ॥ २३ ॥

सुन्दर वैठै नाव में कहू कहू तें आइ ।
पार भये कतहू गये त्यौं कुटंव सव जाइ ॥ २४ ॥

सुन्दर पक्षी वृक्ष पर लियौ वसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये त्यौं कुटंव सव जानि ॥ २५ ॥

सुन्दर समझि विचार करि तेरौ इनमें कौन ।
आपु आपु कौं जाहिंगें सुत दारा करि गौन ॥ २६ ॥

सुन्दर तू इन सौं वंध्यौ ये सव तौसौं फर्क ।
याही वात विचार करि तू हू दे अव तर्क ॥ २७ ॥

सुन्दर नाना जोनि में जन्म जन्म की भूल ।
सुत दारा माता पिता सगलै याही सूल ॥ २८ ॥

---

(१९) आपु आपु को जाहिं=त्याग जांय, यही नीचता ।

(२०) मूरि=मूल, कुछ भी, थोड़ा भी ।

(२१) कपार ठोकैं=मरने पर कपालक्रिया करैं ।

(२७) तू हू दे तर्क=यह मेरा यह तेरा ऐसी ममता भरी अज्ञता की तर्कना (दै) छोड़ दे ।

सुन्दर माथै बोझ ले यह तौ अति अज्ञान।
इनको करता और ही भय भंजन भगवान॥ २९॥

सुन्दर काहे पंचि ले अपने माथै बोझ।
करना कों जानै नहीं तू रांमा कौ रोझ॥ ३०॥

सुन्दर तेरी मति गई समुझत नहीं ल्गार।
कूकर रथ नीचै चले हूं पैंचत हौं भार॥ ३१॥

सुन्दर या औसर भलौ भजि ले सिरजनहार।
जैसे ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार॥ ३२॥

सुदर औसर कै गयें फिरि पछितावा होइ।
शीतल लोह मिलै नहीं कूटौ पीटौ कोइ॥ ३३॥

सुन्दर यौंही देप तें औसर बीत्यौ जाइ।
अंजुरी माहे नीर ज्यौं किती वार ठहराइ॥ ३४॥

सुदर अब तेरी पुसी बाजी जीति कि हारि।
चौपडि कौ सौ पेल है मनुपा देह विचारि॥ ३५॥

सुदर जीतै सो सही डाव विचारै कोइ।
गाफिल होइ सु हारि कै चालै सरवस षोइ॥ ३६॥

सुदर याही देह में हारि जीति कौ पेल।
जीतै सो जगपति मिलै हारे माया मेल॥ ३७॥

---

(३०) रांमा कौ रोझ=रामां—जंगल। रोझ—एक प्रकार का जंगली पशु।

(३१) कूकर रथ नीचे ..=यह मिथ्या अविवेक और अध्यास का दृष्टान्त है। कुत्ता रथ के नीचे २ चलता हुआ यह समझै कि यह रथ मेरे चलाये चलता है तो उसकी यह कल्पना हास्य के योग्य और नितान्त झूठी है। इस ही प्रकार संसार के व्यवहार मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य अहन्ता से अपने ऊपर लेता है; कार्य के कारण तो और ही हैं।

(३३) ताता लोह कुटना मुहावरा है। अवसर पर ही काम होता है।

(३४) अंजुरी=आंदला। (३७) जगपति=ईश्वर, परमात्मा।

सुंदर अबकै आपणौ टोटौ नफौ विचारि।
जिनि डहकावै जगत में मेल्यो हाट पसारि॥ ३८॥
सुंदर भटक्यौ बहुत दिन अब तू ठौहर आव।
फेरि न कबहू आइ है यहु औसर यहु डाव॥ ३९॥
सुंदर दुःख न मानि तू तोहि कहूं उपदेश।
अब तौ कछूक सरम गहि धौले आये केश॥ ४०॥
सुंदर बैठा क्यौं अबै उठि करि मारग चालि।
कै कछु सुकृत कीजिये कै भगवत संभालि॥ ४१॥
सुंदर सौदा कीजिये भली वस्तु कछु पाटि।
नाना विधि काटागरा उस बनिया की हाटि॥ ४२॥
सुंदर विप पलि पार तजि लै केसरि कर्पूर।
जौ तू हीरा लाल ले तौ तौसौं नहिं दूर॥ ४३॥
सुंदर ठगबाजी जगत यह निश्चय करि जानि।
पहलै बहुत ठगाइयौ वहै घणों करि मानि॥ ४४॥
सुन्दर ठग्यौ अनेकबर सावधान अब होइ।
हीरा हरि कौ नाम ले छाडि विषै सुख लोह॥ ४५॥
सुन्दर सुख के कारनै दुख सहै बहु भाइ।
को पेती को चाकरी कोइ वणज कौं जाइ॥ ४६॥
पराधीन चाकर रहै पेती में सताप।
टोटौ आवै वणज में सुन्दर हरि भजि आप॥ ४७॥

---

(३८) टोटा नफा विचारना=फायदा होगा या नुक्सान इसका पहिले से विचार कर लेना ही बुद्धिमानी है।

(४२) पाटि=परख कर मोल ले। टांगरा=सामान, सौदा, सटड़ पटड़ उस बनिया=परमात्मा (की सृष्टि)।

(४३) पलि=खल, छूछ, निसार वस्तु।

सुख दुख छाया धूप है सुन्दर कर्म सुभाव।
दिन द्वै शीतल देषिये बहुरि तप्त मैं पाव॥ ४८॥

सुन्दर सुख की चाह करि कर्म करै बहु भाति।
कर्मनि कौ फल दु.ख है तू भुगतै दिन राति॥ ४९॥

तैं नर सुख कीये घने दुख भोगये अनंत।
अब सुख दुख कौ पीठि दें सुन्दर भजि भगवंत॥ ५०॥

दीया की बतिया कहै दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि दीयें ज्योति दिषाइ॥ ५१॥

दीयें तें सब देषिये दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिये दीया करि किन लेह॥ ५२॥

दीया राषै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं दीये होइ बिनाश॥ ५३॥

साँई दीया है सही इसका दीया नाहिं।
यह अपना दीया कहै दीया लषै न माहिं॥ ५४॥

साई आप दिया किया दीया माहिं सनेह।
दीये दीये होत है सुन्दर दीया देह॥ ५५॥

॥ इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

---

(४८) तप्त मैं पांव=धूप, तावड़े में पाव का दाझना।

(५१) यह 'दीया' शब्द और 'बाती' तथा 'सनेह' शब्दों में श्लेष है। दीया=१ दान, २ दीपक। बाती=१ वार्त्ता, २ बत्ती। सनेह=१ स्नेह, प्रेम, २ तेल।

(५२) यहां भी श्लेष है। १ देने से (त्यागने से) दिव्यज्ञान की प्राप्ति होती है। २ दीपक से सब दिखाई दे। करि=१ हाथ में २ करके।

(५३) यहां भी श्लेष है। प्रसंग से अर्थ जान लेना। दीया=ज्ञान। अह=अहकार।

(५४) यहा 'दीया' शब्द से प्रकाश। परमात्मा स्वयं प्रकाश है, वह किसी अन्य प्रकाश से नही दिखाई देता। (५५) ज्ञानरूपी दीपक हृदय में परमात्मा ने

॥ अथ काल चितावनी कौ अंग ॥ ७ ॥

काल ग्रसत है बावरे चेतत क्यौं न अजांन।
सुन्दर काया कोट मैं होइ रह्या सुलतान॥ १ ॥

सुन्दर काल महाबली मारे मोटे मीर।
तू कौनैं की गनति मैं चेतत काहि न वीर॥ २॥

सुन्दर काल गिराइ दे एक पलक मैं आइ।
तू क्यौं निर्भय ह्वै रह्यौ देषि चल्यौ जग जाइ॥ ३॥

सुन्दर चितवै और कछु काल सु चितवै और।
तू कहु जाने की करै वहु मारै इहिं ठौर॥ ४॥

सुन्दर काल प्रवीण अति तू कछु समुझै नांहिं।
तू जानैं जीवत रहू वहु मारै पल मांहि॥ ५॥

सुन्दर तेरी और कौ ताकि रहे जमदूत।
वैरी बैठे वारनें तू सोवें किहिं सूत॥ ६॥

सुन्दर सूवा पींजरै केलि करै दिन राति।
मिनकी जानं पाव कब ताकि रही इहि भांति॥ ७॥

सुन्दर मूसा फिरत है बिलतें वाहिर आइ।
काल रह्यौ अहि ताकि करि कबहुक लेइ उठाइ॥ ८॥

मनुष्य को प्रदान किया। उसमें 'सनेह'=भक्तिरूपी तेल भर दिया। दीपक से दीपक जलता है। गुरु से शिष्य, परम्परागत ज्ञानधारा बहती है। परमात्मा ने यह सुन्दर देह प्रदान की है। यह देह ज्ञानभरी है सो इस ज्ञानरूपी दीया (दीपक) को प्रज्वलित करके अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा लो।

(६) सूत=सूत के वस्त्र में, विस्तरों में। अथवा हे सूत, पुत्र!। वा सूत=सुरत, धुन।

सुन्दर मछरी नीर मैं विचरत अपने ख्याल।
बगुला लेत उठाइ कै तोइ ग्रसै यौं काल॥ ६॥

सुन्दर बैठो मक्षिका मीठे ऊपर आइ।
ज्यौं मकरी वाकौं ग्रसै मृत्यु तोहि लै जाइ॥ १०॥

सुन्दर तोकौं मारि है काल अचानक आइ।
तीतर देषत ही रहै बाज झपट ले जाइ॥ ११॥

सुन्दर काल जुरावरी ज्यौं जाणैं त्यौं लेइ।
कोटि जतन जौ तू करै तोहूं रहन न देइ॥ १२॥

मेरी मेरी करत है तौकौं सुद्धि न सार।
काल अचानक मारि है सुन्दर लगै न बार॥ १३॥

मेरै मन्दिर माल धन मेरौ सकल कुटुम्ब।
सुन्दर ज्यौं की त्यौं रहै काल दियो जब बंब॥ १४॥

सुन्दर गर्व कहा करै कहा मरोरै मूछ।
काल चपेटौ मारि है समझि कहूं के भूछ॥ १५॥

यौं मति जानै बावरे काल लगावे बेर।
सुन्दर सबही देषतें होइ राप की ढेर॥ १६॥

सुन्दर संक रती नहीं बहुत करै उदमाद।
काल अचानक आइहै करिहै गुरदावाद॥ १७॥

सुन्दर क्यौं चेतै नहीं सिर पर सांधे काल।
पल मैं पटकि पछारि है मारि करै बेहाल॥ १८॥

सुन्दर काहे कौं करै थिर रहणें की बात।
तेरै सिर पर जम पड़ा करै अचानक घात॥ १६॥

---

(१२) जुरावरी=जोरावरी, बलात्, जबरदस्ती।

(१४) बंब=प्रबल शब्द। (१५) भूछ=मुग्ध=मूर्ख।

(१७) उदमाद=ऊधम। गुरदावाद=गुरदाबाज, लोटपोट, रेतखेत।

सुन्दर गाफिल क्यौं फिरै सावधान किन होय।
जम जौरा तकि मारि है घरी पहरि मैं तोय॥ २०॥

सुन्दर तौ तू उबरि है समरथ सरनैं जाइ।
और जहा जहा तू फिरै काल तहां तहां पाइ॥ २१॥

सुन्दर अपनौ राम तजि जाइ और के भौन।
काल गहै जब कण्ठ कौ तबहि छुडावै कौन॥ २२॥

सुन्दर राषै कौन कौं सचि संचि धन माल।
तेरै सग चलै न कछु पोसि लेहिंगे पाल॥ २३॥

सुत कलत्र माता पिता भइया बधु समेत।
सुन्दर सब कौ देषते काल ग्रास करि लेत॥ २४॥

जौर चलै कहि कौन कौ सब कुटब घर माहिं।
सुन्दर काल उठाइ ले देषत ही रहि जांहिं॥ २५॥

सुन्दर पौन लगैं नहीं राष्यौ तहां छिपाइ।
काल पकरि कै केस कौ बाहरि नाष्यौ आइ॥ २६॥

काल ग्रसै सब सृष्टि कौ बचत न दीसै कोइ।
सुन्दर सारे जगत मैं तोबह तोबह होइ॥ २७॥

सुन्दर घर घर रोवणौ पर्‍यौ काल की त्रास।
केइक जारन कौं गये फिर केइक कौ नास॥ २८॥

सुन्दर सब ही थरसलै देषि रूप विकराल।
मुख पसारि कब कौ रह्यौ महा भयानक काल॥ २९॥

---

(२०) जौरा=जोरावर, जौरा (भैंस, जो बहुत आसूदा रह कर जोर से दौड़ती है)।

(२३) खाल खोसना=खाल खैंचना, उपाड़ना। बुरी तरह बेहाल कर मारना।

(२७) तोबह तोबह=(अ०) तोबाह=त्राहि।

(२८) जारन=जलाने को गये (वे भी जलाये गये)।

(२९) थरसलै=थर्रावै, डरै।

मत्य लोक ब्रह्म डर्‌यौ शिव डरप्यौ कैलास।
विष्णु डर्‌यौ वैकुंठ में सुन्दर मानी त्रास॥ ३०॥
इन्द्र डर्‌यौ अमरावती देवलोक सब देव।
सुंदर डर्‌यौ कुबेर पुनि देषि सबनि की छेव॥ ३१॥
राक्षस असुर सर्व डरै भूत पिशाच अनेक।
सुन्दर डरपे स्वर्ग के काल भयानक एक॥ ३२॥
चन्द सूर तारा डरै धरती अरु आकाश।
पाणी पावक पवन पुनि सुंदर छाडी आस॥ ३३॥
सुन्दर डर सुनि काल कौ कप्यौ सब ब्रह्मंड।
सागर नदी सुमेर पुनि सप्त दीप नौ खंड॥ ३४॥
साधक सिद्ध सबै डरै तपी ऋषीश्वर मौंन।
योगी जंगम बापुरे सुंदर गनती कौन॥ ३५॥
एक रहै करता पुरुष महाकाल कौ काल।
सुन्दर वह विनसै नहीं जाकौ यह सब प्याल॥ ३६॥
सुन्दर उठतें बैठतें जागत सोवत काल।
निर्भय कोइ न रहि सकै काल पसार्‌यौ जाल॥ ३७॥
सुन्दर पान पीवते चलत फिरत डर होइ।
सबही कौं भै काल कौ निर्भय नाहीं कोइ॥ ३८॥
सुन्दर सुनतें देषतें लेतें देतें ग्रास।
योंही मुख सौं बोलतें निकसि जात है स्वास॥ ३९॥
जगत जोइ जो कृत करै सो सो भय संयुक्त।
सुंदर निर्भय रामजी कै कोई जन मुक्त॥ ४०॥
सुंदर या संसार तें काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यौं बावरे घर में लागी आगि॥ ४१॥

---

(३५) मौंन=मुनीश्वर।

काम काल त्रैलोक मैं मारै जान सुजान।
सुन्दर ब्रह्मा आदि दै कीट प्रयंत वषान ॥ ४२ ॥
क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियौ सकल कौ नास।
सुन्दर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास ॥ ४३ ॥
लोभ काल यौं जानिये भरमावै जग माहिं।
बूडै जाइ समुद्र मैं सुदर निकसै नाहिं ॥ ४४ ॥
मोह काल की पासि है सुन्दर निकसै कौन।
पिता पुत्र सग जलि मुवौ अग्नि लगी जब भौन ॥ ४५ ॥
जो जो मन मैं कल्पना सो सो कहिये काल।
सुन्दर तू निःकल्प हो छाडि कल्पना जाल ॥ ४६ ॥
काल ग्रसै आकार कौ जामें सकल उपाधि।
निराकार निर्लेप है सुन्दर तहा न व्याधि ॥ ४७ ॥
सुन्दर काल तहा तहा जब लग है अज्ञान।
ममत गयौ जब देह कौ तब व्यापक भगवान ॥ ४८ ॥
सुन्दर बध्या देह सौं तब लग ग्रासै काल।
छाडि ममत न्यारौ भयौ रज्जु विषै कत व्याल ॥ ४९ ॥
सुन्दर काल अखड है तिमिर रह्यौ ज्यौं छाइ।
ज्ञान भान प्रगटै जबहि दोन्यू जाहिं विलाइ ॥ ५० ॥

॥ इति काल चितावनी कौ अग ॥ ७ ॥

---

(४२) जान=ज्ञानीजन।

(४३) छपन=छप्पन किरोड़ यादव प्रभास क्षेत्र मे आपस मे कट मरे।

(४५) पिता-पुत्र सग=मोह के वश मे पुत्र का जला जान कर पिता ने भी अपने आपको जला दिया। (४७) नामरूपात्मक जगत् सब उपाधिमात्र है। दृश्यमान सब क्षर और मिथ्या है। अत सब त्यागने योग्य है।

(४९) बन्ध्या=बन्धा हुआ। ग्रासै=ग्रसै, खाय। रज्जु विषै कत व्याल=रज्जु

॥ अथ नारी पुरुष श्लेष को अंग ॥ ८ ॥

नारी पुरुष सनेह अति देषैं जीवैं सोइ।
सुन्दर नारी बीछुरै आप मृतक तब होइ ॥ १ ॥

नारी बोलै आकरी तब दुख पावैं नाह।
सुन्दर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह ॥ २ ॥

नारी बोलै प्यार सौं तब कछु पीवै पाइ।
जब नारी क्रोधहिं करै सुन्दर पिय मुरझाइ ॥ ३ ॥

नारी बोलै रस लिये कबहुं विरसी बात।
सुन्दर जीवै विरस तें रस तें पिय की घात ॥ ४ ॥

जाकै घर नारी भली सुन्दर ताकै चैन।
जाकै घर में करकसा कलह करै दिन रैन ॥ ५ ॥

(जेवडे) मे व्याल (सर्प) का भ्रम होता है। वास्तव में जेवड़ा सांप तीन काल मे भी नहीं है। अन्धकारादि दोषों से ऐसी मिथ्या प्रतीति होती है। इस ही प्रकार अज्ञानादि (अविद्या और मल, विक्षेप आवरण आदिक अन्तःकरण के दोषों वा शक्ति) मे यह जगत् सत्य भासता है परन्तु यह मिथ्या है। ज्ञान के उदय से इसका नाश हो जाता है जैसे प्रकाश से रस्से मे सांप का झूठा भ्रम मिट जाता है।

(५०) ज्ञान भान=भानु सूर्य। ज्ञानरूपी सूर्य। दोन्यों=१ अन्धकार और २ अन्धकार का कारण। अविद्या और अविद्या का कार्य जगत्। दोनों नष्ट हो जाते हैं जब महाज्ञान होता है।

[अङ्ग ८] इस अंग में नारी शब्द में श्लेष अधिक है। नारी=१ स्त्री, योषिता। २ हाथ की नाड़ी जिससे शरीर के स्वास्थ्य वा रोग का निदान तथा वात पित्त कफादिक दोषों की समता विषमता वैद्य जानते हैं।

(४) रस=यहां, रसाधिक्य का शरीर मे उपद्रव। विरस=दूषित रस का अभाव। घर, भवन=२ शरीर।

नारी चलै उतावली नख सिख लागै भाहि।
सुन्दर पटकै पीव सिर दुख सुनावै काहि ॥ ६ ॥
नारी घर बैठी रहै पर घर करै न गौन।
सुन्दर पावै पीव सुख दोष लगावै कौन ॥ ७ ॥
नारी प्यारी पीव कौ सुन्दर आठौं याम।
जब नारी असक्री परै तब परचै बहु दाम ॥ ८ ॥
नारी नीकै बोलई सुन्दर तब सुख भौन।
अब नारी चुप करि रहै तब पिय पकरै मौन ॥ ९ ॥
पुरुष सदा डरपत रहै सुन्दर डोलै साथ।
नारी छूटै हाथ तैं तब कत आवै हाथ ॥ १० ॥
नारी निरषै रात दिन अति गति वाध्यौ मोह।
सुन्दर वार लगै नहीं पल में होइ विछोह ॥ ११ ॥
नारी में बल पुरुष कौ पुरुष भयौ वसि नारि।
अपुनौ बल समुझै नहीं बैठौ सर्वस हारि ॥ १२ ॥
नारी जाके हाथ म सोई जीवत जानि।
नारी कै संग बहि गयौ सुन्दर मृतक बषानि ॥ १३ ॥
नारी फिरै गली गली ताकौं लज्या नाहि।
सुन्दर मार्‌यौ सरम कौ पुरुष घस्यौ घर माहिं ॥ १४ ॥
नारी डोल भटकती पुरुषहिं नहीं विसास।
मति कहु अटकै और सौं मोतैं होइ उदास ॥ १५ ॥
सुन्दर पिय की लाडिली नारी सौं अति नेह।
जाइ दिपावै और कौं चूक पुरुष की येह ॥ १६ ॥
सुन्दर पिय अति वावरौ ह्वै करि जाइ अनाथ।
नारी अपनी आनि कै देइ और कै हाथ ॥ १७ ॥

---

(१४) नारी फिरै= २-दोष कुपित होने से नाड़ी (धमनी) विकार से चलै। तब गली गली इधर उधर वैद्य को ढूढै। (१७) रुग्नावस्था में विह्वल वा

सुन्दर पीव कहा करै नारी चंचल होइ।
न्याइ दिपावै और कों जे समुझावै कोइ॥ १८॥

छाड्यौ चाहै पीव कों नारी पर घर जाइ।
सुन्दर चंचल चपल अति तासौं कहा वसाइ॥ १९॥

समझावन कों ल्याइये भलौ सयानौ कोइ।
तासौं बोलै आकरी कै कहु पवर न होइ॥ २०॥

ऐसैं वैसें आइ कै कहै वहुत ही वैन।
तिनकी कछु मानै नहीं पुरुपहि होइ न चैन॥ २१॥

भलौ सयानौ आइ जो समुझावै वहु भाति।
कुलवती मानै कह्यौ सुन्दर उपजै स्वाति॥ २२॥

सुन्दर नारी पुरुप की प्रीति परस्पर जानि।
तव तैं संग नज्यौ नहीं जव तैं पकरी पानि॥ २३॥

सुन्दर नारी पतिव्रता तजै न पिय कौ सग।
पीव चलै सहि गामिनी तुरत करै तन भंग॥ २४॥

दैव विछोह करै जवहिं तव कोई वस नाहिं।
सुन्दर नेह न निर्वहै आपु आपु कौं जाहि॥ २५॥

इति सापी पचीस मे नारी पुरुप प्रसङ्ग।
सुन्दर पावै चतुर अति तीन अर्थ तिनि सङ्ग॥ २६॥

॥ इति नारी पुरुप श्लेप को अंग ॥ ८ ॥

रोग विवश होकर अपनी नाड़ी दूसरे (वैद्य वा सयाने) को दिखाव।

(२३) पानि=हाथ।

(२४) सहिगामिनी=१ साथ चलनेवाली, अनुकूला। २ पुरुप=जीव के साथ ही नारी (स्त्री) वा नाड़ी (धमनी) रहती है। पतिव्रता पति वियोग मे सती हो जाती है। २ जीव निकलने पर हाथ की नाड़ी छूट जाती है।

(२६) तीन अर्थ—दो अर्थों का सकेत तो ऊपर हो ही चुका। तीसरा अर्थ

॥ अथ देहात्मा बिछोह को अंग ॥ ९ ॥

दोहा

सुन्दर देह परी रही निकसि गयौ जब प्रान।
सब कोऊ यौं कहत है अब लै जाहु मसान ॥ १ ॥

माता पिता लगावते छाती सौं सब अंग।
सुन्दर निकस्यौ प्रान जब कोउ न बैठै संग ॥ २ ॥

सुन्दर नारी करत ही पिय सौं अधिक सनेह।
तिनहू मन मैं भय धर्यौ मृतक देपि करि देह ॥ ३ ॥

सुन्दर भइया कहत हौ मेरी दूजी बांह।
प्राण गयौ जब निकसि कैं कोउ न चंपै छांह ॥ ४ ॥

सुन्दर लोग कुटंब सब रहते सदा हजूरि।
प्रान गये लागे कहन काढौ घर तें दूरि ॥ ५ ॥

देह सुरंगी तब लगें जब लग प्राण समीप।
जीव जाति- जाती रही सुन्दर बिदरंग दीप ॥ ६ ॥

चमक दमक सब मिटि गई जीव गयौ जब आप।
सुन्दर पाली कंचुकी नीकसि भागौ साप ॥ ७ ॥

श्रवन नैंन मुख नासिका ज्यौं के त्यौं सब द्वार।
सुन्दर सो नहिं देषियै अचल चलावणहार ॥ ८ ॥

पुरुष=परमात्मा और उसके आधीन नारी=आत्मा वा जीवात्मा वा प्रकृति माया समझना चाहिए। यह तीसरा अर्थ अध्यात्म का है। इसका आभास पतिव्रता के अंगों में भी है—क्या 'साषी' में और क्या 'सवइया' में।

[अंग ९] इसके सुन्दर विचार 'सवइया' ग्रन्थ के इस ही (देहात्मा विछोह) अंग मे देखना उचित है। वहां भी कैसा मनोग्राही सच्चा ललित वर्णन किया है। हिन्दी भाषा में अन्यत्र ऐसा वर्णन नहीं मिलैगा।

(६) बिदरंग=बदरंग, बुरे रंग रूप का।

हँसै न बोलै नेंक हूं पाइ न पीवै देह।
सुन्दर अंनसन ले रही जीव गयौ तजि नेह ॥ ९ ॥

पाथर से भारी भई कौंन चलावै जाहि।
सुन्दर सो कतहूं गयौ लीयें फिरतौ ताहि ॥ १० ॥

सुन्दर पाणी सींचतौ क्यारी कंण के हेत।
चेतनि माली चलि गयौ सूकौ काया पेत ॥ ११ ॥

ज्यौं कौ त्यौं ही देपिये सकल देह कौ ठाट।
सुन्दर को जाणै नहीं जीव गयौ किहिं वाट ॥ १२ ॥

सुन्दर देह हलै चलै चेतनि के संजोग।
चेतनि सत्ता चलि गई कौंन करै रस भोग ॥ १३ ॥

हलन चलन सब देह कौ चेतनि सत्ता होइ।
चेतनि सत्ता बाहरी सुन्दर क्रिया न होइ ॥ १४ ॥

सुन्दर देह हलै चलै जब लगि चेतनि लाल।
चेतनि कियौ प्रयान जब रूसि रहै ततकाल ॥ १५ ॥

चम्बक सत्ता कर जथा लोहा नृत्य कराइ।
सुन्दर चम्बक दूरि ह्वै चञ्चलता मिटि जाइ ॥ १६ ॥

नख सिख देह लगै भली सुन्दर अधिक स्वरूप।
चेतनि हीरा चलि गयौ भयौ अन्धेरा घूप ॥ १७ ॥

सुन्दर देह सुहावनी जब लगि चेतनि माहिं।
कोई निकट न आवई जब यह चेतनि नांहिं ॥ १८ ॥

चेतनि के संयोग तें होइ देह कौ तोल।
चेतनि न्यारौ ह्वै गयौ लहै न कोडी मोल ॥ १९ ॥

---

(९) अंनसन=अनशन=न खाना, निराहार।

(१०) कैसा मनोहर विचार है। चित्त द्रवीभूत हो जाता है।

। (१९) तोल=प्रतिष्ठा, आदर।

चेतनि मिश्री देह तृण तुलत संग देहिं दाम।
सुन्दर दोउ जुदे भये तन तृण कोर्णे काम ॥ २० ॥
चेतनि तें चेतनि भई अतिगति शोभित देह।
सुन्दर चेतनि निकसतें भई पेह की पेह ॥ २१ ॥
चेतनि ही लीयें फिरै तन कौं सहज सुभाइ।
सुन्दर चेतनि बाहरी पैल भैल ह्वै जाइ ॥ २२ ॥
देह जीव यौं मिलि रहै ज्यौं पाणी अरु लौंन।
बार न लाई बिछुरतें सुन्दर कीयौ गौन ॥ २३ ॥
सुन्दर आइ शरीर मैं जीव किये उतपात।
निकसि गये या देह की फेर न बूझी बात ॥ २४ ॥
सुन्दर आयौ कौन दिसि गयौ कौनसी वोर।
या किनहू जान्यौ नहीं भयौ जगत मैं सोर ॥ २५ ॥

॥ इति देहात्मा बिछोह को अग ॥ ९ ॥

॥ अथ तृष्णा को अङ्ग ॥ १० ॥

पल पल छीजै देह यह घटत घटत घटि जाइ।
सुन्दर तृष्णा ना घटै दिन दिन नौतन थाइ ॥ १ ॥
बालापन जोवन गयौ बृद्ध भये सब कोइ।
सुन्दर जीरन ह्वै गये तृष्णा नव तन होइ ॥ २ ॥

---

(२०) कोर्णे काम=किसी काम की नहीं, त्यागने योग्य।

(२२) पैल भैल=खला भला, गड़बड़, नष्ट भ्रष्ट।

[अङ्ग १०] (१) नौतन=नूतन, नई, ताजा।

(२) नवतन=नये शरीरवाली।

सुन्दर तृष्णा यौं वधै जैसैं वाढै आगि।
ज्यौं ज्यौं नापै फूस कौं त्यौं त्यौं अधिकी जागि॥ ३॥

जव दस वीस पचास सौ सहस्र लाष पुनि कोरि।
नील पदम सष्या नहीं सुन्दर त्यौं त्यौ थोरि॥ ४॥

वहुरि पृथीपति होन की इन्द्र ब्रह्म शिव वोक।
कव देहैं करतार ये सुन्दर तीनौं लोक॥ ५॥

तृष्णा वहै तरगिनी तरल तरी नहिं जाइ।
सुन्दर तीक्षण धार में केते दिये वहाइ॥ ६॥

सुन्दर तृष्णा पकरि कैं करम करावै कोरि।
पूरी होइ न पापिनी भटकावै चहुं वोरि॥ ७॥

सुन्दर तृष्णा कारनै जाइ समुद्र हि वीच।
फटे जहाज अचानचक होइ अवछी मीच॥ ८॥

सुन्दर तृष्णा लै गई जहँ वन विषम पहार।
सिंह व्याघ्र मारै तहा कै मारै वटपार॥ ९॥

सुन्दर तृष्णा करत है सवकौ वाद गुलाम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै गनै शीत नहिं घाम॥ १०॥

मेघ सहै आधी सहै सहै वहुत तन त्रास।
सुन्दर तृष्णा कें लियें करै आपनौ नास॥ ११॥

सुन्दर तृष्णा के लिये पराधीन ह्वै जाइ।
दुर्वच वचन निस दिन सहै यौ परहाथ विकाइ॥ १२॥

तृष्णा के वसि होइ कै डोलै घर घर द्वार।
सुन्दर आदर मान विन होत फिरै नर ष्वार॥ १३॥

तृष्णा पेट पसारियौ तृप्ति न क्यौंही होइ।
सुन्दर कहतें दिन गये लाज सरम नहिं कोइ॥ १४॥

---

(५) वोक=प्यास, चाह।

तृष्णा डोलै ताकती स्वर्ग मृत्यु पाताल।
सुन्दर तीनहु लोक मैं भर्‍यौ न एकहु गाल॥ १५॥

तृष्णा डाइण होइ कैं षायौ सब संसार।
सुन्दर सतोषी बचै जिनके ब्रह्म बिचार॥ १६॥

सुन्दर तोहि कितौ कह्यौ सीप न मानी एक।
तृष्णा तू छाडै नहीं गही आपनी टेक॥ १७॥

तृष्णा तू बौरी भई तोको लागी बाइ।
सुन्दर रोकी ना रहै आगै भागी जाइ॥ १८॥

सुन्दर तृष्णा बहु बधी धर्‍यौ बडो अति देह।
अध ऊरध दशहू दिशा कहू न तेरौ छेह॥ १९॥

सुन्दर तृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचण्ड।
दोऊ काढें आपि जब कंपि उठै ब्रह्मण्ड॥ २०॥

सुदर तृष्णा भाडिनी लोभ बडौ अति भाड।
जैसौ ही रडुवौ मिल्यौ तैसी मिलि गई राड॥ २१।

सुदर तृष्णा कोढनी कोढी लोभ भ्रतार।
इनकौं कबहु न भींटिये कोढ लगै तन प्यार॥ २२॥

सुन्दर तृष्णा चूहरी लोभ चूहरौ जानि।
इनके भींटें होत है ऊंचे कुल की हानि॥ २३॥

सुदर तृष्णा सर्प्पणी लोभ सर्प कै साथ।
जगत पिटारा माहिं अब तू जिनि घालै हाथ॥ २४॥

सुन्दर तृष्णा है छुरी लोभ पड्ग की धार।
इनतें आप बचाइये दोनौं मारणहार॥ २५॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ १० ॥

---

(१५) गाल=गाला (चक्की का) अथवा मूंह (का गास)।

(२२) भ्रतार=भर्त्तार, पति।

॥ अथ अधीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

देह रच्यौ प्रभु भजन कौं सुन्दर नख सिख साज ।
एक हमारी बात सुनि पेट दियौ किंहिं काज ॥ १ ॥
श्रवन दिये जस सुनन कौं नैन देषने सन्त ।
सुन्दर सोभित नासिका मुख सोभन कौं दन्त ॥ २ ॥
हाथ पाव हरि कृत्य कौं जीभ जपन कौं नाम ।
सुन्दर ये तुम सौं लगे पेट दियौ किंहिं काम ॥ ३ ॥
सुन्दर कीयौ साज सब समरथ सिरजनहार ।
कौन करी यह रीस तुम पेट लगायौ लार ॥ ४ ॥
और ठौर सौं काढि मन करिये तुम कौं भेट ।
सुन्दर क्यौं करि छूटिये पाप लगायौ पेट ॥ ५ ॥
कूप भरै वापी भरै पुरि भरै जल ताल ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरै कौन कियौ तुम प्याल ॥ ६ ॥
नदी भरहिं नाला भरहिं भरहिं सकल ही नाड ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं कौंन करी यह पाड ॥ ७ ॥
पटक पास वुपार पुनि वहुरि भरहिं घर हाट ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं भरियहि कोठी माट ॥ ८ ॥
चूल्हा भाठी भार महिं इन्धन सब जरि जाइ ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह कवहू नहीं अघाइ ॥ ९ ॥
वम्वई थलहि समुद्र मैं पानी सकल समात ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह रहै पात ही पात ॥ १० ॥
असुर भूत अरु प्रेत पुनि राक्षस जिनि कौ नाव ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह करै पाव ही पांव ॥ ११ ॥

[अग ११] (७) नाड=नाड़ा, छोटा सर वा तालाव । पाड=गाड़ा ।

सुन्दर प्रभुजी पेट की चिंता दिन अरु राति ।
सांझ षाइ करि सोइये फिरि मागै परभाति ॥ १२ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब ख्वार ।
को षेती को चाकरी कोई बनज व्यौपार ॥ १३ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब दीन ।
अन्न विना तलफत फिरै जैसैं जल विन मीन ॥ १४ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि भये रंक अरु राव ।
राजा राना छत्रपति मीर मलिक उमराव ॥ १५ ॥

विद्याधर पंडित गुनी दाता सूर सुभट्ट ।
सुंदर प्रभुजी पेट इनि सकल किये पटपट्ट ॥ १६ ॥

सुंदर प्रभुजी पेट यह राषै कछू न मान ।
बन मैं बैठै जाइ कैं उठि भागै मध्यान ॥ १७ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि चौरासी लष जंत ।
जल थल कै चाहैं सकल जे आकाश बसंत ॥ १८ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब भाड ।
कोई पंचामृत भषै कोई पतरा माड ॥ १९ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट कौ बहु विधि करहिं उपाइ ।
कौन लगाई व्याधि तुम पीसत पोवत जाइ ॥ २० ॥

सुन्दर प्रभुजी सबनि कौ पेट भरन की चिंत ।
कीरी कन ढूंढत फिरै माषी रस लैजंत ॥ २१ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि देवी देव अपार ।
दोष लगावै और कौं चाहै एक अहार ॥ २२ ॥

---

(१८) जन्त=जीवाजूण, जीवजन्त ।

(२१) लैजन्त=ले जाती हैं (मधुमक्षिका)

सुन्दर प्रभुजी पेट कौं दृधाधारी होइ।
पाषंड करहिं अनेक विधि पाहिं सकल रस गोइ ॥ २३ ॥
सुंदर प्रभुजी पेट कौं साधै जाइ मसान।
यंत्र मंत्र आराध करि भरहिं पेट अज्ञान ॥ २४ ॥
सुंदर प्रभुजी सब कह्यौ तुम आगैं दुख रोइ।
पेट बिना हीं पेट करि दीनी पलक बिगोइ ॥ २५ ॥

॥ इति अधीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

॥ अथ विश्वास को अंग ॥ १२ ॥

सुंदर तेरे पेट की तोकौं चिंता कौन।
विस्व भरन भगवंत है पकरि बैठि तू मौन ॥ १ ॥
सुंदर चिंता मति करै पाव पसारै सोइ।
पेट कियौ है जिनि प्रभू ताकौं चिंता होइ ॥ २ ॥
जलचर थलचर व्योमचर सबकौं देत अहार।
सुंदर चिंता जिनि करै निस दिन बारबार ॥ ३ ॥
सुंदर प्रभुजी देत हैं पाहन मैं पहुंचाइ।
तूं अब क्यौं भूपौ रहै काहे कौं बिललाइ ॥ ४ ॥
सुन्दर धीरज धारि तू गहि प्रभु कौ विश्वास।
रिजक बनायौ रामजी आवै तेरे पास ॥ ५ ॥
काहे कौं परिश्रम करै जिनि भटकै चहु ओर।
घर बैठें ही आइ है सुंदर साम्क कि भोर ॥ ६ ॥

---

(२३) गोई=गुप्त, छिप कर। (२५) पेट बिना ही आपके पेट नहीं है परन्तु प्रजा के पेट लगा कर तुमने बड़ी बुराई पैदा करदी ।

[अंग १२] (६) कि (सांझ कि भोर मे) अथवा, वा, और।

रिजक बनायौ रामजी कापै मेट्यौ जाइ।
सुंदर धीरज धारि तू सहजि रहेगो आइ॥ ७॥

चंच सवारी जिनि प्रभू चूंन देइगो आनि।
सुंदर तू विश्वास गहि छाडि आपनी बानि॥ ८॥

सुन्दर दोरै रिजक कौं सौ तौ मूरप होइ।
यौं जानै नहिं बावरौ पहुचावै प्रभु सोइ॥ ९॥

सुन्दर समुझि विचार करि है प्रभु पूरन हार।
तेरौ रिजक न मेटि है जानत क्यौं न गवांर॥ १०॥

सुन्दर निस दिन रिजक कौं बादि मरै नर झूरि।
रिजक दे तुझै रामजी जहा तहा भरपूरि॥ ११॥

सुन्दर जो मुख मूंदि कैं बैठि रहै एकंत।
आनि पवावै रामजी पकरि उघारै दंत॥ १२॥

सुन्दर ऐसै रामजी ताकौं जानत नाहिं।
पहुंचावत है प्रान कौं आपुहि बैठौ माहिं॥ १३॥

सुन्दर प्रभुजी निकट है पल पल पोषै प्रान।
ताकौ सठ जानत नहीं उद्यम ठांनै आन॥ १४॥

सुन्दर पशु पषी जितै चून सवनि कौ देत।
उनकै सोदा कौन सो कहौ कौंन से पेत॥ १५॥

सुन्दर अजिगर परि रहै उद्यम करै न कोइ।
ताकौ प्रभुजी देत हैं तू क्यौ आतुर होइ॥ १६॥

सुन्दर मच्छ समुद्र मैं सौ जोजन विसतार।
ताहू कौ भूलै नहीं प्रभु पहुचावनहार॥ १७॥

---

(११) बादि=वृथा ही। झूरि=रो २ कर।

(१६) परि रहै=पड़ा रहै (कुछ काम चेष्टा नहीं करै)।

सुन्दर मनुषा देह मैं धीरज धरत न मूरि।
हाइ हाइ करतौ फिरै नर तेरै सिर धूरि ॥ १८ ॥
सुन्दर सिरजनहार कौं क्यों न गहे विस्वास।
जीव जत पोषै सकल कोउ न रहत निरास ॥ १६ ॥
सुन्दर जाकी सृष्टि यह ताकै टोटो कौंन।
तू प्रभु के विस्वास विन परै न हाडी लौंन ॥ २० ॥
सुन्दर जिनि प्रभु गर्भ मैं वहुत करी प्रतिपाल।
सो पुनि अजहू करत है तू सोचै धनमाल ॥ २१ ॥
सुन्दर सवकौ देत है चंच सवानी चौंनि।
तेरै तृष्णा अति वढी भरि भरि ल्यावत गौनि ॥ २२ ॥
सुन्दर जाकौं जो रच्यौ सोई पहुचै आइ।
कीरी कौं कन देत है हाथी मन भरि पाइ ॥ २३ ॥
सुन्दर जल की वूद तें जिनि यह रच्यौ सरीर।
सोई प्रभु याकौ भरै तू जिनि होइ अधीर ॥ २४ ॥
सुन्दर अव विस्वास गहि सदा रहै प्रभु साथ।
तेरौ कियौ न होत है सव कछु हरि कै हाथ ॥ २५ ॥

॥ इति विश्वास को अंग ॥ १२ ॥

---

(२०) परै न हांडी लौंन=हांडी मे नमक पड़ना, (ईश्वर की सहायता बिना) कोई काम नहीं होता है।

(२२) चंच सवानी चौंन=चूंच के योग्य चून (भोजन), कीड़ी को कण हाथी को मण देता है। गौंनि=गूण, बोरी।

॥ अथ देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ॥ १३ ॥

दोहा

सुन्दर देह मलीन है राख्यौ रूप सवारि।
ऊपर तें कलई करी भीतरि भरी भगारि ॥ १ ॥

सुन्दर देह मलीन है प्रकट नरक की पानि।
ऐसी याही भाकसी तामैं दीनौ आनि ॥ २ ॥

सुन्दर देह मलीन अति बुरी वस्तु को भौन।
हाड मास को कौथरा भली वस्तु कहि कौंन ॥ ३ ॥

सुन्दर देह मलीन अति नख शिख भरे विकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि सदा वहै नव द्वार ॥ ४ ॥

सुन्दर मुख मैं हाड सब नैंन नासिका हाड।
हाथ पाव सब हाड के क्यौं नहिं समुझत राड ॥ ५ ॥

सुन्दर पंजर हाड कौ चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलि कै मो समान को आहि ॥ ६ ॥

सुन्दर न्हावै बहुत ही बहुत करै आचार।
देह माहिं देषै नहीं भर्‍यौ नरक भंडार ॥ ७ ॥

सुन्दर अपरस धोवती चौकै बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै ताही कै संगि पाइ ॥ ८ ॥

सुन्दर ऐसी देह मैं सुचि कहो क्यों होइ।
झूठेई पाषंड करि गर्व करै जिनि कोइ ॥ ९ ॥

[अङ्ग १३] (१) भगारि=कूड़ा करकट।

(२) भाकसी=खड्डा, अन्ध खन्धक। दीनौं=जीव को इस में ला धरा।

(५) रांड=यहां दुर्वचन, मूर्ख नासमझ अभागे के अर्थ में है।

(९) सुचि=शुचि, शौच, शुद्धता, पवित्रता।

सुन्दर सुन्नि रहै नहीं या शरीर के सग।
न्हावे धोवे वहुत करि सुद्ध होइ नहिं अग॥ १०॥
सुन्दर कहा पपारिये अति मलीन यह देह।
ज्यौं ज्यौं माटी धोइये त्यौं त्यौं उकटै पेह॥ ११॥
सुन्दर मैली देह यह निमल करी न जाइ।
वहुत भांति करि धोइ तू अठसठि तीरथ न्हाइ॥ १२॥
सुन्दर ब्राह्मन आदि कौं ता महिं फेर न कोइ।
सूद्र देह सौं मिलि रह्यौ क्यौं पवित्र अव होइ॥ १३॥
सुन्दर गर्व कहा करै देह महा दुर्गंध।
ता महिं तू फूल्यौ फिरै संमुझि देपि सठ अंध॥ १४॥
सुन्दर क्यौं टेढौ चलै वात कहै किन मोहि।
महा मलीन शरीर यह लाज न उपजै तोहि॥ १५॥
सुन्दर देपै आरसी टेढी नापै पाग।
वैठौ आइ करंक पर अति गति फूल्यौ काग॥ १६॥
सुन्दर वहुत वलाइ है पेट पिटारी माहिं।
फूल्यौ माइ न पाल में निरषत चालै छांहिं॥ १७॥
सुन्दर रज वीरज मिले महा मलिन ये दोइ।
जैसौ जाकौ मूल है तैसोई फल होइ॥ १८॥
सुन्दर मलिन शरीर यह ताहू में वहु व्याधि।
कवहू सुख पावै नहीं आठौं पहर उपाधि॥ १९॥

---

(१३) ब्राह्मन आदि कौं=आत्मा नित्य शुद्ध होने से ब्राह्मण कही गई। इसका ससर्ग अशुद्ध शरीर से हुआ जो यहा शूद्र कहा गया।

(१६) नापै=धरै, बांधै। (रापै पाठ अच्छा होता)। करक=मुर्दा लाश, करक।

(१७) वलाइ=वला, वुरी वस्तु (विष्ठा, मूत्र, आम, आदिक)।

सुन्दर कवहू फुनसली कवहूं फोरा होइ।
ऐसी याही देह मैं क्यौं सुख पावै कोइ॥ २०॥
कवहू निकसै न्हारवा कवहू निकसै दाद।
सुन्दर ऐसी देह यह कवहु न मिटै विपाद॥ २१॥
सुन्दर कवहूं ताप ह्वै कवहूं ह्वै सिरवाहि।
कवहू हृदय जलनि ह्वै नख शिख लागै भाहि॥ २२॥
कवहूं पेट पिरातु है कवहू माथै सूल।
सुन्दर ऐसी देह यह सकल पाप का मूल॥ २३॥
सुन्दर कवहूं कान मैं चीस उठै अति दुख।
नैंन नाक मुख मैं विथा कवहुं न पावै सुक्ख॥ २४॥
स्वास चलै पासी चलै चलै पसुलिया वाव।
सुन्दर ऐसी देह मैं दुखी रंक अरु राव॥ २५॥

॥ इति देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग॥ १३॥

॥ अथ दुष्ट को अंग॥ १४॥

सुन्दर वार्ते दुष्ट की कहिये कहा वषानि।
कहें विना नहिं जानियें जितो दुष्ट की वानि॥ १॥
अपने दोष न देषई परके औगुन लेत।
ऐसौ दुष्ट सुभाव है जन सुन्दर कहि देत॥ २॥
सुन्दर दुष्ट स्वभाव है औगुन देषै आइ।
जैसें कीरी महल मैं छिद्र ताकती जाइ॥ ३॥

(२२) सिरवाहि=शिरो व्याधि, सिर दर्द। भाहि=दर्द, पीड़ा।

(२३) पिरातु=पीड़ा करता।

सूझत नांहिं न दुष्ट कौं पाव तरें की आगि।
औरन के सिर पर कहै सुन्दर वासौं भागि ॥ ४ ॥

देषी अनदेषी कहै ऐसौ दुष्ट सुभाव।
सुन्दर निशदिन परि गयौ कहिवेही कौं चाव ॥ ५ ॥

सुन्दर कवहुं न धीजिये सरस दुष्ट की वात।
मुख ऊपर मीठी कहै मन मैं घालै घात ॥ ६ ॥

व्याघ्र करै ज्यौं लुरपरी कूकर आगें आइ।
कूकर देषत ही रहै वाघ पकरि ले जाइ ॥ ७ ॥

सुन्दर काहू दुष्ट कौ भूलि न धीजहु वीर।
नीचै आगि लगाइ करि ऊपर छिरकै नीर ॥ ८ ॥

दुष्ट पिजावै वहुत विधि आनि नवावै सीस।
सुन्दर कवहुक जहर दे मारै विसवा वीस ॥ ९ ॥

दुष्ट करै वहु वीनती होइ रहै निज दास।
सुन्दर दाव परै जवहिं तवहिं करै घट नास ॥ १० ॥

दुष्ट घाट घरिवौ करै घट में याही होय।
सुन्दर मेरी पासि मैं आइ परै जे कोय ॥ ११ ॥

वात सुनौ जिनि दुष्ट की वहुत मिलावै आनि।
सुन्दर मानै सांच करि सोई मूरप जानि ॥ १२ ॥

दुष्ट वुरी हो करत है सुन्दर नंकु न लाज।
काम विगारै और कौ अपनें स्वारथ काज ॥ १३ ॥

पर कौ काम विगारि दे अपनौ होउ न होह।
यह सुभाव है दुष्ट कौ सुन्दर तजिये वोह ॥ १४ ॥

---

(७) व्याघ्र=वघेरा (यह कुत्ते को मारखाता है)। और वहुत चालाक होता है।

(११) पासि=पाश, फांसी।

घर षोवत है आपनौ औरनि हू कौ जाइ।
सुन्दर दुष्ट सुभाव यह दोऊ देत वहाइ ॥ १५ ॥

दुर्जन सग न कीजिये सहिये दु.ख अनेक।
सुन्दर सब ससार मैं दुष्ट समान न एक ॥ १६ ॥

बींछू काटे दुख नहीं सर्प डसै पुनि आइ।
सुन्दर जो दुख दुष्ट तें सो दुख कह्यौ न जाइ ॥ १७ ॥

गज मारै तौ नाहिं दुख सिह करै तन भंग।
सुन्दर ऐसौ नाहिं दु ख जैसौ दुर्जन सग ॥ १८ ॥

सुन्दर जरिये अग्नि महिं जल बूडे नहिं हांनि।
पर्वत ही तें गिरि परौ दुर्जन भलौ न जांनि ॥ १६ ॥

सुन्दर झपापात ले करवत धरिये सीस।
वा दुर्जन के सगतें राषि राषि जगदीस ॥ २० ॥

सुन्दर विप हू पीजिये मरिये षाइ अफीम।
दुर्जन सग न कीजिये गलि मरिये पुनि हीम ॥ २१ ॥

सुन्दर दुख सव तोलिये घालि तराजू माहिं।
जो दुख दुर्जन संग तें ता सम कोई नाहिं ॥ २२ ॥

सुन्दर दुर्जन सारिषा दुखदाई नहिं और।
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम देषे सब ही ठौर ॥ २३ ॥

देह जरै दुख होत है ऊपर लागै लौन।
ताहू तें दुख दुष्ट कौ सुन्दर मानै कौन ॥ २४ ॥

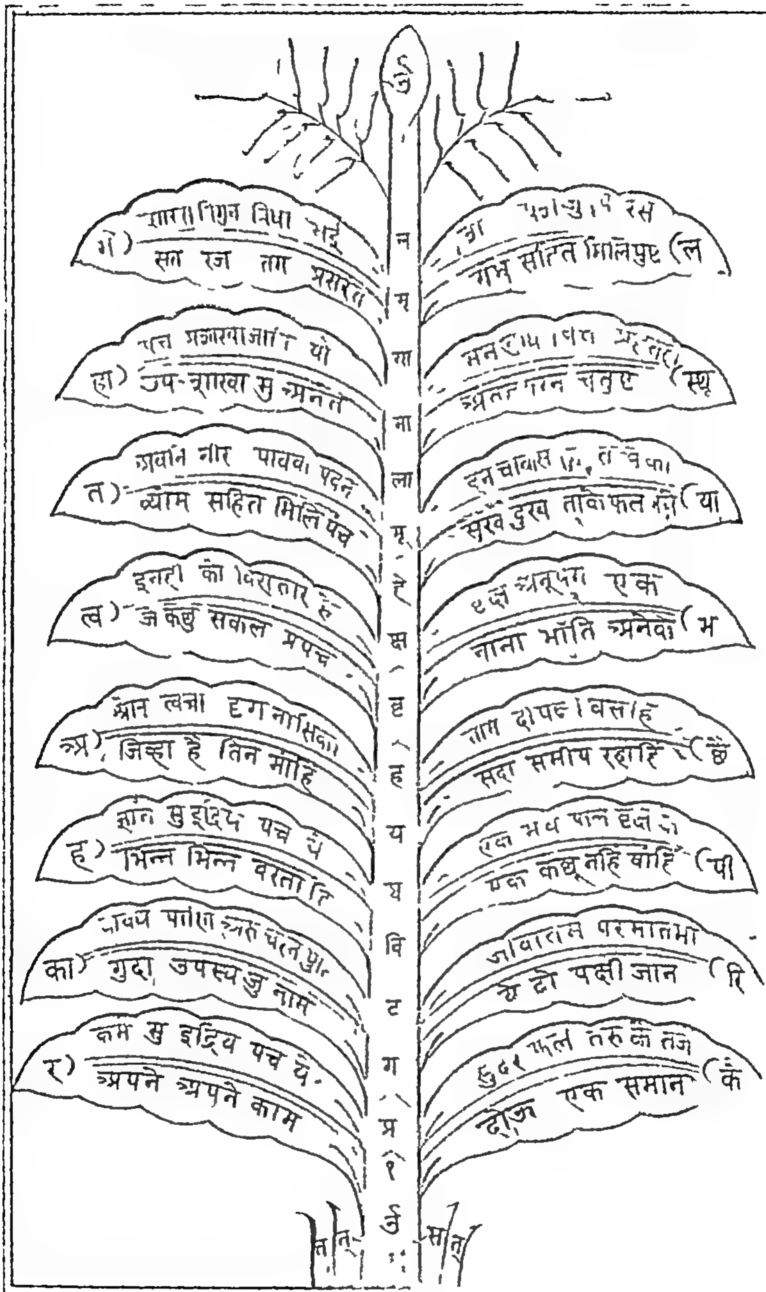
जो कोउ मारै बान भरि सुन्दर कछु दुख नाहिं।
दुर्जन मारै बचन सौं सालतु है उर माहिं ॥ २५ ॥

॥ इति दुष्ट को अग ॥ १४ ॥

---

(२०) करवत=करोत (जैसे काशी करोत लेना)।

(२१) हीम=हिम, हिमालय के बर्फ में।


व्योम सहित मिलि पंच
जिह्वा है तिन मांहि
भिन्न भिन्न वरतांति
गुदा उपस्थ जु नाम
काम सु इन्द्रिय पंच ये
अपने अपने काम
नाना भाँति अनेक
सदा समीप रहांहि
ये दो पक्षी जान
दोऊ एक समान

वृक्ष-बन्ध

॥ अथ मन कौ अंग ॥ १५ ॥

दोहा

मन कौं रापत हटकि करि सटकि चहूं दिसि जाइ।
सुंदर लटकि रु लालची गटकि विषै फल पाइ ॥ १ ॥

झटकि तार कौं तौरि दे भटकत साझ रु भोर।
पटकि सीस सुन्दर कहै फटकि जाइ ज्यौं चोर ॥ २ ॥

पल ही मैं मरि जात है पल मैं जीवत सोइ।
सुन्दर पारा मूरछित बहुरि सजीवनि होइ ॥ ३ ॥

जातें कबहुं न जानिये यौं मन नीकसि जाइ।
आवत कछू न देपिये सुन्दर किसी बलाइ ॥ ४ ॥

घेरें नैंकु न रहत है ऐसौ मेरौ पूत।
पकरें हाथ परै नहीं सुन्दर मनुवा भूत ॥ ५ ॥

नीति अनीति न देपई अति गति मन कै वंक।
सुन्दर गुरु की साधु की नैंकु न मानै संक ॥ ६ ॥

सुन्दर क्यौं करि धीजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं पेलै अपनौ दाव ॥ ७ ॥

सुन्दर या मन सारिपौ अपराधी नहिं और।
साप सगाई ना गिनै ल्यै न ठौर कुठौर ॥ ८ ॥

सुन्दर मन कामी कुटिल क्रोधी अधिक अपार।
लोभी तृप्त न होत है मोह लग्यौ सैंवार ॥ ९ ॥

[अंग १५] (७) गुदरै नहीं=गुजरै नहीं, हटै नहीं, मानै नहीं ।

(९) सैंवार=सिवार, जो पानी पर रहता है और धोखा देता है, थल समझकर आदमी डूब जाता है ।

सुन्दर यह मन अधम है करै अधम ही कृत्य।
चल्यो अधोगति जात है ऐसी मन की वृत्य॥ १० ॥

सुन्दर मन कै रिंदगी होइ जात सैतान।
काम लहरि जागै जबहिं अपनी गनै न आन॥ ११ ॥

ठग विद्या मन कै घनी दगाबाज मन होइ।
सुन्दर छल केता करै जानि सकै नहिं कोइ॥ १२ ॥

सुन्दर यहु मन चोरटा नाषै ताला तोरि।
तकै पराये द्रव्य कौं कब ल्याऊं घर फोरि॥ १३ ॥

सुन्दर यहु मन जार है तकै पराई नारि।
अपनी टेक तजै नहीं भावै गर्दन मारि॥ १४ ॥

सुन्दर मन बटपार है घालै पर की घात।
हाथ परे छोडै नहीं लूटि षोसि ले जात॥ १५ ॥

सुन्दर मन गांठी कटौ डारै गर मैं पासि।
बुरौ करत डरपै नहीं महा पाप की रासि॥ १६ ॥

सुन्दर यहु मन नीच है करै नीच ही कर्म।
इनि इन्द्रिनि कै बसि पर्‌यौ गिनै न धर्म अधर्म॥ १७ ॥

सुन्दर यहु मन भांड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै बहु भांति के राते पीरे सेत॥ १८ ॥

सुन्दर यहु मन डूम है मांगत करै न संक।
दीन भयौ जाचत फिरै राजा होइ कि रङ्क॥ १९ ॥

सुन्दर यहु मन रासिभो दौरि विषै कौं जात।
गदही कै पीछै फिरै गदही मारै लात॥ २० ॥

---

(१५) बटपार=लुटेरा।

(१६) गाठी कटो=गठकटा, ठग। रासि= समूह, आगर।

(२०) रासिभो=रासभ, गधा।

सुन्दर यहु मन स्वान है भटकै घर घर द्वार।
कहूंक पावै झूठि कौं कहूं परै वह मार॥ २१॥

सुन्दर यहु मन काग है बुरौ भलौ सब पाइ।
समुझायौ समुझै नहीं दौरि करङ्क हि जाइ॥ २२॥

सुन्दर मन मृग रसिक है नाद सुनै जब कांन।
हलै चलै नहिं ठौर तें रहौ कि निकसौ प्रान॥ २३॥

सुदर यह मन रूप कौ देषत रहै लुभाइ।
ज्यौं पतंग वसि नैंन कै जोति देषि जरि जाइ॥ २४॥

सुन्दर यह मन भ्रम रहै सूघत रहै सुगंध।
कंवल माहिं निकसै नहीं काल न देषै अंध॥ २५॥

सुन्दर यह मन मीन है बंधै जिह्वा स्वाद।
कंटक काल न सूझई करत फिरै उदमाद॥ २६॥

सुन्दर मन गजराज ज्यौं मत्त भयौ सुध नाहिं।
काम अंध जानै नहीं परै षाड के माहिं॥ २७॥

सुन्दर यह मन करत है बाजीगर कौ ख्याल।
पंष परेवा पलक मैं मुवो जिवावत व्याल॥ २८॥

ज्यौं बाजीगर करत है कागद मैं हथफेर।
सुन्दर ऐसैं जानिये मन मैं धरन सुमेर॥ २९॥

सुन्दर यह मन भूत है निस दिन बकतें जाइ।
चिन्ह करै रोवै हंसै षातें नहीं अघाइ॥ ३०॥

सुन्दर यह मन चपल अति ज्यौं पीपर कौ पान।
वार वार चलिबौ करै हाथी कौ सौ कांन॥ ३१॥

---

(२१) झूठि=उच्छिष्ट। कहू परै वह मार=कहीं उस पर ऐसी (कड़ी) मार पड़ै।

(२९) धरन=धरणी, पृथ्वी।

सुन्दर यह मन अधम है करै अधम ही कृत्य।
चल्यो अधोगति जात है ऐसी मन की वृत्य। १० ॥

सुन्दर मन कै रिंदगी होइ जात सैतान।
काम लहरि जागै जबहिं अपनी गनै न आन ॥ ११ ॥

ठग विद्या मन कै घनी दगाबाज मन होइ।
सुन्दर छल केता करै जानि सकै नहिं कोइ ॥ १२ ॥

सुन्दर यहु मन चोरटा नापै ताला तोरि।
तकै पराये द्रव्य कौं कव ल्याऊ घर फोरि ॥ १३ ॥

सुन्दर यहु मन जार है तकै पराई नारि।
अपनी टेक तजै नहीं भावै गर्दन मारि ॥ १४ ॥

सुन्दर मन बटपार है घालै पर की घात।
हाथ परे छोडै नहीं लूटि पोसि ले जात ॥ १५ ॥

सुन्दर मन गांठी कटौ डारै गर मैं पासि।
बुरौ करत डरपै नहीं महा पाप की रासि ॥ १६ ॥

सुन्दर यहु मन नीच है करै नीच ही कर्म।
इनि इन्द्रिनि कै बसि पर्यौ गिनै न धर्म अधर्म ॥ १७ ॥

सुन्दर यहु मन भाड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै वहु भाति के राते पीरे सेत ॥ १८ ॥

सुन्दर यहु मन डूम है मागत करै न संक।
दीन भयौ जाचत फिरै राजा होइ कि रङ्क ॥ १९ ॥

सुन्दर यहु मन रासिभौ दौरि बिषै कौं जात।
गदही कै पीछै फिरै गदही मारै लात ॥ २० ॥

---

(१५) बटपार=लुटेरा।

(१६) गांठी कटो=गठकटा, ठग। रासि= समूह, आगर।

(२०) रासिभो=रासभ, गधा।

पाप पुन्य यह मैं कियौ स्वर्ग नरक हूं जांऊं।
सुन्दर सब कछु मानि ले ताही तें मन नाउं॥ ४४॥

मन ही बडौ कपूत है मन ही महा सपूत।
सुन्दर जौ मन थिर रहै तौ मन ही अवधूत॥ ४५॥

मन ही यह विस्तरि रह्यौ मन ही रूप कुरूप।
सुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म स्वरूप॥ ४६॥

सुन्दर मन मन सब कहैं मन जान्यौ नहिं जाइ।
जौ या मन कौ जाणिये तौ मन मनहिं समाइ॥ ४७॥

मन कौ साधन एक है निस दिन ब्रह्म विचार।
सुन्दर ब्रह्म विचारतें ब्रह्म होत नहि वार॥ ४८॥

देह रूप मन ह्वै रह्यौ कियौ देह अभिमान।
सुन्दर समुझै आपकौं आपु होइ भगवान॥ ४६॥

जब मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ॥ ५०॥

मन ही कौ भ्रम जगत सब रज्जु माहिं ज्यौं साप।
सुन्दर रूपौ सीप मैं मृग तृष्णा मंहिं आप॥ ५१॥

जगत विभूका देषि करि मन मृग मानें संक।
सुन्दर कियौ विचार जब मिथ्या पुरुष करङ्क॥ ५२॥

तबही लौं मन कहत है जबलग है अज्ञान।
सुन्दर भागै तिमर सब उदै होइ जब भान॥ ५३॥

---

(४७) मन मनहिं समाय=निर्विकल्प समाधि लग जाय। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जाय।

(५२) विभूका=डरानी चीज़ (जैसे खेत मे पुरुषाकार कुछ स्वरूप बनाकर खड़ा कर देते हैं) मिथ्या पुरुष करक=नकली आदमी की सी सूरत। अथवा मरे जानवर का कङ्काल।

सुन्दर यह मन यो फिरै पानी कौ सौ घेर।
बायु वघूरा पुनि ध्वजा यथा चक्र कौ फेर॥ ३२॥

सुन्दर अरहट माल पुनि चरपा वहुरि फिरात।
धूवा ज्यौं मन उठि चलै कापै पकर्‌यौ जात॥ ३३॥

मन वसि करने कहत है मन कै वसि ह्वै जाहिं।
सुन्दर उलटा पेच है समझि नहीं घट माहिं॥ ३४॥

मन कौ मारत वैठि करि मन मारै वे अंध।
सुन्दर घोरे चढन की घोरा वैठौ कंध॥ ३५॥

सुन्दर करत उपाइ वहु मन नहिं आवै हाथ।
कोई पीवैं पवन कौ कोई पोवै काथ॥ ३६॥

सुन्दर साधन करत है मन जीतन कै काज।
मन जीतै उन सवनि कौ करै आपनौ राज॥ ३७॥

साधन करहिं अनेक विधि देहिं देह कौं दण्ड।
सुन्दर मन भाग्यौ फिरै सप्त दीप नौ षण्ड॥ ३८॥

सुन्दर आसन मारि कै साधि रहे मुख मौन।
तन कौ रापै पकरि कैं मन पकरै कहि कौन॥ ३९॥

तन कौ साधन होत है मन कौ साधन नाहिं।
सुन्दर वाहर सव करैं मन साधन मन माहिं॥ ४०॥

साधत साधत दिन गये करहिं और की और।
सुन्दर एक विचार विन मन नहिं आवै ठौर॥ ४१॥

सुन्दर यह मन रक ह्वै कवहू ह्वै मन राव।
कवहू टेढौ ह्वै चलै कवहू सूधे पाव॥ ४२॥

सुन्दर कवहू ह्वै जती कवहू कामी जोइ।
मन कौ यहै सुभाव है तातौ सियरौ होइ॥ ४३॥

---

(३६) काथ=कथीर अथवा काथा। कामवेग के दमनार्थ ऐसा साधु करते हैं।

पाप पुन्य यह मे कियौ स्वर्ग नरक ह्व जाऊं ।
सुन्दर मन कछु मानि ले ताही ते मन नांउं ॥ ४४ ॥

मन ही वडौ कपूत है मन ही महा सपूत ।
सुन्दर जौ मन थिर रहै तौ मन ही अवधूत ॥ ४५ ॥

मन ही यह विस्तरि रह्यौ मन ही रूप कुरूप ।
सुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥ ४६ ॥

सुन्दर मन मन सब कहै मन जान्यौ नहिं जाइ ।
जौ या मन कौं जाणिये तौ मन मनहिं समाइ ॥ ४७ ॥

मन कौं साधन एक है निस दिन ब्रह्म विचार ।
सुन्दर ब्रह्म विचारते ब्रह्म होत नहिं वार ॥ ४८ ॥

देह रूप मन ह्वै रह्यौ कियौ देह अभिमान ।
सुन्दर समुझै आपकौं आपु होइ भगवान ॥ ४९ ॥

जब मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ ।
सुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ ॥ ५० ॥

मन ही कौ भ्रम जगत सब रज्जु माहिं ज्यौं साप ।
सुन्दर रूपौ सीप मैं मृग तृष्णा महिं आप ॥ ५१ ॥

जगत विझूका देषि करि मन भ्रम मानै सक ।
सुन्दर कियौ विचार जब मिथ्या पुरुष करङ्क ॥ ५२ ॥

तबही लौं मन कहत है जबलग है अज्ञान ।
सुन्दर भागै तिमर सब उदै होइ जब भांन ॥ ५३ ॥

---

(४७) मन मनहि समाय=निर्विकल्प समाधि लग जाय । आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जाय ।

(५२) विझूका=डरानी चीज़ (जैसे खेत मे पुरुषाकार कुछ स्वरूप बनाकर खड़ा कर देते हैं) मिथ्या पुरुष करक=नकली आदमी की सी सूरत । अथवा मरे जानवर का कंकाल ।

सुन्दर परम सुगन्ध सौं लपटि रह्यौ निश भोर ।
पुण्डरीक परमातमा चचरीक मन मोर ॥ ५४ ॥

सुन्दर निकसै कौंन विधि होइ रह्या लै लीन ।
परमानन्द समुद्र मैं मग्न भया मन मीन ॥ ५५ ॥

दृष्टि न फेरै नैंकहू नैंन लगै गोविन्द ।
सुन्दर गति ऐसी भई मन चकोर ज्यौं चन्द ॥ ५६ ॥

इत उत कहू न चलि सकै थकित भया तिहि ठौर ।
सुन्दर जैसें नाद वसि मन मृग विसर्‍या और ॥५७॥

(मन को श्लेष)

धड तौ जाकै चारि है द्वै द्वै सिर है वीस ।
ऐसी वडी वलाइ मन सिर करिले चालीस ॥ १ ॥

सिर तैं द्वै अध सिर करै सिर सिर चहुं चहु पांव ।
ऐसें सिर चालीस हैं मन कहिये क छलाव ॥ २ ॥

सिर जाकै चालीस है असी अरध सिर जाहि ।
पाव एक सौ साठि हैं क्यौं करि पकरै ताहि ॥ ३ ॥

आधे पग हैं तीन सै और अधिक पुनि वीस ।
तिनहू तें आधे करै पट सत अरु चालीस ॥ ४ ॥

---

(५४) पुडरीक=कमल । चचरीक=भौरा । मोर=मेरा ।

(५७) और=अन्य सब पदार्थ (भूलकर) ।

[मन को श्लेष]—यह मन के अग का ही विभाग है इसमें छन्दों की संख्या पृथक् योंही दे दी है । इस वर्णन मे मन की अनतता वा विस्तार बताया गया है । यहां मन=मण चालीस सेर का जो होता है उसके अर्थ में श्लेष है । धड=धड़ी दस सेर की । सिर=सेर । २०×२=४० । सिर तैं अध=एक सेर मे दो आधसेरे होते हैं । सिर २ चहु २ पाव=प्रत्येक सेर में चार पाव वा पव्वे होते हैं । पाव=पाव

डेढ हजार रु एक सौ इतने होहिं अंगुष्ठ।
चौसठि से अंगुली करै मन तें कौन सपुष्ट ॥ ५ ॥
नख की गिनती कौ गिनै तन के रोम अनंत।
ऐसै मन कौं वसि करै सुन्दर सो बलिवंत ॥ ६ ॥
एक पालडे सीस धरि तौलै ताके साथ।
बर चालीस क तौलिये तब मन आवै हाथ ॥ ७ ॥
पंच सीस करि येकठे धरै तराजू आइ।
आठ बार जो तौलिये तब मन पकस्या जाइ ॥ ८ ॥
धरै एक धड पालडै तोलै बरिया चारि।
थोरे मे वसि होइ मन पंडित लेहु विचारि ॥ ९ ॥

पव्वा। ४०×४=१६० पाव एक मण मे होते हैं। असी अरध सिर=४०×२=८० अधसेरे। "आधे पग हैं…" ।=१६०×२=३२० अधपव्वे वा आधपाव एक मण मे होते हैं। "तिनहु ते आधे…" । ३२०×२=६४० आने भर वा छटकी एक मण मे होती हैं। "डेढ हजार…"। १५००+१००=१६००=४०×४० दाम (अंगूठा)। १६००×४=६४०० बिदाम (अगुली)

(७) सीस धरि=अपने आपे को (चालीस) अनेक बार मार दे तब मन बस होय। यहां मुसल्मान फकीरों के चालीस दिन के चिल्ले से भी अभिप्राय हो सकता है। चालीस दिन का रोजा या व्रत वे लोग रखकर तपस्या करते हैं।

(८) पच सीस=पांच सेर। ८×५=४० सेर का मण। यहां पच से पचेंद्रिय। और आठसे अष्टग योग भी अवातर भाव से ले सकते हैं।

(९) एक धड=एक धडी=) दस सेर का। १०×४=४० एक मण। सिर तो पहिले उतर ही गया अब धड की बारी आई। इससे देहाभिमान निवारण का अर्थातर अभिप्रेत हो सकता है। पालडै=न्याय की तराजू। जगत् का व्यवहार जिसमें न्याय से ही विजय मिलती है। थोरे मे=थोरा, थोडा सा सत्यज्ञान जो आत्माभिमान मिटा देने से तुरत मिलता है।

एक सेर कुंजर हणै अति गति तामहिं जोर।
सेर गहे चालीस जिनि मन तें वली न ओर ॥ १० ॥
इद्री अरु रवि शशि कला धात मिलावै कोइ।
सुन्दर तोलै जुगति सौं तव मन पूरा होइ ॥ ११ ॥

चौपई

पांच सात नौ तेरह कहिये। साढे तीन अढाई लहिये।
सब कौ जोर एक मन होई। मन के गार्यें सत्य नहिं कोई ॥ १२ ॥
ज्ञान कर्म इन्द्री दश जानहु। मन ग्यारहो सु प्रेरक मानहु।
ग्यारह मे जव एक मिटावै। सुन्दर तवहिं एकही पावैं ॥ १३ ॥ ७०॥

॥ इति मन को अंग ॥ १५ ॥

---

(१०) एक सेर=शेर (सिंह) ऐसा है कि अकेला ही कुजर (हाथी) को दुहाथल कुमस्थल पर मार कर मार डालता है ऐसे शेर (सेर ॣ१) चालीस मिलकर अर्थात् ४० सेर का एक मण होता है। फिर उसके पराक्रम का क्या पार है। मन में चालीस हाथियों का सा बल है। यह श्लेषार्थ हुआ। अर्थात् महावली है।

(११) इन्द्री ५+रवि १२+शशि १+कला १६+धात ६=४० हुए। धात सात भी होते हैं परन्तु यहां छह ही ग्रहण करने पड़े।

(१२) ५+७+९+१३+३॥+२॥=४० होते हैं। जोतीप के विद्यार्थी भी ऐसा वोलते हैं।

(१३) ज्ञानेंद्रिय पांच है। कर्मेन्द्रिय पाच है=यों १० इन्द्रियां हैं। और ग्यारहवां मन, सो भी अतरेंद्रिय और दशों इन्द्रियों का प्रेरक वा राजा है। १०+१=११ हुए। एकादश इन्द्रियां भी प्रसिद्ध हैं। अव ११ के अंक मे एका निकाल दें पहिले का, तो वाकी एका ही रह जाय। अर्थात् एक जो मन प्रथम उसको मिटा दें तौ १ जो व्रह्म अद्वितीय है सो रह जाय। "अहं ब्रह्मास्मि" "एकोऽह-द्वितीयो नास्ति" महावाक्य के अर्थ की सिद्धि होय।

॥ इति श्लेषार्थः ॥

॥ अथ चाणक को अंग ॥ १६ ॥

छूट्यौ चाहत जगत सौं महा अज्ञ मति मन्द।
जोई करै उपाइ कछु सुन्दर सोई फन्द ॥ १ ॥

जोग करै जप तप करै यज्ञ करै दे दान।
तीरथ ब्रत यम नेम तें सुन्दर ह्वै अभिमान ॥ २ ॥

सुन्दर ऊंचे पग किये मन की अहं न जाइ।
कठिन तपस्या करत है अधो सीस लटकाइ ॥ ३ ॥

मेघ सहै सब सीस पर बरिषा रितु चौमास।
सुन्दर तन कौ कष्ट अति मन मे औरै आस ॥ ४ ॥

सीत काल जल में रहै करै कामना मूढ।
सुन्दर कष्ट करै इतौ ज्ञान न समझै गूढ़ ॥ ५ ॥

उष्ण काल चहु वौर तें दीनी अग्नि जराइ।
सुन्दर सिर परि रवि तपै कौन लगी यह वाइ ॥ ६ ॥

वन वन फिरत उदास ह्वै कंद मूल फल पात।
सुन्दर हरि के नाम विन सबै थोथरी बात ॥ ७ ॥

कूरुस कूटहि कन विना हाथ चढै कछु नांहि।
सुन्दर ज्ञान हृदै नहीं फिरि फिरि गोते पांहि ॥ ८ ॥

बैठौ आसन मारि करि पकरि रह्यौ मुख मौन।
सुन्दर सैन बतावतें सिद्ध भयौ कहि कौंन ॥ ९ ॥

कोउ करै पय पान कौ कौंन सिद्धि कहि वीर।
सुन्दर बालक बाछरा ये नित पीवहि पीर ॥ १० ॥

[अङ्ग १६] चाणक=चाणक्य, कोड़ा, कड़ा उपदेश।

(६) चहु वौर अग्नि=पञ्चाग्नि तपना। वाइ=वायु, रोग।

(७) थोथरी=थोथी, थोथिल्ला।

कोऊ होत अलौनिया पाहिं अलौंनों नाज।
सुन्दर करहिं प्रपंच वहु मान वढावण काज ॥ ११ ॥
धोवन पीवै वावरे फांसू विहरन जाहिं।
सुन्दर रहै मलीन अति समझ नहीं घट माहिं ॥ १२ ॥
एक लेत हैं ठौर ही सुन्दर वैठि अहार।
दाप छुहारी राइता भोजन विविधि प्रकार ॥ १३ ॥
कोउक आचारी भये पाक करैं मुख मूदि।
सुन्दर या हुन्नर विना पाइ सकै नहिं पूदि ॥ १४ ॥
कोउक माया देत है तेरैं भरैं भण्डार।
सुन्दर आप कलापकरि निठि निठि जुरै अहार ॥ १५ ॥
कोउक दूध रु पूत दे कर पर मेल्हि विभूति।
सुन्दर ये पाषण्ड किय क्यौं ही परै न सूति ॥ १६ ॥
यंत्र मत्र वहु विधि करैं झाडा वूटी देत।
सुन्दर सव पापण्ड है अति पडै सिर रेत ॥ १७ ॥
कोऊ होत रसाइनी वात वनावै आइ।
सुन्दर घर मैं होइ कछु सो सव ठगि ले जाइ ॥ १८ ॥
गल मैं पहरी गूदरी कियौ सिंह कौ भेप।
सुन्दर देपत भय भयौ वोलत जान्यौ मेप ॥ १९ ॥

---

(१४) पूदि=(फा०) खवीद—ताजा खूराक। हरी जो जो घोड़ों (या वैलों) को खिलाते हैं। यहा उन वैष्णवों के भोजन-विधान पर कटाक्ष है।

(१५) तेरैं=वे दरदान देनेवाले कहते हैं—"तेरै भडार भरैं"।

(१६) सूति—यह सुन्दरदासजी के जन्म कथा से सम्वन्ध रखनेवाली वात का सकेत है। जग्गाजी ने आंवेर में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत'। यहां अभिप्राय है कि हर एक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती इससे साधारण साधु पाखड ही करते हैं।

मेल्हे पाव उठाइ कै वक ज्यौं माडै ध्यान।
वहौं गटक माछली सुन्दर कमौ ज्ञान॥ २० ॥

सुदर जीव दया करै न्यौता मानै नाहिं।
माया छुवै न हाथ सौं परकाला ले जाहिं॥ २१ ॥

मंत्र स्नान बहुत विधि जटा वधावैं सीस।
माला पहिर तिलक दे सुदर तजै न रीस॥ २२ ॥

केस लुचाइ न ह्वै जती कान फराइ न जोग।
सुदर सिद्धि कहा भई वादि हसाये लोग॥ २३ ॥

सुदर गये टटावरी वहुरि दिगम्वर होइ।
पुनि वाम्मवर वोंढि कै वाव भयौ घर पोइ॥ २४ ॥

रक्त पीत स्वेतावरी काथ रगै पुनि जैन।
सुदर देपे भेप सव कहू न देप्या चैन॥ २५ ॥

॥ इति चाणक को अंग ॥ १६ ॥

॥ अथ वचन विवेक को अंग ॥ १७ ॥

सुदर तवही वोलिये समझि हिये मैं पैठि।
कहिये वात विवेक की नहितर चुप ह्वै वैठि॥ १ ॥

सुदर मौंन गहे रहै जानि सके नहिं कोइ।
विन वोलै गुरुवा कहै वोलें हरवा होइ॥ २ ॥

---

(२१) परकाला—(फा०) टुकड़ा, हिस्सा, चिथड़ा। भावार्थ-गांठ उठाकर या जो हाथ लगे सो लेकर चपत वनैं।

(२४) टटांवरी=टाटचरी, टाट पहिनने वाला साधु।

सुन्दर मौंन गहे रहै तव लग भारी तोल।
मुख बोलैं तें होत है सव काहू कौ मोल ॥ ३ ॥

सुन्दर यौं ही वकि उठै बोलै नहीं विचारि।
सवही कौं लागै बुरौ देत ढीम सौ डारि ॥ ४ ॥

सुन्दर सुनतें होइ सुख तवही मुख तें बोल।
आक वाक वकि और की वृथा न छाती छोल ॥ ५ ॥

सुन्दर वाही वचन है जा महिं कछू विवेक।
नातरु भेरा मैं पर्यौ बोलत मानौ भेक ॥ ६ ॥

सुन्दर वाही वोलिवौ जा वोलैं मे ढग।
नातरु पशु वोलत सदा कौंन स्वाद रस रग ॥ ७ ॥

घूघू कउवा रासिभा ये जव वोलहिं आइ।
सुन्दर तिनकौ वोलिवौ काहू कौं न सुहाइ ॥ ८ ॥

सारो सूवा कोकिला बोलत बचन रसाल।
सुन्दर सवकौं कान दे वृद्ध तरुन अरु वाल ॥ ९ ॥

सुन्दर वचन कुवचन मैं राति दिवस को फेर।
सुवचन सदा प्रकासमय कुवचन सदा अंधेर ॥ १० ॥

सुन्दर सुवचन सुनत ही सीतल ह्वै सव अंग।
कुवचन कानन मैं परै सुनत होत मन भग ॥ ११ ॥

सुन्दर सुवचन तक्र तें राषै दूध जमाइ।
कुवचन काजी परत ही तुरत फाटि करि जाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर सुवचन कै सुनै उपजै अति आनद।
कुवचन काननि मैं परै सुनत होत दुख द्वंद ॥ १३ ॥

---

(६) भेरा=तग वेरा या पानी का गढ़ा।

(१२) तक्र=छाछ। कांजी-खटाई।

सुन्दर वचन सु त्रिविधि है एक वचन है फूल।
एक वचन है असम से एक वचन है सूल॥ १४॥

सुन्दर वचन सु त्रिविधि है उत्तम मध्य कनिष्ट।
एक कटुक इक चरपरे एक वचन अति मिष्ट॥ १५॥

सुन्दर ज्ञान प्रवीण अति ताके आगे आइ।
सरस वचन उचारि कैं वांणी कहै सुनाइ॥ १६॥

सुन्दर घर ताजी वधे तुरकिन की घुरसाल।
ताके आगै आइ के टटुवा फेरै वाल॥ १७॥

सुन्दर जाके वाफता पासा मलमल ढेर।
ताके आगे चौसई आनि धरे वहुतेर॥ १८॥

सुन्दर पचामृत भषै नितप्रति सहज सुभाइ।
ताके आगें रावरी काहे कौ ले जाइ॥ १९॥

सूरज के आगे कहा करै जींगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर ताहि दिपावे पोति॥ २०॥

वाणी मे वहु भेद है सुन्दर विविधि प्रकार।
शब्द ब्रह्म परब्रह्म कौं जानै जाननिहार॥ २१॥

जा वांणी हरि कौ लियें सुन्दर वाही उक्त।
तुक अरु छन्द सवै मिलैं होइ अर्थ सयुक्त॥ २२॥

जा वाणी मैं पाइये भक्ति ज्ञान वैराग।
सुन्दर ताकौं आदरै और सकल कौ त्याग॥ २३॥

जा वानी हरि गुन विना सा सुनिये नहिं कांन।
सुन्दर जीवन देषिये कहिये मृतक समान॥ २४॥

---

(१४) असम=अश्म, पत्थर। कठोर। भारी।

(२०) जींगणा—आगया, जुगनू। पोति=काच की पोत जिस को गहनों मे पिरोते हैं वा बांधते हैं पटुवे।

रचना करी अनेक बिधि भलौ बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी देवल कौनें काम ॥ २५॥

॥ इति वचन विवेक कौ अंग ॥ १७ ॥

॥ अथ सूरातन कौ अंग ॥ १८ ॥

दोहा

सुन्दर सूरातन करै सूरवीर सो जानि।
चोट नगारै सुनत ही निकसि मँडै मैदानि॥ १ ॥

सुन्दर सूर न गासणा डाकि पडै रण मांहिं।
घाव सहै मुख सामहा पीठि फिरावै नांहिं॥ २॥

पहरि सजोवा नीसरै सुणि सहनाई तूर।
सुन्दर रण मैं रुपि रहै तवहिं कहावै सूर॥ ३॥

मुख तैं वॆण न उच्चरै सुन्दर सूर सुजाण।
टूक टूक जब ह्वै पडै सबकौ करै वषाण॥ ४॥

घर मैं सव कोइ वकुडा मारहिं गाल अनेक।
सुन्दर रण मैं ठाहरै सूर वीर कौ एक॥ ५॥

---

(२५) मूरति वाहरी=मंदिर में देवमूर्त्ति नहीं है वा बाहर है तो वह देवालय नहीं है। जीव रहित शरीर मुर्दा है।

[अंग १८] सूरातन=शूर वीरता।

(२) न गासणा=गासणा (वा गिरासणा) खानेवाला गासों का ही नहीं (अपितु रण में टूट पड़नेवाला)। 'गिरासणा' दा० वा० अ० कालका छन्द ५ में आया है।

(४) सव कौ=अन्य सव कोई। (५) वकुड़ा=बाँका, ऐंठदार।

सुन्दर सूरातन बिना बात कहै मुख कोरि।
सूरा तन तब जाणिये जाइ देत दल मोरि ॥ ६ ॥

सुन्दर सूरातन कठिन यह नहिं हांसी षेल।
कमधज कोई रुपि रहै जबहिं होत मुख मेल ॥ ७ ॥

सुन्दर सूरा तन किये जगत मांहिं जस होइ।
सीस समर्पै स्याम कौं संक न आनै कोइ ॥ ८ ॥

सीस उतारै हाथि करि संक न आनै कोइ।
ऐसे महगे मोल का सुन्दर हरि रस होइ ॥ ९ ॥

सुन्दर तन मन आपनौ आवै प्रभु के काम।
रण मैं तें भाजे नहीं करै न लौंन हराम ॥ १० ॥

सुन्दर दोऊ दल जुरैं अरु बाजै सहनाइ।
सूरा कै मुख श्री चढै काइर दे फिसकाइ ॥ ११ ॥

सुन्दर हय हींसै जहां गय गाजै चहुं फेर।
काइर भागै सटक्कै सूर अडिग ज्यौं मेर ॥ १२ ॥

सुन्दर धरती धडहडै गगन लगै उडि धूरि।
सूर धीर धीरज धरै भागि जाइ भकभूरि ॥ १३ ॥

सुन्दर बरछी भलहलैं छूटैं बहु दिसि बांण।
सूरा पडै पतंग ज्यौं जहां होइ घंमसांण ॥ १४ ॥

---

(७) कमधज=कबधज, यह बैंक राठोडों के साथ अधिक लगता है। उनके घड़ों में अनेक बिना माथे लड़े थे।

(११) श्री चढै=श्री चढ़ना, हुशियारी का बढ़ना, वीरता के जोश से शोभा बढ़ना।

(१३) धडहडै=थर्रावे, थरथराहट करै घोड़ों की टापों से। भकभूरि=घण-रान्वा, कायर। घण कहत्ता।

(१४) भलहलैं=चमचमाहट करती फिरैं या चलैं।

सुन्दर वाढाली वहैं होइ झडाझडि मार।
सूर वीर सनमुख रहैं जहां पलकैं सार॥ १५॥

सुन्दर देपि न थरहरै हहरि न भागै वीर।
गहर वडे घमसाण मैं कहर धरै को धीर॥ १६॥

सुन्दर सोई सूरमा लोट पोट ह्वै जाइ।
वोट कछू रापै नहीं चोट मुहैं मुह पाइ॥ १७॥

सुन्दर सूरा तन करै छाडै तन को मोह।
हवकि थवकि पेलै पिसण जाइ चपांवै लोह॥ १८॥

सुन्दर फेरै सागि जब होइ जाइ विकराल।
सनमुख वाहै ताकि करि मारै मीर मुछाल॥ १९॥

सुन्दर सोभै सूरिवा मुख परि वरिपै नूर।
फौज फटावै पलक मैं मार करै चकचूर॥ २०॥

सुन्दर पैंचि कमान कौ भरि करि मारै वान।
जाकै लागै ठौर जिहिं लेकरि निकसै प्रान॥ २१॥

सुन्दर सील सनाह करि तोप दियौ सिर टोप।
ज्ञान पडग पुनि हाथ लै कीयौ मन परि कोप॥ २२॥

---

(१५) वाढाली=वाढ़ (धार) वाली तलवार। पलकैं=पड़ें। सार=लोहे के शस्त्र। फौलादी हथियार।

(१६) हहरि=डरकर। गहर=गहरे, भारी गंभीर। कहर धरै=ऐसे समय में धीरवीर सहमते नहीं हैं। यह जुल्म हो कि वे न लड़ैं। अवश्य लड़ें।

(१८) हवकि=फटकारे से। फुर्त्ती से। थवकि=कूटकर। मारकर। पेलै=पीस डालै (जैसे घाँणी में)। पिसण=शत्रु (काम क्रोधादिक)। लोह चखावै=तलवार से काटै।

(२२) सील=शीलव्रत, ब्रह्मचर्य। सनाह=कवच, बकतर। तोष=सतोष।

सुन्दर निस दिन साधु कै मन मारन की मूठि।
मनकै आगे भागि करि कबहु न फेरै पूठि ॥ २३ ॥

[illegible] मन संग्राम करि पिसुनहु ते घट माहिं।
सुन्दर कोउ सूरमा साधु बराबरि नाहिं ॥ २४ ॥

साधु सुभट अरु सूरमा सुन्दर कहे वषानि।
कहन सुनन कौं और सब यह निश्चय करि जानि ॥ २५ ॥

॥ इति सूरातन कौ अंग ॥ १८ ॥

॥ अथ साधु कौ अंग ॥ १९ ॥

सत समागम कीजिये तजिये और उपाइ।
सुन्दर बहुते उद्धरे सत संगति मैं आइ ॥ १ ॥

सुन्दर या सतसङ्ग मैं भेदा भेद न कोइ।
जोई बैठ नाव मैं सो पारगत होइ ॥ २ ॥

सुन्दर जो सतसङ्ग मैं बैठे आइ बराक।
सीतल और सुगंध ह्वै चन्दन की ढिग ढाक ॥ ३ ॥

सुन्दर या सतसङ्ग की महिमा कहिये कौन।
लोहा पारस कौं छुवै कनक होत है रौन ॥ ४ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग मैं नीचहु होत उतग।
परै क्षुद्र जल गग मैं उहै होत पुनि गग ॥ ५ ॥

---

(२३) मूठि=दाव, वार। (तल्वार को मुठी में रखकर दाव पर रहैं)।

[अङ्ग १९] (३) बराक=दुष्टजन। ढाक=छोले का वृक्ष।

(४) कहिये=कह सकै। रौन=रमणीय, सुन्दर।

(५) उतग=ऊचा।

सुन्दर या सतसङ्ग में शब्दन कौ औगाह।
गोष्टि ज्ञान सदा चलै जैसे नदी प्रवाह॥ ६॥

सुन्दर जौ हरि मिलन की तौ करिये सतसङ्ग।
बिना परिश्रम पाइये अविगति देव अभग॥ ७॥

जौ आवै सतसङ्ग मे ताकौ कारय होइ।
सुन्दर सहजें भ्रम मिटैं समय रहै न कोइ॥ ८॥

सतनि ही तें पाइये राम मिलन कौ घाट।
सहजें ही पुलि जात है सुन्दर हृदय कपाट॥ ६॥

सत मुक्त के पौरिया तिनसौं करिये प्यार।
कूची उनके हाथ है सुन्दर पोलहिं द्वार॥ १०॥

सुन्दर साधु दयाल है कहैं ज्ञान समुझाइ।
पात्र बिना नहिं ठाहरै निकसि निकसि करि जाइ॥ ११॥

सुन्दर साधु सदा कहैं भक्ति ज्ञान वैराग।
जाके निश्चय ऊपजै ताके पूरन भाग॥ १२॥

सतनि के यह वनिज है सुन्दर ज्ञान विचार।
गाहक आवै लेन कौ ताही के दातार॥ १३॥

सतनि के सो वस्तु है कबहू घूटै नाहिं।
सुन्दर तिनकी हाट तें गाहक ले ले जाहिं॥ १४॥

साहु रमइया अति बडा पोलै नहीं कपाट।
सुन्दर बान्यौटा किया दीन्ही काया हाट॥ १५॥

---

(६) औगाह=अवगाहन, श्रवण मनन करना।

(९) घाट=सुस्थान, ठव।

(१०) मुक्त=मुक्ति।

(१४) घूटै=घटै, कमीपर (न आवै)।

(१५) बान्यौटा=छोटासा वनिया, व्यापारी। छन्द १३ से १६ तक

अपना ... बटाइया कीया वहुत निहाल।
... आइल्यो सुन्दर कोठीवाल॥ १६ ॥

सुन्दर आये सतजन मुक्त करन कौं जीव।
सब अज्ञान मिटाइ करि करत जीव तें सीव॥ १७ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै सब कौ भेद।
वचन अनेक प्रकार के प्रगट कहे जे वेद॥ १८ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजे निर्गुन भक्ति।
प्रीति लगै परब्रह्म सौं सब तें होइ विरक्ति॥ १९ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्मल बुद्धि।
जानें सकल विवेक करि जीव ब्रह्म की सुद्धि॥ २० ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै दुर्लभ योग।
आतम परमातम मिले दूरि होहिं सब रोग॥ २१ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै अद्वय ज्ञान।
मुक्ति होय संसय मिटै पावै पद निर्वान॥ २२ ॥

सुन्दर सब कछु मिलत है समये समये आइ।
दुर्लभ या संसार में संत समागम थाइ॥ २३ ॥

मात पिता सबही मिलें भइया बंधु प्रसंग।
सुन्दर सुत दारा मिले दुर्लभ है सतसङ्ग॥ २४ ॥

राज साज सब होत है मन बंछित हू पाइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन बड़े भाग तें पाइ॥ २५ ॥

सुन्दरदासजी ने अपना थोड़ा हाल महाजनी का भी दरसा दिया है। और यह उनकी जीवनी से संबंधित है।

(१७) सीव=शिव, परमात्मदेव।

(२०) सुद्धि=सुध बुध, विवेक ज्ञान।

(२३) थाइ=(गु०) है। होता है। मिलता है।

लोक प्रलोक सबै मिलै देव इन्द्र हू होइ।
सुन्दर दुर्लभ सतजन क्यों करि पावै कोइ ॥ २६ ॥

ब्रह्मा शिव के लोक लौं ह्वै वैकूठहु वास।
सुन्दर और सबैं मिलै दुर्लभ हरि के दास ॥ २७ ॥

राग द्वेष तें रहित है रहित मान अपमान।
सुन्दर ऐसै सतजन सिरजे श्री भगवान ॥ २८ ॥

काम क्रोध जिनि कै नहीं लोभ मोह पुनि नाहिं।
सुन्दर ऐसै संतजन दुर्लभ या जगु माहिं ॥ २६ ॥

मद मत्सर अहंकार की दीन्ही ठौर उठाइ।
सुन्दर ऐसै सतजन ग्रथनि कहे सुनाइ ॥ ३० ॥

पाप पुन्य दोऊ परै स्वर्ग नरक तें दूरि।
सुन्दर ऐसै सतजन हरि कैं सदा हजूरि ॥ ३१ ॥

आयें हर्ष न ऊपजे गयें शोक नहिं होइ।
सुन्दर ऐसै सतजन कोटिनु मध्ये कोइ ॥ ३२ ॥

कोई आइ स्तुती करै कोइ निंदा करि जाइ।
सुन्दर साधु सदा रहै सवही सौं सम भाइ ॥ ३३ ॥

कोऊ तौ मूरप कहै कोऊ चतुर सुजान।
सुन्दर साधु धरैं नहीं भली बुरी कछु कान ॥ ३४ ॥

कवहू पंचामृत भषै कवहू भाजी साग।
सुन्दर संतनि कै नहीं कोऊ राग विराग ॥ ३५ ॥

सुखदाई सीतल हृदय देपत सीतल नैंन।
सुन्दर ऐसें सतजन बोलत अमृत वैंन ॥ ३६ ॥

क्षमावत धीरज लिये सत्य दया सतोप।
सुन्दर ऐसै संतजन निर्भय निर्गत रोप ॥ ३७ ॥

द्वंद कछू व्यापै नहीं सुख दुख एक समान।
सुन्दर ऐसें सतजन हृदै प्रगट दृढ ज्ञान ॥ ३८ ॥

घर वन दोऊ सारिषे सब्रत रहत उदास।
सुन्दर संतनि के नहीं जिवन मरन की आस ॥ ३९ ॥

रिद्धि सिद्धि की कामना कबहू उपजे नाहिं।
सुन्दर ऐसे संतजन मुक्ति सदा जग मांहि ॥ ४० ॥

सुधि माहि वरतै सदा और न जानहिं रंच।
सुन्दर ऐसे संतजन जिनि के कछु न प्रपच ॥ ४१ ॥

सदा रहैं रत राम सौं मन मैं कोउ न चाह।
सुन्दर ऐसे संतजन सबसौं बेपरवाह ॥ ४२ ॥

धोवत है संसार सब गंगा माहैं पाप।
सुन्दर संतनि के चरण गंगा वंछै आप ॥ ४३ ॥

ब्रह्मादिक रुद्रादि पुनि सुन्दर वछहिं देव।
मनसा वाचा कर्मना करि संतनि की सेव ॥ ४४ ॥

सुन्दर कृष्ण प्रगट कहै मैं धारी यह देह।
संतनि के पीछै फिरौं सुद्ध करन कौं येह ॥ ४५ ॥

सन्तनि की महिमा कही श्रीपति श्रीमुख गाइ।
तातें सुन्दर छाडि सब सन्त चरन चित लाइ ॥ ४६ ॥

संतनि की सेवा किये श्रीपति होहि प्रसन्न।
सुन्दर भिन्न न जानिये हरि अरु हरि के जन्न ॥ ४७ ॥

सुन्दर हरि जन एक है भिन्न भाव कछु नाहिं।
सतनि माहैं हरि वसै संत वसै हरि माहिं ॥ ४८ ॥

सन्तनि की सेवा किये हरि की सेवा होइ।
ताते सुन्दर एकही मति करि जाने दोइ ॥ ४९ ॥

सन्तनि की सेवा किये सुन्दर रीझै आप।
जाकौं पुत्र लडाइये अति सुख पावै बाप ॥ ५० ॥

---

(४३) वछै=वांछना करै। चाहै।

सतनि कौं कोउ दुःख दे तब हरि करै सहाइ।
सुन्दर राभै बाछरा सुनि करि दौरै गाइ॥ ५१॥

अठसठ तीरथ जौ फिरै कोटि यज्ञ व्रत दान।
सुन्दर दरसन साधु कै तुलै नहीं कछु आन॥ ५२॥

सतनि ही कौ आसरौ संतनि कौ आधार।
सुन्दर और कछू नहीं है सतसगति सार॥ ५३॥

पावक जारै नीर कौ नीर बुझावै आगि।
सुन्दर वैरी परस्पर सज्जन छूटै भागि॥ ५४॥

उलवा मारै काग कों काक सु हनै उलूक।
सुन्दर बैरी परस्पर सज्जन हस कहूक॥ ५५॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै सु नीच।
चल्यौ अधोगति जाइ है परै नरक के बीच॥ ५६॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै लगार।
जन्म जन्म दुख पाइ है ता महिं फेर न सार॥ ५७॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै कपूत।
ताकौ ठौर कहू नहीं भ्रमत फिरै ज्यों भूत॥ ५८॥

सन्तनि की निंदा कियें भलौ होइ नहिं मूलि।
सुन्दर बार लगै नहीं तुरत परै मुख धूलि॥ ५९॥

स तनि की निंदा करै ताकौ बुरौ हवाल।
सुन्दर उहै मलेछ है वहै बडौ चण्डाल॥ ६०॥

॥ इति साधु कौ अग॥ १९॥

---

(५२) तुलै नहीं=साधु दर्शन के तुल्य वा वरावर और कोई वस्तु नहीं है।

(५५) उलवा=उल्लू पक्षी को दिन में कव्वा मारता है। और रात को उल्लू कव्वे को मारता है। कहूक=कुहक, दुष्टजन।

॥ अथ त्रिपर्ज्जय कौ अंग ॥ २० ॥

सुन्दर कहत विचारि करि उलटी बात सुनाइ।
नीचे कौ मूडी करै तब ऊचे कौं पाइ ॥ १ ॥

अन्धा तीनों लोक कौं सुंदर देषै नैंन।
बहिरा अनहद नाद सुनि अति गति पावै चैन ॥ २ ॥

नकटा लेत सुगन्ध कौं यह तौ उलटी रीति।
सुन्दर नाचै पंगुला गूगा गावै गीति ॥ ३ ॥

[अंग २०] (१) नीचे को मूडी करै=नम्रहोय, अथवा शीर्पासन करै, योग साधै। तब ऊचे कौं पाई=तब ऊचे पग होय। दूसरा अर्थ यह कि तब ऊचा पद वा ऊची अवस्था वा आत्मानुभव की उच्च गति (पार) पावै। यह अंग विपर्यय का इस "साखी" ग्रन्थ में "सवैया" ग्रन्थ के विपर्यय अंग के विचारों से बहुत मिलता-जुलता है। उसमें विस्तृत टीका प्रत्येक के नीचे कर दी है। इस कारण यहां विस्तार अनावश्यक है। थोड़ा थोड़ा अभिप्राय देते हैं। बाकी टीका उस अंग को देख कर इन दोहों का अर्थ जानना चाहिये।

(२) बाहिरी दृष्टि जिसकी रुक गई अंतर्दृष्टि खुल गई वह तीनों लोकों को दिव्य दृष्टि से देखे। जगत् के आकवाक् और बुरी भली के सुनने में श्रवणेंद्रिय जिसकी बन्द हो गई है ऐसा अंतर्नाद अनाहतनाद दश प्रकार को पाकर ब्रह्मानन्द का सुख अनुभव करै। (सवैया अंग २२। छन्द १ का पूर्वार्द्ध देखो टीका सहित)।

(३) नकटा नाम लोकलाज का बन्धन तोड़ कर ब्रह्म कमल की पराग का आनन्दमय सुगन्ध सूघता है। पांगला—जिसकी लौकिक गति मिट कर गुणों की चपलता मिट कर भगवत ध्यान में भगवान के सन्मुख आत्मानन्द का नृत्य करै और गूगा—जिसकी स्थूल वैखरी मध्यमा वाणी तक बन्द होकर परापश्यती खुल गई, सो

कीडी कूजर कौं गिलै स्याल सिंह कौ पाइ।
सुन्दर जल तैं माछली दौरि अग्नि मैं जाइ॥ ४॥

समद समानौ बून्द मैं राई माहे मेर।
सुन्दर यह उलटी भई सूर्य कियौ अन्धेर॥ ५॥

मछली बुगला कौं ग्रस्यौ देषहु याके भाग।
सुन्दर यह उलटो भई मूसै षायौ काग॥ ६॥

ब्रह्म विचार में ब्रह्मसंगीत गाता है। भगवन की वेद मार्ग से स्तुति गीत गाता है। ससार से बकवाद नहीं करै। (सवैया। उक्त)।

(४) कीरी=अति सूक्ष्म विचारवाली शुद्ध ब्रह्मानन्दी बुद्धि। सो कुजर नाम काम-क्रोधादि मस्त हाथियों को निगल गई। उस ज्ञान बल से इन्हें मार दिया। स्याल-आत्मा स्वस्वरूप को भूल दीन स्याल सा हो रहा था। सो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से अपने स्वभाव की स्मृति होने से सशयविपर्यय रूपी अभ्यास जो सिंह सा प्रतीत होता था उसको खा गया—अर्थात् नाश कर दिया। आत्मानुभव से जगत् का मिथ्यात्व स्पष्ट हो गया। जल—सासारिक कायारूपी जल में जीवरूपी मछली अज्ञानवश प्रसन्न थी। परन्तु ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होते ही ज्ञानाग्नि में जाकर पड़ी तब सच्चा सुख मिला उसही में सत्यज्ञान के उदय से दौड़ कर जा पड़ी। अर्थात् अधोगति ससार से निवृत्त हो ऊर्ध्वगति ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई। (स० २२। ३।)

(५) बूंद—जीव अति सूक्ष्म है उसमें ब्रह्म जो महान् अप्रमेय है सो समा गया अर्थात् जीव ब्रह्म एकता को प्राप्त हो गया। राई—अति सूक्ष्म ब्रह्माकार वृत्ति मे अति विशाल मिथ्या जगत्रूपी मेरु था सो निवृत्त हो गया। अर्थात् ब्रह्माकारवृत्ति होते ही जगत् का लय हो गया। सूर्य—ब्रह्मज्ञानरूपी स्वप्रकाशरूपी सूर्य का उदय होते ही अज्ञानरूपी जगत् का अज्ञान मिटते ही अभावरूपी अन्धेरा हो गया। इस सूर्य ने यह बड़ा उत्पात किया कि उदय होते ही भासमान ससार को मिटा दिया। (स०। २२। ४।)

(६) मछली—मनसारूपी मछली ने दंभरूपी बुगला को खा लिया। शुद्ध

सुन्दर उलटी बात है समुझै चतुर सुजान।
सूवै काढे पकरि कै या मिनिकी के प्रान ॥ ७ ॥

गुरु सिष न पायनि पर्यौ राजा हूवौ रंक।
पुत्र बांझ के पगुल सुंदर मारी लंक ॥ ८ ॥

कमल माहि पाणी भयौ पाणी माहे भांन।
भान माहि ससि मिलि गयौ सुंदर उलटौ ज्ञान ॥ ९ ॥

मन की जान हानि मिटी। मूसा=मन चचल चपल मनरूपी चूहे ने अपने भक्षक शत्रु पापरूपी व्याघ्र को खा लिया। मन की चचलता मिटने से सर्व पापवासना निवृत्त हो गई। (स० २२। ५) सवैया में सांप लिखा है।

(७) सूवा— सुवासनायुक्त अंत करणरूपी तोते ने वीप्सारूपी नाशक बिलाई को प्राणांत कर दिया। जब अत करण शुद्ध हो गया तो कामना सब मिट गई। ब्रह्म प्राप्ति सहज हुई। (स० २२। ५)

(८) सिप=शिष्य—जो चित्त, सो अज्ञान अवस्था में मन की सीख में चलकर उसका चेला बना रहा। परन्तु जब ज्ञान पाया तो ज्ञान बल से मन को शिक्षा देने लगा। यों उलटा मन का गुरु बन गया सो मन अब चित्त के आश्रित हो गया। राजा—रजोगुण का अभिमानी मन, अपने बल से जीव को अज्ञान अवस्था में अपने वशवर्त्ती कर रक्खा था। सो ही जीव को ज्ञान की प्राप्ति होने से तो वही मन पर शासन करने लगा। सो मन तो दीन प्रजा हो गया और जीव उसका राजा हो गया।—बांझ—बुद्धिरूपी सात्विकी बांझ नारी के ज्ञानरूपी पागला बेटा हुआ। पागला इस लिए कि मन की चपलतारूपी पांव जिससे विषयादि में बहिर्मुख होता था टूट गये। ऐसे पगु पुत्र ने ससाररूपी लका को विजय किया। अर्थात् बुद्धि जब निर्मल हुई तो ज्ञानोदय उत्पन्न हुआ। ज्ञान से भ्रमरूप जगत् नष्ट हो गया। (स० २२। ६)

(९) कमल—हृदय कमल में प्रेमाभक्तिरूपी सुन्दर निर्मल जल उपजा। उस प्रेमाभक्ति से ज्ञान भानु उत्पन्न हुआ। उस सूर्य ने त्रिविधताप का नाश किया तो

पर धी लै करि घर धरै पर धन हरि हरि पाइ।
पर निंदा निस दिन करै सुन्दर मुक्ति ही जाइ॥ २४॥

मांस भषै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध।
जौ ऐसी करनी करै सुन्दर सोई साध॥ २५॥

जोई ह्वै अति निर्दयी करै पशुन की घात।
सुन्दर सोई उद्धरै और वहे सब जात॥ २६॥

सोवै गोरप="जागे जगत सोवै गोरख" ऐसा शब्द भीख मांगते समय उच्चारण करें। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति सयमी। यस्यां जागर्त्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ।" (गीता)।—सर्व साधारण जीव जिस रात में सोवैं उसमे योगी जागै और जिसमें वे ससारी जागैं उसमें वह योगी सोवै"। इसही के आशयपर गुरु गोरखनाथ के समय से यह कहावत है। गुरु की सीप=गुरु के उपदेश से ऐसी ऊची अवस्था उस जिज्ञासु योगी की हो जाती है (स० २२। १५।)

(२४) परधी=परमात्मा सम्बन्धी बुद्धि। घर=हृदय, अन्त करण। परधन=परमात्मज्ञान वा पराभक्ति। वा सतों से प्राप्त ज्ञान धन। पर निंदा=आत्मा से परे भिन्न जो अनात्म ससार माया उसकी निंदा नाम ग्लानि करै और त्यागै। (स०। २२।१८)

(२५) मांस भषै=पदार्थों में ममतारूपी अमेध्य लालसा को भक्षण कर जाय, अर्थात् नाश कर दे। मोह की मदिरा मदाधता को पीवै, नाम (शिवजी ने जैसे गरल पी लिया वैसे) पीकर निवारण कर सिद्ध योगी बनै। अथवा भगवत्पदारविंद-मकरंदयुक्त मधु-मदिरा पीकर मस्त हो जाय। उसको पीकर ससारी मोह से मोहित न होवै। मांस कहने से यह भी अभिप्राय होता है कि ससाररूपी पशु का ज्ञानी सिंह बनकर वध करै। उसमें के ज्ञानरूपी मांस (तथ्य पदार्थ) को खाय नाम ग्रहण करै और विषयादिक अस्थि आदिक को त्याग दै।

(२६) अति निर्दयी=अति कठोर इन्द्रियरूपी (विषयरूपी चारेको चरनेवाले) पशुओं को मारनेवाला जा जितेंद्रिय पुरुष सो ही ससार सागर से तिरै। (स० २२। १६।)

सुन्दर समुझावै बहू सुनि हे मेरी सास ।
माइ बाप तजि धी चली अपने पिय के पास ॥ २७ ॥

मिल्यौ चरपा गढ्यौ बनाइ ।
स्नेवरी उल्टौ दियौ फिराइ ॥ २८ ॥

सुन्दर सब ही सौं मिली कन्या अपन कुमारि ।
वेश्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागनि नारि ॥ २९ ॥

कलिजुग में सतजुग कियौ सुन्दर उल्टी गंग ।
पापी भरे सु ऊबरे धरमी हूये भंग ॥ ३० ॥

---

(२७) बहू=शुभगुणयुक्त शुद्ध बुद्धि सो ही बहू, अपनी सास सुरत को समझाती है, अर्थात ब्रह्मज्ञान का उपदेश देती है। माइ=माया, बाप=वपु, शरीर और उसके विषयभोग। इन मा बाप को त्यागकर धी जो शुद्धबुद्धि सो अपनी पति परमात्मा के पास चली। (स० २२ । १७ ।)

(२८) बढई=गुरु (जो शिष्यरूपी काष्ट को सुडौल करे) ने चित्तरूपी चर्खा को बना दिया, युक्त कर दिया। यह चित्तरूपी चर्खा शुद्धबुद्धि बहू को फिराने को मिला तो उसने उलटा फिरा दिया। अर्थात् बहिर्मुख हुआ वा किया गया। (स० । २२ । १९ ।)

(२९) कन्या=असंस्कृत जिज्ञासु की कच्ची बुद्धि सो अनेक गुरु और शास्त्रों के पास जाकर सोखे पढे। इस प्रकार वह बुद्धि व्यभिचारिणी (वेश्या) होकर अन्त में एक परम तत्व परमात्मा को पाकर उसही का व्रत धारकर पतिव्रता हो गई। अर्थात् ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए गुरुओं द्वारा सत्य खोजी तब तो व्यभिचार हुआ और अन्त में सिद्धि प्राप्त हुई तब लययोग द्वारा अद्वैत ब्रह्म की प्राप्ति हुई। (स० । २२ । २० ।)

(३०) कलिजुग=मलीन कर्मों में लीन ऐसी काया सोही कलियुग। उसमें सत्य ज्ञान का प्रभाव होने से सतयुग हुआ। भागीरथ की नांई ज्ञान की गंगा को मोड़कर उद्धारक हुआ। इन्द्रियों और उनके विषयों को मारनेवाला ज्ञानी पुरुष

रजनी मैं दीसै दिवस दिन मैं दीसै राति।
सुन्दर दीपक जल गयौ रही विचारी वाति ॥ १७ ॥

सुन्दर वरिषा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल मैं रह्यौ झर लाग्यौ इकसार ॥ १८ ॥

कासा पर्‍यौ पराक्रिदे विजली ऊपर आइ।
घर कौ सब टावर मुवौ सुन्दर कही न जाइ ॥ १९ ॥

सुन्दर माली नीपज्यौ फल अरु फूल समेत।
हाली के कोठा भरे सूके वाडी पेत ॥ २० ॥

---

(१७) रजनी=रात=निवृत्ति (संसार का अभाव)। दिवस, दिन=ज्ञान का प्रकाश, ब्रह्मज्ञान की निष्ठा। दीपक=मोह-ममतारूपी तेल भरा विषयों का दीवा। जल गया=मिट गया, बुझ गया। वाति=वर्त्ति=वाती। ब्रह्मानन्द नामा वृत्ति। (सवैया। अ० २२।। छ० ११ की टीका देखो)।

(१८) वरिषा=वर्षा=निरंतर भजन वा अनाहतनाद ध्वनि। नदी नार=नदी नाले=सब इन्द्रियों द्वारों से वहते रहनेवाले विषय वासना। सूकि गये=सूख गये=मिट गये। मेर=मेरु पर्वत=अति ऊचा मध्यस्थ अहंकार। जल में रह्यो=डूब गया, जाता रहा। झर=भजनता इकसार तार, वा धुन, रटन (सवैया। २२। १८ टीका)।

(१९) कासा=काया, शरीर, जो विषय भोग का वरतन है। विजली=गुरु ज्ञान का चमक्का भरी दामिनी। पराक्रि=पड़ाके शब्द से, झटपट्। घर कौ सब टावर=सब इन्द्रिय और विषय मलिन अंतःकरणकी वृत्तियां। मुवौ=निवृत्त हुए। (उक्त देखो)। टावर=बालबच्चे।

(२०) माली=क्षेत्रज्ञजीव। फल फूल कायारूपी क्षेत्र के नाना विषय भोग। हाली=अंतःकरण (वा मन) के कोठा नाम अन्तरंग वृत्तियों का स्थान। वाड़ी और खेत जो काया के विषयादिक सो सूखे नाम निवृत्त हो गये तब अंतःकरण की वृत्तियां अन्तर्मुखी होने से ब्रह्मानन्दरूपी सच्चे फलों से घर परिपूर्ण हो गया। आत्म-साक्षात्कार हो गया और जगत् की वहिर्मुखता मिट गई। (स०। २२। १३)।

भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हंस भयौ फिरि स्याम।
को जानै कैते भये सुन्दर उल्टे काम॥ २१॥
अग्नि मथन करि नीसरी लकरी सहज सुभाइ।
पानी मथि कर काढियौ सो घृत सुन्दर षाइ॥ २२॥
पत्र माहिं झोली धर जोगी मागै भीष।
सोवै गोरष यौं कहै सुन्दर गुरु की सीष॥ २३॥

(२१) हंस=जीवात्मा जो स्वभाव से सतोगुणमय उज्ज्वल है सो विषयों की कालिमा से स्याम (काला) हो गया था अथवा श्यामसुन्दर का रंग स्याम (भगवद्भक्ति का रंग व ज्ञान) उसे लग गया। भ्रमर=मनरूपी भौंरा जो विषयोंरूपी पुष्पों पर रहता रहा सो अब भगवद्भक्ति, जपतप, और ब्रह्मज्ञान से मलविक्षेप धोकर सपेद (उज्ज्वल निर्मल) हो गया।) (स० अ० २२। १३।)

(२२) अग्नि=भक्त की विरह-अग्नि उसको मथन कहिए अत्यन्त प्रज्वलित करिके अथवा श्रवण-मनन आदिकों से ज्ञान प्रगट करके लकरी काढी नाम लय-योग से ब्रह्माकार वृत्ति निकाली उत्पन्न की। सहज=सहज योगसे आत्मा साक्षात्कार हुआ। पानी=प्रेम (भगवत् की भक्ति) अथवा अन्तःकरणरूपी तरल अथाह मनो-वृत्तियों का समुद्र वा यह संसार, उसको मथि अर्थात् आलोडन वा बिलोकर विचार विवेक करके वा साधन चतुष्टय करके (ज्ञानरूपी) घृत नाम ब्रह्मानन्द निकाला। सो ज्ञानरूपी घृत नित्य खाइये अर्थात् वह तदाकार वृत्ति का आनन्द "घी सो घोट रख्यो घट भीतर" सदा ही निरंतर व्यापै। "यत्प्राप्य न निवर्त्तंते" जिसकी प्राप्ति के अनंतर उल्टा आने का काम नहीं, आवागमन मिट गया।

(२३) पत्र=नाम शुद्ध हृदय (मन) उसमें संसारी कर्मों की झोली नाम झकझोल अर्थात् गुणों की कोथली जिसमें पाप-पुन्य भरे पड़े हैं। धरै=उन कर्मों को एक तरफ उठाकर धरदे नाम त्यागदे। मन शुद्ध होते ही शुभाशुभ कर्म की गांठड़ी छुट जाती है। और जोगी=जिज्ञासु, ज्ञान की भूख का सताया हुआ ज्ञानयोगी ज्ञान की भीष अपने गुरु वा अनुभवी संतों वा ब्रह्मज्ञानियों से मांगै—याचना करै।

धोवी कौं उज्जल कियौ कपरै बपुरौ धोइ।
दरजी कौं सीयौ सुई सुन्दर अचिरज होइ॥ १० ॥
सोनै पकरि सुनार कौं काढ्यौ ताइ कलङ्क।
लकरी छील्यौ बाढई सुन्दर निकसी वङ्क॥ ११ ॥
जा घर मैं बहु सुख किये ता घर लागी आगि।
सुन्दर मीठौ ना रुचै लौंन लियौ सब त्यागि॥ १२ ॥

शशि की सी सीतलता ब्रह्मनंद सुख की उत्पत्ति हुई। वास्तव में सूर्य ही के प्रकाश से चंद्रमा दीप्त होता है और फिर उस चन्द्रमा की शीतल किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं। मन शुद्ध होने से प्रेमाभक्ति हुई। उससे ज्ञान हुआ। ज्ञान से ससार-ताप निवृत्त होकर सच्चिदानन्द ब्रह्म के साक्षात्कार का अक्षय सुख मिला। (स० २२। ७।)।

(१०) धोवी—मनरूपी धोवी जव निर्मल हुआ तो उसने काया को भी निर्मल कर दिया। 'मन निर्मल तन निर्मल भाई'। मननरूपी अतःकरण की माटी मनरूपी कुम्हार को घड़कर सुघड़ बना देता है। वैसे तो मन ही कुम्हार का काम करता है। परन्तु जव ज्ञान की प्राप्ति से मनन शक्ति बढ़ी तो मन के सकल्प तो मिट गये और मनन ने मन को ठीक बनाया। मानों इसने उसका काम किया। यों उल्टा हुआ। सुरति रूपी वारीक सूक्ष्म प्रवेश करने वाली शक्ति जीवरूपी दरजी को (जो असल में कतर व्योंत करने वाला दरजी मानों है) सींवै नाम ब्रह्म में एकता करै। जीव को ब्रह्म में मिलाकर एक कर दे। यह सुई इतना बड़ा काम कर देती है। (स० २२। ९)।

(११) सोना—सुमिरणरूपी सुवरण ने मनरूपी सुनार को ताय (तपा) कर तपश्चर्या आदिक साधनों से निष्कलक शुद्ध कर दिया। लयरूपी लकड़ी ने कर्मरूपी वढई (खाती) को छीलकर नाम निर्विकार करके उसकी वांक निकाल दी। अर्थात् भगवान् में रत हो जाने से कर्मों का संसर्ग मिट गया। ज्ञान से कर्मों की निवृत्ति हो गई तो आवागमन होता रह गया। (स० २२। ९।)।

(१२) जाघर में—कायारूपी घर में, अज्ञान अवस्था में विषय सुख मिले वह

सुन्दर पर्वत उडि गये रुई रह्यो थिर होइ।
वाव बज्यौ इंहिं भांति कौ क्यों करि मानै कोइ॥ १३॥

ल्याली पायौ गाडरें सुसले पायौ स्वान।
सुन्दर यह कंमी भई बधक हि लागौ वान॥ १४॥

ब्रह्मा ऊपर हस चढि कियौ गगन दिशि गौन।
गरुड चढ्यौ हरि पीठि पर सुन्दर मानैं कौन॥ १५॥

वृषभ भयौ असवार पुनि सुन्दर शिव पर आइ।
डाइन ऊपर जरष चढि भली दई दौराई॥ १६॥

घर अब ज्ञानाग्नि से भस्म हो गया। अर्थात् शरीराभिमान व विषयादि वासना मिट गये। मीठा, विषयादि का स्वाद गया और अब भगवत् प्रेमरूपी सुकाराप्यारा लगा, तनसे वह नहीं रुचा, अच्छा नहीं लगा सर्वस्व त्याग एक इस भगवत्-भजन वा प्रेम को ही ग्रहण किया।

(१३) पर्वत—अहंकार का अभिमान ही पर्वत था सो ज्ञान की पवन से उड़ गया। और सात्विक वृत्तिरूपी रुई जो निर्मल स्वच्छ और गुरुता रहित है अतःकरण में जम कर बैठ गई दृढ़ हो गई। वाव=पौन। विचारवान पुरुष ही मानें, अन्य क्या समझें। (स० २२। १०)।

(१४) ल्याली=भेड़िया। गाडरैं=भेड़ वा भेड़ा, मींढा। सात्विकी वृत्ति के रहने और अभ्यास से मन के विकाररूपी भेड़िये को खाया अर्थात् नाश कर दिया। शील सतोपरूपी सुस्से ने क्रोध क्रूरता सत्कार्य मे अरुचि और संतों को देख भौंकने-वाली स्वानरूपी दुष्ट वृत्ति को खाया नाम निवारण किया। (सवैया मे ऐसा विपर्यय नहीं है।)

(१५) हस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरुड़=ज्ञान। हरि=सतोगुणी ईश्वर। वृषभ बैल=शरीर। शिव=तमोगुण। गगन=अनत में। (देखो "सवैया" अग २२। छंद ८ की टीका।)

(१६) डाइन=बुरी मनसा। पदार्थों की घणी लालसा। जरष=सकल्प विकल्प भरा मन। (देखो उक्त टीका)।

विप्र रसोई करत है चौके काढी कार।
लकरी में चूल्हा दियौ सुन्दर लगी न वार ॥ ३१ ॥
रोटी ऊपर पोइकै तवा चढायौ आनि।
खिचरि मांहे हण्डिका सुन्दर राधी जानि ॥ ३२ ॥
पहराइत घर कौं मुसै साह न जानै कोइ।
चोर आइ रक्षा करै सुन्दर तव सुख होइ ॥ ३३ ॥

(हत्यारा होकर) ऊवरा अर्थात् ससार को तिर गया। और इन्द्रियों का पोपण और विषयों का सुख माननेवाला ससारी जीव (उनको न मारने से) धर्मी कहाया परन्तु उसकी आत्मा की हानि हुई इससे उसका नाश ही है अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। (स० । २२ । २० ।)

(३१) विप्र=वेदादिशास्त्रों का ज्ञाता ज्ञानी पुरुष वा जीव रसोई नाम ज्ञान भक्ति करने लगा तव चौका नाम अन्त करण चतुष्टय में साधन चतुष्टय करने लगा वहां ससार का वहिष्कार कर दृढ वृत्ति की मर्यादा कर दी। और लकरी नाम अन्त-र्मुख की लय तल्लीनता में चूल्हा नाम चित्त को दिया नाम लगाया। ऐसा तत्क्षण हो गया विलम्व नहीं लगी। "क्षिप्र भवतिधर्मात्मा" (गीता) इस वचन से ज्ञान के उदय होते ही अज्ञान तिमिर का नाश हो गया।

(३२) रोटी नाम रटन निरन्तर भगवत् का भजन उसपर नाम उसमे तवा नाम तत्वज्ञान का सुदृढ रक्षण तवा (ढाल) चढाया नाम योगारूढ हुआ। तव तत्व ज्ञान प्राप्त हो गया। खिचरी नाम भक्ति और ज्ञान मिश्रित साधन खाद्य पदार्थ तामें हण्डिया नाम इस काया को रांधी नाम लीन कर दी और रधने से सिद्धान्त समान युक्त पदार्थ हो गई। "काया भई कपूर"। सिद्धों की काया नूरानी और तेजोमय हो जाती हैं। (स० । २२ । २१ ।)

(३३) पहराइत=ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय जो नवद्वारों पर वैठी अपने रक्षा कर्म से विमुख होकर विषय लोलुपता उत्पन्न कर मन आदि अन्त करणरुपी घर को पट कर दिया। तव वह प्रसिद्ध चोर श्रीनारायण भगवान ने अपने जन पर दया कर

न
नं ज न
न ज रं ज नं
न ज रं नि रं ज नं
नं ज रं नि हु नि रं ज नं
नं ज रं नि हु ज हु नि रं ज नं
नं ज रं नि हु ज भ ज हु नि रं ज नं
नं ज रं नि हु ज भ र भ ज हु नि र ज नं
न ज रं नि हु ज भ द र भ व नि रं ज नं
नं ज रं नि हु ज भ र द सुं द र भ ज हु नि रं ज

द र भ ज हु नि रं ज नं

सुनहुं अर्क की आदि
दग्राइक बिधि सात केते।
रस भोजन पुनि जान
भनौ योग गहि जेते॥
जलज नाभि दल बृष्टि
हुई कैं कंचन बानी।
निरषि भुवन पुनि कहौ
रभ वय किती बषानी॥
जग माहिं जु प्रगट पुरान कै
नंदन नरव कर पग गनं।
सब साधन कै सिर छत्र यह
सुंदर भजहु निरंजनं॥१॥

डौ कए दिआन्यो सुं
।कंए कदिकानस शा द
हं कटष नजभो स र
॥ कंबेवि गर्ष्टत्र तन भ
मसद लद भिनाज ल ज
।गवा नीवालिक ई हु
रिचा सद कलो षिर नि
॥ राप्या षत्र सडषो भ रं
सदष्टत्र सु नराषु हिमा ग ज
।नग हु सवी खन नद नं
हयत्र छ रसि कै नधसा व स
॥२॥ नजरनि हुजभ रदसुं



छत्रबंध

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

छत्रबन्ध

पढ़ने की विधि —

'सुन्दर भजहु निरजन" यह उल्लाला छन्द का चरणार्ध छत्र मे नीचे ऊपर सवत्र पढा जाता है। यही छप्पय के आद्यक्षरो मे उल्लाला के प्रथमार्ध तक पढा जाता है। और यही वहिर्लापिका के उत्तर की छप्पय के आद्यक्षरो मे दाहिनी पार्श्व मे पढा जाता है। वहिर्लापिका इस प्रकार है कि प्रथम छप्पय मे प्रश्न है और द्वितीय मे उत्तर है। अङ्क दो-दो बढ कर बीस तक गये है। इसके दो प्रयोजन प्रतीत होते है। एक तो उक्त पद के दो वेर के १०×२=२० अक्षर। दूसरे निरजन का भजन ही बीसों बिस्वा सब साधनो मे छत्रवत् शिरोमणि और राजा समान छत्रधारी और संसार से रक्षा करनेवाला है।



कोतवाल कौं पकरि कै काठी राख्यौ जूरि।
राजा भाग्यौ गाव तजि सुन्दर सुख भरपूरि ॥ ३४ ॥
नाइक लाद्यौ उलटि करि बैल विचारै आइ।
गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ ॥ ३५ ॥
सुन्दर राजा विपति सौं घर घर मागै भीप।
पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न बीप ॥ ३६ ॥

उन कृतघ्न पहरियों को मार कर अर्थात् इन्द्रिय दमनकर अन्त करण के घर की रक्षा की अर्थात् चित्त को भगवत् के अन्दर लगा दिया। तब ससार के त्रिविध दु खों से छुटकारा पाकर ब्रह्मानन्द सुख पाया। (स० २२। २४।)

(३४) कोतवाल=अज्ञान काल मे चचल मन। उसे जूरि राख्यो=सकल्प से निरोध किया। राजा=रजोगुण। गाव=अन्तःकरण। कोतवाल के बल पर राजा राज करता था। जब कोतवाल कैद हो गया तो राजा का बल नष्ट होने से लज्जित हो घरबार छोड़ भाग गया। चित्तवृत्ति के निरोध से सतोगुणी वृति की वृद्धि हुई तब रजोगुण नहीं रहा तो शाति मिली।

(३५) बैल=बलीवर्द बलवान अहकार वाला यह जीव निष्काम वृत्ति धारण करके अपने कर्मभार को नाइक नाम ब्रह्म पर धर दिया। "ब्रह्मण्याधाय कर्माणि" (गीता) कर्मों का अपने ऊपर न लेकर ब्रह्म मे अर्पण करै। इस वचन प्रमाण से आइ नाम इस ससार मे बिचारै नाम लाइलाज कर्मों के फलो के भोगवश ससार मे मनुष्य देह पाकर यह सुकृत गुरु के उपदेश से किया। और गौन वा गौण—गुणानाम इदम् गौणम्—गुणों (सत-रज-तम)) से बने सो गौण (बोरा) अर्थात् गुणो से उत्पन्न हुए कर्मों को वस्तु—सत्य पदार्थ-ब्रह्म मे भर दिये नाम अर्पण कर दिये। हरिपुर-हरि जो भगवान् ब्रह्म—उसका पुर दिसावर लोक—ब्रह्मलोक तुर्यावस्था को जाइ नाम प्राप्त हो गया। (स० २२। २२।)

(३६) राजा=रजोगुण युक्त जीव (वा मन)। विपति नानाप्रकार तृष्णाओ से लिप्त और उनके पूर्ण करने के यत्नो मे पड़ा और फसा हुआ अनेक शुभाशुभ कर्म

पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार।
पावक आयौ पूछनै सुन्दर वाकी सार ॥ ३७ ॥
जौ तू मेरी सीषले तौ तू सीतल होइ।
फिरि मोही सौ मिलि रहै सुन्दर दु ख न कोइ ॥ ३८ ॥
पथी माहे पंथ चलि आयौ आकसमात।
सुन्दर वाही पथ गहि उठि चाल्यौ परभात ॥ ३९ ॥

करै और अनेक पुरुषों से सहायता चाहै और इन्द्रिय द्वारों मे आश्रय ढूढे। विषयों के भोगों से शरीररूपी घोड़ा वाहन थक गया निर्वल निकम्मा हो गया तब अशक्त हुआ भी पाय पयादा नाम मनोवृत्ति से सकल्प मात्र ही से तृष्णाओं के भोगों का विचार कर मन डुलता रहै। अर्थात् मन की वासना तो शक्तिहीन होनेपर नहीं मिटी। भीष=भिक्षा। वीप=वीख, एक प्रकार की हलकी चाल घोड़े की। (स० । २२ । २५ ।)

(३७) पानी=प्रेम से उत्पन्न विरह की तपत। उसको ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होकर वुझावै। अर्थात् विरह सताप पक्कज्ञान के पैदा होने से निवृत्त होता है। जिज्ञासु ज्ञानी सिद्धों को, ज्ञान-पिपासा मिटाने को, ढूढता है तो दयाकर ज्ञानी सिद्ध अग्निस्वरूप ज्ञान की मानों मूर्त्ति ही उस विरह कातर की सम्हाल करके उसका समाधान करके ससार जनित त्रिविध ताप को निवारण करता है। (स० । २२ । २६ ।)

(३८) सीतल=ज्ञान प्रेम को कहता है कि मेरे उपदेश से तू (जो स्वभाव से शीतल है) सीतल हो जाय। फिर प्रेम और ज्ञान एकमेक हो जाय। भक्ति मे प्रथम द्वैत भाव अवश्य रहता है तब ही तो भक्त अपने उपास्य की प्राप्ति में विह्वल होता है। जब होते होते पराभक्ति की मजिल आ पहुचती है तब ज्ञान (अर्थात् अद्वैत ज्ञान—अपरोक्षानुभूति) दशा प्राप्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है। (स० । २२ । २६ ।)

(३९) पथी=मुमुक्षु सत साधक के भीतर पंथ जो स्वयम् ज्ञान आकर प्राप्त हुआ। उस ज्ञानरूपी पथ के मुमुक्षु पथी में प्रवेश होते ही वह सुवेला (ब्रह्म प्राप्ति

चलत चलत पहुंच्यौ तहा जहा आपनौ भौंन।
सुन्दर निश्चल ह्वै रह्यौ फिरि आवै कहि कौंन ॥ ४० ॥

बन में एक अहेरिये दीनी अग्नि लगाइ।
सुन्दर उलटैं धनुष सर सावज मारैं आइ ॥ ४१ ॥

मार्‍यौ सिंह महा बली मार्‍यौ व्याघ्र कराल।
सुन्दर सबही घेरि करि मारी मृग की डाल ॥ ४२ ॥

सुन्दर सरवर सूकतैं कंवल प्रफुल्लित होइ।
हंस तहा क्रीडा करै पंपी रहै न कोइ ॥ ४३ ॥

का विशेष समय ब्राह्म मुहूर्त) में, आप ज्ञानरूप होकर योगारूढ होकर ब्रह्मरूप होने को स्वयम् चल पड़ा। (सु० । २२ । २८ ।)

(४०) चलत=उग ज्ञान मार्ग मे ज्ञानरूप होकर यह ज्ञानी ऊर्द्धगामी होकर ब्रह्मलोक, निज ज्ञान भवन, में जा पहुंचा। और वहां निश्चल हो गया। "य प्राप्य न निवर्त्तते तद्धाम परम मम" (गीता) यह परमोत्कृष्ट निज ब्रह्म का धाम है वहां पहुच कर ज्ञानी फिर नहीं लौटता। वहीं ब्रह्ममय ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्मानन्दरूपी हो रहता है। (उक्त ।)

(४१) बन मे—संसार के विषय भोगरूपी बन। अहेरिया=शिकारी, साधक संत। अग्नि=ज्ञानकी अग्नि। धनुष=ध्यान। सर=बाण, लक्ष्यपर चित्त वृत्ति। सावज=शिकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक दुष्ट पशुरूपी पातक। (सु० । २२ । २९ ।)

(४२) सिंह=अहंकार या काम। व्याघ्र=बहिर्मुख मन या मोह। मृग की डाल=इन्द्रियों का समूह। डाल=डार, झुंड। इन सब को मारा नाम जय किया। (उक्त ।)

(४३) सरवर=संसाररूपी ताल या छोटा समुद्र। उसका सूखना=निःशेष होना। कंवल=शुद्ध हृदय या शुद्ध बुद्धि। प्रफुल्लित=ब्रह्मानन्द पाकर परम हर्षित होना। हंस=ब्रह्मानन्द प्राप्त सन्त। क्रीडा=ब्रह्मानन्द सुख में मग्न होना। पंपी=संसारी

कूप उसार्‌यौ कुंभ मैं पानी भर्‌यौ अटूट।
सुन्दर तृषा सबै गई धापे चार्‌यौं षूट ॥ ४४ ॥

सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गई सब साष।
नींब फल्यौ बहु भाति करि लागै दाड्यौ दाष ॥ ४५ ॥

मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ करवो लाग्यौ मीठ।
सुन्दर उलटी बात यह अपनै नैंननि दीठ ॥ ४६ ॥

जीवरूपी पक्षी, अथवा वहिर्मुख वाहर ससार के विषयों के चुगनेवाले पक्षीरूप चित्त के विकार वा वृत्तियां।

(४४) कूप=विषयरूपी अध कूप जिसमें वासना तृष्णारूपी जल भरा हुआ है। कुभ=मन शुद्ध मन। उसारयो=छिटकाया। मन के एकाग्र वा शुद्ध हो जाने पर विषयादिक निवृत्त हो गये। पानी=प्रेम वा ज्ञान। अटूट=अनत, अथाह। तृषा=मृग-तृष्णा, वा विषय वासना। गई=मिट गई। धापे=तृप्त हुए। चारयों षूट=चारों कौने। अत करण चतुष्टय। दिव्य ज्ञान की प्राप्ति से परमानन्द प्राप्त हुआ तो फिर काई भूख प्यास, इच्छा, कामना अवशेष ही नहीं रही। सर्व परिपूर्ण हो गया।

(४५) बरिषा=गुरु शास्त्र द्वारा उपदेश प्राप्त होकर साधन चतुष्टय किया तो ज्ञानामृत की वर्षा इतनी हुई कि सांसारिक विषय भोगादि की खेती सब नष्ट हो गई, अर्थात् ज्ञानरूपी वर्षा से विषयरूपी वाडी सूख गई नाम निवृत्ति हो गई। और अन्य वृक्ष तो सूख गये परन्तु केवल प्रथम जो कड़ुवा लगता था उपदेशरुपी कल्पवृक्ष सो तो मीठे फलों से (दाडिम अनार और दाख अगूर आदिक) फलवाला हो गया, नाम सत्य, निष्कामता, अमानता, अदभ, अहिंसा, तितिक्षा आदि फल लगे।

(४६) मिष्ट=संसारका सुख जो आदि में मीठा सुप्यारा लगता था वह त्याग वैराग्य प्राप्त हुआ तब कडुवा लगा। और त्याग वैराग्य जो पहिले कडुवा लगता था वह अब मीठा प्रिय लगने लगा। सुन्दरदासजी ने यह बात निज अनुभव से कही है। अथवा निज गुरु दादूजी और अन्य महात्माओं का भी यही हालत अपने आंखों देखा है।

मित्र सु तौ वैरी भये वैरी हूये मित।
सुन्दर उलटी बात सौं भागी सबही चित ॥ ४७ ॥

ऊजर मैं वस्ती भई वस्ती भई उजारि।
सुन्दर उलटे पेच कौं पंडित देषि विचारि ॥ ४८ ॥

नीच सु तौ ऊंचौ भयौ ऊंचौ हूवौ नीच।
सुन्दर उलटौ ज्ञान है इनि साषिन कै बीच ॥ ४९ ॥

सुन्दर सब उलटी कही समुझै संत सुजान।
और न जांनै बापुरे भरे बहुत अज्ञान ॥ ५० ॥

॥ इति विपर्जय को अंग ॥ २० ॥

---

(४७) मित्र=मोह, ममता, सुत, कलत्र, कनक आदि सब हेय और अप्रिय हो गये। वे मोक्ष मार्ग में बधन होने से शत्रु समान लगने लगे। और जो प्रथम वैरी समान अप्रिय लगते थे, साधु संत, शास्त्र, सत्संग, भजन, भक्ति वे अब मोक्ष के सच्चे साधन होने से मित्र समान प्यारे लगने लगे।

(४८) ऊजर=उजाड़, निर्जन स्थान, वा अंतरंग अन्तःकरण का लोक जिसमें ज्ञान प्राप्ति से पहिले मन की वृत्तियां अन्तर्मुख होकर नहीं बैठती वा बसती थीं। अथवा विविक्तदेश, निर्जनस्थान में त्यागी संत बसते हैं। वस्ती=विषय-लोलुप बहिर्मुख इन्द्रिय विषयादि का संसार उजड़ गया नाम अब मन और अन्तःकरण की वृत्तियां इधर से उठ गईं। अथवा त्यागी वैरागी ने घर बार सब छोड़ दिये और बन में जा बसे।

(४९) नीच=जो प्रथम कुसंग और कुकर्मरत था वह सत्संग और सत्कर्म से उत्तम हो गया। और जो उच्चकुल का वा अच्छा था वह कुसंग और कुमार्गगामी हो जाने से अधोगति को प्राप्त होकर नीचा गिर गया।

(५०) अर्थ स्पष्ट है।

॥ इति साषी का अंग २० विपर्यय शब्द का सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्तम् ॥ २० ॥

॥ अथ समर्थाई आश्चर्य को अंग ॥ २१ ॥

दोहा

सुन्दर समरथ राम है जे कछु करै सु होइ ।
जो प्रभु कौ कछु कहत है ता सम बुरा न कोइ ॥ १ ॥

कर्त्तुमकर्त्ता अन्यथा सुन्दर सिरजनहार ।
पलक मांहि उतपति करै पलक माहि संहार ॥ २ ॥

ज्यौ हरि भावै त्यौ करै कौंन कहै यह नाहिं ।
अग्नि उपावै पलक मैं सुन्दर पाला मांहि ॥ ३ ॥

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै काले धौले रंग ।
धौले तें काले करै सुन्दर आपु अभंग ॥ ४ ॥

सुन्दर समरथ राम की मो पै कही न जाइ ।
पलही मैं जल थल भरै पल मैं धूरि उड़ाइ ॥ ५ ॥

सुन्दर समरथ राम कौ करत न लागै वार ।
पर्वत सौं राई करै राई करै पहार ॥ ६ ॥

सुन्दर सिरजनहार कौ करतें कैसी शंक ।
रङ्कहि लै राजा करै राजा कौं लै रङ्क ॥ ७ ॥

सुन्दर सिरजनहार की सबही अद्भुत वात ।
गर्भ माहिं पोषत रहै जहां गम्य नहिं मात ॥ ८ ॥

सुन्दर समरथ राम कौं कहत दूरि तें दूरि ।
पलक माहिं प्रगटै सही हृदये मांहि हजूर ॥ ९ ॥

---

(२) 'कर्त्तुमकर्त्ता '। भगवान शब्द की परिभाषा—कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम् समर्थ । अच्छा बुरा करने न करने के लिए जो सामर्थ्य रक्खे वही भगवान (ईश्वर) है । सवशक्तिमान परमात्मा है ।

राम की महिमा कही न जाइ।
क्यों करि राष्यौ छाइ ॥ १० ॥
सुन्दर अगम अगाध गति पल में बादल होइ।
गरज चमक बिजली बरषन लाग तोइ ॥ ११ ॥
च न देषिये सुद्ध रहै आकाश।
रामजी उत्पति करै रु नाश ॥ १२ ॥
एक बूंद तें चित्र यह कैसौ कियौ बनाइ।
सुन्दर सिरजनहार की रचना कही न जाइ ॥ १३ ॥
संजोग करि अद्भुत कीयौ ठाट।
रामजी भिन्न भिन्न करि घाट ॥ १४ ॥
करै हरै पालै सदा सुन्दर समरथ राम।
सबही तें न्यारौ रहै सब में जिन कौ धाम ॥ १५ ॥
माया करी आपु निरंजन राइ।
देषिये बहुरया जाइ बिलाइ ॥ १६ ॥
उपजे बिनसे जगत सब सुख दुख बहु संताप।
सुन्दर करि न्यारा रहै ऐसा समरथ आप ॥ १७ ॥
हर करता राम है भरता और न कोइ।
ना बर्ड जानिये ऐसा समरथ सोइ ॥ १८ ॥
जाकी आज्ञा में सदा धरती अरु आकास।
ज्यों राषै त्यों ही रहै सुन्दर मानहिं त्रास ॥ १९ ॥

---

(११) ताई=तोय, जल।

(१२) कछुव=कुछ भी।

(१३) एक बूद तें=एक (रज वीर्य के) विन्दु से। चित्र=तसवीर, मूर्त्ति, शरीर
ाकार, पशु-पक्षी, मछली बानर, मृग-मनुष्यादिक का।

(१४) घाट=घड़त, बनावट।

(१६) अजन=कालुष्य, अविद्या, जड़ प्रकृति।

पावक पानी पवन पुनि सुन्दर आज्ञा माहि ।
चन्द सूर फिरते रहैं निश दिन आवैं जाहिं ॥ २० ॥
जाकी आज्ञा मैं रहै सुन्दर सप्त समुन्द्र ।
सबही मानहिं त्रास कौ देवन सहित पुरद्र ॥ २१ ॥
जाकी आज्ञा मैं रहै ब्रह्मा विष्णु महेस ।
सुन्दर अवनि अनादि की धारि रहे सिर सेस ॥ २२ ॥
सुन्दर आज्ञा मैं रहै काल कर्म जमदूत ।
गण गधर्व निशाचरा और जहा लगि भूत ॥ २३ ॥
सिध साधिक जोगी जती नाइ रहे मुनि सीस ।
सुन्दर सबही कहत हैं जै जै जैं जगदीस ॥ २४ ॥
आज्ञा माहि सदा रहैं सुन्दर बरुन कुबेर ।
अष्ट कुली पर्वत सहित आज्ञा माहि सुमेर ॥ २५ ॥
सुन्दर आज्ञा मैं रहै दशौं दिशा दिग्पाल ।
हलै चलै नहिं ठौर तें बीति गये बहु काल ॥ २६ ॥
छपन कोटि आज्ञा करैं मेघ पृथी पर आइ ।
सुन्दर भेजैं रामजी तह तह बरषै जाइ ॥ २७ ॥
रिद्धि सिद्धि लौंडी सदा आज्ञा मेटै नाहि ।
सुन्दर मानै त्रास अति प्रभु भेजै तह जाहि ॥ २८ ॥
आज्ञा माहीं लक्ष्मी ठाढी है कर जोरि ।
सुन्दर प्रभु सनमुख रहै दृष्टि सकै नहिं चोरि ॥ २९ ॥

---

(२२) अवनि=पृथ्वी । सेस=शेष सहस्त्रमुख से पृथ्वी को शिर पर सदा धारे रहते हैं । ऐसा पुराण में लिखा है ।

(२७) आज्ञा करैं=(प्रभु की) आज्ञा पाने से । आज्ञा करने से ।

(२८) लौंडी=दासी ।

(२९) दृष्टि चोरि=निगाह के अनुसार वरतैं ।

तत्व सब होइ देह को संग।
जुद रहै आज्ञा करै न भंग ॥ ३० ॥
आज्ञा माहें रहत हैं सप्त दीप नौ षंड।
सुन्दर प्रभु की त्रास तें कंपै सब ब्रह्मंड ॥ ३१ ॥
त्रास ते कंपै सबही लोक।
रहत है सुन्दर तुम को धोक ॥ ३२ ॥
उभै बाहु चहु बाहु पुनि अष्ट बाहु भुज बीस।
सहस्र बाहु नहिं लिषि सकै सुन्दर गुन जगदीस ॥ ३३ ॥
चतुरानन पंचानन षटसीस।
कहि थकै सुन्दर गुन जगदीस ॥ ३४ ॥
उभै अष्ट दश द्वादशा अरु कहिये पुनि बीस।
द्वै सहस्र लोचन थके सुन्दर ब्रह्म न दीस ॥ ३५ ॥
एक रसन चहु रसन पुनि चन षष्ट दश आहि।
द्वै सहस्र मुनि नेग के बरनि सकै नहि ताहि ॥ ३६ ॥

(३०) देह को संग=देह के संगी बन। देह का संग दे। बहुरि=मृत्यु के समय आत्मा तत्व से पृथक् हो जाय।

(३२) धोक=टोक कर, झुक कर।

(३३) उभै बाहु=मनुष्य। चहु बाहु=देवता। अष्ट बाहु=देवी, शक्ति। भुज बीस=रावण। सहस्रबाहु=सहस्रार्जुन।

(३४) एकानन=मनुष्य। चतुरानन=ब्रह्मा। पचानन=महादेव=षटसीस=षडानन स्वामिकार्तिक। दश=दशानन=रावण। सहस्रानन=शेष। ३४। 'सहस्रानन' का 'स' ह्रस्व से पढिए।

(३५) उभै आदिक नेत्र उपरोक्त मस्तकों मे प्रत्येक में दो २ करके।

(३६) एक रसन आदि उसही तरह एक २ करके उपरोक्त के जिव्हा। द्वै कहते हैं कि सर्प के दो जिव्हा एक मुख में होती है।

एक सीस च्यहुं सीस पुनि पंच सीस पट सीस।
दश सिर और सहस्र सिर नमत सकल जगदीस ॥ ३७ ॥

सूरति तेरी खूब है को करि सकै बषान।
बानी सुनि सुनि मोहिया सुन्दर सकल जिहान ॥ ३८ ॥

पलक मांहिं परगट करै पल मैं धरै उठाइ।
सुन्दर तेरे ष्याल की क्यौं करि जानी जाइ ॥ ३९ ॥

ज्यौं का त्यौ ही देषिये सुन्दर सब ब्रह्मंड।
यह कोई जानै नहीं कबकी माडी मड ॥ ४० ॥

सांई तेरी अगम गति हिकमति की कुरवान।
सब सिरजै न्यारा रहै सुन्दर यह हैरान ॥ ४१ ॥

शेष मसाइक औलिया सिध साधिक मुख मौंन।
वै भी बैठै थाकि करि सुन्दर बपुरा कौन ॥ ४२ ॥

प्रीतम मेरा एक तू सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

धन्य धन्य मोटा धनी रच्या सकल ब्रह्मंड।
सुन्दर अद्भुत देषिये सप्त दीप नौ षंड ॥ ४४ ॥

उतपति सांई तैं किया प्रथम हि वो ऊंकार।
तिसतें तीनौ गुन भये सुन्दर सब विस्तार ॥ ४५ ॥

तिनका रच्या सरीर यह महल अनूपम एक।
चौरासी लष जूनु ये सुन्दर और अनेक ॥ ४६ ॥+

---

(४०) मंड=मंडान, सृष्टि।

(४१) कुरवान=वलिहारी (अ०)।

(४५) ऊकार=ऊंकार से सृष्टि की उत्पत्ति वेदशास्त्र में कही है।

(४६) +मूल पुस्तक (क) में 'जू जुये' ऐसा पाठ है। इसका अर्थ वारिश में छोटे रेंगनेवाले जीव भी हो सकता है। परन्तु हमें लेखक दोष वा भ्रम ही प्रतीत

आप न बैठा गोपि ह्वै सुन्दर सब घट माहि।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहि॥ ४७॥

ऐसी तेरी साहिबी जानि न सकै कोइ।
सुन्दर सब देषै सुनै काहू लिप्त न होइ॥ ४८॥

करै करावै रामजी सुन्दर सब घट माहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब है लिपै छिपै कछु नाहिं॥ ४६॥

बाजीगर बाजी रची ताकौ आदि न अंत।
भिन्न भिन्न सब देषिये सुन्दर रूप अनंत॥ ५०॥

काढि काढि बाहिर करै राते पीरे रंग।
सुन्दर चांवर धूरि के पंष परेवा संग॥ ५१॥

कबहुं मिलावै गोटिका कबहूं बीछुरि जाहि।
सुन्दर नाचै जगत सब ऐसी कल तुझ माहि॥ ५२॥

अंजन कीया नैंन मैं सबही रापै मोहि।
सुन्दर हुनर बहुत हैं कोइ न जांनै तोहि॥ ५३॥

ब्रह्मादिक शिव मुनि जनां थाके सबही संत।
सुन्दर कोउ न कहि सकै जाकौ आदि न अंत॥ ५४॥

सुन्दर सब चकित भये वचन कह्या नहि जाइ।
टग टग रहे सु देषते ठगमूरी सी पाइ॥ ५५॥

यातैं कोउ न कहि सकै थकित भये सिध साध।
सुन्दर हू चुप करि रहे वह तौ अगम अगाध॥ ५६॥

वचन तहां पहुंचै नहीं तहां न ज्ञान न ध्यान।
कहत कहत यौं ही कह्यौ सुन्दर है हैरान॥ ५७॥

हुआ। स्यात् 'नु' का 'जु' लिखा हो। इससे 'जूनु ये' ऐसा पाठ बना दिया है। जूनु=जूण=योनियां। (५२) कल=कला।

(५३) अंजन=भुरकी का काजल।

नेति नेति कहि थकि रहे सुन्दर चार्‍यौ वेद ।
अगह अकह अविशेष कौ कोउ न पावै भेद ॥ ५८ ॥
किनहू अंत न पाइयौ अब पावै कहि कौन ।
सुन्दर आगें होहिंगे थाकि रहे करि गौन ॥ ५९ ॥
लौंन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौ जाइ ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचिही गई बिलाइ ॥ ६० ॥
अनल पंषि आकाश मैं उडे बहुत करि जोर ।
सुन्दर वा आकास कौ कहू न पायौ छोर ॥ ६१ ॥

॥ इति समर्थाई को अंग ॥ २१ ॥

॥ अथ आपने भाव कौ अंग ॥ २२ ॥

सुन्दर अपनौ भाव है जे कछु दीसै आन ।
बुद्धि योग विभ्रम भयौ दोऊ ज्ञान अज्ञांन ॥ १ ॥
जो यह देषै क्रूर ह्वै तौ वह होत कृतांत ।
सुंदर जौ यह साधु ह्वै तौ आगै है सांत ॥ २ ॥
सुन्दर जौ यह हसि उठै तौ आगै हसि देत ।
जो यह काहू देत है तौ वह आगै लेत ॥ ३ ॥
जो यह टेढौ होत है आगै टेढौ होइ ।
सुन्दर परतष देषिये दर्पन माहे जोइ ॥ ४ ॥

---

(५८) अविशेष=निर्गुण, विशेष रहित ।

(५९) गौन=गमन ।

[अंग २२] (२) कृतांत=यमराज । सांत=शांत, सात्विक ।

(४) परतष=प्रत्यक्ष ।

सुन्दर महल सवारि कै राष्यौ काच लगाइ।
दैव योग सुनहा गयौ एक अनेक दिपाइ॥ ५॥

अपनी छाया देषि कै कूकर जानै आंन।
सुन्दर अति ही जोर करि भुसि भुसि मूवौ स्वांन॥ ६॥

सिंह कूप परि आइ कैं देषी अपनी छांहिं।
सुन्दर जान्यौ दूसरो बूडि मुवौ ता मांहिं॥ ७॥

फटिक सिला सौं आय करि कुंजर तोरै दन्त।
आगै देष्यौ और गज सुन्दर अज्ञ अतित॥ ८॥

सुन्दर याकै ऊपजै काम क्रोध अरु मोह।
याही कें ह्वै मित्रता याही कै ह्वै द्रोह॥ ९॥

आपु हि फेरी लेत है फिरते दोसै आन।
सुन्दर ऐसै जानि तू तेरो ही अज्ञांन॥ १०॥

सुन्दर याकै शंक है याही ह्वै निहसंक।
याही सूधो ह्वै चलै याही पकरै वक्र॥ ११॥

सुन्दर याकै अज्ञना याही करै विचार।
याही बूडै वार मैं याही उतरै पार॥ १२॥

सुन्दर अपने भाव करि पूजै देवी देव।
यह मैं पायौ पुत्र धन बहुत करी ता सेव॥ १३॥

सुन्दर सूकै हाड कौं स्वान चचोरै आइ।
अपनौई मुख फोरि कै लोही चाटै पाइ॥ १४॥

---

(५) सुनहा=स्वान, कुत्ता।

(८) "अत्यन्त" होता तो अनुप्रास ठीक रहता।

(११) वक्र=बांकापन।

(१३) ता=उसकी। या उसने।

(१४) चचोरै=चबावै।

सुन्दर अपने भाव करि आप कियौ आरोप।
काहू सौं सन्तुष्ट ह्वै काहू ऊपर कोप॥ १५॥

अपनौई सब भाव है जो कछु दीसै और।
सुन्दर समुझै आतमा तव याही सव ठौर॥ १६॥

नीचै तें नीचौ सही ऊंचे ऊपरि ऊंच।
सुन्दर पीछै तें पछै आगै कौ न पहूच॥ १७॥

बाहिर भीतरि सारिषौ व्यापक ब्रह्म अखण्ड।
सुन्दर अपने भाव तें पूरि रह्यौ ब्रह्मण्ड॥ १८॥

याही देषत सूर सौं याही देषत चन्द।
सुन्दर जैसौ भाव है तैसौई गोविन्द॥ १९॥*

याही देषत नूर कौं याही देषत तेज।
याही देषत जोति कौं सुन्दर याकौ हेज॥ २०॥

सुन्दर अपने भाव तें जनकी करै सहाइ।
बाहिर चढि कै बीठलौ दुष्ट हि मारै आइ॥ २१॥

सुन्दर अपने भाव तें मूरत पीयौ दुद्ध।
ठाकुर जान्यौ सत्य करि नामां कौ उर सुद्ध॥ २२॥

सुन्दर अपने भाव तें रूप चतुर्भुज होइ।
याकौं ऐसौई दसै वाकै रूप न कोइ॥ २३॥

काहू मान्यौ सींग सौं हृदये उपज्यौ चाव।
सुन्दर तैसौई भयौ जाकै जैसौ भाव॥ २४॥

काहू सौं अति निकट है काहू सौं अति दूरि।
सुन्दर अपनौ भाव है जहां तहां भरपूरि॥ २५॥

॥ इति आपने भाव को अंग ॥ २२ ॥

---

* । १९ ।"गोब्यद" से अनुप्रास ठीक होता है।

(२२) वीठल और नामदेवजी की कथा भक्तमाल में प्रसिद्ध है।

॥ अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २३ ॥

सुन्दर भूलौ आपकौं पोई अपनी ठौर।
देह माँहिं मिलि देह सौ भयौ और को और ॥ १ ॥

जा घट की उनहारि है तैसो दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपु ही सो अब कहिये काहि ॥ २ ॥

हाथी माँहे देपिये हाथी को अभिमान।
सुन्दर चीटी माँहिं रिस चीटी के अनुमान ॥ ३ ॥

सिंह माँहिं है सिंह सौ स्याल माँहिं पुनि स्याल।
जैसो घट उनहार है सुन्दर तैसो ख्याल ॥ ४ ॥

हंस माँहिं है हंस सो मोर माहि है मोर।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसोई तिहिं वोर ॥ ५ ॥

बीछू में बीछू भयौ सर्प माँहि है साप।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसो ह्वै आप ॥ ६ ॥

बादर में बादर भयौ मच्छ माहि पुनि मच्छ।
सुन्दर गाइनि में गऊ बच्छनि माहे बच्छ ॥ ७ ॥

जलचर थलचर व्योमचर गनै कहा लौ कोइ।
सुन्दर जैसौ घट जहां रह्यौ तिसौही होइ ॥ ८ ॥

सुन्दर पावक दार के भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ में दीरघ लगै चौरे में चौराइ ॥ ९ ॥

रंचक काढै मथन करि बहुरि होइ बलवन्त।
सुन्दर सबही काठ कौं जारि करै भस्मन्त ॥ १० ॥

[अंग २३] (२) उनहारि=समान, मिलता हुआ।

(३) रिस=रीस, क्रोध।

(९) दार=दारु, काठ।

सुन्दर जड कै सग तें भूलि गयौ निजरूप ॥
देषहु कैसौ भ्रम भयौ बूडि रह्यौ भव कूप ॥ ११ ॥
सुन्दर इन्द्रिय स्वाद सौं अति गति बांध्यौ मोह ।
मीन न जानै बावरौ निगलि गयौ सठ लोह ॥ १२ ॥
मरकट मूठ न छाडई बध्यौ स्वाद सौं जाइ ।
सुन्दर गर मे जेवरी घर घर नाच्यौ आइ ॥ १३ ॥
जैसैं मदिरा पान करि होइ रह्या उनमत्त ।
सुन्दर ऐसैं आपु कौं भूल्यौ आतम तत्त ॥ १४ ॥
ज्यो ठगमूरि पात ही रहै कछू नहि सुद्धि ।
यौ सुन्दर निजरूप की भूलि गयौ सब सुद्धि ॥ १५ ॥
जैसैं बालक शक करि कपि उठै भय मानि ।
ऐसैं सुन्दर भ्रम भयौ देह आपु कौं जांनि ॥ १६ ॥
जे गुन उपजै देह कौं सुख दुख बहु सताप ।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ ते सब मानै आप ॥ १७ ॥
शीत उष्ण क्षुधा तृषा मोकौं लाग आइ ।
सुन्दर या भ्रम की नदी ताही मैं वहि जाइ ॥ १८ ॥
अध वधिर गूगौ भयौ मेरौ कौन हवाल ।
सुन्दर ऐसौ मानि करि वहुत फिरै वेहाल ॥ १९ ॥
मिलि करि या जड देह सौं रह्यौ तिसौही होइ ।
सुन्दर भूलौ आपु कौ सुधि वुधि रहो न कोइ ॥ २० ॥
सुन्दर चेतनि आतमा जडसौं कियौ सनेह ।
देह पेह सौं मिलि रह्यौ रत्न अमोलक येह ॥ २१ ॥
दौरि दौरि जड देह कौं आपुहि पकरत आइ ।
सुन्दर पेच पर्‌यौ कठिन सक नहीं सुरझाइ ॥ २२ ॥
सूवा पकरि नली रह्यौ वह कहु पकर्‌यौ नांहि ।
ऐस सुन्दर आपु सौ पर्‌यौ पींजरा मांहि ॥ २३ ॥

ज्यौं गुञ्जनि को ढेर करि मरकट मानै आगि।
ऐसैं सुन्दर आपही रह्यौ देह सौं लागि॥ २४॥

बिप्र ह्वै रह्यौ शूद्र सौ भूलि गयौ ब्रह्मत्व।
सुन्दर ईश्वर आपही मानि लियौ जीवत्व॥ २५॥

राजा सोयौ सेज परि भयौ स्वप्न महिं रंक।
सुन्दर भूलौ आपकौं देह लगाई पंक॥ २६॥

ज्यौं नर बहुत स्वरूप है भ्रम तें कहै कुरूप।
सुन्दर भूलौ आपुकौं आतम तत्व अनूप॥ २७॥

बनिया मूधौ ह्वै रह्यौ टूगे फेर्‍यौ हाथ।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ मेरे तौ नहिं माथ॥ २८॥

ज्यौं मनि कोऊ कंठ थी भ्रम तैं पावै नाहिं।
पूछत डोलै और कौं सुन्दर आपुहि माहिं॥ २९॥

सुन्दर चेतनि आपु यह चालत जड़ की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढि कूदत डोलै बाल॥ ३०॥

भूतनि माहे मिल रह्यौ तातें ह्वौ भूत।
सुन्दर भूलौ आपु कौ उरझ्यौ नौ मन सूत॥ ३१॥

आपुहि इन्द्री प्रेरि कै आपुहि मानै सुक्ख।
सुन्दर जब संकट परै आपु हि पावै दुःख॥ ३२॥

यौं भ्रम तें बहु दिन भये बीति गयौ चिरकाल।
सुन्दर लह्यौ न आपुकौं भूलि पर्‍यौ भ्रमजाल॥ ३३॥

---

(२४) गुञ्जनि=लाल चिरमटी। (२६) पंक=कादा, मलिनता।

(२८) मूधो=औंधा, उलटा। टूगै=कूगे पर, चूतड़ पर। मूर्ख बनिये ने चूतड़ पर हाथ फेरा तो खयाल किया कि यह तो चूतड़ है सिर नहीं है तो मान लिया कि सिर नहीं रहा। ऐसा उसे भ्रम हो गया। ऐसा सुन्दरदासजी ने कहीं देखा सो ही स्वरूप-विस्मरण के दृष्टान्त में लिख दिया।

देह माहिं ह्वै देह सौं कियौ देह अभिमांन।
सुन्दर भूलौ आपु कौं बहुत भयौ अज्ञान ॥ ३४ ॥

कामी हूवो काम रत जती हुवो जत साधि।
सुन्दर या अभिमान तें दोऊ लागी व्याधि ॥ ३५ ॥

कतहू भूलौ नीच ह्वै कतहू ऊंची जाति।
सुन्दर या अभिमांन करि दोनौं ही कै राति ॥ ३६ ॥

कतहू भूलौ मौनि धरि कतहू करि वकवाद।
सुन्दर या अभिमान तें उपज्यौ वहुत विषाद ॥ ३७ ॥

सुन्दर यौं अभिमान करि भूलि गयौ निज रूप।
कवहूं बैठै छाहरी कवहूं बैठै धूप ॥ ३८ ॥

सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ छूटौ अपनौ भौंन।
दिशा भूल जानै नहीं पूरव पच्छिम कौंन ॥ ३९ ॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागौ भूत।
काहू सौं बनिया कहै काहू सौं रजपूत ॥ ४० ॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागी वाइ।
कहै औरकी औरई जो भावै सो पाइ ॥ ४१ ॥

काहू सौं बाभन कहै काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ यौं ही मारै गाल ॥ ४२ ॥

ज्यौं अमली की ऊघतें परी भूमि पर पाग।
वह जानै यह और की सुन्दर यौं भ्रम लाग ॥ ४३ ॥

---

(३६) राति=अंधेरा, अज्ञान। अथवा आराति=दुःख।

(४२) बांभन=ब्राह्मण। ब्राह्मण शब्द का गंवारू अपभ्रंश है। हास्य के लिए ऐसा अपभ्रंश दिया है।

(४३) अमलो=अमलदार, अफीमची। ऊंघ=ऊघना।

जैसैं चिहीसेप हू कियौ मनोरथ भौर।
सुन्दर भूली आपु कौ यौं हूवो घर चौर॥ ४४॥

देह आपकौ जानि करि ब्राह्मन क्षत्रिय होइ।
वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ अपनी सुधि बुधि पोइ॥ ४५॥

देह पुष्ट ह्वै दूबरी लगैं देह कौ घाव।
चेतनि मानैं आपुकौं सुन्दर कौन सुभाव॥ ४६॥

देह बाल अरु वृद्ध ह्वै जोबनि ह्वै पुनि देह।
सुन्दर मानैं आपुकौं 'हु अचिरज येह॥ ४७॥

बुद्धि हीन अति बावरो देह रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर चेतनता गई जडता रही समाइ॥ ४८॥

सान्यौ घर माहै कहै हूं अपने घर जाउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ भूलौ अपनौ ठाउं॥ ४९॥

रवि रवि कौं ढूढत फिरैं चन्द हि ढूंढै चन्द।
सुन्दर हूवो जीव सौ आपु इहै गोविंद॥ ५०॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण कौ अंग॥ २३॥

---

(४४) चिहीसेप="शेरा चिरी"। अपभ्रंश सेरासाली'। लाहोर के प्रसिद्ध शेरचिरी फकीर की कहावत से दृष्टांत है।

(४५) ब्राह्मन क्षत्रिय होय=आत्मा का ज्ञान (ब्रह्मत्व) भूलकर देहाभिमान (क्षत्रियत्व) हो जाता है। वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ=यहां यह चमत्कार है कि सुन्दर-दासजी जाति के वैश्य होकर सांसारिक व्यवहार में फसकर शूद्रता को प्राप्त हुए। अथवा हे सुन्दर! (वा सुन्दर कहता है कि) उच्चवर्ण वा अवस्था (वैश्यता) से गिरकर नीचवर्ण (शूद्रता) को पहुँचा। यह ज्ञान हीनता से निंदनीय हुआ।

(४९) सान्यौं=(सं० सानु=पंडित) पंडित। स्याना, सयाना। (यदि बावला कहै तो कोई बात नहीं। सयाना ऐसा कहे यही अचरज है)।

(५०) गोविंद=ईश्वर। ब्रह्म।

॥ अथ सांख्य ज्ञान कौ अंग ॥ २४ ॥

दोहा

सुन्दर साख्य विचार करि समुझै अपनौ रूप ।
नहिंतर जड के सग तें बूडत है भव कूप ॥ १ ॥

माया के गुन जड सबै आतम चेतनि जानि ।
सुन्दर साख्य बिचार करि भिन्न भिन्न पहिचानि ॥ २ ॥

पंच तत्व कौ देह जड सव गुन मिलि चौवीस ।
सुन्दर चेतनि आतमा ताहि मिलै पच्चीस ॥ ३ ॥

छब्बीसवौं सु ब्रह्म है सुन्दर साक्षी भूत ।
यौं परमातम आतमा यथा वाप तें पूत ॥ ४ ॥

देह रूपई ह्वै रह्यौ देह आपकौ मानि ।
ताही तें यह जीव है सुन्दर कहत वषानि ॥ ५ ॥

देह भिन्न हौ भिन्न हौं जव यह करै विवेक ।
सुन्दर जीव न पाइये होइ एक कौ एक ॥ ६ ॥

क्षीण सपष्ट शरीर है शीत उष्ण तिहिं लार ।
सुन्दर जन्म जरा लगौ यह पट देह विकार ॥ ७ ॥

क्षुधा तृषा गुन प्रान कौ शोक मोह मन होइ ।
सुन्दर साक्षी आतमा जानै विरला कोइ ॥ ८ ॥

जाकी सत्ता पाइ करि सव गुन ह्वै चैतन्य ।
सुन्दर सोई आतमा तुम जिनि जानहु अन्य ॥ ९ ॥

[अग २४] (७) सपष्ट=सुपुष्ट, मोटा ।

(९) गुन ह्वै चैतन्य=चेतन आत्मा की सत्ता से जड़ प्रकृति चेतन का सा काम करती है । चम्बुक के ससर्ग से जैसा लोहा चलन-हलन करने लगता है ।

बुद्धि भ्रमै मन चित्त पुनि अहंकार बहु भाइ।
सुन्दर ये तौ तैं भ्रमै तू क्यौं इनि सग जाइ॥ १०॥

श्रोत्र त्वचा दृग नासिका रसना रस कौं लेत।
सुन्दर ये तो तें भ्रमै तू क्यौं बाध्यौ हेत॥ ११॥

वाक्य पानि अरु पाद पुनि गुदा उपस्थ हि जानि।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमैं तू क्यौं लीने मानि॥ १२॥

सुन्दर तू न्यारौ सदा क्यौं इन्द्रिनि संग जाइ।
ये तो तेरी शक्ति करि बरतैं नाना भाइ॥ १३॥

सुन्दर मन कौं मन कहै बहुरि बुद्धि कौं बुद्धि।
तोहि आपने रूप की भूलि गई सब सुद्धि॥ १४॥

कहै चित्त कौं चित्त पुनि सुन्दर तोहि बषानि।
अहंकार कौं है अहं जानि सकै तो जानि॥ १५॥

सुन्दर श्रवणनि कौ श्रवण आहि नैंन कौ नैंन।
नासा कौं नासा कहै अरु बैननि कौ बैंन॥ १६॥

सुन्दर सिर को सीस है प्राननि कौ है प्रांन।
कहत जीव कौं जीव सब शास्तर वेद पुरान॥ १७॥

सुन्दर तू चेतन्य घन चिदानंद निज सार।
देह मलीन असुचि जड विनसत लगै न बार॥ १८॥

सुन्दर अविनाशी सदा निराकार निहसग।
देह विनश्वर देषिये होइ पलक मैं भग॥ १९॥

सुन्दर तू तौ एकरस तोहि कहौं समुझाइ।
घटै बढै आवै रहै देह विनसि करि जाइ॥ २०॥

---

(१०)(११)(१२) तौ तैं=तुझ से। हे सुन्दर (या हे आत्मा)! सम्बोधन करके अज्ञान निवारण करने को चेतावनी देते हैं।

(१४) "मन कौं मन"।=इस कहने से यह अभिप्राय है कि इन जड पदार्थों को चेतन समझ कर स्वतन्त्र व्यक्तित्व देकर अज्ञानी होते हैं।

जे बिकार हैं देह के देहहि के सिर मारि।
सुन्दर याते भिन्न ह्वै अपनौ रूप बिचारि ॥ २१ ॥

सुन्दर यह नहिं यह नहीं यह तौ है भ्रम कूप।
नाहिं नाहिं करते रहैं सो है तेरौ रूप ॥ २२ ॥

एक एक के एक पर तत्व गनें तै होइ।
सुन्दर तू सब के परै तौ ऊपरि नहिं कोइ ॥ २३ ॥

एक एक अनुलोम करि दीसहि तत्व स्थूल।
एक एक प्रतिलोम तें सुन्दर सूक्षम मूल ॥ २४ ॥

सूक्षम तें सूक्षम परै सुन्दर आपुहि जानि।
तो तें सूक्षम नाहिं कौ याही निश्चय आंनि ॥ २५ ॥

इन्द्रिय मन अरु आदि दे शब्द न जानै तोहि।
सुन्दर तोतें चपल ये तू इनितें क्यौं होहि ॥ २६ ॥

धूलि धूम अरु मेघ करि दीसै मलिनाकाश।
सुन्दर मलिन शरीर सग आतम शुद्ध प्रकाश ॥ २७ ॥

देहनि के ज्यौं द्वार मैं पवन लिपै कहुं नाहिं।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया माहिं ॥ २८ ॥

पावक लोह तपाइये होइ एकई अग।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया सग ॥ २९ ॥

---

(२४) अनुलोम। प्रतिलाम।=सुलटा, उलटा। प्रथम अति सूक्ष्म से चलकर उत्तरोत्तर अति स्थूल तक। फिर उलटा चलकर अति स्थूल से अति सूक्ष्म तक।

(२५) सूक्षम तें सूक्षम परै="अणोरणीयान्" अणु अत्यन्त सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म।

(२८) पवन लिपै कहुं नाहि=पवन (आकाशादि सूक्ष्म पदार्थ) जो देह के अपेक्षा सूक्ष्म है सो स्थूल देह में लिप्त नहीं होता है। देह के परमाणु आदि अवयवों में सूक्ष्म पवनादि प्रवेश करते हैं और 'लिपै छिपै' नहीं। वैसे ही आत्मा सर्वत्र व्यापक है और वैसे ही बुद्धिगम्य हो सकती है।

चोट परै घन की जबहिं पावक भिन्न रहाइ।
सुन्दर दीसै प्रगट ही लोहा बधता जाइ॥ ३०॥

सुन्दर पावक एकरस लोहा घटि बढि होइ।
तैसैं सुख दुख देह कौं आतम कौं नहीं कोइ॥ ३१॥

नीर क्षीर ज्यौं मिलि रहे देह आतमा दोइ।
सुन्दर हंस विचार विन भिन्न भिन्न नहिं होइ॥ ३२॥

देह धात माहें मिलै आतम कनक कुरूप।
सुन्दर सांख्य सुनार विन होइ न शुद्ध स्वरूप॥ ३३॥

जबहिं कंचुकी हात है भिन्न न जानै सर्प।
तैसैं सुन्दर आतमा देह मिले तें दर्प॥ ३४॥

सर्प तजै जब कंचुकी वा दिसि देपै नांहिं।
सुन्दर संमुकै आतमा भिन्न रहै तनु माहिं॥ ३५॥

सुन्दर काला घटै बढै शशि मंडल कै संग।
देह उपजि विनशत रहै आतम सदा अभंग॥ ३६॥

देह कृत्य सब करत है उत्तम मध्य कनिष्ट।
सुन्दर साक्षी आतमा दीसै माहिं प्रविष्ट॥ ३७॥

अग्नि कर्म संयोग तें देह कड़ाही संग।
तेल लिंग दोऊ तपै शशि आतमा अभंग॥ ३८॥

सूक्षम देह स्थूल कौ मिल्यौ करत संयोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा सुख दुख इनकौ भोग॥ ३६॥

---

(३०) घन की चोट से अग्नरूपी आत्माओं का विकार नहीं होता है विकार स्थूल लोहारूपी शरीर को ही होता है।

(३८) लिंग=लिंग शरीर। कड़ाही के तप्त तेलरूपी सूक्ष्म शरीर में बड़ा, पुरी, कचोरी आदि स्थूल शरीर या कारण शरीर। शशि आत्मा=चन्द्रमा की तरह आत्मा शीतल रह कर तप्त न होकर अभग (न्यारा) रहता है।

हलन चलन सब देह कौ आतम सत्ता होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा कर्मन लागै कोइ ॥ ४० ॥
सुन्दर सूरय कै उदै कृत्य करै ससार।
ऐसैं चेतनि ब्रह्म सौं मन इद्रिय आकार ॥ ४१ ॥
व्योम वायु पुनि अग्नि जल पृथवी कीये मेल।
सुन्दर इनतें होइ का चेतनि पेलै पेल ॥ ४२ ॥
सुन्दर तत्व जुदे जुद राष्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के पभ मैं कौन वस्तु कहि वीर ॥ ४३ ॥
देह आप करि मानिया महा अज्ञ मतिमद।
सुन्दर निकसै छीलकै जबहिं उचेर कद ॥ ४४ ॥
काष्ट सु जोरे जुगति करि कीया रथ आकार।
हलन चलन जातें भया सो सुन्दर ततसार ॥ ४५ ॥
तत्व कहे इकतीस लौं मत जू जुवा वपानि।
सुन्दर जल कौनैं पिया मृग तृष्णा घर आनि ॥ ४६ ॥
देह स्वर्ग अरु नरक है वद मुक्ति पुनि देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा साक्षी कहियत येह ॥ ४७ ॥
सुन्दर नदी प्रवाह मैं चलत देषिये चन्द।
तैसैं आतम अचल है चलत कहै मतिमद ॥ ४८ ॥

---

(४१) आकार=मन, इन्द्रिय और शरीर साकार पदार्थ कर्म करते हैं। आत्मा नहीं करता। आत्मा की सत्तामात्र से कर्म है।

(४४) कन्द=कादा, प्याज जिसमें छिलके ही छिलके होते हैं कदली खम्भ की तरह।

(४६) इकतीस तत्व=५ तत्व +५ तन्मात्राए +५ ज्ञानेन्द्रिय +५ कर्मेन्द्रिय +४ अन्तःकरण +३ गुण +१ प्रकृति +१ जीव +१ ईश्वर +१ परमात्मा। मत जू जुवा वपानि=जुदे-जुदे मतमतान्तर (शास्त्रों में) कहते है। मृगतृष्णा घर आनि। मृगतृष्णा का जल मिथ्या है। उसको पीकर कौन घर आया या उसे घर लया।

मा	दु	कौ	र	का	मु	न	न्हे
या	ख	मू	है	या	ख	हिं	न
षा	वि	मा	र	आ	न	त	के

मा	या	दु	ख	कौ	मू	र	है	का	या	मु	ख	न	हि	ले	स
षा	या	वि	ष	मा	मू	र	है	आ	या	न	ख	त	हि	के	न

मा या दु ख कौ मू ल है का या सु ख न हि ने स

षा या हि प मा मू ल है आ या न ख त हि के स

गो	जी	गो	जी	न	र	नि	ये
विं	द	पा	ल	र	ह	रा	म

द	स	वि	वे	की	पा	इ	है	च	तु	र	क्ष	र	वि	आ	म

गोमूत्रिका वध—१—२

प्रथम गोमूत्रिका वध "माया" इत्यादि दोहा स्पष्ट ही है।

इसके पढने की विधि —

प्रथम चित्र मे प्रथम पक्ति के प्रथम अक्षर 'मा' को द्वितीय पक्ति के 'या' के साथ पढने से 'माया' हुआ। इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय पक्तियो को मिला कर पढने से दोहे की प्रथम अर्धाली हो गई। और तृतिय पक्ति के अक्षरों को द्वितीय पक्ति के अक्षरों के साथ पढने से दूसरी अर्धाली होगी। जो सारा छन्द दूसरे चित्रों मे स्पष्ट है। और तीसरे चित्र मे दूसरे की तरह तिरछे अक्षरों के पढने से भी वही पाठ पढा जायगा ॥ १ ॥ (र को ल भी पढ़ा गया है)

दूसरे गोमूत्रिका छद के पढने की विधि —

प्रथम पक्ति के प्रथम अक्षर 'गो' को द्वितीय पक्ति के प्रथम अक्षर 'वि' के साथ पढ कर उसी द्वितीय पक्ति के द्वितीय अक्षर 'द' को पढ कर उसके ऊपर के अक्षर 'जी' के साथ पढने से 'गोविदजी हुआ। इसही तरह आगे 'गोपालजी' और फिर 'नरहर' और फिर 'निरामये' पढा जायगा। यों ८-४ अक्षर के चार हुए। उत्तर अर्धाली स्पष्ट है ही ॥ २ ॥

बहुत सुगध दुगन्ध करि भरिये भाजन अंबु।
सुन्दर सब मैं देषिये सूरय कौ प्रतिबिंबु ॥ ४९ ॥

देह भेद बहु विधि भये नाना भाति अनेक।
सुन्दर सब मैं आतमा बस्तु बिचारें एक ॥ ५० ॥

तिलनि माहिं ज्यौं तेल है सुन्दर पय मैं घीव।
दार माहिं है अग्नि ज्यौं देह माहि यौं सीव ॥ ५१ ॥

फूल माहिं ज्यौं बासना इक्षु माहिं रस होइ।
देह माहि यौं आतमा सुन्दर जानै कोइ ॥ ५२ ॥

पोसत माहिं अफीम है बृक्षन मैं मधु जानि।
देह माहिं यौं आतमा सुन्दर कहत बषानि ॥ ५३ ॥

सुन्दर ब्रह्म अबर्न है व्यापक अग्नि अबर्न।
देह दार तें देषिये पावक अंतहकर्न ॥ ५४ ॥

तेज प्रकास रु कल्पना अब लग संग उपाधि।
जब उपाधि सब मिटि गई सुदर सहज समाधि ॥ ५५ ॥

सुन्दर देह सराव मैं तेल भरयौ पुनि स्वास।
बाती अंतहकरन की चेतनि जोति प्रकास ॥ ५६ ॥

सुन्दर पद्रह तत्व कौ देह भयौ सौ कुम्भ।
नौ तत्वनि कौ लिंग पुनि माहिं भरयौ है अंभ ॥ ५७ ॥

जीव भयौ प्रतिबिंब ज्यौं ब्रह्म इंदु आभास।
सुन्दर मिटै उपाधि जब अहं के तहा निवास ॥ ५८ ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपती इनितें न्यारौ होइ।
सुन्दर साक्षी तुरियतत रूप आपनौ जोइ ॥ ५९ ॥

---

(५४) अबर्न=बर्णन रहित। अथवा बर्ण (रगरूप) रहित। अंतहकर्न=अंतः-करण द्वारा दिखाई देता है आंख से नहीं।

(५७-५९) ऐसे वर्णन कई बेर आ चुके हैं यहां प्रसग और टीका मे देखैं।

तीन अवस्था जड कही ये तौ है भ्रमकूप ।
सुन्दर आप विचारि तू चेतनि तत्व स्वरूप ॥ ६० ॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनि अवस्था गौंन ।
सुन्दर तुरिय चढ्यौ जवहिं परी चढै तव कौंन ॥ ६१ ॥

॥ इति सांख्य ज्ञान को अंग ॥ २४ ॥

॥ अथ अवस्था अंग ॥ २५ ॥

एक अंग सो आतमा सुन अवस्था तीन ।
सुदर मिलि करि वाचिये न्यारे न्यारे कीन ॥ १ ॥
एक सुन तें दस भये दूजी सत ह्वै जाहिं ।
तीजी सुन सहस्र ह्वै एक विना कछु नाहिं ॥ २ ॥
सुन सुन दस गुन वधै वहु विधि ह्वै विस्तार ।
सुदर सुन मिटाइये एक रहै निरधार ॥ ३ ॥
तीनि अवस्था माहिं है सुन्दर साक्षीभूत ।
सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत ॥ ४ ॥

---

(६१) तुरिय=यहां श्लेष है—(१) तुरी=घोड़ा । (२) तुरीय=तुरीयातीत (परमात्मा) ।

[अंग २५] (१-२) सुन=(१) शून्य (२) शून्यावस्था, मिथ्या माया । एके के अङ्क के आगे शून्य (विन्दी) लगाने से १०, १००, १००० वन जाते हैं । चेतन परमात्मा विन जड़ प्रकृति शून्य मात्र है । और शून्य (प्रकृति) को मिटाने से एक (१) परमात्मा ही रह जाता है । प्रकृति को जीतना ही ईश्वर प्राप्ति है ।

(४) तीनि अवस्था=१ जाग्रत । २ स्वप्न । ३ सुषुप्ति ।

(१) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जागत भींत महिं लिष्यौ जगत चित्रास ।
स्वप्न घौंट सनमुख भई दसैं सकल घट नास ॥ ५ ॥

चित्र कछू नहिं देषिये जबहिं अंधेरौ होइ ।
सुन्दर सुषुपति मैं गये जाग्रत स्वप्ना दोइ ॥ ६ ॥

तीन अवस्था तें जुदौ आतम व्योम समान ।
भीति चित्र पुनि घौंट तम लिप्त नहीं यौं जान ॥ ७ ॥

(२) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जाग्रत घूप है स्वप्न जौन्ह ज्यौं जानि ।
दोऊ माहे देषिये रूप सकल पहिचानि ॥ ८ ॥

सुषुपति मावस की निसा अभ्र रहे पुनि छाइ ।
सुन्दर कछु सूझै नहीं रूप सकल छिपिजाइ ॥ ९ ॥

घूप जौन्ह तम रूप सौं नैंन लिपै कहुं नाहिं ।
सुन्दर साक्षी आतमा तीन अवस्था माँहि ॥ १० ॥

(३) अवस्था का अन्य भेद ।

बाजीगर परदा किया सुन्दर बैठा माँहिं ।
पेल दिपावै प्रगट करि आप दिपावै नाँहिं ॥ ११ ॥

---

(५) चित्रास=चित्राशय, चित्र समूह । घौंट=गहरी नींद, सुषुप्ति । स्वप्न और सुषुप्ति (दोनों) अवस्थाओं में जाग्रत् के दृश्य अदृष्ट हो जाते हैं ।

(७) भीति-चित्र=जाग्रत में । घौंट=सुषुप्ति में लिपटा या छिपा हुआ । तम=अन्धेरे में स्वप्नावस्था मे ।

(८) जौन्ह=जौन्हाई, जुन्हाई, चांदनी ।

(१०) नैंन=नेत्र, रूपज्ञान की शक्ति या इन्द्रिय तीनों अवस्था में लोप नहीं होती है । वैसेही आत्मा तीनों अवस्थाओं में वर्त्तमान है । केवल अवस्था भेद ज्ञान की सामग्री के भेद से है ।

नर पशु पषी काठ के प्रगट दिपावै पेल।
हस्त क्रिया सब करत हैं सुन्दर आप अकेल ॥ १२ ॥

सुन्दर चेतनि शक्ति बिन नाचि सकै नहि कोइ।
त्यौं यह जाग्रत जानिये जो कछु जाग्रत होइ ॥ १३ ॥

बहुरि वहै रजनी बिषै परदा करै बनाइ।
सुन्दर बैठा गोपि ह्वै बाहरि पेल दिषाइ ॥ १४ ॥

नर पशु पषी चर्म के दीसहि रूप अनेक।
सुन्दर चेतनि शक्ति करि नाच नचावै एक ॥ १५ ॥

यौं यह स्वप्नै देषिये जाग्रत कौ आभास।
सुन्दर दोऊ भ्रम भये जाग्रत स्वप्न प्रकास ॥ १६ ॥

अब सुनि सुषुपति की कथा सुन्दर भ्रम कछु नांहि।
काठ कर्म कौ षेल सब धर्‍यौ पिटारा माहिं ॥ १७ ॥

सुन्दर बाजीगर जुदौ पेल करै दिन राति।
वहै पेल रजनी करै वहै पेल परभाति ॥ १८ ॥

जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार।
सुन्दर बाजीगर जुदौ पेल दिपावन हार ॥ १९ ॥

तीन अवस्था के परै चौथी तुरिया जांनि।
सुन्दर साक्षी आतमा ताहि लेहु पहिचांनि ॥ २० ॥

(४) अवस्था का अन्य भेद।

एक अवस्था के विषै तीनहु बर्तैं आइ।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती सुन्दर कहत सुनाइ ॥ २१ ॥

जाग्रदवस्था जानिये सब इन्द्रिय व्यापार।
अपने अपने अर्थ कौं सुन्दर करै विहार ॥ २२ ॥

---

(१९) जमुनिका=जवनिका, पर्दा, आवरण।

जाग्रत मैं स्वप्ना कहै करै मनोरथ आन।
नैंन न देषै रूप कौं शब्द सुनै नहिं कान॥ २३॥

जाग्रत मैं सुषुपति भई जबहिं तंवारी होइ।
सुन्दर भूलै देह कौं सुधि बुधि रहै न कोइ॥ २४॥

स्वप्नै मैं जाग्रत कहै वचन कहै मुख द्वार।
ज्वाब देत है और कौं सुन्दर शुद्धि न सार॥ २५॥

स्वप्नै माहिं स्वप्न है देषै नाना रूप।
जागें तें सब झूठ है सुन्दर छाया धूप॥ २६॥

सुन्दर ऐसैं जानियें सुषुपति स्वप्ना मांहिं।
स्वप्नै ही मैं अनुभवै जागै जानें नांहिं॥ २७॥

सुषुपति मैं जाग्रत कहै जानी करि अनुमान।
जागें तें ततपर भयौ सब इन्द्रिनि कौ ज्ञान॥ २८॥

सुषुप्ति ही मैं स्वप्न है जागें थक्कित चित्त।
कछूक धार लपै नहीं सुन्दर चित्त अचित्त॥ २९॥

सुषुप्ति मैं सुषुप्ति उहै सुख अनुभवै प्रभाति।
सुन्दर जागें कहत है सुख सौं सूते राति॥ ३०॥

तीन अवस्था भेद है तीनौं ही भ्रमकूप।
चौथी तुरिया ज्ञानमय सुन्दर ब्रह्म स्वरूप॥ ३१॥

(५) अवस्था कौ अन्य भेद।

बर वरियान वरिष्ट पुनि तीनहुं कौ मत एक।
भिन्न भिन्न व्यौहार है सुन्दर समुझ विवेक॥ ३२॥

---

(२४) तवारी=तिमाला, गश बेहोशी।

(२९) थक्कित=थकी, चलायमान। अचित्त=चित्त रहित, शक्तिहीन, गुणहीन। थोथा। कोरा।

(३२) बर बरियान, वरिष्ट=महात्मा, गुरु और सिद्ध के ये तीन दर्जे हैं।

वर सो जीवन मुक्त है तुरिया साक्षी भूत।
लिपै छिपै नहिं सब करै अनकरता अवधूत ॥ ३३ ॥

महा मुक्त अक्रिय सदा सो कहिये वरियान।
तुरिया तुरियातीत के मध्य कहैं सज्ञान ॥ ३४ ॥

जाकी गति न लपि परै सो कहिये जु वरिष्ट।
तुरियातीत परातपर वचन परै उतकृष्ट ॥ ३५ ॥

ब्रह्म समुद्र जहा तहा ता महिं तीनो लीन।
एक किनारे आइ करि सब कौ सिक्षा दीन ॥ ३६ ॥

दूजौ रहै समुद्र में सीस दिपावैं आइ।
पूछै बोलै वचन कौ फेरि तहा छिपि जाइ ॥ ३७ ॥

ब्रह्मानद समुद्र तैं तीजौ निकसै नांहि।
गहरै पैठौ जाइ कैं मगन भयौ ता माहिं ॥ ३८ ॥

अष्टावक्र वसिष्ट मुनि प्रगट कियौ निज ज्ञान।
क्रम ही क्रम उपदेश करि किये ब्रह्म सामान ॥ ३९ ॥

दत्तात्रय शुकदेवजी बोले वचन रसाल।
नृपति परीक्षत भूप जदु मुक्त किये ततकाल ॥ ४० ॥

ऋृपभदेव बोले नहीं रहे ब्रह्ममै होइ।
गरक भये निज ज्ञान में द्वैत भाव नहिं कोइ ॥ ४१ ॥

जाग्रदवस्था जानिये जबहि होइ साक्षात।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि कही सवनि सौं बात ॥ ४२ ॥

अष्टावक्र और वशिष्ठ आदि को वर सज्ञा वताई है। और दत्तात्रेय और शुकदेवजी को वरियान अवस्था की कक्षा दी है। तथा ऋषभदेवादि को वरिष्ट पद मिला है। यों उदाहरण दिये हैं। तीनों अवस्थाओं को समझाने को यह उत्तम उदाहरण महामुनियों के दिये हैं।

स्वप्न अवस्था माँहिं है पूछे बोले सैंन।
दत्तात्रय सुक्देवजी कहे कछूइक बैंन॥ ४३॥
सुषुपति मैं कछु सुधि नहीं ऐसी परम समाधि।
ऋषभदेव चुप करि रहे छूटी सकल उपाधि॥ ४४॥

(६) *अवस्था का अन्य भेद।*

मावस अति अज्ञान कै निसा अंधेरी कीन।
ससि आतमा दसै नहीं ज्ञान कला करि हीन॥ ४५॥
है अज्ञान अनादि कौ जीव पर्यौ भ्रम कूप।
श्रवन मनन निदिध्यास तें सुन्दर ह्वै चिद्रूप॥ ४६॥
श्रवण सु कहिये प्रतिपदा ज्ञान कला दरसाइ।
दुतिया तृतिया चतुर्थी सुनि पंचमी दिषाइ॥ ४७॥
मनन किये षष्टी दसै अर्थ लेइ पहिचानि।
होइ सप्तमी अष्टमी नवमी दशमी जानि॥ ४८॥
निदिध्यास एकादशी पुनि द्वादशी बदंति।
आगै होइ त्रयोदशी चतुर्दशी पर्यंति॥ ४९॥
तदाकार पूरन कला पूरनमासी होइ।
पूरन ज्ञान प्रकाश शशि भ्रम संदेह न कोइ॥ ५०॥
ताहि कहत हैं ब्रह्मविदु शास्त्र वेद पुरांन।
सुन्दर या अनुक्रम विना और सकल अज्ञान॥ ५१॥

(४५ से ५१) तक—प्रकाश के अनुक्रम और व्यतिक्रम का उदाहरण देकर तीनों अवस्थाएं समझाई हैं। चन्द्रमा के अभाव में अमावस्या से लेकर जो सुषुप्ति है, प्रतिपदा से दशमी तक थोड़े प्रकाश को स्वप्न और ११ से पूर्णिमा तक वर्द्धमान प्रकाश को जाग्रत कह कर दरसाया है। परन्तु ये उदाहरण पूरे नहीं घटते हैं। कुछ सहायक होते हैं। ब्रह्मविदु=ब्रह्मवित्=ब्रह्मवेत्ता=ब्रह्मज्ञानी।

छप्पय ।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै ।
द्वुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै ॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीकी विधि करई ।
चतुर्भूमि साक्षातकार सशय सब हरई ॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म-विदुवर वरयान वरिष्ट है ।
यह पच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहै ॥ ५२ ॥

॥ इति अवस्था कौ अंग ॥ २५ ॥

॥ अथ विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

सुन्दर साधन सब थके उपज्यौ हृदय विचार ।
श्रवन मनन निदिध्यास पुनि याही साधन सार ॥ १ ॥

सुन्दर या साधन विना दूजौ नहीं उपाइ ।
निस दिन ब्रह्म विचार तें जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ २ ॥

सुन्दर एक विचार है सुरझावन कौं सूत ।
उरझि रह्यौ संसार मैं नखशिख प्रानी भूत ॥ ३ ॥

उपजै एक विचार जब तब यह पावै ठौर ।
भरमावन कौं जगत महिं सुन्दर साधन और ॥ ४ ॥

---

(५२) सात भूमिका ज्ञान की बताई है । परन्तु इनका अधिक सम्बन्ध तीनों अवस्थाओं से नहीं है । प्रसगवश कह दिया है । चतुर्भूमि=चौथी भूमिका । महात्मा ऐन साहिब ने अपने 'ब्रह्मविलास' में ज्ञान की सात भूमिकाए इस प्रकार बताई है —(ज्ञान की सात भूमिकाए)—शुभेच्छा । २ शुभ विचार । ३ तनमनसा । ४ सत्वापित्ति । ५ असससक्ति । ६ पदार्थभावनी । ७ तुरीया ।

सुन्दर एक बिचार तें हिरदौ निर्मल होइ।
फिरत रहै औ मसक ज्यौं काटन लागै कोइ॥ ५॥

सुन्दर साधन सब क्रिया बरकति दीसै नाहिं।
आयौ हृदय बिचार जब तब समुझै हरि माहिं॥ ६॥

करत देह के कृय सब जौ उर होइ बिचार।
सुन्दर न्यारौई रहै लिपै न एक लगार॥ ७॥

दधि मथि घृत कौं काढि करि देत तक्र महिं डार।
सुन्दर बहुरि मिलै नहीं ऐसें लेहु बिचार॥ ८॥

जैसें जल महिं कवल है जल तें न्यारौ सोइ।
सुन्दर ब्रह्म बिचार करि सब तें न्यारौ होइ॥ ९॥

मनि अहि कै मुख मैं सदा बिष नहिं लागै ताहि।
सुन्दर ब्रह्म बिचारि तें सबसौं न्यारौ आहि॥ १०॥

सुन्दर एक बिचार तें सुख दुख होइ समान।
राग दोष उपजै नहीं तजै मान अपमान॥ ११॥

सुन्दर एक बिचार सौं बुद्धि तजै नानत्व।
जानै एकै आतमा उपजै भाव समत्व॥ १२॥

सुन्दर ब्रह्म बिचार है सब साधन कौ मूल।
याही मैं आये सकल डाल पान फल फूल॥ १३॥

कीयौ ब्रह्म बिचार जिनि तिनि सब साधन कीन।
सुन्दर राजा के रहै प्रजा सकल आधीन॥ १४॥

परा पश्यंति मध्यमा हृदये होइ बिचार।
सुन्दर मुख तें बैषरी बाणी कौ बिस्तार॥ १५॥

---

(५) मसक=मच्छर। काटन लागै=काटै, डक मारै। अर्थात् मतमतान्तर के बाद-बिवाद कर दूसरों को दुःख लगावै।

(६) बरकति=सिद्धि, फायदा, सै।

(१२) नानत्व=नानात्व (छन्द के अर्थ संक्षेप हुआ है)।

सुन्दर रूप रहै नहीं रूप रूप मिलि जाइ।
एक अखडित आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥ १६ ॥

इनि दहुवनि कै मध्य है नव तत्वनि कौ लिंग।
सुन्दर करै बिचार जब उहै होत तब भग ॥ १७ ॥

पच तत्व सो मिलि रह्यौ सूक्षम लिग शरीर।
सुन्दर एक विचार विन चेतन मानत सीर ॥ १८ ॥

ज्यौं काहू कै रोग ह्वै नारी देपै वद।
सुन्दर अपनी सी कहै बायु कियौ तन कैद ॥ १९ ॥

वहुरि बुलायौ जोतिपी उन यह कियौ विचार।
सुन्दर ग्रह लागै सवै कीये पुन्य उवार ॥ २० ॥

भोपै भोपी आइ कै बहुत लगायौ दोप।
सुन्दर या ऊपर कियौ देवी देवन रोष ॥ २१ ।

अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोइ।
सुन्दर बहुत मता सुनै कछू विचार न होइ ॥ २२ ॥

जे विषई अत्यन्त करि रहै विपै फल पाइ।
सुन्दर मावस की निसा अभ्र रहे अति छाइ ॥ २३ ।

कोऊ एक मुमुक्षु कौं दीयौ गुरु उपदेश।
सुन्दर वासौं यौं कह्यौ यह ससार कलेश ॥ २४ ॥

जन्म मरण बहु भाति के आगै जम की त्रास।
चौरासी के दुख सुनि सुदर भयौ उदास ॥ २५ ।

बादल गये बिलाइ कैं तारनि कै उजियार।
देख्यौ रजु कौं सर्प तव सुन्दर विना बिचार ॥ २६ ॥

सुदर कियौ विचार जब प्रगट भयौ तब भान।
अधकार रजनी गई सर्प मिट्यौ रजु जान ॥ २७ ।

---

(२२) अटकर=अटक्ल, अनुमान।

ज्यौं जीव नरेस यह सुख सज्जा परि आइ।
सोयौ अविद्या नींद में सुदर अति सुख पाइ॥ २८॥

आयौ कर्म पवास चलि नृपति जगावन हेत।
सुदर दीनी पुटपरी अतिगति भयौ अचेत॥ २९॥

दष्यौ भक्त प्रधान जब राजा जाग्यौ नाहिं।
सुन्दर सक करी नहीं पकरि झझेरी बाहिं॥ ३०॥

तब उठि करि बैठौ भयौ बहुरि जभाई पात।
सुदर कियौ विचार जब तब जाग्यौ साक्षात॥ ३१॥

देह वोर जो देपिये पच तत्व कौ देह।
सुन्दर ब्रह्मा कीट लौं करहु विचार सु येह॥ ३२॥

प्रान वोर जो देपिये सबकौ एकै प्रान।
सुन्दर क्षुधा तृपा लगैं सबकौ एक समान॥ ३३॥

मनहू कौ जो देपिये मन सबहिन कौ एक।
सुन्दर करैं विकल्पना अरु सकल्प अनेक॥ ३४॥

सुन्दर एकै आतमा जब यह करे विचार।
तब कछु भ्रम दीसै नहीं एक रहै निरधार॥ ३५॥

प्रश्न

कै दुख पावै देह यह कै इन्द्रिनि दुख होइ।
सुन्दर कै दुख प्रान कौ यह समुझावौ कोइ॥ ३६॥

कै दुख अंतहकरण कौ मन बुधि चित अहँकार।
सुन्दर कै दुख त्रिगुन कौं यह तुम कहौ विचार॥ ३७॥

कै दुख है महतत्व कौ कै दुख प्रकृति हि मानि।
सुन्दर कै दुख पुरुप कौ श्री गुरु कहौ वपानि॥ ३८॥

---

(३०) भक्त प्रधान=भक्त अमात्य जो सच्चा हितू है। यह प्रधान विचार है।

(३६) यही विचार 'सवैया" ग्रन्थ में देखो "विचार" के अग मे।

बहु विधि देष्यौ सोच करि कछु जान्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर यह दुख कौन कौं सद्गुरु कहि समुझाइ ॥ ३९ ॥

उत्तर

सुन्दर दुख नहिं देह कौं इद्रिनि कौ दुख नाहिं।
दुख नहिं दीसै प्रान कौ स्वास चलै तनु मांहिं ॥ ४० ॥

दुख नहिं अंतहकरन कौं जिनते देह प्रवृत्य।
सुदर दुख नहिं त्रिगुन कौ यह तुम जानहु सत्य ॥ ४१ ॥

दु.ख नहीं महतत्व कौ प्रकृति सु तौ जडरूप।
सुन्दर दुख नहिं पुरुष कौं सूक्षम तत्व अनूप ॥ ४२ ॥

जड चेतन सयोग तें उपज्यौ एक अज्ञान।
सुन्दर दुख ताकौं भयौ सद्गुरु कहै सुजान ॥ ४३ ॥

जौ बिचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ।
सुन्दर छूटै दुखन तें पद आनद समाइ ॥ ४४ ॥

यह बिचार सुख रूप है और सबै दुख रासि।
सुन्दर यातैं कटत है नाना विधि की पासि ॥ ४५ ॥

भरमावन कौ और सब पहुचावन कौं एक।
सुन्दर साधू कहत हैं जाकौ नाम विवेक ॥ ४६ ॥

याही एक बिचार तें आतम अनुभव होइ।
सुन्दर संमुझै आपुकौं सशय रहै न कोइ ॥ ४७ ॥

जाही कौ चितवन करै तैसौ ही ह्वै जाइ।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें ब्रह्म हिं माहिं समाइ ॥ ४८ ॥

करत बिचार बिचारिया एकै ब्रह्म बिचार।
सुन्दर सकल बिचार मैं यह बिचार निज सार ॥ ४९ ॥

---

(४९) विचारिया=विचार किया । इस विचार को पहुचे कि 'ब्रह्म एक है'।

मन विचारत ब्रह्म ह्वै और विचारत और।
सुन्दर जा मारग चले पहुचे ताही ठौर ॥ ५० ॥

॥ इति विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ऐन नहीं अरु ऐंन है गैंन नहीं अरु गैंन।
सुन्दर नुकता आरसी दूरि किये तें ऐन ॥ १ ॥

सुन्दर नुकता भिन्न है मिल्यौ ऐन सौं नाहि।
मिलि करि दोऊ वाचिये मिले अमिल यौं माहिं ॥ २ ॥

ऐन आतमा जानिये नुकता भयौ शरीर।
सुन्दर दोऊ भिन्न है मिले देषियें वीर ॥ ३ ॥

ऐन सु दीरघ देषिये नुकता तनक दिषाइ।
सुंदर नुकता तनक तें ऐंन गैंन ह्वै जाइ ॥ ४ ॥

उहै ऐन उह गैंन है नुकता ही कौ फेर।
सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ ज्ञान सुपेदा हेर ॥ ५ ॥

[अंग २७] (१) (ऐन), गैन='ज्ञानझूलना अष्टक' में इस पर टीका देखो। ऐन=प्रत्यक्ष। गैन=अप्रत्यक्ष, विकारमय। नुकता=बिन्दु, फारसी के ऐन (ع) अक्षर पर बिन्दु लगाने से गैन अक्षर (غ) बन जाता है। यहां बिन्दु माया का विकार अभिप्रेत है। आर=आड़, (मल, विक्षेप आवरण) रुकावट। अमिल=नुक्ता (माया) ऐन (ब्रह्म) से भिन्न है। ऊपर (आरोपित) रहने से उसमें मिला सा प्रतीत होता है। शरीर=शरीर मायाकृत है।

(५) सुपेदा=अक्षर मिटाने को अक्षर पर (हरताल की तरह) लगाने को।

ऐंन ग्गन के ऊपरें नुकता फूला होइ।
ऐंन गंन ह्वै जात है ऐंन न सूझै कोइ ॥ ६ ॥

नुकता फूला ऊपरै सुन्दर अञ्जन लाइ।
नुकता फूला दूरि ह्वै ऐंन हि ऐन दिपाइ ॥ ७ ॥

ज्यौं आकार अक्षरनि मैं त्यौं आतम सब माहि।
सुन्दर एकै देपिये भिन्न भाव कछु नाहि ॥ ८ ॥

जैसें विजन मिलत है पर अक्षर मो जाइ।
अहकार सुन्दर गयें आतम ब्रह्म समाइ ॥ ९ ॥

विंजन पर अक्षर मिलैं द्वैत भाव दरसाइ।
भक्त मिलै भगवत कौं सुन्दरदास कहाइ ॥ १० ॥

विजन पर अक्षर मिलै द्वैत भाव नहिं कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय एक मेक मिल होइ ॥ ११ ॥

विजन स्वर अक्षर मिलै होइ और ही रूप।
रज वीरज सयोग तें उपजै देह स्वरूप ॥ १२ ॥

देपत दीसै एक ही अरथ विचारय दोइ।
सुन्दर अद्भुत वात है समुझै पडित कोइ ॥ १३ ॥

---

(७) फूला=आखकी पुतली पर दाग वा छोटी सी टिक्की (रोग)।

(८) अकार से ही सब व्यजनों का उच्चारण होता है।

(९) अहकार गये=दूसरे (अगले) व्यजन से मिल कर अपना रूप खो देता है। यहीं अहता का नाश होना है।

(१०) द्वैतभाव दरसाया=जब पर व्यजन में मिल कर भी अपना रूप बना रहै तो अहकार नष्ट न होने से द्वैत भाव बना रहैगा।

(१२) होई और ही रूप=इकारादि स्वर मिलने से अकारवाले अक्षर विकृत से हो जाते हैं। जैसे इ का ए। ओ का अव।

(१३) अद्भुत वात=प्रकृति में ब्रह्म सर्व व्यापक है परन्तु विवेक शून्य बुद्धि को

सोरठा

विंजन होइ तकार तालिब होइ शकार जो।
सुन्दर होइ छकार वमय मरन नहिं देषिये ॥ १४ ॥
यौं द्विज सूद्र सु एक ज्ञान विषै नहिं भेद है।
उभय बरन तजि टेक ब्रह्म रूप सुन्दर भये ॥ १५ ॥

दोहा

दीरघ के पीछै भये ह्वै अनयास गुरुत्व।
सुन्दर लघु दीरघ करै ज्यौं अक्षर सयुत्व ॥ १६ ॥
आपुन लघु ह्वै जात है और हि दे सनमान।
सुन्दर रीति बडेन की जानहिं संत सुजान ॥ १७ ॥
जो कोउ आइ बडौ कहै धरैं बडाई सीस।
तौ हू आप समा करै सुन्दर बिस्वा बीस ॥ १८ ॥
सुन्दर लघुता गहि रहै दूरि करैं जब गर्व।
गुरु ताही कौ देत है बित्त आपनौ सर्व ॥ १९ ॥
जौ गुरु कै पीछै रहै तौ लघु दीरघ होइ।
आगै लघु कौ लघु रहै सुन्दर पुस्तक जोइ ॥ २० ॥

॥ इति अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ब्रह्म का ज्ञान भिन्न नहीं होता। जैसे स्वर मिले व्यंजन साधारण दृष्टि में अक्षर ही दीखते हैं। परन्तु उनका विच्छेद करने से व्यंजन स्वर पृथक् ही दिखाई देते हैं। यही विवेक के अभ्यास का फल होता है।

(१४) होइ छकार=हलन्त् के आगे तालव्य श का छ हो जाता है। ऐसे ही ज्ञान के संस्कार से वर्ण भेद नहीं रहता है।

(१६) गुरुत्व="संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रं। विज्ञेयं अक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन"। संयुक्ताक्षर के पहिला अक्षर सदा ही गुरु हो जाता है। सयुत्व=संयुक्त। सतसंगति और गुरु भक्ति से लघु शिष्य समय पाय स्वयम् गुरु ही

॥ अथ आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

मुख तें कह्यौ न जात है अनुभव कौ आनद ।
सुन्दर समुझै आपु कौं जहा न कोई द्व द ॥ १ ॥

उमगि चलत है कहन कौं कछू कह्यौ नहिं जाइ ।
सुन्दर लहरि समुद्र में उपजै वहुरि समाइ ॥ २ ॥

कह्यौ कछू नहिं जात है अनुभव आतम सुक्ख ।
सुन्दर आवें कठ लौं निकसत नाहि न मुक्ख ॥ ३ ॥

सुन्दर जैसें सर्करा गूगै पाई होइ ।
मुख सों कहि आवै नहीं काप वजावै सोइ ॥ ४ ॥

सदा रहै आनंद में सुन्दर ब्रह्म समाइ ।
गूगा गुड कैसें कहै मनही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥

जाकै निश्चय ऊपजै अनुभव आतम ज्ञान ।
सुन्दर सो वोलै नहीं सहज भया गलतांन ॥ ६ ॥

जाकौ अनुभव होत है सोई जानें सार ।
सुन्दर कहें बनें नहीं मुख तें एक लगार ॥ ७ ॥

कामी जानै काम सुख सोऊ कह्यौ न जाइ ।
आतम अनुभव परम सुख सुन्दर वचन विलाइ ॥ ८ ॥

जाता है । जो गुरु का सेवा नहीं करै वह लघु (गुण रहित) रह जाता है । जो चेले तो हो जाते हैं परन्तु अपनी ऐंठ में गुरु से सीखत नहीं वे अयोग्य रह जाते हैं । इस बात का अक्षरों के उदाहरण से समझाया है ।

[अग २८] (४) कांष वजावै=कांख में हथेली धर कर दबाने से एक शब्द होता है । वह हर्ष का द्यातक है ।

(८) वचन विलाइ=वचन काम नहीं देता है । क्योंकि कहने में नहीं आता है ।

सो जानै जाके भयौ आतम अनुभव ज्ञान।
मुख सौं कहे बनै नहीं सुन्दर जानै जान ॥ ९ ॥

सुन्दर जिनि अमृत पियौ सोई जानै स्वाद।
बिन पीये करतौ फिरै जहा तहां बकवाद ॥ १० ॥

सुन्दर जाके वित्त है सो वह राषै गोइ।
कौडी फिरै उछालतौ जो टटपूज्यौ होइ ॥ ११ ॥

जाके घट अनुभव नहीं ताके सुख नहिं लेश।
सुन्दर बहु बकवाद करि करतौ फिरै कलेश ॥ १२ ॥

जाके अनुभव होत है ताही के सुख चैन।
सुन्दर मुदित रहै सदा पूछे बोलै बैन ॥ १३ ॥

सुन्दर डुबकी मारि कै सुख मैं रहै समाइ।
वह सब कौं देषत फिरै वह नहिं देष्यौ जाइ ॥ १४ ॥

अनुभव करिकै आतमा जानैं ज्यौं आकास।
सदा अखंडित एकरस सुन्दर स्वय प्रकास ॥ १५ ॥

ताकौ आदि न अंत है मध्य कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर ऐसो आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥ १६ ॥

ना वह सूक्ष्म स्थूल है ना वह एक न दोइ।
सुन्दर ऐसो आतमा अनुभव ही गमि होइ ॥ १७ ॥

नां वह रूप अरूप है ना वह मूल न डाल।
सुन्दर ऐसो आतमा ना वह वृद्ध न बाल ॥ १८ ॥

---

(९) जान=जानने वाला। ज्ञानी।

(११) गोइ=गुप्त। टटपूज्या=टाटकी कीमत की पूंजीवाला। अथवा टूटी पूंजीवाला। दरिद्र। दिवालिया।

(१७) गमि=गम्य। जाना जाय।

लघु दीरघ दीसै नहीं ना वह भीत अभीत।
सुन्दर ऐसौ आतमा कहिये वचनातीत ॥ १९ ॥

इन्द्रिय पहुचि सकै नहीं मन हू की गमि नाहिं।
सुन्दर जानै आपु कौं आपु आपु ही माहिं ॥ २० ॥

बुद्धि हु पहुंचि सकै नहीं करै दूरि लग दौर।
सुन्दर ऐसौ आतमा पहुचि सकै क्यौ और ॥ २१ ॥

शव्द तहा पहुचै नहीं वहु विधि करै वपान।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव होइ प्रमान ॥ २२ ॥

वेद कह्यौ वहु भाति करि शास्त्र कही वहु युक्ति।
सुन्दर स्मृती पुरान पुनि कही वहुत विधि उक्ति ॥ २३ ॥

क्यौ ही कर्‍यौ न जात है व्योम माहिं चित्राम।
सुन्दर कहि कहि सब थके है अनुभव विश्राम ॥ २४ ॥

रवि ससि तारा दीप पुनि हीरा होइ अनूप।
सुन्दर उनकै तेज तें दीसै उनकौ रूप ॥ २५ ॥

त्यौं आतम के तेज तें आतम करै प्रकास।
सुन्दर इन्द्रिय जड सवै कोइ न जाणैं तास ॥ २६ ॥

कोई थापत कर्म कौं कोई थापत काल।
को कहै सृष्टि सुभाव तें सुन्दर वाइक जाल ॥ २७ ॥

को कहै माया ब्रह्म पुनि दोऊ सदा अनादि।
जैसें छाया ब्रक्ष की सुन्दर यौं प्रतिपादि ॥ २८ ॥

नास्ति वादी यौं कहै कर्त्ता नाहीं कोइ।
सुन्दर मिल्या सजोग सब पुनि वियोग हू होइ ॥ २९ ॥

---

(१९) भीत=डरा हुआ। अभीत=निर्भय।

(२८) प्रतिपादि=प्रतिपादित, समर्थित।

(२९) 'नास्तिवादी'=छन्द के निवाहने को नास्ति को नास्ती या नास्तिक

पट दरसन सब अंध मिलि हस्थी देष्या जाइ।
अंग जिसा जिनि कर गह्या तैसा कह्या बनाइ॥ ३०॥

झगरन लागे परस्पर काकी मानै कौंन।
सुन्दर देष्या दृष्टि सौं तिनि तौ पकरी मौन॥ ३१॥

बाधि गरगदा सब चले करी मुक्ति कौ दौर।
सुन्दर धोषा मैं परे मुक्ति कही किहिं ठौर॥ ३२॥

मुक्ति बतावत व्योम परि कहिं घोषै के बैंन।
सुन्दर अनुभव आतमा वहै मुक्ति सुख चैंन॥ ३३॥

कोऊ मुक्ति शिला कहै दूरि बतावत मोक्ष।
सुन्दर अनुभव आतमा यह ई कहिये मोक्ष॥ ३४॥

सुन्दर साधन सब करैं कहै मुक्ति हम जाहिं।
आतम के अनुभव बिना और मुक्ति कहुं नाहिं॥ ३५॥

सुन्दर मीठी बात सुनि लागे करवा पांन।
कष्ट करैं बहु भांति के तातें अति अज्ञान॥ ३६॥

दूरि करैं सब बासना आशा रहै न कोइ।
सुन्दर वहई मुक्ति है जीवत ही सुख होइ॥ ३७॥

सुन्दर कोऊ कहत हैं नाभि कंवल मैं ईस।
कोऊ ऐसैं कहत हैं हृदय माहिं जगदीस॥ ३८॥

पढ़ना उचित है। पाठ तो दोनों पुस्तकों में यही है। संयोग=तत्वों के संयोग से जीवादिसृष्टि, और वियोग से प्रलय मृत्यु आदि होते हैं, चार्वाकमत में।

(३२) गरगदा=भारी कमर बधा। तयारी करके।

(३७) जीवत ही सुख=जीवन्मुक्ति, महानन्द का सुख।

(३० से ३१) तक को मिलावैं 'सवइया' अंग २८ के छन्द १७ से।

(३२ से ३७) तक का विचार "सवैया' अंग २८ छन्द १३ व १४ से मिलावैं।

(३८ से ४२) तक का विचार "सवइया" अंग २८ छन्द १६ से मिलावैं।

कोऊ कठ बिषै कहैं अग्र नासिका कोइ।
कोऊ भृकुटी मैं कहै सुन्दर अचिरज होइ ॥ ३९ ॥

कोऊ कहैं लिलाट मैं कोऊ तालु मांहिं।
कोऊ भौर गुफा कहै सुन्दर अनुभव नांहिं ॥ ४० ॥

अनुभव बिन जानै नहीं सुन्दर व्यापक रूप।
बाहिर भीतर एकरस ऐसा तत्व अनूप ॥ ४१ ॥

पच कोस तें भिन्न है सुन्दर तुरिय स्थांन।
तुरियातीत हि अनुभवै तहां न ज्ञान अज्ञांन ॥ ४२ ॥

श्रवन ज्ञान है तब लगै शब्द सुनै चित लाइ।
सुदर माया जल परै पावक ज्यौ बुझि जाइ ॥ ४३ ॥

मनन ज्ञान नहिं जात है ज्यौं बिजुरी उद्दोत।
माया जल बरषत रहै सुन्दर चमका होत ॥ ४४ ॥

निदिध्यास है ज्ञान पुनि बडवा अनल समांन।
माया जल भक्षन करै सुन्दर यह हैरांन ॥ ४५ ॥

आतम अनुभव ज्ञान है प्रलय अग्नि की अच।
भस्म करै सब जारि कैं सुन्दर द्वैत प्रपच ॥ ४६ ॥

नित्य कहत गुरु आतमा सो है शब्द प्रमान।
जैसैं व्यापक व्यौम पुनि सुन्दर यह उपमान ॥ ४७ ॥

जाकी सत्ता इन्द्रियनि यह कहिये अनुमांन।
सुन्दर अनुभव आतमा यह प्रत्यक्ष प्रमांन ॥ ४८ ॥

सुन्दर तत्व जुदे जुदे राष्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के षम्भ मैं कौन बस्तु कहि बीर ॥ ४९ ॥

(४३ से ४६) तक का विचार 'सवइया' अग २८ छन्द २९ से मिलावैं।

(४५) हैरांन=हैरांनी, आश्चर्य, आपत्ती।

है सो सुन्दर है सदा नहीं सु सुन्दर नाहिं।
नहीं सु परगट देषिये है सो लहिये माहिं ॥ ५० ॥
बिरवा बुद्धि गुलाब है शब्द सु फूल प्रकास।
सुन्दर आतम ज्ञान कौ अनुभौ मध्य सुबास ॥ ५१ ॥

॥ इति आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

॥ अथ अद्वैत ज्ञान कौ अंग ॥ २९ ॥

सुन्दर हू नहिं और कछु तू कछु और न होइ।
जगत कहा कछु और है एक अखडित सोइ ॥ १ ॥
सुन्दर हौं नहिं तू नहीं जगत नहीं ब्रह्मण्ड।
हौं पुनि तू पुनि जगत पुनि व्यापक ब्रह्म अखड ॥ २ ॥
सुन्दर पहली ब्रह्म था अबहू ब्रह्म अखड।
आगै हू यह ब्रह्म है मृषा पिण्ड ब्रह्मण्ड ॥ ३ ॥
वृक्षन कौ वन कहत है वन मे वृक्ष अनेक।
सुन्दर द्वैत कछू नहीं वृक्ष रु वन तौ एक ॥ ४ ॥

---

(५०) है सो सुन्दर है सदा=नित्य, शुद्ध, बुद्ध चेतन आत्मा सदा एकरस रहता है। उसमे विकार वा नाश नहीं है। नहीं सो सुन्दर नाहिं=जो अभावरूप है उसका कभी भी भाव नहीं होता। अथवा जो माया है सो मिथ्या है यह तीन काल ही सत्व नहीं रखती है। नहीं सु परगट देषिये=जो क्षर, नाशमान माया है सो व्यवहार में भासमान होती है वास्तव मे नहीं है।

(५१) बिरवा बुद्धि ज्ञानकी तीन अवस्थाए इसमे बताई है। (१) साधारण ज्ञान—जैसे गुलाब के (बिरवा) वृक्ष को देखने से यह ज्ञान हुआ कि यह अमुक वृक्ष है। (२) परन्तु उस पर फूल खिलने से फूल के ज्ञान से एक विशेषज्ञान

घर कहिये सब भूमि पर भूमि घरनि मैं होइ।
सुन्दर एकै देषिये कहन सुनन कौं दोइ।। ५ ॥

सुन्दर घर सब गाव मैं गाव सकल घर माहिं।
घर अरु गांव विचारिये तौ कछु दूजा नाहिं ॥ ६ ॥

वापी कूप तलाव मैं सुन्दर जल नहिं और।
एक अखडित देषिये व्यापक सवही ठौर ॥ ७ ॥

कोरि किये चित्राम वहु एक शिला कै माहिं।
यौं सुन्दर सब ब्रह्ममय ब्रह्म विना कछु नाहिं ॥ ८ ॥

दीप मसाल चिराक वहु दौ लागी घर लाइ।
सुन्दर पावक एक ही ऐसें ब्रह्म दिपाइ ॥ ९ ॥

सुन्दर यह सब ब्रह्म है नाम धर्‌यौ ससार।
एक बीज तें पलटि कैं हूवौ वृक्षाकार ॥ १० ॥

सुन्दर सबकी आदि है सुन्दर सबका मूल।
यथा वृक्ष मैं देषिये डाल पान फल फूल ॥ ११ ॥

भयौ सरकरा ईक्षु रस व्यापि मिठाई माहिं।
सुन्दर ब्रह्म सु जगत है जगत ब्रह्म द्वै नाहि ॥ १२ ॥

हुआ। (३) जब उस फूल की सुगन्ध को सूंघा तो दिमाग मस्त हो गया। और उसका पूर्ण ज्ञान वा अनुभव हुआ कि जो एक वृक्ष था, जिसमें वह फूल लगा था, उसमें ऐसी उत्तम सुगन्ध है। आत्मा का साक्षात्कार भी सुगन्ध के ज्ञान की तरह है। केवल वृक्ष या फूल के दर्शण से गन्ध का ज्ञान नहीं हो सकता है इसही तरह आत्मा का ज्ञान समझिये।

[अग २९] नोट—इस अ गकी साखियों के भाव के लिए देखैं 'सवइया' का अग अद्वैत ज्ञान का।

(८) कोरि=कोर कर, खुदाई करके।

(९) दौं=प्रज्वलित अग्नि।

सुन्दर घृनई वन्धि गयौ धस्यौ डरा सौ नाम।
ऐसैं रामहि जगत है जगत देषिये राम ॥ १३ ॥

सुन्दर पानी न कछू पाला भिन्न न होइ ॥
ऐसैं जगत सु ब्रह्म है जगत ब्रह्म नहिं दोइ ॥ १४ ॥

सुन्दर नीर समुद्र कौ जमि करि हूवौ लौन।
तैसैं यह सब ब्रह्म है दूजा कहिये कौन ॥ १५ ॥

सुन्दर जैसें लोह के किये बहुत हथियार।
ऐसैं यह सब ब्रह्म है जो दीसै विस्तार ॥ १६ ॥

कारन तैं कारज भयौ कारन कारज एक।
जैसैं कंचन तें कियौ सुन्दर घाट अनेक ॥ १७ ॥

जैसैं कीये मैंन के हय हाथी बहु जन्त।
सुन्दर ऐसैं ब्रह्म है आदि मध्य अरु अन्त ॥ १८ ॥

जैसैं मनिका सूत के बीचि सूत कौ तार।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म सब याही है निरधार ॥ १९ ॥

सुन्दर ताना सूत का वानै बुनिया सूत।
नाव धस्यौ फिरि और ही यथा बाप तें पूत ॥ २० ॥

सुन्दर मैं सुन्दर जगत सुन्दर है जग माहिं।
जल सु तरंग तरंग जल जल तरंग द्वै नाहिं ॥ २१ ॥

सुन्दर ब्रह्म अखंड पद सुन्दर यह विस्तार।
ज्यौं सागर मैं बुद्बुदा फेन तरंग अपार ॥ २२ ॥

सुन्दर मैं जग देषिये जग मैं सुन्दर सोइ।
कुंजर मैं नारी प्रगट नारी कुंजर होइ ॥ २३ ॥

---

(१८) मैंन=मैंण, मोम।

(२३) कुंजर में नारी=यह उदाहरण लीला को सङ्केत करता है जिसमें गोपियों ने प्रेमवश मिल कर अपने शरीरों से हाथी बना कर श्रीकृष्ण को उसपर सवार किया था। इसके चित्र भी मिलते हैं। इसको "गोपीकुंजर" कहते हैं।

जैसें बुनत महीर में फुलरी परती जाहि।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म ते जगत भिन्न कछु नांहिं॥ २४॥

चीर मांहिं ज्यौं चूनरी गिलम मांहि बहु भांति।
ऐसें सुन्दर देषिये जगत ब्रह्म नहिं द्वाति॥ २५॥

राजा प्रजा तुरंग गज पशु पंषी बहु जन्त।
सुन्दर पट ज्यौं आतमा जग चित्राम अनत॥ २६॥

इक क्रीडहिं इक मारियंहिं बस्तर कौं कछु नांहि।
सुन्दर जग चित्राम ज्यौं पट आतम के मांहि॥ २७॥

कोट कांगुरे एक है देषत दीसहिं दोइ।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं होइ॥ २८॥

लोक हाथ पर देषिये ज्यौं सीतल सरीर।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं बीर॥ २९॥

सुन्दर मैं संसार है ज्यौं सरीर में अंग।
हस्त पांव मुख नासिका नैंन श्रवन सब संग॥ ३०॥

हस्त पांव अरु अंगुली नैंन नासिका कांन।
सुन्दर जगत सरीर ज्यौं निंदे कौंन स्थान॥ ३१॥

सुन्दर जिह्वा आपुनी अपने ही सब दंत।
जौ रसना विदलित भई तौ कहा बैर करंत॥ ३२॥

सुन्दर ज्यौं आकाश में अभ्र होइ मिटि जांहिं।
त्यौं आतम तें जगत है ताही मध्य समांहि॥ ३३॥

---

(२४) बुनत महीर में=महीर एक प्रकार का वस्त्र होता है जिसमे जुलाहे बुनते समय फूल बूटे पाड़ते है। देखो 'सवैया' अंग ३२। छन्द १८। 'जैसो विधि देखियत फूलरी महीर में'। यहा टीका में दूसरा अर्थ भी किया है जो इसको देखते अनावश्यक है।

(२५) द्वाति=(भाति के अनुप्रास के कारण ऐसा रूप दिया)—दो, द्वैत।

(३२) विदल्ति=पिस गई (दातों के नीचे)।

ह	रि	ल	इ	स	क	[illegible]
[illegible]	सु	द र	स	क था	ध्या	[illegible]
[illegible]	[illegible]	✲	र	✲	ज्ञा / ज्ञ'	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	से	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	✲	[illegible]	✲	वि / चा	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

जीन पोश वध ।

उल्लाला छंद । सरस इसुक तन मन सरस । सरस नवनि करि अति सरस ।
सरस तिरत भव जल सरस । सरस लगति हरि लइ सरस ॥
सरस कथा सुनि के सरस । सरस विचार उहै सरस ।
सरस ध्यान धरिये सरस । सरस ज्ञान सुन्दर सरस ॥८॥

इस के पढने की विधि.—

मध्य के 'स' अक्षर से जिसपर १ का अक है, 'सरस' शब्द ऊपर को पढने हुए दाहिनी ओरको 'मन' शब्द को पढकर अदर 'सरस' मे प्रथम चरण पूर्ण करें। फिर उस ही 'सरस' से दूसरा चरण प्रारंभ करें उलटे पढते हुए, दाहिनी पार्श्व के शेप विभाग को पढते हुए, 'अति' शब्द को पढकर 'सरस' शब्द पर अदर दूसरे चरण को पूर्ण करें। इसही प्रकार तीसरे, चौथे चरणों को पढें। दूसरे छन्द को भी अदर के उसही 'स' अक्षर से प्रारभ कर 'सरस' शब्द को पढकर अदर के पार्श्व के शब्दों को पढते हुए उस 'सरस' शब्द में प्रथम चरण को पूरा करें। दूसरे चरण को उसही 'सरस' को उलटा पढते हुए अदर के पार्श्व के शेप टुकडे को पढते हुए 'सरस' शब्द मे पूरा करें। इसही प्रकार तीसरे चौथे चरणों को 'सरस' शब्द से प्रारभ करके अंदर के पार्श्वों के शब्दों को पढते हुए 'सरस' शब्द ही मे पूर्ण करें।

जब सुन्दर तब नाम नहीं जग तह सुन्दर नित्य।
जब पृथ्वी तब घट नहीं घट तह पृथ्वी सत्य॥ ३४॥

वोह सोह एकही तू ही हू ही एक।
कहिबे ही कौ फेर है सुन्दर संमुझि विवेक॥ ३५॥

ज्यौं नाना हाऊ कहैं बालक मानै त्रास।
त्यौं सुन्दर संसार है मिथ्या वचन विलास॥ ३६॥

जगत नाम सुनि भ्रम भयौ मान्यौ सत्य स्वरूप।
सुन्दर मृग जल देषिये है सूरय की धूप॥ ३७॥

जैसे महदाकाश तें घटाकाश नहिं भिन्न।
यौं आतम परमातमा सुन्दर सदा प्रसन्न॥ ३८॥

आतम अरु परमातमा कहन सुनन कौं दोइ।
सुन्दर तब ही मुक्त है जबहिं एकता होइ॥ ३९॥

देह धरें यह जीव है ईश्वर धरैं विराट।
कारज कारन भ्रम गये सुन्दर ब्रह्म निराट॥ ४०॥

जगत जगत सबको कहै जगत कहौ किहिं ठौर।
सुन्दर यह तौ ब्रह्म है नाम धर्‌यौ फिरि और॥ ४१॥

षोज करत ही जगत को जगत विलै ह्वै जाइ।
सुन्दर यह सब ब्रह्म है जगत कहां ठहराइ॥ ४२॥

जगत कहे तें जगत है सुन्दर रूप अनेक।
ब्रह्म कहे तें ब्रह्म है वस्तु विचारें एक॥ ४३॥

प्रगट भयौ भ्रम जगत कौ करतें जगत विचार।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें जगत न रह्यौ लगार॥ ४४॥

ज्यौं रवि के उद्योत तें अंधकार भ्रम दूरि।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्या भरपूरि॥ ४५॥

---

(४०) निराट=निरा, अकेला।

सुन्दर "सर्व खल्विद ब्रह्म" कहतु हैं वेद।
चतुर श्लोकी माहिं पुनि सकल मिटायौ भेद ॥ ४६ ॥
सुन्दर कह्यौ वसिष्ट पुनि रामचन्द्र सौ ज्ञांन।
ब्रह्म वतायौ एक ही दूरि कियौ भ्रम आन ॥ ४७ ॥
सुन्दर अष्टावक्र ऋषि ब्रह्म वतायौ एक।
दूरि कियौ भ्रम सकल ही जो नानात्व अनेक ॥ ४८ ॥
दत्तात्रय मुनि यौं कह्यौ ब्रह्म विना कछु नांहिं।
सुन्दर सोई कृष्णजी भाष्यौ गीता मांहिं ॥ ४६ ॥
सुन्दर यहै निरूपियौ वहु विधि करि वेदात।
ब्रह्म विना दूजा नहीं सवकौ यह सिद्धात ॥ ५० ॥

॥ इति अद्वैतज्ञान कौ अग ॥ २६ ॥

---

(४६) "सर्वं खल्विद ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन"। यह सब (जगत्) निश्चय ब्रह्म है इसमें नानात्व जो भासता है वह कुछ नहीं है।

चतुर श्लोकी=चतु श्लोकी भागवत। अर्थात् भागवत में सब सन्देह मिटा दिया है। नारदजी को प्रथम चार श्लोक भागवत के प्राप्त हुए। उस पर ही इतना विस्तार हुआ।

(४७) वसिष्ठ=योगवाशिष्ठ ग्रन्थ में रामचन्द्रजी को वशिष्ठजी ने वेदान्त का उपदेश दिया।

(४८) अष्टावक्र=अष्टावक्र गीता में ब्रह्मज्ञान कहा।

(४९) दत्तात्रेय=दत्तात्रेय महामुनि ने दत्तात्रेय संहिता में अद्वैत ज्ञान प्रतिपादन किया।

(५०) वेदान्त=उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और शकर भाष्य आदिक में वेदान्त सिद्धान्त विधिपूर्वक है।

॥ अथ ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

सुन्दर ज्ञानी जगत में विचरै सदा अलिप्त।
यह गुन जानै देह कै भूपो रहै क तृप्त ॥ १ ॥

पाट पिव टप सुनै सुन्दर ले पुनि स्वास।
साव तीर पनाल कौं फिरि मार आकास ॥ २ ॥

देषै परि देषै नहीं सुनता सुनै न कान।
जानै सब जानै नहीं सुन्दर ऐसा ज्ञान ॥ ३ ॥

[illegible] न भषै कछू सूघत सूघै नाहि।
ऐस लक्षण देषिये सुन्दर ज्ञानी माहि ॥ ४ ॥

वोलत ही अनवोलता मिलता ही अनमेल।
सोवत ही अनसोवता सुन्दर ऐसा पेल ॥ ५ ॥

बैठे तें बैठा नहीं ऊठत उठ्या न मानि।
चलतें सो [illegible] नहीं सुन्दर ज्ञानी जानि ॥ ६ ॥

देत कछू नहि देत है लेत कछू नहीं लेइ।
यह सब जानै स्वप्न करि सुन्दर ज्ञानी सेइ ॥ ७ ॥

काज अकाज भलौ बुरौ भेदा भेद न कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब होइ ॥ ८ ॥

काइक वाइक मानसी कर्म न लागै ताहि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब आहि ॥ ९ ॥

पहलैं कियौ न अब करौ आगै की नहिं आस।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान करि काटे बंधन पास ॥ १० ॥

[३० ज्ञानी का अंग]=इस अग के लिए देखें "सवैया" ग्रन्थ में ज्ञानी का अंग २९।

विधि निषेद जाकै नहीं ना कछु पाप न पुन्य।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं सब करि जानै शुन्य ॥ ११ ॥
हर्ष शोक उपजै नहीं राग द्वेष पुनि नाहिं।
सुन्दर ज्ञानी देषिये गरक ज्ञान के माहिं ॥ १२ ॥
बंध मोक्ष जाकै नहीं स्वर्ग नरक नहि दोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय संशय रह्यौ न कोइ ॥ १३ ॥
घर बन दोऊ सारिषे ना कछु ग्रहण न त्याग।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ना कहुं राग विराग ॥ १४ ॥
निंदा स्तुती देह की कर्म शुभाशुभ देह।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय कछू न जानै येह ॥ १५ ॥
कोहू सौं घटि बढि नहीं काहू निकट न दूरि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ब्रह्म रह्या भरपूरि ॥ १६ ॥
शब्द सुनै सो ब्रह्ममय कहै ब्रह्ममय बैंन।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय ब्रह्महि देषै नैंन ॥ १७ ॥
पंच तत्व पुनि ब्रह्ममय ब्रह्मा कीट पर्यंत।
ज्ञानी देषै ब्रह्ममय सुन्दर संत असंत ॥ १८ ॥
सुंदर विचरत ब्रह्ममय ब्रह्म रह्या भरपूर।
जैसैं मच्छ समुद्र मैं कहा जाइ कहु दूर ॥ १९ ॥
जौ पग पहरी पानही कांटा चुभै न कोइ।
सुंदर ज्ञानी सुखमई जहां तहां सुख होइ ॥ २० ॥
जलचर थलचर व्योमचर जीवनि की गति तीन।
ऐसैं सुंदर ब्रह्मचर जहां तहां लयलीन ॥ २१ ॥
अपनै मन आनंद है तौ सगरै आनंद।
सुन्दर मन शीतल भयौ दह दिशि शीतल चन्द ॥ २२ ॥
ऊठत बैठत फिरत हू षातहु पीवत प्रान।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २३ ॥

जागत सोवत जोवते सुख सा करत वपान।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २४ ॥
भूत हु भव्य हु वर्त्तते दूजा नाहीं आन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २५ ॥
अध ऊरध दश हू दिशा पूरन ब्रह्म समान।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २६ ॥
घटाकाश ज्यौं मिलि गयौ महदाकाश निदान।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २७ ॥
मुक्ति शिला मधे कहै ते तौ अति अज्ञान।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २८ ॥
भावै तनु काशी तजौ भावै वागड माहिं।
सुन्दर जीवन मुक्त कै संसय कोऊ नाहिं ॥ २९ ॥
जैसौ काशी क्षेत्र है तैसौ वागड देश।
सुन्दर जीवन मुक्त कै सक नहीं लवलेस ॥ ३० ॥
अज्ञानी कौ जगत सब दीसै दुख संताप।
सुन्दर ज्ञानी कै सकल ब्रह्म विराजै आप ॥ ३१ ॥
अज्ञानी कौ जगत यह दुखदाइक भै त्रास।
सुन्दर ज्ञानी कै जगत है सब ब्रह्म विलास ॥ ३२ ॥
अज्ञ क्रिया कछु करत है अहं बुद्धि कौ आनि।
सुन्दर ज्ञानी करत है अहंकार विनु जानि ॥ ३३ ॥

---

(२५) भूत हु भव्य हु वर्त्तते=भूत भविष्यत, वर्त्तमान ये तीनों काल वर्त्तमान से भासते हैं।

(२६) अध ऊरध =न दिशाए ज्ञानी मे वर्त्तती है। सर्वत्र एक ब्रह्म समान रहता है। "दिक् कालादि—अनवच्छिन्न"। ब्रह्म मे काल, कर्म, दिशा, कारण कार्य कुछ नहीं है। इससे ये ज्ञानी में भी नहीं हैं, जो ब्रह्म ही है।

अज्ञानी सुख दुखनि कौं जानत अपने माहिं।
सुन्दर ज्ञानी आपु मैं सुख दुख मानै नाहिं॥ ३४॥

सुन्दर अज्ञ रु तज्ञ कै अंतर है बहु भांति।
वाकै दिवस अनूप है वाहि अंधेरी राति॥ ३५॥

ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरन हेत।
बहुत भांति के शब्द कहि सुन्दर सिष्या देत॥ ३६॥

जानत है सब स्वप्न करि इन्द्रिनि कौ व्यवहार।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान तैं भिन्न न होइ लगार॥ ३७॥

सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं गरक भयौ निज ठौर।
दंत दिषावै और गज दसन षान कै और॥ ३८॥

तम रज गुण करि जगत है भक्त सतोगुण रुद्ध।
सुन्दर तीनौं गुन परै ज्ञानी सात्विक सुद्ध॥ ३९॥

तवा अधोमुख आरसी दर्पण सूधौ होइ।
ऐसै तम रज सत्व गुण सुन्दर देषहु जोइ॥ ४०॥

तवा माहिं नहिं देषिये सूरय कौ उद्दोत।
सुन्दर मूधी आरसी तामैं कछूक होत॥ ४१॥

जब दर्पन सूधौ करै रवि आभासै आइ।
सुन्दर दर्पन मिटि गयें सूरयई रहि जाइ॥ ४२॥

जीव ब्रह्म मिलि जात है सुन्दर उपजें ज्ञान।
दूर भयौ प्रतिबिंब जब रह्यौ एक ही भान॥ ४३॥

---

(३५) तज्ञ=ज्ञानी।

(४१) मूधी=उलटी। पुराने समय में आरसी फौलाद लोहे की बनती थी। एक ओर सेकल से चमक होती थी। दूसरे ओर कम हाती थी। उसमें अधिक नहीं दिखाई देता था। सूर्य के सामने चमक उसमें अधिक और इसमें कम होती थी। यह लाहे का कारण था। (४३) उपजें ज्ञान=ज्ञान के उत्पन्न होने से, जीव

सुन्दर ज्ञान प्रकास त धोषौ रहै न कोइ।
भावै घर माहें रहौ भावै बन में होइ॥ ४४॥

बन तें घर आवै नहीं घर तें बन नहिं जाइ।
सुन्दर रवि उद्दोत तें तिमिर कहा ठहराइ॥ ४५॥

पंषी की पर टूट कैं भूमि पर्यौ जिहिं ठौर।
सुन्दर उडिबे तें रह्यौ मिटी सकल ही दौर॥ ४६॥

एक क्रिया षेती करै बंधन होत अपार।
एक क्रिया भोजन करत बधन नसनी बार॥ ४७॥

एक क्रिया मल मूत्र कौ तजत नहीं कछु प्यार।
सुन्दर ज्ञानी की क्रिया बंधन नहीं लगार॥ ४८॥

चौपरि षेलहिं द्वै जने सुन्दर बाजी लाइ।
जीतै सु तौ षुसाल ह्वै हारै सौ मुरझाइ॥ ४९॥

एक जनौ दुहुं वोर कौं चौपरि षेलै आनि।
सुन्दर हारनि जीत कछु ऐसैं ज्ञानी जानि॥ ५०॥

सुन्दर देष्या आपुकौं सुने आपुनै वैंन।
यूझ्या अपनी बूझि कौं समुझ्या अपनी सैंन॥ ५१॥

सुन्दर भाया आपु कौं आया अपुनी ठाम।
गाया अपने ज्ञान कौं पाया अपना धाम॥ ५२॥

अंत्यज ब्राह्मण आदि दे दार मथे जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं प्रगट हुतासन होइ॥ ५३॥

ब्रह्म एक हो जाते हैं जैसे दर्पण हट जाय तब सूर्य ही रह जाय। जीव तो ब्रह्म का प्रतिबिंब मात्र है।

(५३) दार मथै=(दारु) लकड़ी को मथो से अग्नि, रगड़ कर, उत्पन्न करै। (५३) और (५६) तक ज्ञान की भेदभाव रहित व्यापकता और सर्व के लिए समान पावनशक्ति के कैसे सुन्दर उदाहरण हैं। वर्णाश्रम, सम्प्रदाय, छोटे बड़े का कुछ भी भेद नहीं। जो करै सो ही पावै।

दीपग जोयौ विप्र घर पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौ ततकाल ॥ ५४ ॥

अत्यज के जल कुम्भ में ब्राह्मन कलस मझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया दुहुवनि में इकसार ॥ ५५ ॥

अत्यज ब्राह्मन आदि दै किवा रक कि भूप।
सुन्दर दर्पन हाथ लै सो देपै निज रूप ॥ ५६ ॥

सुन्दर सब कौ ज्ञान की बातें कहै अनेक।
ज्यौं दर्पन बहु भाति कै अग्नि परै कहु एक ॥ ५७ ॥

देह चलै आतम अचल चलत कहैं मतिमद।
अभ्र चलत ज्यौं देपिये सुन्दर चलै न चन्द ॥ ५८ ॥

सूरय करि कैं देषिये तवा आरसी दोइ।
सूरय सूरय सौ दर्स सुन्दर समुझै कोइ ॥ ५९ ॥

जो भिक्षा मांगत फिरै कै जौ भुक्तै राज।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है नां कछु काज अकाज ॥ ६० ॥

इद्री अर्थनि कौ गृहै लिप्त न कबहू होइ।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है कर्म न लागै कोइ ॥ ६१ ॥

---

(५७) अग्नि परै कहु एक=आतशी शीशे से आग पड़ै अर्थात् उत्पन्न होय, शीशे चाहे जिस आकार के वा तरह के हों, अग्नि तो भिन्नरूप की नहीं होगी, वही एकरूप अग्नि ही होगी। ऐसे ही ज्ञान एक ही है सच्चा, वर्णन उसका पृथक्-पृथक् भले ही करें।

(५९) सूरज के सामने चाहे तवा करो चाहे आरसी करो उसमें सूरज तो सूरज ही दीखैगा। ऐसे ही आत्मा का सब प्राणियों या भूतों में (घटों की नांई) प्रतिबिंब पड़ता है सो इकसार है।

(६०) भुक्तै राज=जनक राजा की तरह जिसके भोग मोक्ष साथ-साथ थे।

ज्ञानी चारि प्रकार

रागी त्यागी शांति पुनि चतुर्थ घोर बषानि।
ज्ञानी चारि प्रकार हैं तिनहिं लेहु पहिचानि॥ ६२॥

रागी राजा जनक है त्यागी शुक सम थोर।
शांति जानि जमदग्नि कौं दुर्वासा अति घोर॥ ६३॥

क्रिया सु तिनकी भिन्न है भिन्न देह व्यवहार।
ज्ञान विषै नहिं भेद है सुंदर एक लगार॥ ६४॥

क्रिया देषि ज्ञानीनि की सब कोऊ भ्रमि जाहिं।
सुन्दर देषैं देह कृत आशय पावै नाहिं॥ ६५॥

॥ इति ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ अन्योऽन्य भेद अंग ॥ ३१ ॥

सुन्दर ज्ञानी नृपति के सेना है चतुरङ्ग।
रथ अश्व गज त्रय अवस्था इन्द्रिय पाइक संग॥ १॥

तुरिया सिंघासन कियौ तुरियातीत सु वोक।
ज्ञान छत्र है सीस पर सुन्दर हर्ष न शोक॥ २॥

रथ चौवीस हु तत्त्व कौ कर्म सुभासुभ बैल।
सुन्दर ज्ञानी सारथी करै दशौं दिशि सैल॥ ३॥

---

(६२) शान्ति=शान्त (ज्ञानी का एक प्रकार या अवस्था का विशेषण)।

[अङ्ग ३१]—(२) वोक=(स० ओक) स्थान, निज भवन। आखिरी मजिल या पद। परमगति।

(३) "आत्मानं रथिन विद्धि। शरीर रथमेव च"। (उप०। गीता)

तीनौं गुन इंद्रिय सकल ये सब चालै गैल।
सुन्दर विचरत जगत महिं ताहि न लागै मैल ॥ ४ ॥

(२) *अन्य भेद ।*

देह तमूरा ठाट जड जीभ तार तिहिं लाग।
सुन्दर चेतन चतुर विन कौंन बजावै राग ॥ १ ॥

जीभ तार दोऊ बजहिं सुन्दर देषहु आइ।
एक बजावत देषिये एक न देष्या जाइ ॥ २ ॥

एक कह्या अनुमानि करि एक देषिये अक्ष।
सुन्दर अनुभव होइ जब तब देषिये प्रत्यक्ष ॥ ३ ॥

किनहूं पूछ्यौ फेरि कैं अनुभव कैसी होइ।
सुन्दर तुम अनुभव कही चिन्ह बतावौ कोइ ॥ ४ ॥

तेरै अनुभव होइ है तबहिं जानि हैं वीर।
मुख तें कही न जात है सुन्दर सुख की सीर ॥ ५ ॥

कन्या पूछत और त्रिय पुरुष मिलै कौ सुक्ख।
सुदर परसी पीव कौं तब कछु कहै न मुक्ख ॥ ६ ॥

गूंगै षाई सरकरा सुन्दर मन मुसक्याइ।
सैंन बतावै हाथ सौ मुख तैं कही न जाइ ॥ ७ ॥

जिन जिन कौ अनुभव भयौ तिन तिन पकरी मौन।
सुन्दर अनुभव गोपि है चिन्ह बतावै कौंन ॥ ८ ॥

सुन्दर जैसैं पुरुष तैं अगुरी ह्वै चेतन्य।
अगुरी जत्र बजावई राग अन्य ही अन्य ॥ ९ ॥

पुरुष सु तौ चेतन्य है अंगुरी अंतहकर्ण।
सुंदर बाजै जंत्र तनु शब्द कहै बहु बर्ण ॥ १० ॥ १४ ॥

---

(१०) जंत्र=यंत्र, बाजा,। तनु=देह।

(३) अन्य भेद

सत् अरु चित्त आनदमय ब्रह्म विशेषण तीन।
अस्ति भाति प्रिय आतमा वहै विशेषण कीन ॥ १ ॥
नास्ति जानि जड दुःख मय तीन विशेषण देह।
उपजै वर्तै लीन ह्वै सब विकार को गेह ॥ २ ॥
ब्रह्म देह के मध्य है अतहकरण उपाधि।
तत् संबधी आतमा ताहि लगी यह व्याधि ॥ ३ ॥
याही सुद्ध असुद्ध है याके ज्ञान अज्ञान।
जट नों मिलि जडवत भयौ जीवातम सो जान ॥ ४ ॥
अस्ति असत सौ जानिये भाति भयौ जड रूप।
प्रिय पुनि हूवौ दुःख मय भूलि पर्‍यौ भ्रम कूप ॥ ५ ॥
यह लक्षण अज्ञान कौ देह सु मान्यौ आप।
सुन्दर या अभिमान तें व्यापें तीनों ताप ॥ ६ ॥
ताही तें यह जीव है अह ममत जब होइ।
भूलि गयौ निज रूप कौ सुधि वुधि अपनी पोइ ॥ ७ ॥
जो कोई जग्यास ह्वै सद्गुरु सरणै जाइ।
सुन्दर ताहि कृपा करें ज्ञान कहै समुझाइ ॥ ८ ॥
वासौ सद्गुरु यौ कहै समझि आपनौ रूप।
सकल भेद भ्रम दूरि करि तू है तत्व अनूप ॥ ९ ॥

[अन्यभेद ३ रा] (२) और (१)=सत् का अस्ति। चित् का भाति। आनन्द का प्रिय। क्रमशः। उपजै वर्त्तै लीन ह्वै=उत्पत्ति, स्थिति, सहार को प्राप्त होवै। विकार=विकृति जो प्रकृति से गुणभेद संस्कार से होती है सो प्रपच का कारण है, चेतन की सत्ता से।

(७) अह ममत=(१) अहता (२) ममता।

अस्त होइ सत रूप तब भाति होइ चैतन्य।
प्रिय पुनि ह्वै आनन्दमय आतम ब्रह्म न अन्य ॥ १० ॥
जीव भयौ अनुलोम तें ब्रह्म होइ प्रतिलोम।
सुन्दर दारु जराइ कैं अग्नि होइ निर्धोम ॥११॥२५॥

(४) *अन्य भेद।*

गऊ देह कै मद्धि है पय अरु उत्तम ज्ञान।
सुन्दर घृत ज्यौं आतमा व्यापक एक समान ॥ १ ॥
चारि श्रवन जब नीरिये बांट मनन अभ्यास।
सुददर दुहिये धेनु कौ सो कहिये निदिध्यास ॥ २ ॥
दुग्ध ज्ञान जब पाइये जा मन निश्चै तात।
सुन्दर दधि मथि अनुभवै निकसै घृत साक्षात ॥ ३ ॥
सुन्दर या अनुक्रम विना ज्ञान प्रगट नहिं होइ।
बात कहें का होत है भ्रम मति भूलै कोइ ॥ ४ ॥ २६ ॥

(५) *अन्य भेद।*

क्रिया करत है बहुत विधि ज्ञान दृष्टि जो नांहिं।
अध चल्यौ मग जात है परै कूप के माहिं ॥ १ ॥
ज्ञान दृष्टि करि निपुनि है क्रिया नहीं पग दौर।
अग्नि लगै जब सदन मैं पगु जरै वहि ठौर ॥ २ ॥
ज्ञान क्रिया दोऊ मिलहिं तबही होइ उबार।
यथा अंध के कंध पर पंगु होइ असवार ॥ ३ ॥

---

(१०) अस्त=अस्ति।

(११) निर्धौम=निर्धूम्र। धूम (धुवां) अग्नि में उपाधि है। जैसे आत्मा पर माया। "धूमेनाग्निरिवावृता" (गीता)।

[अन्य भेद ४ थे में] (२) चारि=चारा। तृणादिक। बांट=बांटा, सानी दाल खली विनोला दाना आदि।

कूप अग्नि दोऊ बचहिं तामैं फेर न कोइ।
सुन्दर ज्ञान क्रिया बिना मुक्त कदे नहिं होइ ॥ ४ ॥
क्रिया भक्ति हरि भजन है और क्रिया भ्रम जान।
ज्ञान ब्रह्म देषै सकल सुन्दर पद निर्बान ॥ ५ ॥ ३४ ॥

(६) *अन्य भेद ।*

कर्त्ता कर्म न भोगता पुद्गल जीव न कोइ।
सुन्दर यह भ्रम स्वप्न मैं जागें एक न दोइ ॥ १ ॥
भ्रम कर्त्ता भ्रम भोगता भ्रम सु कर्म भ्रम काल।
भ्रम पुद्गल भ्रम जीव है सुन्दर सब भ्रम जाल ॥ २ ॥
बचन जाल उरझै सबै सुरझावैं गुरु देव।
नेति नेति करते रहैं सुन्दर अलष अभेव ॥ ३ ॥
एक अखंडित ब्रह्म है दूसर नाही आंन।
सुन्दर भ्रम रजनी मिटै प्रगट होइ जब भान ॥ ४ ॥
कठिन बात है ज्ञान की सुन्दर सुनी न जाइ।
और कहौं नहिं ठाहरै ज्ञानो हृदय समाइ ॥ ५ ॥ ३९ ॥

॥ इति अन्योऽन्य भेद अंग ॥ ३१ ॥

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित साषी समाप्तम् ॥

---

(४) कूप अग्नि=कूप से और अग्नि से (पड़ने जलने से बचै)।

इस (५) अन्यभेद में सुन्दरदासजी ने दादूजी की सम्प्रदाय का और निजमत को कह दिया है।

[अन्य भेद (६) में] (१) पुद्गल=देह, शरीर।

(४) भान=भानु, सूर्य (ज्ञानरूपी सूर्य)।

(५) और कहौं नहिं ठाहरै=ज्ञानरूपी अमृत सिंहनी के दूध के समान है, सो

ज्ञानी के शुद्ध हृदयरूपी कनकपात्र ही में ठहर सकता है अन्य पात्र तो इसके लिए अपात्र, अनधिकारी और अयोग्य है उसमें यह पय (ज्ञान) नहीं ठहर सकता है। अर्थात् पहिले अपने आपको गुरु उपदेश, साधन और भक्ति से इस योग्य बनावै तब ज्ञान समा सकता है। अन्यथा लाक्षज्ञान या स्मशानज्ञान की तरह क्षणभंगुर होगा। इधर सुना उधर निकल गया।

⊛ अङ्ग ३१ के अन्त में मूल (क) पुस्तक में ६ ठे अन्य भेद की समाप्ति के भी अनन्तर—दो श्लोक शार्दूल (विक्रीडित), एक अनुष्टुप, १ भुजगप्रयात छन्द, फिर १ अनुष्टुप छन्द—यों संस्कृतमय ये पांच छन्द हैं। सो (ख) पुस्तकानुसार हमने फुटकर काव्य के अन्त में, अर्थात् यों समस्त ग्रन्थों के अन्त में, दिये हैं। सो सगति प्रतीत होगी। सुन्दरदासजी "साषी" पर सब ग्रन्थ समाप्त कर चुके थे ऐसा भासित होता है।

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदासजी की "साषी" पर सुन्दरानन्दी टीका समाप्तम् । अंग ३१ । साखी संख्या १३५१ ॥

—:※:—

पद (भजन)

॥ अथ पद (भजन)[१] ॥

जकड़ी राग गौड़ी

(१)

(ताल रूपक)

देह कहै सुनि प्रांनिया काहे होत उदास वे।
आरस परस हम तुम मिले ज्यौं पहुप अरु बास वे ॥ (टेक)
ज्यूं पहुप बास मिलाप जैसौं दूध घृत ज्यौं मेल वे।
काष्ठ मैं ज्यौं अग्नि व्यापक तिलनि मैं ज्यौं तेल वे ॥
जलैं उदक लवना मध्य गलना एकमेक बखानिया।
सुन्दरदास उदास काहे देह कहै सुनि प्रानिया ॥ १ ॥
जीव कहै काया सुनौं हम तुम होइ विवोग वे।
हम निर्गुण तुम गुणमयी कैसै रहत सयोग वे ॥
सयोग कैसैं रहत तोसौं हौं अमर अविनास वे।
तू क्षण भंगुर आहि बौरी कौन ताकी आस वे ॥
इक आस ताकी कहा करिये नास होवै तिहिं तनौ।
सुन्दरदास उदास यातैं जीव कहै काया सुनौ ॥ २ ॥
देह कहै सुनि प्रानिया तोहि न जानत कोइ वे।
प्रगट सु तौ हमतैं भयौ कृतघनी जिनि होइ वे ॥

---

[१] पदों की रागों के लक्षण और समय की तालिका परिशिष्ट में देखें।

(१) विवोग=वियोग, भिन्न। बौरी=बावली, अल्प बुद्धि की।

इक होइ जिनि कृतघनी कब हौं भोग बहु विधि तें किये ।
शब्द सपरस रूप रस पुनि गध नीकें करि लिये ॥
इक लिये गंध सुवास परिमल प्रगट हम तें जानियां ।
सुन्दरदास विलास कीने देह कहै सुनि प्रानिया ॥ ३ ॥
जीव कहै काया सुनौ तू काहू नहि काम वे ।*
सोभ दई हम आइकें चेतनि कीया चाम वे ॥
इक चाम चेतनि आइ कीया दिया जैसें भौन वे ।
बोलन चालन तबहिं लागी नहिंतु होती मौन वे ॥
यह मौन तेरौ जबहिं छूटै तबहि तुम नीकी बनौ ।
सुन्दरदास प्रकास हमतें जीव कहै काया सुनौ ॥ ४ ॥
देह कहै सुनि प्रानिया तेरैं आपि न कान वे ।
नासा मुख दीसै नहीं हाथ न पाव निसांन वे ॥
इक हाथ पांव न सीस नाभी कहा तेरौ देषिये ।
भिन्न हमतें जबहिं बोलै तबहिं भूत विशेषिये ॥
डरैं सब कोई शब्द सुनि कै भरम भै करि मानियां ।†
सुन्दरदास आभास ऐसौ देह कहै सुनि प्रानियां ॥ ५ ॥
जीव कहै काया सुनौ तो महिं बहुत विकार वे ।
हाड मास लौहू भरी मज्जा मेद अपार वे ॥
इक मेद मज्जा बहुत तोमैं चरम ऊपर लाइया ।
जा घरी हम होंहि न्यारे सबैं देषि घिनाइया ॥

---

* "नहिं" के स्थान में "नाहीं" पाठ छन्द को और भी ठीक बनाता है । सोभ=शोभा । तबहि तुम नीकी बनौ=यदि वाणी बन्द हो जाय तो गूगा रहै वा मृतक समझा जाय । उत्तम वाणी ही से मनुष्य की बड़ाई और इहलोक और परलोक का हित साधन होता है ।

† "कोई" में ह्रस्व इ हो तो (कोइ) छन्द ठीक रहै ।

(५) अभास=जो प्रगट में लोगों को जान पड़ै(भूत प्रेत का होना, या प्रभाव)।

जिन कउ सबकौ देषि तो कौं नाक मूंदै जन जनो।
सुन्दरदास सुवास हमतें जीव कहै काया सुनौ॥ ६॥
देह कहै सुनि प्रानिया तेरे ठौर न ठाव वे।
लेत हमारो आसिरो धरत हमहीं को नाव वे॥
तू नाव कैसें धरत हम कौं बात सुनिये एक वे।
जा हाडी में पाइ चलिये ताहि न करिये छेक वे॥
अब छक कीयें नाहिं सोभा करि हमारी कानिया।
सुन्दरदास निवास हममें देह कहै सुनि प्रानिया॥ ७॥
जीव कहै काया सुनौ मेरै ठौर अनंत वे।
आयौ थो इस काम कौं भजन करन भगवंत वे॥
भगवत भजनै कारनि आगौ प्रभु पठायौ आप वे।
पीछली सुधि सर्व विसरी भयौ तोहि मिलाप वे॥
इक मिले तोसौं कहा कोसौं अतरा पार्‍यौ घनौ।
सुन्दरदास विसास घातनि जीव कहै काया सुनौ॥ ८॥

(२)

अलष निरंजन ध्यावउ और न जाचउं रे।
कोटि मुक्ति देइ कोई तौ ताहि न राचउ रे॥ (टेक)
ब्रह्मा कहियेइ आदि पार नहीं पावै रे।
कीयौ करम कुलाल सुमन नहिं भावै रे॥ १॥
विष्णु हुते अधिकारि सुतौ भ्रम जनस्यौ रे।
सकट माहें आइ दसौं दिस भरम्यौ रे॥ २॥

(६) सबकौं=सब कोई।

(७) कानियां=कान, कांण मानना, आदर करना। लाहा मानना।

(८) कहा कोसौं=तुझ से मिलना क्या हुआ कोसों का आतरा पड़ गया।

शकर भोलानाथ हाथ वरु दीनौं रे।
अपनौ काल उपाइ मरम नहिं चीन्हौं रे॥ ३॥
औरौ देविय देव सेव हम त्यागिय रे।
सव तें भयौ उदास ब्रह्म लय लागिय रे॥ ४॥
जाचिक निकट अवास आस धरि गावै रे।
वाहरि ठाढो रहै कि भीतरि आवै रे॥ ५॥
षवरि भईय दातार सार मोहि वूझिय रे।
इहा आवन की गैलि तोहि कस सूझिय रे॥ ६॥
जाचिक वोलै वैंन सकल फिरि आयौ रे।
तोहि जैसौ कोउ अवर कहू नहीं पायौ रे॥ ७॥
सव साहिन पर साहि नृपति पर राइय रे।
सव देवन पर देव सुन्यौ सुख दाइय रे॥ ८॥
पुसिय भये दातार कहा तुम मागै रे।
रिधि सिधि मुकति भंडार सु तेरै आगै रे॥ ९॥
जाकर इन कीये चाहि ताहि कौं दीजै रे।
हम कह नाम पियार सदा रस पीजै रे॥ १०॥
देष्यौ वहुत डुलाइ न कतहूव डोलै रे।
दियौ अभै पद दान आन नहीं तोलै रे॥ ११॥
जाचिक देइ असीस नाम लेइ काकौ रे।
माइ वाप कुल जाति वरन नहीं वाकौ रे॥ १२॥
सव तेरौ परिवार न तेरौ कोइय रे।
वहुत कहा कहौ तोहि सवद सुनि दोइय रे॥ १३॥
धनि धनि सिरजनहार तौ मगल गायौ रे।
जन सुन्दर कर जोरि सीस तोहि नायौ रे॥ १४॥

---

२ का (३) वरु=वरदान वीरभद्रगण को भस्मागर कड़ा देकर।

(३)

ताहि न यह जग ध्यावई, जातैं सब सुख आनद होइ रे।
आन देव कौं ध्यावर्ने, सुख नहिं पावै कोइ रे॥ (टेक)
कोई शिव ब्रह्मा जपै रे कोई विष्णु अवतार।
कोई देवी देवता इहा उरझ रह्यौ संसार॥ १॥
घट धारी सब एक हैं रे तासौं प्रीति न लाइ।
भेंड सरन गहै भेडका तौ कैसैं उवस्या जाइ॥ २॥
प्रांण पिंड जिन सिरजिया रे सो तो विसरे दूरि।
और और के ह्वै गये तातैं अत परै मुख धूरि। ३॥
लोक कहैं हम करत हैं रे सेवा पूजा ध्यान।
काति मुई सब जन्म लौं वह भयौ कपास निदान॥ ४॥
गुनधारी गुन सौं रंजे रे निर्गुन अगम अगाध।
सकल निरतर रमि रह्या ताहि सुमिरै कोइ एक साध॥ ५॥
जरा मरन तैं रहित है रे कीजै ताकी सेव॥
जन सुन्दर वासौं लग्या जौ है अविनासी देव॥ ६॥

(४)

(पूर्वी बोली मिश्रित)

हरि भजि बौरी हरि भजु तजु नैहर कर मोहु।
पिव लिनहार पठाइहि इक दिन होइहि बिछोहु॥ (टेक)[१]

---

३ का (४)—काति मुई =उम्र भर सूत काता (काम वृथा किया) और अन्त सब वृथा गया। इसीसे मुहाविरा है कि "काता पींदा सब कपास हो गया"।

४ पद की टेक=नैहर कर=नेहर (पीहर) का।—पिव लिनहार=पिया (गौंण पर) लेने को आवेगा तब।

१. "भजु" को "भज्" पढना वा उच्चारण करना ठीक होगा। "पठाइहि" को "पठाइही" और "होइहि" को "हुइहि" पढना ठीक होगा। छन्द और राग की सुविधा के कारण से ही।

आपुहि आपु जतन करु जौ लगि वारि वयेस।
आन पुरुष जिनि भेटहु केंहू के उपदेस॥ १॥
जवलग होहु सयानिय तवलग रहव संभारि।
केहू तन जिनि चितवहु ऊंचिय दृष्टि पसारि॥ २॥
यह जोवन पिय कारन नीकं रापि जुगाइ।
आपनौ घर जिनि छोडहु पर घर आगि लगाइ॥ ३॥
यहि विधि तन मन मारै दुइ कुल तारैं सोइ।
सुन्दर अति सुख विलसई कंत पियारी होइ॥ ४॥

(५)

ये तहां झूलहि संत सुजान सरस हिंडोलना। (टेक)
जत सत दोउ षभ वरे श्रद्धा भूमि विचारि।
क्षमा दया धृति दीनता ये सपि सोभित डाडी चारि॥ १॥
उत्तम पटली प्रेम की रे डोरी सुरति लगाइ।
भईया भाव झुलावई ये सपि हरपि हरपि गुन गाइ॥ २॥
चहुं दिशि बादल उनइये रे रिमिझिमि वरिषै मेह।*
अंतर भीजे आतमा ये सपि दिन दिन अधिक सनेह॥ ३॥
झूलहिं नाम कबीरजी रे अति आनंद प्रकास।
गुरु दादू तहां झूलहीं ये सपि झूलै सुन्दरदास॥ ४॥

(६)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई पानी बिन कछु नांहीं।
तौ दर्पन प्रतिबिंब प्रकाशै जौ पानी उस मांहीं॥ (टेक)

---

४ का (१) वारि वयेस=वालपन।
५ वा पद—झूलेका रूपक काया और आत्मापर है।—नाम=नामदेव भक्त।
* 'उनइये रे' के स्थान में 'उनइये' वा कनये पढ़ना।
६ ठा पद—"पानी" शब्द का श्लेष अनेक अर्थ में। हाथी का मद भी उसकी

पानी तें मोती की सोभा मंहिगे मोल बिकावै।
नहिं तो फटकि शिला की सरिभरि कौडी बदले पावै ॥ १ ॥
जब गजराज मस्तमद होई करिये बहु विधि सारा।
जब मद गयौ भयौ बसि अपनें लादि चलायौ भारा ॥ २ ॥
जब सरवर जल रहै पूरि के सब कोइ देपन चाहा।
सूकि गये ताही के भीतरि पोटे आइ बराहा ॥ ३ ॥
याही सापि कहै सिधि साधू बिंद रापि कैं लीजै।
सुन्दरदास जोग तब पूरण राम रसाइन पीजै ॥ ४ ॥

(७)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई सुनिये एक तमासा।
चुप करि रहौं त कोई न जानैं कहतैं आवै हासा ॥ (टेक)
नारी पुरुष के ऊपर बैठी बूझै एक प्रसंगा।
जौ तूं मेरे कहे न चालै तौ कछु रहै न रगा ॥ १ ॥
कंत कहै सुनि सर्व-सोहागनि तेरा बोल न रालौं।
अबकें क्योंही छूटन पाऊं बहुरि न तोहि सभालौं ॥ २ ॥
बहुरि त्रिया इक बात बिचारी यह कब हौ नहिं मेरौ।
अबकें आइ पर्यौ बप माही करि छाडोंगी चेरौ ॥ ३ ॥
दोऊ मेल रहत नहिं दीसै इक दिन होंहि निराले।
सुन्दरदास भये बैरागी इनि बातन के घाले ॥ ४ ॥

सोभा है जो, पनी से है। पानी वीर्य के अर्थ में भी। बराहा=शूकर (फादें को टूड से उखीदें)।

७ वां पद—(टेक) त=तो। पुरुष=जीव। नारि=माया (काया) निराले=(१) मृत्यु से। (२) मोक्ष से, असग से।

(८)

(ताल तिताला)

देषौ भाई कामिनि जग में ऐसी।
राजा रंक सवनि के घर में वाघनि ह्वै कर वैसी ॥ (टेक)
कवहीं हसै कवही इक रोवै कोई मरम न पावै।
झीनी पैसि हरै बुधि सवकी छल वल करि गटकावै ॥ १ ॥
ज्ञानी गुनी सूर कवि पण्डित होते चतुर सयाना।
सनमुख होइ परं फन्द मांही जुवती हाथ विकाना ॥ २ ॥
वस्ती छाडि वसैं वन माहै चावैं सूके पाता।
दाउ परै उनहूं कौं मारै दे छाती पार लाता ॥ ३ ॥
नागलोक नग पतनी कहिये मृत्युलोक मैं नारी।
इन्द्रलोक (मैं) रंभा ह्वै वैठी मोटी पासि पसारी ॥ ४ ॥
तीनि लोक मैं वच्यौ न कोई दीये डाढ तर सारे।
सुन्दरदास लगे हरि सुमिरन ते भगवन्त उवारे ॥ ५ ॥

(९)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई पद में अचिरज भारी।
समझै कौ सुनतें सुख उपजै अन समझै कौ गारी ॥ (टेक)
माय मारि करि ऊपरि वैठा वाप पकरि करि वाध्यौ।
घर के और कुटवी ऊपरि विन कमान सर साध्यौ ॥ १ ॥

---

८ वां पद—झीनी पैसि=वारीक या गहरी घुस कर। अपना कावू वड़ी चतुराई के साथ पुरुष पर करके। गटकावै=अपना स्वार्थ सिद्ध करै। माल मारै।

(४) नाग पतनी=नाग कन्या। (५) 'दीये'—इसको 'दिये' पढ़ें।

९ वां पद—इस पद में विपर्य शब्द का उपयोग है। 'सवैया' और 'साषी' के विपर्यय अंगों की टीका देखें। माय=माया। वाप=अहंकार। कुटुंवी=इन्द्रिय और

त्रिया त्रास करि बाहरि काढी लहुडी धी घरि घाली।
जेठी धी कै गलै छुरी दे बहू अपूठी चाली॥ २॥
सास विचारी ज्यौं त्यौं नीकी सुसरौ बडौ कसाई।
तास्यौ सगति बनै न कबहू निकसिइ भग्यौ जंवाई॥ ३॥
पुत्र हुवौ परि पाइ पागुलौ नैंन अनन्त अपारा।
सुन्दरदास इसौ कुल दीपग कियौ कुटंब संहारा॥ ४॥

(१०)

(ताल चरचरी)

पल पल छिन काल ग्रसत, तोहिं दृग नाहिं द्रसत,
हँसत मूढ अज्ञान ते।
करत है अनेक धन्ध, और कौन वदत अन्ध,
देषत शठ विनस जाइ झूठे अभिमान तें॥ (टेक)
पर्यौ जाइ विषै जाल होइगें बुरे हवाल,
बहुत-भांति दु:ख पं है निकसत या प्रान तें।
सुत दारा छाडि धाम अरथ धरम कौंन काम
सुन्दर भजि राम नाम छूटै भ्रम आन तें॥ १॥

(११)

(तिताला)

भया मैं न्यारा रे। सतगुरु के जु प्रसाद भया मैं न्यारा रे॥
श्रवन सुन्यौ जब नाद भया मैं न्यारा रे।
छूटौ वाद विवाद भया मैं न्यारा रे॥ (टेक)

विषय तथा कामक्रोधादिक। सर=ज्ञान का तीर। त्रिया=तृष्णा। लहुडी=लघुता, निरभिमानता। सास=बुद्धि। सुसरो=मात्सर्य। जवाई=अभिमान, क्रोध। पुत्र=ज्ञान। अनत नैन=दिव्य दृष्टि, प्रकाश। कुल दीपग=जिज्ञासु ज्ञानी जीव सत महात्माओं का सत्सग।

१० वां पद—द्रसत=दीसत, दिखता। आन=अन्य। भिन्न।

लोक बेद को संग तज्यौ रे साधु समागम कीन।
माया मोह जञ्जाल तें हम भागि किनारौ दीन ॥ १ ॥
नाम निरजन लेत हैं रे और कछू न सुहाइ।
मनसा वाचा कर्मना सब छाडी आन उपाइ ॥ २ ॥
मनका भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि।
उलटि समाना आप मैं तव प्रगट्या राम हजूरि ॥ ३ ॥
पिंड ब्रह्मण्ड जहा तहा रे वा विन और न कोइ।
सुन्दर ताका दास है जातैं सब पैदाइस होइ ॥ ४ ॥

(१२)

(तिताला)

काहे कौं तू मन आनत भै रे। जगत विलास तेरौ भ्रम है रे ॥ (टेक)
जन्म मरन देहनि कौं कहिये सोऊ भ्रम जव निश्चय ग्रहिये ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शका तूही राव भयौ तू रंका ॥ २ ॥
सुख दुख दोऊ तेरै कीये तैंही वन्ध मुक्त करि लीये ॥ ३ ॥
द्वैत भाव तजि निर्भै होई तव सुन्दर सुन्दर है सोई ॥ ४ ॥१२॥

(१) राग माली गौडो

(ताल रूपक)

हरि नाम तैं सुख ऊपजै मन छाडि आन उपाइ रे।
तन कष्ट करि करि जौ भ्रमै तौ मरन दु ख न जाइ रे ॥ (टेक)
गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर रे।
योग यज्ञ कलेश तप व्रत नाम तुलत न और रे ॥ १ ॥

---

११ वां पद=उलटि समाना आपमें=अतर्मुख वृत्ति हो गई। पिंड=शरीर, काया। ब्रह्मण्ड=सकल सृष्टि।

[राग माली गौडो] १ ला पद—नाम तुलत=नाम के बराबर।

सब सन्त यौंही कहत है श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे।
दास सुन्दर नाम तें गति लहै पद निर्वान रे॥ २॥

(२)

(ताल रूपक)

सतसंग नित प्रति कीजिये मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै अति लहै सुख्ख अपार रे॥ (टेक)
मुख नाम हरि हरि उच्चरै श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे।
रटि ररकार अखंड धुनि तहां प्रगट पूरन चन्द रे॥ १॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये यह अगम उल्टा पेल रे।
कहि दास सुन्दर देषतें होइ जीव ब्रह्म हि मेल रे॥ २॥

(३)

(ताल रूपक)

ब्रह्म ज्ञान विचारि करि ज्यौं होइ ब्रह्म स्वरूप रे।
सकल भ्रम तम जाय मिटि उर उदित भान अनूप रे॥ (टेक)
यह दूसरो करि जबहिं देषै दूसरौ तब होइ रे।
फेरि अपनी दृष्टि ही कौं दूसरौ नहिं कोइ रे॥ १॥
दिवि दृष्टि करि जब देषिये तब सकल ब्रह्म विलास रे।
अज्ञान तें संसार भासै कहत सुन्दरदास रे॥ २॥

(४)

(ताल रूपक)

परब्रह्म है परब्रह्म है परब्रह्म अमिति अपार रे।
नहिं जगत है नहिं जगत है नहिं जगत सकल असार रे॥ (टेक)

---

२ रा पद—"सुख"को छन्द सौन्दर्य के लिए "सुख्ख" लिखना पड़ा है।
श्रुति=कान।

३ रा पद—दिवि दृष्टि=दिव्य दृष्टि, भेद रहित ज्ञान।

नहिं पिंड है न ब्रह्मांड है नहिं स्वर्ग मृत्यु पाताल रे।
नहि आदि है नहिं अत है नहिं मध्य माया जाल रे ॥ १ ॥
नहिं जन्म है नहिं मरन है नहिं काल कर्म सुभाव रे।
जीव नहिं जमदूत नहिं अनुस्यूत सुन्दर गाव रे ॥ २ ॥

(५)

जग तै जन न्यारा रे। करि ब्रह्म विचारा
ज्यौ सूर उज्यारा रे। (टेक)
जल अवुज जैसें रे, निधि सींप सु तैसें रे
मणि अहि मुख ऐसें रे ॥ १ ॥
ज्यौं दर्पन माहीं रे दीसै परछाही रे, कछु परसै नहीं रे ॥ २ ॥
ज्यौ घृत हि समीपै रे, सव अंग प्रदीपै रे, रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यो है आकसा रे, कछु लिपै न तासा रे, यौ सुदरदासा रे ॥ ४ ॥

(६)

गुरु ज्ञान बताया रे, जग झूठ दिषाया रे, यौ निश्चै आया रे ॥ (टेक)
ज्यौं मृग जल दीसै रे, कोइ पिया न पीसै रे, यौ विस्वा वीसै रे ॥ १ ॥
ज्यौं रैंनि अधारी रे, रजु सर्प निहारी रे, भ्रम भागा भारी रे ॥ २ ॥
ज्यौं सींप अनूपा रे, करि जान्यौ रूपा रे, कोइ भयौ न भूपा रे ॥ ३ ॥
वध्या सुत झूलै रे, आकास के फूलै रे, नहिं सुन्दर भूलै रे ॥४॥१८॥

(१) राग कल्याण

(तिताला)

तोहि लाभ कहा नर देह कौ।
जो नहिं भजे जगतपति स्वामी तौ पशुवन मैं छेह कौ। (टेक)

---

४ था पद—अनुस्यूत=सर्वव्यापक, ओतप्रोत
६ ठा पद—पीसै=पीवैगा (रा०)।

पान पान निद्रा सुख मैथुन सुत दारा धन गेह कौ ।
यह तौ ममत आहि सबहिन कौं मिथ्या रूप सनेह कौ ॥ १ ॥
समझि विचारि देपि या तन कौं बंध्यौ पूतरा पेह कौ ।
सुन्दरदास जानि जग झूठौ इनमैं कोउ न केह कौ ॥ २ ॥

(२)

(ताल तिताला)

नर राम भजन करि लीजिये ।
साध संगति मिलि हरि गुन गइये प्रेम मगन रस पीजिये । (टेक)
भ्रमत भ्रमत जग में दुख पायौ अब काहे कौं छीजिये ।
मनिषा जन्म जानि अति दुर्लभ कारिज अपनौ कीजिये ॥ १ ॥
सहज समाधि सदा लय लागै इहि विधि जुग जुग जीजिये ।
सुंदरदास मिलै अविनाशी दड काल सिर दीजिये ॥ २ ॥

(३)

(ताल तिताला)

नर चिंत न करिये पेट की ।
हलै चलै तामैं कछु नाही कलम लिपी जो ठेट की ॥ (टेक)
जीव जंत जल थल के सबही तिनि निधि कहा समेट की ।
समय पाय सबहिन कौं पहुचैं कहा बाप कहा बेटकी ॥ १ ॥
जाकौं जितनो रच्यौ विधाता ताकौ आवै तेटकी ।
सुंदरदास ताहि किन सुमिरौ जौ है ऐसा चेटकी ॥ २ ॥

[राग कल्याण] १ ला पद (जारो)—पूतरा=पुतला, मूर्त्ति । केह=किसी का ।

२ रा पद—दड काल सिर=काल के माथे में सोटा मारो । । काल जीतो । अमर बनो ।

३ रा पद—बेटकी=बेटी, पुत्री । तेटकी=िततनी (वा, उतने टके भर, वजन भरी) । चेटकी=चेटक करने वाला । इस अद्भुत सृष्टि का रचने, पालने और फिर मिटा देने वाला ।

(४)

(धीमा तिताला)

जग झूठौ है झूठौ सही। पूरन ब्रह्म अकल अविनाशी।
मन वच क्रम ताकौ गही ॥ (टेक)
उपजै बिनसै सो सब बाजी वेद पुराननि मैं कही।
नाना विधि के पेल दिपावै बाजीगर साचौ उही ॥ १ ॥
रज भुजग मृगतृष्णा जैसी यह माया विस्तरि रही।
सुन्दर वस्तु अखड एक रस सो काहू बिरलै लही ॥ २ ॥

(५)

(तिताला)

तत थेई तत थेई तत थेई ता धो। नागड धी नागड धी
नागड धी मा धो। (टेक)
थुगनि थुगनि थुगनि थुगा त्रिघट उघटितत तुरिय उतंगा ॥ १ ॥
तन नन तन नन तन नन तन्ना गुप्ता गगनवत आतम भिन्ना ॥ २ ॥
तत् त्वं तत् त्व तत् सो त्व असि साम वेद यौ वदत तत्वमसि ॥३॥
अद्भुत निरतत नासत मोह सुदर गावत सोह सोह ॥ ४ ॥ २३ ॥

---

४ था पद—सही=यह बात सही है, निश्चित है, सिद्धांत की है।

५ वां पद—इसका अध्यात्म अर्थ। तत्=वह ब्रह्म। थे ई=तुमही निश्चय करके हो। ता धी=वह बुद्धि, ब्रह्मवृत्ति वाली। नागड़ धी=नागी बुद्धि, असंप्रज्ञात समाधि में जो अत करण की अवस्था। नागड़ धी=नहीं गहरी गड़नेवाली बुद्धि। नागड़ धी=नागर+धी=शुद्ध सस्कृत हुई बुद्धि। मा धी=मत हठसे ढकेल। यहां केवल उक्त शुद्ध बुद्धि का काम है। (जारी)—थुग निथुग =थू+अग=थ्वग=थुग—अग, काया माया हेय है थूकने योग्य। तीन बेर कहने से वचन की प्राधान्यता हुई। त्रिघट=स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ही नाशमान शरीर है। उघटित=ये तीनों उदघाटित, खुल जांय अर्थात् इनका अन्त हो जाय। (तब) वह तत्

(१) राग कानडौ

राम छबीले कौ व्रत मेरैं।
सुख तौ सुखी दुखी तौ हू सुख ज्यौं रापै त्यौं नेरैं॥ (टेक)
निश सौ निश बासर तौ बासर जोई जोई कहैं सोई सोई बेरैं।
आज्ञा माहिं एक पग ठाढी सब हाजरि जब टेरैं॥ १॥
रीसि करहिं तौ हू रस उपजै प्रीति करहिं तौ भाग भलेरैं।
सुन्दर धन्न के मन मैं ऐसी सदा रहूंगी फेरैं॥ २॥

(२)

संत सुखी दुख मय संसारा।
संत भजन करि सदा सुखारे जगत दुखी गृह कै विवहारा॥ (टेक)
संतनि कै हरि नाम सकल निधि नाम सजीवनि नाम अधारा।
जगत अनेक उपाइ कष्ट करि उदर पूरना करै दुखारा॥ १॥
सतनि कौं चिंता कछु नाहीं जगत सोच करि करि मुख कारा।
सुन्दरदास संत हरि सनमुख जगत विमुख पचि मरै गंवारा॥ २॥

(३)

संत समागम करिये भाई।
जानि अजानि छुवै पारस कौं लोह पलटि कंचन होइ जाई॥ (टेक)
नाना विधि बनराइ कहावत भिन्न भिन्न करि नाम धराई।
जाकौं बास लगै चन्दन की चन्दन होत वार नहिं काई॥ १॥

(सत् ब्रह्म) उत्तम अर्थात् सर्वोच्च सबसे ऊपर प्राप्त हो जो तुरीय है। अर्थात् तुरीयावस्था। तननन.. ततन=न इति जो प्रगट विश्व दृश्यमान भासता है सो परब्रह्म नहीं है यह तो माया मात्र है। ब्रह्म तो आकाश की तरह अति सूक्ष्म परन्तु सर्व व्यापक है। आगे स्पष्ट अर्थ है।

[राग कानडी] १ ला पद—नेरैं=निकट। बेरैं=बेला, समय। हर वक्त हाजिर। धन=धण, पत्नी। फेरैं=फेरै (रा०) गिर्द फिरी।

नवका रूप जानि सतसगति तामैं सब कोई वैठहु आई।
और उपाइ नहीं तरिबे कौ सुन्दर काढी राम दुहाई॥ २॥

(४)

हरि सुख की महिमा शुक जानैं।
इंद्रपुरी शिव ब्रह्मलोक पुनि वैकुंठादिक नजरि न आनैं। (टेक)
ता सुख मगन रहैं सनकादिक नारद हू निर्मल गुन गानैं।
ऋषभदेव दत्तात्रय तन मैं वामदेव महा मुक्त वषानैं॥ १॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहू सदा अखडित सत प्रवानैं।
सुन्दरदास आस वा सुख की प्रगट होइ तवही मन मानैं॥ २॥

(५)

सब कोउ आप कहावत ज्ञानी।
जाकौं हर्ष शोक नहि व्यापै ब्रह्मज्ञान की ये नीसानी॥ (टेक)
ऊपर सब विवहार चलावै अतहकरण शून्य करि जानी।
हानि लाभ कछु धरै न मन मैं इहिं विधि विचरैं निर अभिमानी॥ १॥
अहकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आंनी।
जीवन-मुक्त जानि सोइ सुन्दर और वात की वात वपानी॥ २॥

(६)

तू अगाध परब्रह्म निरजन को अब तोहि लहै।
अजर अमर अबिगति अविनासी कौंनें रहनि रहै॥ (टेक)
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद से सहु अगम कहै।
सुन्दरदास बुद्धि अति थोरी कैसें तोहि गहै॥ १॥

---

३ रा पद—काई=कुछ। राम दुहाई=सत समागम से वढकर मोक्ष का उपाय अन्य नहीं। इस वात को राम की दुहाई देकर कहते हैं।

४ था पद—शुक=शुकदेव मुनि। भागवत में ब्रह्मानन्द को भक्ति द्वारा प्राप्त करने का उपदेश है।

५ वां पद—वात की वात=कोरी वात है। ६ ठा पद—गहै=प्राप्त करै। पकड़ै।

(७)

ज्ञान नहीं जहा द्वंद्व न कोई।

वाद विवाद नहीं काहू सौं गरक ज्ञान मैं ज्ञानी सोई॥ (टेक)

भेदाभेद दृष्टि नहिं जाकै हर्ष शोक उपजै नहिं दोई।

ममता भाव भयौ उर अंतर सार लियौ सब ग्रंथ विलोई॥ १॥

स्वर्ग नरक संशय कछु नांहीं मनकी सकल वासना धोई।

वाही कौ तुम अनुभव जानौ सुन्दर वहै ब्रह्ममय होई॥ २॥

(८)

पंडित सो जु पढै यह पोथी।

जा मैं ब्रह्म विचार निरंतर और बात जानौं सब थोथी॥ (टेक)

पढत पढत केते दिन बीते विद्या पढी जहा लग जो थी।

दोष बुद्धि जो मिटी न कबहू यातैं और अविद्या को थी॥ १॥

लाभ पढै को कछू न हूवौ पूजी गई गांठि की सो थी।

सुन्दरदास कहै समुझावै बुरो न कबहू मानौं मो थी॥ २॥ ३१॥

(१) राग बिहागड़ौ

(ताल त्रिवट)

हो बैरागी राम तजि किहिं देश गये।

ता दिन तैं मोहि कल न परत है परवसि प्रांन भये॥ (टेक)

भूष पियास नींद नहिं आवै नैननि नेम लये।

अंजन मंजन सुधि सब बिसरी नख शिष बिरह तये॥ १॥

---

७ वां पद—गरक=डूबा हुआ, गहरी पहुंच वाला। विलोई=मथन करके। मनन करके।

८ वां पद—को थी=कौन सी थी। इससे बढकर अज्ञान और क्या हो सकता है। मो थी=मुझ से, मेरे कहे का।

[राग बिहागड़ौ]१ ला—तये=तपाये।

आपु कृपा करि दरसन दीजै तुम कौनैं रिझये।
सुन्दर विरहनि तव सुख पावै दिन दिन नेह नये॥ २॥

(२)

(धीमा तिताला)

माई हो हरि दरसन की आस।
कव देषौं मेरा प्रान सनेही नैंन मरत दोऊ प्यास॥ (टेक)
पल छिन आध घरी नहिं विसरौ सुमिरत सास उसास।
घर वाहरि मोहि कल न परत है निस दिन रहत उदास॥ १॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी सूके रगत र मांस।
सुन्दर विरहनि कैसैं जीवै विरह विथा तन त्रास॥ २॥

(३)

(तिताला)

हमारै गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कछु कहत न आवै अमृत रसहि भरी॥ (टेक)
ताकौ मरम संत जन जानत वस्तु अमोल षरी।
यातैं मोहि पियारी लागत लैकरि सीस धरी॥ १॥
मन भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक षात सव जग कौं सो भी देष डरी॥ २॥
त्रिविधि बिकार ताप तनि भागी दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मीच पलाई और कवन बपुरी॥ ३॥
निस बासर नहिं ताहि विसारत पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयौ घट निरविष सवही व्याधि टरी॥ ४॥

---

१ ला कौंनैं=क्यों नहीं (अर्थात् क्यों नही रिझाये)।२ रा पद—रगत र=रक्त (रुधिर) र (और)।

३ रा पद—तनि=काया में। मीच=मौत। पलाई=भागी।

(४)

(तिताला)

मन मेरे उलटि आपु कौं जानि।
कहे जो उठि चहु दिशि धावे कौन परी यह वानि ॥ (टेक)
सत गुरु ठौर बताई तेरी सहज सुनि पहिचानि।
तहां गये तोहि काल न व्यापै होइ न कबहू हानि ॥ १ ॥
तू ही सकल वियापी कहिये समुझि देपि भ्रम भानि।
तू ही जीव शीव पुनि तू ही तू ही सुन्दर मानि ॥ २ ॥

(५)

(तिताला)

हाहा रे मन हाहा।
हाइ हाइ तोहि टेरि कहत हौं अब चलि सीधी राहा ॥ (टेक)
बार बार समुझायो तो कौं दे दे लंबी धाहा।
निकसि जाइ पल माहि धूम ज्यौं कतहू ठौर न ठाहा ॥ १ ॥
तेरौ वार पार नहिं दीसै बहुत भांति औगाहा।
डुबकी मारि मारि हम थाके कतहु न पायौ थाहा ॥ २ ॥
जौ तू चतुर प्रवीन जान अति अबके करि निर्बाहा।
छाडि कलपना राम नाम भजि यातैं और न लाहा ॥ ३ ॥
चञ्चल चपल चाहि माया की यह गुलाम-गति काहा।
सुन्दर सॅमुझि विचार आपुकौं तू तौ है पतिसाहा ॥ ४ ॥

---

४ था पद सहज सुनि=सहज योग से शून्यावस्था (वृत्ति रहित मनि का ज्ञान की)। शीव=शिवा। कैवल्य।

५ वा पद—धाहा=जोर से चीख मार कर पुकारना। औगाहा=विचार नि.।
काहा=काह, क्या वस्तु है? कैसी है?

(६)

(तिताला)

तू ही रे मन तू ही।
कौन कुबुद्धि लगी यह तोकौं होत सिंह तें चूही ॥ (टेक)
छानत छार फिरै निसवासर कौडी कौ भव भू ही।
अमृत छाडि निलज्ज मूढ-मति पकरत नीरस छूही ॥ १ ॥
अंत न पार कलपना तेरी ज्यौं वरिषा ऋतु-ᐩ फूही।
सुख निधान अपनौं सुख तजि कें करत है दुख समूही ॥ २ ॥
शिव सनकादिक पुनि ब्रह्मादिक प्रह्लाद‡ अरु ध्रू ही।
नाम कबीरा सोझा पीपा कहै सतगुरु दादू ही ॥ ३ ॥
बाती देषि कहा तू भूलै यह तौ है सब रूही।
सुन्दर ऐसैं जानि आपुकौं सुन्दर काहि न हू ही ॥ ४ ॥

(७)

गुजराती भाषा

(ताल दीपचन्दी-होली का ठेका)

भाई रे आपणपौ जू ज्यौं। साभलि नें जिमना तिम हूं ज्यौं ॥ (टेक)
जीव थया ज्यारें देह हू जाणयौं। निज सरूप नथी आप पिछाण्यौं ॥ १ ॥
मूलगौं ज्ञान† तुम्हे वीसर्यौ ज्यारें। जीव थया तुम्हें ततक्षण त्यारें ॥ २ ॥
सद्गुरु मिलत संसय जाये। पोतानी जाणै महिमाये ॥ ३ ॥
हूहू करतौ तेहू भोलै। हूतौ तेजे सोहं बोलै ॥ ४ ॥
हम जाणै हू वस्तु अनामै। सुन्दर तें सुन्दर पद पामै ॥ ५ ॥

---

६ ठा पद— भू ही=पृथ्वी को ही। फूही=फफोंद। भुरै पानी की छींटों की। रूही=रुई। हू ही=हो जाता।

ᐩ रितु पाठ भी है।

‡ उच्चारणार्थ ल को ह्र लिखा। † 'ग्यान' पाठ।

(१) राग केदारो

व्यापक ब्रह्म जानहु एक।
और भ्र दूरि सव मक रिये इहै परम विवेक॥ (टेक)
ऊंच नीच भलौ बुरौ सुभ असुभ यह अज्ञान।
पुन्य पाप अनेक सुख दुख स्वर्ग नरक बपान॥ १॥
द्वंद्व जौं लौं जगत तौं लौं जन्म मरण अनंत।
हृदै मैं जब ज्ञान प्रगटै होइ सबकौ अन्त॥ २॥
दृष्टि गोचर श्रुति पदारथ सकल है मिथ्यात।
स्वप्न तें जाग्यौ जबहिं तब सब प्रपंच बिलात॥ ३॥
यथा भान प्रकाश तें कहुं तम रहै न लगार।
कहत सुन्दर संमुझि आई तब कहा संसार॥ ४॥

(२)

देषहु एक है गोविंद।
द्वैत भाव हि दूरि करिये होइ तब आनन्द॥ (टेक)
आदि ब्रह्मा अन्त कीट हु दूसरौ नहिं कोइ।
जो तरंग विचारिये तौ वहै एकै तोइ॥ १॥
पंच तत्व रु तीन गुन कौ कहत है संसार।
तऊ दूजौ नाहिं एकहि वीज कौ विस्तार॥ २॥
अतत निरसन कीजिये तौ द्वैत नहिं ठहराइ।
नहिं नहीं करते रहै तहा वचन हूं नहिं जाइ॥ ३॥
हरि जगत मैं जगत हरि मैं कहत है यौं वेद।
नाम सुन्दर धर्यौ जब ही भयौ तब ही भेद॥ ४॥

[राग केदारो] २ रा पद—अतत निरसन=अतत्व जो माया उसका निरसना नाम बाध होने से। (जारी) नाम=नाम रूप मय जगत है।

(३)

ज्ञान विन अधिक अरूझत है रे।
नैंन भये तौ कौन काम के नेंक न सूझत है रे॥ (टेक)
सब मैं व्यापक अन्तरजामी ताहि न बूझत है रे।
भेद दृष्टि करि भूलि पस्यौ है तातें जझत है रे॥ १॥
कठिन करम की परत भापसी माहि अमूझत है रे।
सुन्दर घट मैं कामधेन हरि निश दिन दूझत है रे॥ २॥

(४)

हरि विन सब भ्रम भूलि परे है।
नाना विधि के क्रिया कर्म करि वहु विधि फलन फरे हैं॥ (टेक)
कोऊ सिर परि करवत धारैं कोऊ हीम गरे है।
कोऊ झपापात लेइ करि सागर बूडि मरे हैं॥ १॥
कोऊ मेघाडम्बर भीजहिं पचा अग्नि जरे हैं।
कोऊ सीतकाल जल पैठें वहु कामना भरे हैं॥ २॥
कोऊ लटिकि अधोमुख भूलहिं कोऊ रहत परे हैं।
कोऊ वन मैं पात कन्द पणि वलकल वसन धरे हैं॥ ३॥
कोऊ तीरथ कोऊ व्रत करि कष्ट अनेक करे है।
सुन्दर तिनकौं को समुझावे पुहपित वचन छरे है॥ ४॥

---

३ रा पद—अरूझत=उलझता, कठिनाई मे फसना। जूझत=लड़ता। अमूझत=चित्त में अवखाई पाता है। दूझत=दूध देनी।

४ था पद—फरे=फले। हीम=हिमालय में। कद पणि=कद जमीन से खोदकर निकाल कर (?)। पुहपित=पुष्प भरे। छरे=टपक पड़े, फड़ पड़े, अर्थात् उनका वचनाडवर ही वड़ा सुन्दर है। अथवा "पुष्पितां वाचं" (गीता) इससे अभिप्राय है।

(१) राग मारु

लगा मोहि राम पियारा हो।
प्रीति तजि ससार सौं मन किया न्यारा हो ॥ (टेक)
सत गुरु शब्द सुनाइया दिया ज्ञान विचारा हो।
भरम तिमर भागे सबै गहि कीया उज्यारा हो ॥ १ ॥
चापि चापि सब छाडिया माया रस पारा हो।
नाम सुधारस पीजिये छिन वारम्वारा हो ॥ २ ॥
मैं बन्दा ब्रह्म का जाका वार न पारा हो।
ताहि भजै कोइ साधवा जिनि तन मन मारा हो ॥ ३ ॥
आन देव कौं ध्यावई ताकै मुख छारा हो।
अलप निरञ्जन ऊपरै जन सुन्दर वारा हो ॥ ४ ॥

(२)

मेरे जिय आई ऐसी हो।
तन मन अरप्यौ राम कौं पीछं जानौ जैसी हो ॥ (टेक)
सत गुरु कही मरम की हिरदै में वैसी हो।
समुझि परी सब ठौर की कहौ रही न कैसी हो ॥ १ ॥
अन जाने जो कछु किया अब होय न वैसी हो।
रीति सकल ससार की मोहि लगत अनैसी हो ॥ २ ॥
मनसा वाहरि दौरती अभि अन्तर पैसी हो।
अगम अगोचर सुनि मैं तहा लागी लै सी हो ॥ ३ ॥
जौ आगै सन्तनि करी उपजी है तैसी हो।
सुन्दर काहे कौं डरै जब भागी भै सी हो ॥ ४ ॥

[राग मारु] २ रा पद—अनैसे=अप्रिय, बुरी। लै=लय, लग्न। भै सी=भाग-वाली। भयानक।

(३)

सुन्यौ तेरौ नीकौ नाऊ हो।
मोहि कछू दत दीजिये बलिहारी जाऊं हो ॥ (टेक)
सब ठाहर होइ आइयौ रुचि नहीं कहाऊं हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौ अरु किते बताऊ हो ॥ १ ॥
मैं अनाथ भूखौ फिरौं तोहि पेट दिपांऊ हो।
धक्का लगे तें गिर परौ तबही मरजाऊं हो ॥ २ ॥
दुर्बल की कछु बूझिये कबकौ बिललाऊ हो।
तेरै कछु घटि है नहीं मैं कुटम्ब जिवाऊं हो ॥ ३ ॥
राम राम रटिबौ करौं निर्मल गुन गाऊं हो।
सुन्दर रङ्क निवाजिये यहु रोजी पाऊ हो ॥ ४ ॥

(४)

सोई जन राम कौं भावै हो।
कनक कामिनी परहरै नहिं आप बन्धावै हो। (टेक)
सबही सौं निरवैरता काहू न दुपावै हो।
सीतल बानी बोलिकै रस अमृत प्यावै हो। ॥ १ ॥
कैतौ मौन गहे रहै कै हरिगुन गावै हो।
भरम कथा संसार की सब दूरि उडावै हो ॥ २ ॥
पचौ इन्द्री वसि करै मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौ पनि पोदि बहावै हो ॥ ३ ॥
चौथा पद कौ चीन्हं कैं ता माहिं समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिग काल न आवै हो ॥ ४ ॥

---

३ रा पद—कहांऊं=कहीं भी।

पद ४ था—चौथा पद=तुरीया अवस्था। गुणातीत हो जाना।

चौकी २२

चौपइया

या पार्स आप रहै अविनाशी ढपि विनारह काया।
या काहु न जाना जगत भुलाना मांहै मोटी माया॥
या माटी माहैं हीरा निकस्या सतगुरु पोज लपाया।
या पाल लपेट्यौ सुन्दर दीसै याही पार्स पाया॥ ८॥

इसके पढने की विधि

इस चित्रकाव्य के चित्र के गर्भ में या अक्षर से प्रारंभ करके दाहिनी ओर पढ़। और र्म अक्षर फिर दाहिनी ओर पढते हुए चौकी के प्रथम पागे मे सी अक्षर से च णा र ना यति को उचारण करके आगे पार्श्व के ढेपि आदि शब्दों को पढ कर हु अक्षर का पढ नागर काया शब्द पर प्रथम चरण पूर्ण करें। फिर उसही या अक्षर से काहु में होकर मोटा माया तक अन्त आ पढ। यहां दूसरा चरण पूरा हुआ। आगे इसही प्रकार उसही या अक्षर से शेष दो चरणों का पढ कर सुन्दर दीसै याही पासै पाया। यहां समाप्त कर दे। चारों चरणों के चरणार्धों मे चार अक्षर पागेंगे -

(५)

जुवारी जूवा छाडौ रे।

हारि जाहुगे जन्म कौं मति चौपडि माडौ रे ॥ (टेक)

चौपड़ अंतहकरण की तीनौं गुन पसा रे।

सारि चतुर्दश वरत हो यौं होइ विनासा रे ॥ १ ॥

लख चौरासी घर फिरै अब नरतन पायौ रे।

पाछे काची सारि ह्वै जो दाव न आयौ रे ॥ २ ॥

झूठी बाजी है मडी तामैं मति भूलौ रे।

जीव जुवारी बापडा काहे कौं फूलौ रे ॥ ३ ॥

सारि समुझि कै दीजिये तौ कबहु न हारौ रे।

सुन्दर जीतौ जन्म कौं जौ राम सभारौ रे ॥ ४ ॥

(६)

ऐसी मोहि रैंनि विहाई हो।

कौन सुनै कासौं कहौं वरनी नहिं जाई हो ॥ (टेक)

पूरन ब्रह्म विचार तें मोहि नींद न आई हो।

जागत जागत जागिया सूतैं न सुहाई हो ॥ १ ॥

कारण लिंग स्थूल की सब शंक मिटाई हो।

जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनौं विसराई हो ॥ २ ॥

तुरिया तत्पद अनुभयौ ताकी सुधि पाई हो।

"अहं ब्रह्म" यौं कहत हौ हौं गयौ बिलाई हो ॥ ३ ॥

वचन तहा पहुचै नहीं यह सैंन वताई हो।

सुन्दर तुरियातीत मैं सुन्दर ठहराई हो ॥ ४ ॥

---

६ ठा पद—कहत हौ=कहते कहते । कहता रहता था, (इसके अभ्यास से फिर)। गयो बिलाई=ब्रह्म मे लीन हो गया।

(७)

ज्ञानी ज्ञान कौं जानै हो ।
मुक्त भयौ विचरै सदा कछु शंक न आनै हो ॥ (टेक)
सॅमुझि बूझि चुपचाप ह्वै वकवाद न ठानै हो ।
दूरि भई सव कल्पना भ्रम भेदहि भानै हो ॥ १ ॥
देषै हस्तामलक ज्यौं कछु नाहि न छानै हो ।
सुन्दर ऐसौ ह्वै रहै तवही मन मानै हो ॥ २ ॥ ४६ ॥

(१) राग भैरू

वेगि वेगि नर राम संभाल, सिर पर मूछ मरोरत काल (टेक)
या तन का लेषा है ऐसा, काचा कुभ भरया जल जैसा ।
विनसत वार कछू नहिं होई, पीछै फिरि पछितावै सोई ॥ १ ॥
को तेरौ तूं काकौ पूत, घर घर नौ मन अरभ्यौ सूत ।
नीकैं समुझि देषि मन मांहि, आठ वाट सव कोई जांहिं ॥ २ ॥
ममता मोह कौन सौं करै, वाट वेटोही क्यौं नहीं डरै ।
सगी तेरै सबै सिधाये, तोकौं दैंन संदेसा आये ॥ ३ ॥
मनुष देह दुर्लभ है सही, शिव विरचि शुक नारद कही ।
सुदरदास राम भजि लेह, यह औसर वरियां पुनि येह ॥ ४ ॥

---

७ वां पद—हस्तामलक=हाथ के आंवले के समान । स्पष्ट । यथा तुलसीदासजी ने कहा है'—"जानहि तीनि काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ।"

[राग भैरू] १ ला पद—लेषा=लेखा, हिसाव । अत निश्चय । आठ घाट=आठ रस्ते । वुरे रस्ते में । वरियां=वरियान=अतिश्रेष्ठ ।

(२)

घट विनसै नहीं रहै निदांना।

पुदइ (फहुं) देष्या अकलि तें जाना ॥ (टेक)

ब्रह्म विष्णु महेसुर पपिया, इंद्र कुबेर गये तप तपिया ॥ १ ॥

पीर पंकंयर सबै सिधाये, मुहमद सिरिषे रहन न पाये ॥ २ ॥

धरनि गगन पानी अरु पवना, चंद सूर पुनि करिहै गवना ॥ ३ ॥

एक रहै सो सुन्दर गावै, मुष्टि न माइ दृष्टि नहिं आवै ॥ ४ ॥

(३)

धीरज नास भये फल पावै, ऐसा ज्ञान गुरू संसुझावै ॥ (टेक)

मन कौं जानि सकल का मूल, साषा डाल पत्र फल फूल।

मन कै उठै पसारा भासै, मन कै मिटैं जु ब्रह्म प्रकासै ॥ १ ॥

कौ हौं आहि कहां तें आया, क्यौं करि दूजा नाम धराया।

ऐसैं निस दिन करै विचारा, होइ प्रकास मिटै अंधियारा ॥ २ ॥

बाहिर दृष्टि सो भीतरि आनं, भीतरि दृष्टि ब्रह्म पहिचानैं।

जो भीतरि सो बाहरि सूझै, यह परमारथ विरला बूझै ॥ ३ ॥

मृतिका कै घट भये अपार, जल तरंग नहिं भिन्न विचार।

सुन्न कहन सुनन कौं दोइ, पाला गलि पानी ही होइ ॥ ४ ॥

(४)

सोई है सोई है सोई है सब मैं।

कोई नहिं कोई नहिं कोई नहिं तब मैं ॥ (टेक)

पृथ्वी नहिं जल नहिं तेज नहिं तन मैं।

वायु नहिं व्योम नहिं मन आदि मन मैं ॥ १ ॥

---

२ रा पद—यह पद किसी मुसलमान फकीर को सुनाया है। माइ=मावै, समावे

शब्दादि रूप रस गन्ध नहिं घर में।
श्रोत्र त्वक् चक्षु घ्राण रसना न चर में॥ २॥
सत रज तम नहिं तीन गुन हित में।
काल नहिं जीव नहिं कर्म नहिं कृत में॥ ३॥
आदि नहिं अंत नहिं मध्य नहिं अस में।
सुन्दर सुभाव नहिं सुन्दर है तस में॥ ४॥

(५)

(गुजराती भाषा में)

किम छै किम छै काम निहकाम छै।
जिमनौ तिम छै ठाम नौ ठाम छै॥ (टेक)
आम छै आम छै आम छै आम छै।
अधो नै ऊरधै दश दिशा धाम छै॥ १॥
दिवस नहिं रैंनि नहिं शीत नहिं घाम छै।
एक नहिं वे नहिं पुरुष नहिं वांम छै॥ २॥
रक्त नहिं पीत नहिं सेत नहिं स्याम छै।
कहत इम सुन्दर नाम न अनाम छै॥ ३॥

(६)

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई, वार पार जान्यौ नहिं जाई॥ (टेक)
अनल पषि उडि चढि आकास, थकित भई कहु छोर न तास॥ १॥

---

४ था पद—चर में=चरमावस्था वा वास्तव में। अथवा चर (जीव सृष्टि) में इन्द्रियां केवल देखने मात्र हैं। हित=जीव की भलाई गुणों में प्रसित वा लिप्त रहने में नहीं है। कृत=कृत्य, वा किया हुआ कर्म। अस=ऐसा। तस=तैसा, वैसा। इतने गिनाये सो मेरा (आत्मा का) रूप नहीं है।

५ वा पद—(गुजराती भाषा है)

छौंन पुत्तरी थाघै दरिया, जात जात ता भीतरि गरिया ॥ २ ॥
अति अगाध गति कौंन प्रवानै, हेरत-हेरत सबै हिराने ॥ ३ ॥
कहि कहि संत सबै कोउ हारा, अब सुन्दर का कहै विचारा ॥ ४ ॥

(७)

सोवत सोवत सोवत आयौ, सुपने ही मैं सुपनौ पायौ ॥ (टेक)
प्रथमहिं सुपनौं आयौ येह, आपु भूलि करि मान्यौ देह।
ताके पीछे सुपनौ और, सुपने ही मैं कीन्ही दौर ॥ १ ॥
सुपना इन्द्री सुपना भोग, सुपना अन्तहकरण वियोग।
सुपने ही मैं बाध्यौ मोह, सुपने ही मैं भयौ विछोह ॥ २ ॥
सुपनै सुर्ग नरक मैं वास, सुपनै ही मैं जम की त्रास।
सुपने मैं चौरासी फिरै, सुपने ही मैं जनमै मरै ॥ ३ ॥
सतगुरु शब्द जगावनहार, जब यह उपजे ब्रह्म विचार।
सुन्दर जागि परै जे कोइ, सब संसार सुप्न तब होइ ॥ ४ ॥

(८)

तू ही तू ही तू ही तू, जोई तू है सोई हूं ॥ (टेक)
ज्यौं ज्यौं आवै त्यौं त्यौं यौं, ना कछु यौं नहिं ना कछु ज्यौं ॥ १ ॥
तूमवि जाणौं है या स्यौं, ज्यौं को त्यौं ही ज्यौं कौं त्यौं ॥ २ ॥
यौं ही यौं ही यौं ही यौं, सुन्दर घोपौ रापै क्यौं ॥ ३ ॥

---

६ ठा पद—अनल पष=एक पक्षी जो सदा ही आकाश में उड़ा करता है। वहीं अंडा देता है। अंडा जमीन पर पड़ने से पहिले फूट जाता है और बच्चा निकलते उड़कर मां-बापों के पास चला जाता है।—(हिन्दी शब्दसागर)। जीव भी ब्रह्मरूपी आकाश में (इस पक्षी की तरह) रहकर उसका पता नहीं पाता है।

८ वां पद—त्यौं यौं=जैसे २ जन्म लेता हू कर्म करने-लेने देने का व्यवहार चलता है। परन्तु यह सब मिथ्या है। इससे न लेना कोई वस्तु है न देना कुछ

(१) राग ललित

तू अगाध तू अगाध, तू अगाध देवा।
निगम नेति नेति कहैं, जानैं नहिं भेवा॥ (टेक)
ब्रह्मादिक विष्णु शकर, सेस हू बपानैं।
आदि अन्ति मद्धि तुमहि, कोऊ नहिं जानैं॥ १॥
सनकादिक नारदादि (क) सारदादि (क) गावैं।
सुर नर मुनि गन गँधर्व, कोऊ नहि पावैं॥ २॥
साध सिद्धि थकित भये, चतुर बहु सयांनां।
सुन्दरदास कहा कहै, अति ही हैरांना॥ ३॥

(२)

द्वार प्रभु कै जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये॥ (टेक)
जाचिक होइ सु नींद निवारै, वड़े प्रात दाता हि सभारै॥ १॥
नित प्रति ताके कान जगावै, वह पुनि जानै जाचिक आवै॥ २॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजै कोई॥ ३॥
सुन्दरदास पहाऊ गावै, मागत इहै जु दरसन पावै॥ ४॥

(३)

अब हू हरि कौ जाचन आयौ।
देषे देव सकल फिरि फिरि मैं, दालिद्र भजन कोउ न पायौ (टेक)
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसाईं, पतित उधारन वेदन गायौ।
ऐसी साषि सुनि सतनि मुख, देत दान जाचिक मन भायौ॥ १॥

वस्तु है। या स्यौं=निरामय ब्रह्म को इस विकारवाली माया जैसा मत जान। (या स्यौं=इस जैसा)। अर्थात् ब्रह्म अक्षर अखड सत् है।

[राग ललित] १ ला पद—साद्धि=सिद्ध। अथवा सिद्धि को साध कर प्राप्त करके। २ रा पद—पहाऊ=सुवह वा सुवह का गीत, परभाती।

तेरै कौंन बात कौ टोटौ, हौं तौ दुख दलिद्र करि छायौ।
सोई देहु घटै नहिं कछू हौं, बहुत दिवस लगि आइ न पायौ ॥ २ ॥
अति अनाथ दुर्बल सबही बिधि, दीन जानि प्रभु निकट बुलायौ।
अंतह्करण उमगि सुन्दर कौ, अभैदान दे दुःख मिटायौ ॥ ३ ॥

(४)

तुम प्रभु दीन दयाल मुरारी।
दु ख हरण दालिद्र निवारण, भक्त बछल संतनि हितकारी ॥ (टेक)
जे जे तुमकौं भजत गुसांई, तिन तिन की तुम बिपति निवारी।
आप सरीपे करिकैं राषो, जनम मरन की संका टारी ॥ १ ॥
बार बार तुम सौं कहा कहिये, जानराइ भय-भंजन भारी।
सुन्दरदास करत है बिनती, मोहू कौं प्रभु लेहु उबारी ॥ २ ॥

(५)

आजु मेरैं गृह सत गुरु आये।
भरम करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिषाये। (टेक)
अति आनन्द कन्द सुख सागर, दरसन देषत नैंन सिराये।
प्रफुलित कमल अंग सब पुलकित, प्रेम सहित मन मंगल गाये ॥ १ ॥
बचन सुनत सबही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये।
सुन्दर सुफल भयौ सबही तनु, जन्म जन्म के पाप नसाये ॥ २ ॥

---

३ रा पद—देहु=देहु, दीजिए।

४ था पद—जानराइ=सब कुछ जाननेवाले।

५ वा पद—सिराये=शीतल हुए। जो नेत्र विरह की तपत से तपे हुए थे वे दर्शनों की शीतलता से तृप्त हो गये। (यह पद स्वा० सुन्दरदासजी ने रज्जबजी या जगजीवणजी के आने पर कहा।)

(६)

जागि सवेरे जागि सवेरे, जागि परें तें तू ही है रे ॥ (टेक)
सोइ सुपन मैं अति दुख पावै, जागि परें जीवत्व मिटावे ॥ १ ॥
सोइ सुपन मैं आनत भैसौ, जागि परें जैसै को तैसौ ॥ २ ॥
सोइ सुपन मैं ह्वै गयौ रका, जागि परें रावत है वका ॥ ३ ॥
सोइ सुपन मैं सुधि वुधि पोई, जागि परें सुन्दर है सोई ॥ ४ ॥ ६३ ॥

(१) राग काल्हेड़ौ

(गुजराती भाषा में)

जो वो पूरण ब्रह्म अखंड अनावृत एक छै ।
नथी बीजौं अवर न कोइ यह विवेक छै ॥ (टेक)
इम वाह्याभ्यतर व्योम तिमं व्यापी रह्यौ ।
जेन्हौ आदि न अन्त न मध्य महा वार्फ्य कह्यौ ॥ १ ॥
ये जे देहादिक भ्रम रूप ते इम* जाणि ज्यौ ।
इम मृग तृष्णा मैं नीर निश्चय आणिज्यौ ॥ २ ॥
ये जे शेष नाग पर्यत ऊर्द्ध लोक छै ।
ये तो जे दीसै नानात्व ते सव फोक छै ॥ ३ ॥
जेन्हैं उपनो आत्मज्ञान तेन्हों भ्रम टल्यौ ।
कहे छै सुन्दर पानी माहि इम पाली गल्यौ ॥ ४ ॥

६ ठा पद—'रावत है वका'=प्रवल राजा वा शासक । स्वयम् ब्रह्म ही । स्वप्न से जागना ज्ञान प्राप्ति है ।

[राग काल्हेड़ौ] १ ला पद—जेन्हौ=जिमका । फोक=फोक, मरुभूमि में एक तुच्छ घास होता है । फोकट । तुच्छ ।

* 'यम' पाठान्तर है ।

(२)

(गुजराती भाषा में)

काईं अद्भुत वात अनूप कही जानी नथी।
ये जे वाणी ते निर्वांण महापुरुषैं कथी॥ (टेक)
ये जे परा पश्यंती मध्य रितै मुख बैषरी।
ते न्हैं नेति नेति कहैं वेद कारण छे हरी॥ १॥
ये जे पछे रहै अवशेष ते न्है स्यौं कहै।
जे न्हैं अनुभव आतम ज्ञान इम छे तिम लहै॥ २॥
इम कस्तूरी कर्पूर केसरि किम छिपैं।
तेन्हीं सगलैं आवै वास प्रगट ते तिम दिपैं॥ ३॥
जेन्हैं जे काइं षाधौ होइ डकारैं जाणिये।
तिम सुन्दर अनुभव गोपि वचन प्रमाणिये॥ ४॥

(३)

(गुजराती भाषा में)

तम्हे साभलिज्यो श्रुति सार वाक्य सिद्धांतना।
एता सर्वं खल्विदं ब्रह्म वचन छै व्रतना॥ (टेक)
एता जगत नथी त्रय काळ एक जगदीस छे।
इम सर्प रज्जु नैं ठामि न विस्वावीस छे॥ १॥
ए जे उपनौं भ्रम मिथ्यात जिहां लग रात्र छे।
काई नथी वस्तु ता अन्य कल्पना मात्र छे॥ २॥

---

२ रा पद—निर्वाण=इस शब्द का सम्बन्ध वाणी से भी है और महापुरुषों से भी। निर्वाण देनेवाली वाणी। अथवा निर्वाण प्राप्ति के योग्य पुरुष। परा, पश्यती, मध्यमा और वैखरी—ये चार प्रकार की वाणिया हैं। स्यौं=ऐसा। नेति नेति कहने में

ज्यारें कीधौ भांन प्रकास भ्रम ततक्षण गयौ।
ज्यारें लीधौ निज कर साहि रजु नौ रजु थयौ॥ ३॥
तिम "एक मेव" छै ब्रह्म बीजौ को नथी।
कहै छै सुन्दर निश्चय धारि निज अनुभव कथी॥ ४॥

(४)

(गुजराती भाषा मे)

जेन्हें हृदयें ब्रह्मानन्द निरन्तर थाइ छै।
जेन्हें अनुभव जाणै तेहज किम कहवाइ छै॥ (टेक)
ज्यारें अन्तर थी आनन्द उमगि कठेरमैं।
त्यारें मुख थी नवि कहवाइ वली पाछूसमै॥ १॥
इम लहरी उठै समुद्र मूकि जाये किहा।
एता पाळ लगणि आविनै समै जिहानी तिहा॥ २॥
तेन्ही पटतर नथी अनेक सर्व सुख स्वर्गना।
नथी ब्रह्मलोक शिवलोक नथी अपवर्गना॥ ३॥
ये जे ब्रह्मानन्द अपार कहै किम जे भणी।
कांईं सुन्दर नवि कहवाइ जिह्वा ते भणी॥ ४॥ ६७॥

जो अवशिष्ट रहै अथवा मिथ्या माया के मिटने पर जो अखड चिदानन्द सदा बना रहनेवाला परमात्मा रहता है। वह आत्मज्ञानियों को प्राप्त होता है। सगलै=सर्वत्र। षाधो=खाया।

३ रा निज अनुभव कथी=अपना निज का अनुभव ज्ञान—ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर प्राप्त हुआ उसही को स्व० सु० दा० जी ने यहा कहा है।

४ था पद—इस पद मे भी ब्रह्मानन्द के अनुभव का कथन है। जेन्हैं=जिन्हें। कठे=कठ में। रमै=खेलै। विराजै।

(१) राग देवगधार

अब कै सतगुरु मोहि जगायौ ।
सूतौ हुतौ अचेत नींद मैं, बहुत काल दुख पायौ ॥ (टेक)
कबहूं भयौ देव कर्मनि करि, कबहूं इन्द्र कहायौ ।
कबहूं भूत पिशाच निशाचर, पास न कबहू अघायौ ॥ १ ॥
कबहूं असुर मनुष्य देह धरि, भू मंडल मैं आयौ ।
कबहूं पशु पंषी पुनि जलचर, कीट पतंग दिपायौ ॥ २ ॥
तीनौ गुन के कर्मनि करिकैं, नाना योनि भ्रमायौ ।
स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक मैं, ऐसौ चक्र फिरायौ ॥ ३ ॥
यह तौ स्वप्नौ है अनादि कौ, बचन जाल बिथरायौ ।
सुन्दर ज्ञान प्रकास भयौ जब, भ्रम संदेह बिलायौ ॥ ४ ॥

(२)

अब तौ ऐसैं करि हम जान्यौ ।
जो नानात्व प्रपंच जहालौं मृगतृष्णा कौ पान्यौ ॥ (टेक)
रजु कौ सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय मान्यौ ।
रवि प्रकाश जब भयौ प्रात ही रजु कौ रजु पहिचान्यौ ॥ १ ॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कैं यौं ही वृथा डरान्यौ ।
ना कछु भयौ नहीं कछु ह्वै है यह निश्चय करि मान्यौ ॥ २ ॥
शशा-शृङ्ग वंध्या-सुत झूलै मिथ्या बचन बषान्यौ ।
तैसैं जगत कालत्रय नाहीं संमुझि सकल भ्रम भान्यौ ॥ ३ ॥

[राग देवगधार] १ ला पद—'कबहू' इसे 'कबहु' उच्चारण करना ठीक होगा । बिथरायौ=फैला या फैलाया ।

२ रा पद —(टेक में) पान्यौ=पानी । झूलै=पलने में (बालक) ।

जौ कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया भाव बिलान्यौ।
सुन्दर आदि अन्त मधि सुन्दर सुन्दर ही ठहरान्यौ ॥ ४ ॥

(३)

पद मैं निर्गुण पद पहिचाना।
पद कौ अर्थ विचारै कोई पावै पद निर्बाना ॥ (टेक)
पद विन चलै जहा पद नाहीं पद है सकल निधाना।
ज्यौ हस्ती के पद मैं सब पदकाहू पद न भुलाना ॥ १ ॥
देव इन्द्र बिधि शिव बैकुठहिं ये पद ग्रंथनि गाना।
जीवत पद सौं परचै नाहीं मूये पद किन जाना ॥ २ ॥
पद प्रसिद्ध पूरण अविनाशी पद अद्वैत बषांना।
पद है अटल अमर पद कहिये पद आनन्द न छाना ॥ ३ ॥
पद षोजे तें सब पद बिसरै बिसरै ज्ञान रु ध्याना।
पद कौ तातपर्य सो पावै सुन्दर पद हिं समांना ॥ ४ ॥

(४)

अब हम जान्यौ सब मैं साषी।
साषि पुरातन सुनी आगिली देह भिन्न करि नापी। (टेक)
साषी सनकादिक अरु नारद दत्त कपिल मुनि आषी।
अष्टावक्र बसिष्ट व्यास-सुत उन प्रसिद्ध यह भाषी ॥ १ ॥
साषी रामानन्द गुसाई नाम कबीर हि राषी।
साषी सत सकल ही कहिये गुरु दादू यह दाषी ॥ २ ॥
साषी कोऊ और जानतें मन मैं यह अभिलाषी।
अबतौ साषी भये आपुही सुन्दर अनुभव चाषी ॥ ३ ॥ ७१ ॥

---

२ रा पद—दुतिया=द्वैत। ३ रा पद—'पद' शब्द पर श्लेषार्थ कथन। पद=उच्च स्थान। पद=पांव। पद=स्थान, थल, लोक। पद=मोक्ष।

४ था पद—"साषी" शब्द में श्लेषार्थ कथन। साषी=साक्षी, परमात्मा कूटस्थ

(१) राग विलावल

भले भये या जग में आये, मनसा वाचा राम पठाये।
परम दयाल सकल सुख दाता, पर उपगारी किये विधाता॥ (टेक)
ईश विधाता बडे ज्ञाता, शील संयम उर धरैं।
काम क्रोध कलेश माया, राग द्वेषहिं परहरैं॥
गुन निधान रु ज्ञान सागर, अति सुजान प्रवीन हैं।
यों कहत सुन्दर मुक्त विचरत, सदा ब्रह्महि लीन हैं॥ १॥
जिन के दरसन पातक जाहीं, परसन सकल विकार नसाहीं।
वचन सुनत म भ्रम सब भागै, नखशिख रोम रोम तब जागै॥
जागि जु नख शिख रोम सबही, प्रेम उमगै पलक मैं।
पुनि गलित ह्वै करि अङ्ग भीजे, सुख समुद्र की झलक मैं॥
वे हरन दुरगति करन-शुभ मति, परम दुल्लभ गाइये।
यौं कहत सुन्दर सन्त ऐसे, वडे भागनि पाइये॥ २॥
साध कि पटतर कोई न तूलै, वाजी देषि कहा कोउ भूलै।
चिंतामनि पारस कहा कीजै, हीरा पटतरि कैसे दीजै।
दीजै न पटतर चन्द सूरिज, दीप की अब को कहै।
वह कामधेन रु कल्पतरवर, चन्दन पटतर क्यौ लहै॥
पुनि मेरु सागर नदी वोहिथ, धरनि अवर पेपिया।
यों कहत सुन्दर साध सरभरि, कोइ न जग मे देपिया॥ ३॥
साधु की महिमा अगम अपारा, कही न जाइ कोटि मुख द्वारा।
जिनकी पद रज वदहिं देवा, इद्र सहित विनवै करि सेवा॥

नि मग है। साषि पुराणी=पुरातन ग्रन्थों वा महात्माओं के वचन। वा वाक्य विवेक। नांषी=टाली, रक्खी। आषी=कही। व्यास-सुत=शुकदेव मुनि। दाषी=रक्खी, वा देखी।

[राग विलावल] १ ला पद—भलें=भलेही। सौभाग्य है। मनसा वाचा राम

सेवा करहिं पुनि इन्द्र ब्रह्मा, धूप दीपनि आरती।
वै हमहिं दुर्लभ दास हरि के, करै अस्तुति भारती॥
अति परम मंगल सदा तिनकै, साध महिमा जे कहैं।
जनम साफिल होइ सुन्दर, भक्ति दृढ हरि की लहैं॥ ४॥

(२)

सोइ सोइ सब रैनि विहांनी, रतन जन्म की षबरि न जानि॥ (टेक)
पहिले पहर मरम नहिं पावा, मात पिता सौं मोह बधावा।
षेलत पात हस्या कहुं रोया, बालापन ऐसें ही षोया॥ १॥
दूजै पहर भया मतवाला, परधन परत्रिय देषि षुसाला।
काम अन्ध कामिनि संगि जाई, ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई॥ २॥
तीजै पहर गया तरनापा, पुत्र कलत्र का भया संतापा।
मेरै पीछे कैसी होई, घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई॥ ३॥
चौथे पहरि जरा तन व्यापी, हरि न भज्यौ इहिं मूरष पापी।
कहि समुझावै सुन्दरदासा, राम विमुख मरि गये निरासा॥ ४॥

(३)

किति विधि पीव रिझाइये, अनी सुनु सपिय सयानी।
जोवन जाइ उतावला कछु साध न मानी॥ (टेक)
केस गुहै माँगै भरी सिंदूर घनेरा, हार हमेला पहरिया,।
भूषन बहुतेरा, काजल नैंननि मैं कीया अवे पिय नेकु न हेरा॥ १॥

पठायें=परमात्मा ने संसार का हित विचार और आज्ञा देकर। १ ला पद में ४ अंतर-पद दिये हैं और प्रत्येक में आभोग "सुन्दरदास" है। साफिल=साफल्य, सफल। यह १ ला पद साधु-महिमा का अत्यन्त मनोरम और सार-भरा है।

२ रा पद—लरिका जोई=(अपने पुत्र मर जाने पर) दत्तक पुत्र को ढूंढता फिरा।

वस्तर बहु विधि फेरिकैं, वोढ़े अति झीना।
दर्पन मै मुख देपि कैं, सिर तिलक जु दीना॥
सब सिंगार फीका भया, अबे पिय पुस नहिं कीना॥ २॥
सेज अनूप संवारि कैं, तहा फूल बिछाया।
चोवा चन्दन अरगजा, सब अंग लगाया॥
दीपग धरया जलाइ कैं, अबे पिय मुख न दिपाया॥ ३॥
दारुन दुख कैसें सहौं, क्यौं रहौं अकेली।
अति अरीझ मेरा साईंया, क्या करौं सहेली॥
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, अबे हौं परी दुहेली॥ ४॥

(४)

जौ पिय कौ व्रत ले रहै सो पिय हि पियारी।
काहे कौं पचि पचि मरत है मूरप बिभचारी (टेक)
अंजन मंजन क्या करै क्या रुप सिंगारा।
ऊपर निर्मल देपिये दिल माहिं बिकारा।
इन बातनि क्यौं पाइये अबे प्रीतम पिय प्यारा॥ १॥
पतिव्रत कबहुं न देपिये मन चहुं दिश धावै।
और सपिन मैं बैसि कैं पतिव्रता कहावै।
हौंस करै पिय मिलन की अबे तोहि लाज न आवै॥ २॥
कोटि जतन कीयें कहा पिय एक न मानै।
नाना बिधि की चातुरी बहुतेरी ठानै॥
तन कौं बहुत बनावई अबे मन सौंपि न जानै॥ ३॥

---

३ रा पद—अनी=री, अरी, ओ (सबोधन—पजा॰ भा॰)। अबे=हैफ, अफसोस। ऐ! हे!। साध=साधन की वा हित की बात। अरीझ=रुष्ट, नाखुश, रीझा नहीं।

अपना वल जौ छाडि कैं सव सुधि विसरावै।
लोक वडाई नेंकहू कछु यादि न आवै।
सुन्दर तव पिय रीझि कें अवे तोहि कठ लगावे ॥ ४ ॥

(५)

(पजावी भाषा)

आव असाडे यार तू चिरक्कि कू लाया।
हाल तुसा मालूम है तनु जौवन आया ॥ (टेक)
जदि मैं हों दीनि कडी तद कुम्फ न जाना।
हुण मैंनों कल ना पवै सभ पेड भुलाना ॥ १ ॥
मा मैं नू ई आपदी तू धीय असाडी।
प्यौदी गल्ह अभावणी मैं सभो छाडी ॥ २ ॥
हिक्क सहा ङभि राउदा मैं नू समुझावै।
नालि तुसाडे हों चला जे कतु न आवे ॥ ३ ॥
जे तैंहुण आया नहीं तामैं हुणु आवा।
सुन्दर आपै विरहनी मनु कित्थ लावां ॥ ४ ॥

(६)

कैसें राम मिलै मोहि सतो यह मन थिर न रहाई रे।
निह्चल निमप होत नहि कवहौ चहु दिशि भागा जाई रे ॥ (टेक)
कौन उपाय करौ या मन कौ कैसी विधि अटकाऊ रे।
ऐसें छूटि जाइ या तन सें कतहू पोज न पाऊ रे ॥ १ ॥

---

४ था पद—विभचारी=व्यभिचारिणी। अपना वल=अपनपे का गर्व। सौंदर्य, शृगार, यौवन आदि की टसक और घमड जो स्त्रियों मे होता है।

सोये स्वर्ग पताल निहारै जागै जात न दीसै रे।
पेल्त फिरै विषै वन मांहीं लीयें पाच पचीसै रे॥ २॥
मैं जान्यौ मन अब थिर होई दिन दिन पसरन लागा रे।
नाना चोज धरो ले आगैं सऊं करक पर कागा रे॥ ३॥
ऐसे मन का कौन भरोसा छिन छिन रंग अपारा रे।
सुन्दर कहै नहीं बस मेरा रापे सिरजन हारा रे॥ ४॥

(७)

रे मन राम सुमरि राम सुमरि राम की दुहाई।
ऐसो औसर विचारि, कर तें हीरा न डारि,
पसु के लपिन निवारि, मनुप देह पाई॥ (टेक)
सकल सौंज मिली आइ, श्रवन नैंन बैंन गाइ,
संतनि कौं सिर नवाइ, लेपै तनु लाई।
दासिन को होइ दास, छूटै सब आस पास,
कर्मनि को करै नास, सुद्ध होइ भाई॥ १॥
सतगुरु की करहु सेव, जिन तें सब लहै भेव,
मिलि है अविनासी देव, सकल भुवनराई।
सँमुझै अपनो सरूप, सुन्दर है अति अनूप,
भूपति को होइ भूप, सांची ठकुराई॥ २॥

---

६ ठा पद—निमप=एक भी निमेप (पलक)। आत=आता हुआ (विपयातर मे)। पाच पचीसे=पांचों इन्द्रियें और २५ तत्व।

७ वा पद—लेपै=हिसाब की रू से अच्छी बातों मे तन का प्रयोग करै। दास=हरि भक्त, ज्ञानी। पास=पाश, फासी।

(८)

सबकै आहि अन्न मैं प्रान।

बात बनाइ कहौ कोऊ केती, नाचि कूदि कैं तूटत तांन ॥ (टेक)

पंडित गुनी सूर कवि दाता, जो कोउ और कहावत जान।

जठरा अग्नि प्रगट होइ जबही, तबही बिसर जाइ सब ज्ञान ॥ १ ॥

मीर मलिक उमराव छत्रपति, औरउ कहियत राजा रांन।

जद्यपि सकल सपदा घर मैं, तद्यपि मुख देषियत कुमिलान ॥ २ ॥

आसन मार रहे बन माहीं, तेऊ उठत होत मध्यांन।

सुन्दर ऐसी क्षुधा पापिनी, रहै नहीं काहू कौ मांन ॥ ३ ॥

(९)

है कोई योगी साधै पौंना।

मन थिर होइ बिंद नहिं डोलै, जितेंद्री मरै नहिं कौंना ॥ (टेक)

यम अरु नेम धरै दृढ आसन, प्राणायाम करै मन मौंना।

प्रत्याहार धारणा ध्यान, लै समाधि लावै ठिक ठौंना ॥ १ ॥

इडा पिंगला सम करि राषै, सुषमन करै गगन दिशि गौंना।

अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै, सापनि द्वार छाडि दे जौंना ॥ २ ॥

बहुदल षटदल दशदल षोजै, द्वादशदल तहा अनहद भौंना।

षोडशादल अमृतरस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै चतौंना ॥ ३ ॥

चढि आकास अमर पद पावै, ताकौं काल कदे नहिं पौंना।

सुन्दरदास कहै सुनु अवधू, महा कठिन यह पथ अलौंना ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मलिक=(अ०) बादशाह। मीर=(अ०) सरदार, शासक। उच्च कुल का उच्च पुरुष।

९ वां पद—मरै नहिं कौंना=अमर होय कोई भी योग कर देखै। योग के अंगों और साधनों का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र २ रे उल्लास में देखें। ब्रह्म अग्नि परजारै=ब्रह्मज्ञान

(१०)

गुरु बिन गति गोविंद की जांनी नहिं जाई।
हौ सेवग उस पुरुष का मोहि देइ लपाई ॥ (टेक)
योगी जंगम सेवडा अरु बोध सन्यासी।
सेप मसाइक औलिया बूझे वनवासी ॥ १ ॥
जोगी तौ गोरष जपै जगम शिव ध्यावै।
अरिहत अरिहत सेवडा कहु पार न पावै ॥ २ ॥
बोध सन्यासी बापुरे लीये अभिमाना।
सेष मसाइक दीनन्ना उनि कलमा ठाना ॥ ३ ॥
बटे अवलिया यौं कहैं हमही निज बदा।
बन वासी बन सेइ कैं पनि पाये कदा ॥ ४ ॥
अपने अपने पथ मैं सब दरसन राता।
जन सुन्दर रस राम कै कोई विरला माता ॥ ५ ॥

(११)

ऐसा सतगुरु कीजिये करनी का पूरा।
उनमनि ध्यांन तहा धरै जहा चन्द न सूरा ॥ (टेक)
तन मन इन्द्री वसि करै फिरि उलटि समावै।
कनक कामिनी देषि कैं कहु चित्त न चलावै ॥ १ ॥

की अग्नि प्रज्वलित रक्खै। सापनि=कुडलिनी=मूलाधार चक्र पर साढे तीन आंटे मारे निराणाकार यह सर्पिणी सी नाड़ी सोती है। मूलबन्ध लगा कर योगी इसे जगाते हैं। यह षट्चक्र भेदती हुई ऊपर चढ़ती है सुषुम्ना में होकर और ऊपर सहस्र दल कमल में जा पहुचती है। वहां योगी इसे रोकते हैं। यह मुक्तिदायिनी है। (ह० योग)।

द्वै पष हिंदू तुरक की विचि आप संभालै।
ज्ञान षडग गहि झूझता मधि मारग चालै ॥ २ ॥
जानै सबकौं एकही पानी की बूदा।
नीच ऊंच देषै नहीं कोई बाभण सूदा ॥ ३ ॥
सब संतनि का मत गहै सुमिरै करतारा।
सुन्दर ऐसै गुरु विना नहिं ह्वै निस्तारा ॥ ४ ॥

(१२)

ष्याली तेरै ष्यालका कोई अंत न पावै।
कब का पेल पसारिया कछु कहत न आवै ॥ (टेक)
ज्यौका त्यौ ही देषिये पूरन संसारा।
सरिता नीर प्रवाह ज्यौं नहिं खडित धारा ॥ १ ॥
दीप जरत ज्यौं देषिये जैसैं का तैसा।
को जानै केता गया जग पावक ऐसा ॥ २ ॥
जैसैं चक्र कुलाल का फिरता बहु दीसै।
ठौर छाडि कतहु न गया यह बिसवा बीसै ॥ ३ ॥
प्रगट करै गुप्ता करै घट घूघट ओटा।
सुन्दर घटत न देषिये यह अचिरज मोटा ॥ ४ ॥

(१३)

एकै ब्रह्म बिलास है सूक्षम अस्थूला।
ज्यौं अकुर तैं बृक्ष है साषा फर फूला ॥ (टेक)
जैसैं भाजन मृतिका, अतर नहिं कोई।
पानी तैं पाला भया, पुनि पानी सोई ॥ १ ॥

---

११ वां पद—सूदा=शूद्र। नीच जाति। उनमनि=उनमनी मुद्रा के साधन से ध्यान। कबीरजी का वचन है "निराकास ओ लोकनिराश्रय निर्णैग्यान विसेषा। सूछम वेद है उनमनि मुद्रा उनमनि वाणी लेषा"। हठयोग प्रदीपिका उ० ४ के श्लो० ६४

जैसें दीपक तेज तें, ऐसा यहु पेला।
घाट घरे बहु भांति के, है कनक अकेला ॥ २ ॥
वायु बवूरा कहन कौं, ऐसा कछु जांना।
बादर दीसत गगन मैं, तेउ गगन विलांना ॥ ३ ॥
सतगुरु तें संसा गया, दूजा भ्रम भागा।
सुन्दर पटहि विचार तें, सब देपे धागा ॥ ४ ॥

(१४)

एक अखंडित देपिये सब स्वयं प्रकाशा।
छता अनछता ह्वै गया यह वडा तमासा ॥ (टेक)
पंच तत्त दीसै नहीं नहिं इन्द्री देवा।
मन बुधि चित दीसै नहीं है अलप अभेवा ॥ १ ॥
सत्त रज तम दीसै नहीं नहिं जाग्रत सुपना।
सुषुपति हों तुरिया नहीं नहिं और न अपना ॥ २ ॥
काल कर्म दीसै नहीं नहिं आहि सुभावा।
प्रकृति पुरुष दीसै नहीं नहिं आव न जावा ॥ ३ ॥
ज्ञे ज्ञाता दीसै नहीं नहिं ध्याता ध्यानं।
सुन्दर सोधत सोध तें सुन्दर ठहरानं ॥ ४ ॥

और ८० में "मनोन्मनी" वा उन्मनी मुद्रा का विवरण है। यह राज-योग की तुरीयावस्था की प्राप्ति का साधन है। त्रकुटी के मध्य में ध्यान प्रारम्भ होता है। फिर साधन से आगे बढ़ता है।

१३ वा पद—अस्थूल=स्थूल, इन्द्रिय गोचर।

१४ वा पद—छता अनछता=नित्य सत्य ब्रह्म है सो अदृष्ट है, बुद्धादिक से अगम्य है। इसही कारण नास्तिकों को उसके अस्तित्व में संदेह रहता है।

(१५)

जाकै हिरदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै।
सब परि बैठै मक्षका पावक तें भागै ॥ (टेक)
जहा पाहरू जागहीं तहा चोर न जांहीं।
आपिन देषत सिंह कौ पशु दूरि पलांहीं ॥ १ ॥
जा घर माहिं मजार ह्वै तहा मूषक नासै।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
ज्यौं रवि निकट न देषिये कबहूं अंधियारा।
सुन्दर सदा प्रकास मैं सबही तें न्यारा ॥ ३ ॥ ८६ ॥

(१) राग टोडी

राम रमइयौ, यौं समुझइयौ, ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब समइयौ ॥ (टेक)
करै करावै सब घट आपै, भिन्न रहै गुन कोइ न व्यापै ॥ १ ॥
रवि कै उदे करहिं कृत लोई, सूर्य कर्म लिपै नहिं कोई ॥ २ ॥
शब्द रूप रस गन्ध सपरसै, मन इन्द्रिनि तें न्यारौ दरसै ॥ ३ ॥
ऐसैं ब्रह्म जबहिं पहिचानै, सुन्दरदास तबै मन मानै ॥ ४ ॥

(२)

राम बुलावै राम बुलावै, राम बिना यह स्वास न आवै ॥ (टेक)
रामहिं श्रवनहुं शब्द सुनावै, रामहिं नैंनहु रूप दिषावै ॥ १ ॥
रामहिं नासा गन्ध लिवावै, रामहिं रसना रसहि चपावै ॥ २ ॥

---

१५ वा पद मक्षका=मक्षिका मक्खी।

[राग टोडी] १ ला पद—लोई=लोग, लोक। "सूर्य" को 'सूरय' उच्चारण करैं।

रामहिं दोऊ हाथ हलावै, रामहिं पाँवहु पन्थ चलावै ॥ ३ ॥
रामहिं तनकौं बसन उढावै, राम सुवावै राम जगावै ॥ ४ ॥
रामहिं चेतन जगत नचावै, रामहिं नाना पेल पिलावै ॥ ५ ॥
रामहिं रङ्कहिं राज करावै, रामहिं राजहि भीप मगावै ॥ ६ ॥
रामहिं बहु विधि जलधर पावै, रामहिं पल मैं धूरि उड़ावै ॥ ७ ॥
रामहिं सबमैं भिन्न रहावै, सुन्दर बाकी बाही पावै ॥ ८ ॥

(३)

राम नाम राम नाम, राम नाम लीजै ।
राम नाम रटि रटि, राम रस पीजै ॥ (टेक)
राम नाम राम नाम, गुरु तैं पाया ।
राम नाम मेरैं, हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम, भजि रे भाई ।
राम नाम पटतरि, तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम, है अति नीका ।
राम नाम सब साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम, अति मोहि भावै ।
राम नाम निसि दिन, सुन्दर गावै ॥ ४ ॥

(४)

भजि रे भजि रे, भजि रे भाई ।
लै रे लै रे, लै सुख दाई ॥ (टेक)
दै रे दै रे, तन मन अपना, है रे है रे, है सब सुपना ॥ १ ॥
मेटि रे मेटि रे मेटि अहंकारा, भेटि रे भेटि रे प्रीतम प्यारा ॥ २ ॥

---

२ रा पद—बुलावै=मुख जिह्वा से शब्द उचारण करावै । वाणी प्रदान करै ।
पावै=पा सकै, जान सकै ।

गाइ रे गाइ रे गुन गोविन्दा, ध्याइ रे ध्याइ रे परमानन्दा ॥ ३ ॥
षोलि रे षोलि रे भरम कपाटा, वोलि रे सुंदर शब्द निराटा ॥ ४ ॥

(५)

षोजत षोजत सतगुरु पाया ।
धीरैं धीरैं सब संमुझाया ॥ (टेक)
चिन्तत चिन्तत चिन्ता भागी, जागत जागत आतम जागी ॥ १ ॥
बूझत बूझत अन्तरि बूझ्या, सूझत सूझत सब कछु सूझ्या ॥ २ ॥
जानत जानत सोई जान्या, मानत मानत निश्चय मान्या ॥ ३ ॥
आवत आवत ऐसी आई, अबतौ सुन्दर रही न काई । ४ ॥

(६)

एक तू एक तू व्यापक सारै ।
एक तू एक तू वार न पारै ॥ (टेक)
एक तू एक तू पृथवी जाना, एक तूं एक तू भाजन नाना ॥ १ ॥
एक तू एक तू नीर प्रसगा, एक तू एक तू फेन तरगा ॥ २ ॥
एक तू एक तू तेज तपन्ता, एक तू एक तू दीप अनन्ता ॥ ३ ॥
एक तू एक तू पवन प्रचूरा, एक तू एक तू फिरत वघूरा ॥ ४ ॥
एक तू एक तू ज्यौं आकासा, एक तू एक तू अभ्र निवासा ॥ ५ ॥
एक तू एक तू कनक स्वरूपा, एक तू एक तू घाट अनूपा ॥ ६ ॥
एक तू एक तू सूत्र समाना, एक तू एक तू ताना वाना ॥ ७ ॥
एक तू एक तू और न कोई, एक तू एक तू सुन्दर सोई ॥ ८ ॥

---

४ था पद—निराटा=निराला, निर्मल ।

५ वां पद—आई=ज्ञानगति, समझ । काई=कोई । अथवा ऊपर का मैल ।

६ ठां पद—प्रसगा=प्रकरण । जल से क्या पदार्थ वनते विगड़ते हैं इसका ज्ञान विज्ञान । प्रचूरा=प्रचुर, वहुतता । घाट=घड़ाई वस्तु ।

(७)

मेरौ धन माधौ माई री, कबहुं बिसरि न जाऊं।
पल पल छिन छिन घरी घरी तिहिं, बिन देखें न रहाऊं ॥ (टेक)
गहरी ठौर धरौं उर अन्तर, काहू कौं न दिपाऊ।
सुन्दर कौं प्रभु सुन्दर लागत, ले करि गोपि छिपाऊं ॥ १ ॥

(८)

मेरौ मन लागौ माई री, परम पुरुष गोविन्द।
चितवत नैंननि मोहत सैंननि, बोलत बैंननि मन्द ॥ (टेक)
अद्भुत रूप अरूप सकल अंग, दु:ख हरन सुखकन्द।
सुन्दर प्रभु अति सुन्दर सोभित, निरपत नित आनन्द ॥ १ ॥

(९)

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रूई पींजण कै कारण, आपन राम पठाया (टेक)
पींजण प्रेम मूठिया मन कौं लै की तांति लगाई।
धुनि ही ध्यान बंध्यौ अति ऊंचौ, कबहू छूटि न जाई ॥ १ ॥
कर्म काटि काढे नीर्क करि, गज ज्ञान के सकेलै।
पहल जमाइ सुपेदी भरि करि, प्रभु कै आगै मेल्है ॥ २ ॥
जोइ जोइ निकट पितायन आवै, रूई सबनि की पींजै।
परमारथ कौं देह धर्यौ है, मसकति कछू न लीजै ॥ ३ ॥
बहुत रूई पीनी बहु विधि करि, मुदित भये हरि राई।
दादू दास भजव पीनारा, सुन्दर बलि बलि जाई ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मन्द=धीमा,मधुर। अरूप=निराकार को साकार ध्यान कर के साथ ही अरूप भी कहा है।

९ वां १० वां पद—इन दोनों पदों में स्वा सु० दा० जी ने अपने गुरु श्री दादू-

(१०)

आया था इक आया था, जिनि, दरसन प्रगट दिपाया था (टेक)
श्रवण हू शब्द सुनाया था, तिन, सत्य स्वरूप बताया था ॥ १ ॥
ब्रह्मज्ञान संमुझाया था, तिन, संसा दूरि बहाया था ॥ २ ॥
अलष षजीना ल्याया था, तिन, बांटि सबनि सौं षाया था ॥ ३ ॥
ऐसा दादूराया था, सो, सुन्दर कै मनि भाया था ॥ ४ ॥९६॥

(१)　　　　राग आशावरी

कैसैं घौ प्रीति रामजी सौं लागै।
मन अपराधी चहु दिश भागै ॥ (टेक)
निस बासर भरमै अति भारी, कह्या न मानै बड़ा बिकारी ॥ १ ॥
भटकत डोलै बिन ही काजा, बेसरमी कौ नैंकु न लाजा ॥ २ ॥
मेरौ बस नांहीं कछु यातैं, बारंबार पुकारत तातैं ॥ ३ ॥
आपुही कृपा करै हरि सोई, तौ सुन्दर थिर काहे न होई ॥ ४ ॥

दयाल की कुछ गुणावली वर्णन की है। पिंजारा=पिंदारा, रूई पींदनेवाला। दादूजी ने कुछ दिन यह काम भी साधारण निर्वाह के लिए किया था। रूह=आत्मा। आत्मा के विकारों को जप तप नाम ध्यान से दूर करने को। जगत के लोगों को यही लाभ पहुंचाने को। मूठिया—जिससे तांत पर देकर रूई पींदी जाती है। धुनि ही=श्लेष है। (१) ध्वनि, सुरत। (२) रूई धुन कर। गज=गजवेल लोहा भी। गज=जिस से पींदी हुई सकेलते, इकट्ठी की जाती है। पींदण की लड़की को भी गज कहते है। सकेलना=इकट्ठा करना। मसकति=(अ०) मशक़्क़त, मजदूरी। सकेला=एक प्रकार का लोहा और उस की तलवार भी।

(२)

अवधू आतम काहे न देपै।
जाहि हतै सोई तुझ माही कहा लजावत भेपै॥ (टेक)
हिंसा बहुत करै अपस्वारथ स्वाद लयो मद मासै।
महा माइ भैरूं कौ सिरदै आपुहि बैठो मासै॥ १॥
गोरप भागि भषी नहिं कबहौं सुरापान नहिं पीया।
झूठहि नाव लेत सिद्धन को नरक जाहिगो भीया॥ २॥
कान फारि कैं भस्म लगाई योगी कियो शरीरा।
सकल वियापी नाथ न जान्यौ जन्म गमायो हीरा॥ ३॥
नाटक चेटक जन्त्र मन्त्र करि जगत कहा भरमावै।
सुन्दरदास सुमरि अविनासी अमर अभै पद पावै॥ ४॥

(३)

साधो साधन तन की कीजै।
मन पवना पंचौं वसि रापै सून्य सुधा रस पीजै॥ (टेक)
चन्द सूर दोउ उलटि अपूठा सुषमनि कै घर लीजै।
नाद विंद जब गांठि परै तब काया नैंकु न छीजै॥ १॥
राजस तामस दोऊ छाड़ै सातिक बरतै तीजै।
चौथा पद मैं जाइ समावै सुन्दर जुग जुग जीजै॥ २॥

[राग आसावारी] २ रा पद—अपस्वारथ=निज स्वारथ को। सिर दै=सिर चढावै बकरे आदि का। भीया=भाई। हे भाई!। वियापी=व्यापक। अमर अभै पद=जोगियों में अमर पद पाने की बड़ाई है। अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को भजने से वह पद प्राप्त हो सकता है, अन्यथा वाममार्ग के ढोंगों और गर्हित कर्मों से नहीं। यह पद जोगी जगम शाक्तो आदि वाम-मार्गियों को कहा है। अवधू=जोगियों का साधु अघोरी। ३ रा पद—नाद नादानुसधान, अनाहदनाद। विंद=वीर्यको ब्रह्मचर्य से जीत कर वश में रखना। चौथा पद=तुरीया।

(४)

मेरा गुरु द्वै पष रहित समांना ।
पिंड ब्रह्म निरन्तर पेलै ऐसा चतुर सयाना ॥ (टेक)
पाप पुन्य की बेरी काटी हर्ष शोक नहिं आना ।
राग द्वेष तें भया विवर्जित शीतल तपति बुझांना ॥ १ ॥
हिन्दू तुरक दुहूं तें न्यारा देषे वेद कुराना ।
मैं तें मेटि तज्यौ आपा पर नीच ऊच सम जाना ॥ २ ॥
दिवस न रैंनि सूर नहिं ससि हरि आदि अत भ्रम भांना ।
जन्म मरन का सोच न कोई पूरण ब्रह्म पिछाना ॥ ३ ॥
जागि न सोवै पाइ न भूपा मरै न जीवै प्रांना ।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू देष्या अति हैरांना ॥ ४ ॥

(५)

मेरा गुरू लागै मोहि पियारा ।
शब्द सुनावै भ्रम उडावै करै जगत सौं न्यारा ॥ (टेक)
जोग जुगति की सब विधि जानै, बातैं कछू न छानै ।
मन पवना उल्टा गहि आनै, आनै छानै जानै ॥ १ ॥
पचौं इन्द्री दृढ करि राषै, सून्य सुधा रस चाषै ।
बानी ब्रह्म सदा ही भाषै, भाषै चाषै राषै ॥ २ ॥
परमारथ कौं जग मैं आया, अलप पजीना ल्याया ।
बाटि बाटि सबहिन सौं पाया, पाया ल्याया आया ॥ ३ ॥
परम पुरुष सो प्रगटे आदू, श्रवन सुनाया नादू ।
सुन्दरदास ऐसा गुरु दादू, दादू नादू आदू ॥ ४ ॥

---

४ था पद—शीतल=आप शीतल हुआ दूसरों की तपत बुझानेवाला है । आपा=निज । पर=दूसरा । ससिहरि=शशधर=चन्द्रमा ।

५ वां पद—इस पद में एक प्रकार का शब्दालङ्कार भी है—अतरे के दूसरे

(६)

कोई पिवै राम रस प्यासा रे।

गगन मंडल मैं अमृत सरवै उनमनि कै घर वासा रे॥ (टेक)

सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे।

ऐसा महिंगा अमी विकावे छह रिति बारह मासा रे॥ १॥

मोल करै सो छकै दूर तैं तोलत छूटै वासा रे।

जो पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुं न होइ विनासा रे॥ २॥

या रस काजि भये नृप जोगी छाडे भोग विलासा रे।

सेज सिंघासन बैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे॥ ३॥

गोरषनाथ भरथरी रसिया सोई कबीर अभ्यासा रे।

गुरु दादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासा रे॥ ४॥

(७)

संतौ लपन विहूंनी नारी।

अङ्ग एकहू स्यावति नाहीं, कंत रिझायौ भारी॥ (टेक)

अन्धली आंपिन काजल कीया, मुडली माग संवारै।

बूची काननि कुंडल पहिरै, नकटी बेसरि धारै॥ १॥

पाद में अर्द्ध के अन्तिम शब्द को दोहरा कर प्रथम पाद के अन्तिम शब्द को उसके पीछे रख अनुप्रास कर फिर प्रथम के अर्द्ध के अन्तिम शब्द को अन्त में रख कर अनुप्रास किया है। दोनों पादो (चरणों) के अर्द्धों के अन्तिम शब्द परस्पर अनुप्रास युक्त हैं। सौंदर्य यह है कि वे तीनों शब्द द्वितीय पादार्द्ध में उक्त रीति से एकट्ठे होते हैं।—यथाः—आनै छानै जानै। भावै चावै रावै। दादू नादू आदू।

६ ठा पद—सीस उतारना=आपा मारना। छूटै वासा रे=वैराग्य पावै। विरक्त हो जाय। बैठे रहते=जो बैठे रहते सो ही।

कंठ विहूनी माला पहिरै, कर विन चूडा सोहै।
पाइ विहूनी पहरि घूघरूं, पति अपने कौ मोहै ॥ २ ॥
दंत विहूनी बीडा चावै जीभ विहूनी बोलै।
निस दिन ता फूहरि कै पीछे संग लग्यौ पिव डोलै ॥ ३ ॥
मन विन काम करै सब घर कौ जीव विहूनी जीवै।
सुन्दर सांई सेज विराजै तेल न बाती दीवै ॥ ४ ॥

(८)

सतहु पुत्र भया एक धी कै।
पुरुष संग कबहूं का छाड्या जानत सब कोई नीकै ॥ (टेक)
पिता आइ कीयौ संयोगा यहु कलियुग वरताना।
शब्द सु बिंद श्रवन द्वारै करि हृदै माहिं ठहराना ॥ १ ॥

---

७ वां पद—इस पद में विपर्यय शब्द का विन्यास कर पुरुष और प्रकृति (माया) का रूपक बांधा है। कंत=परम पुरुष। नारी=माया (जो अरूप और जड़ है, और पुरुषकी सत्ता से सब करती है। उस नारी (माया) के अरूप होने से कोई अंग साबत नहीं फिर वह इतने नानारूप रंग धार कर सृष्टि में अद्भुत रचनाएं करती है। तेल न बाती दीवें=परमात्मा स्वयम् प्रकाश है—"न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावक ।" उसे सूर्य चन्द्र विद्युत् अग्नि दीपक को किसी की भी दरकार नहीं। वह आप सबको प्रकाशित करता है। उसके साथ नित्य निरंतर यह महामाया विराजती और रमण करती रहती है। जो साकार उपासना में शिव+शक्ति, सीता+राम, राधा+कृष्ण का ध्यान है वही माया+ब्रह्म का (साकार ध्यान) है। "टरै न नित्य विहार"। लैरां लाग्यो ही आवै"। वह कृष्ण, राधिका बिना एक निमेष नहीं रहता, न राधिका, कृष्ण बिना। इस लीला का आध्यात्मिक रहस्य माया और ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध और नित्य सहज लीला ही है। और कुछ नहीं है। यह निश्चय है ॥

ता बीरज का सौं सुत उपना निस दिन करै तमासा।
कर बिन उथकि चन्द कौं पकरै पग बिन चढै अकासा ॥ २ ॥
भूख न दूध धाइ का पीवै माषै चूषै फूलै।
सदा मुदित रोवै नहिं कबहूं पलना पिंघूरै झूलै ॥ ३ ॥
अति बलवन्त अङ्ग बिन बालक करै काल कौं चोटा।
सुन्दर डर किसहू का नाहीं, रहै ब्रह्म की वोटा ॥ ४ ॥

(९)

मुक्ति सौ धोषै की नीसानी।
सो कतहूं नहिं ठौर ठिकाना जहां मुक्ति ठहरानी ॥ (टेक)
को कहै मुक्ति व्योम के ऊपर को पाताल के मांहीं।
को कहै मुक्ति रहै पृथवी पर ढूंढै तौ कहुं नाहीं ॥ १ ॥
बचन विचार न कीया किनहूं सुनि सुनि सब उठि धाये।
गोदंडा ज्यौं मारग चाले आगै षोज बिलाये ॥ २ ॥
जीवत कष्ट करैं बहुतेरे मुये मुक्ति कहँ जाई।
धोषै ही धोषै सब भूले आगै उलाबाई ॥ ३ ॥

---

८ वां पद—इस पद में भी विपर्यय शब्द का प्रयोग करके बुद्धि, मन, आत्मा (ब्रह्म) का और ज्ञानरूपी पुत्र का परस्पर सम्बन्ध और व्यवहार दरसाया है।— धी=बुद्धि वा महत्तत्व। पुरुष=(यहां) मन। पिता=ब्रह्म (वा ब्रह्मा)। धी जो बुद्धिरूपी पुत्री उसके साथ ब्रह्म को ब्रह्म उसने संयोग किया। यही आध्यात्मिक तत्व कथारूप विपर्यय शब्द में 'ब्रह्म और सरस्वती" की कथा है जो पुराणों में वर्णित है और जिसका तात्विक अभिप्राय समझ कर मन्द और संस्कारहीन बुद्धि के पुरुष हास्य करते हैं। उसही को स्वामीजी ने इस पद में विस्तृत रूपक से बताया है। पुत्र=ज्ञान। शुद्ध सच्चिदानन्द का अपरोक्ष ज्ञान ही पुत्र हुआ। निर्मल बुद्धि परमात्मा ब्रह्म से मिलने से ही दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। और वह ऐसा महाबली है कि काल को भी जीतता है। अर्थात् ज्ञानी योगी अमर है और काल उसके वश में है।

निज स्वरूप कौ जानि अखडित ज्यौंका त्यौंही रहिये।
सुन्दर कछू ग्रहै नहि त्यागै वहै मुक्ति पद कहिये॥ ४॥

(१०)

राम निरंजन तूही तूही।
अहकार अज्ञान गयौ जब सौ तूही सौ हूंही॥ (टेक)
तूही तूही तब लग कहिये जब लग मैं मैं आगै।
मैं मैं मैं मैं होइ विलै जब सोह सोह जागै॥ १॥
सोह सोह कहै जबै लग तब लग दूजा कहिये।
सुन्दर एक न दोइ तहां कछु ज्यौ का त्यौं ह्वै रहिये॥ २॥

(११)

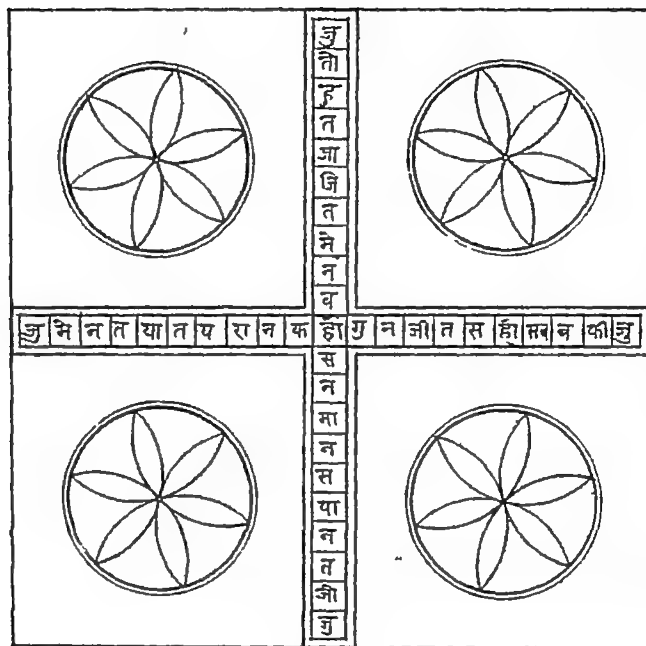
मन मेरे सोई परम सुख पावै।
जागि प्रपंच माहिं मति भूलै यह औसर नहिं आवै॥ (टेक)
सोवै क्यौ न सदा समाधि मैं उपजै अति आनन्दा।
जौ तू जागै जग उपाधि मैं क्षीन होइ ज्यौं चन्दा॥ १॥
सोइ रहै ते ह्वै अखड सुख तौ तू जुग जुग जीवै।
जो जागै तौ परै मृत्यु मुख वादि वृथा विप पीवै॥ २॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जानो।
सुन्दर अर्थ विचारै याकौ सोई पडित ज्ञानी॥ ३॥

---

९ वां पद—गोदंडा=गुवरेला कीड़ा जो गोवर की गोली कर के उसे उलटे पांव ढकेल कर विलमें ले जाता है। सुन्दरदासजी जीवन्मुक्ति को मानते हैं। मुक्ति एक अवस्था मात्र है। शरीर छूटने पर मृत्यु हो जाने पर मुक्ति होने का क्या निश्चय हो सकता है। निजानद निजस्वरूप जीव ही ब्रह्म है यह अनुभव परिपक्व होना ही मोक्ष है।

१० वां पद—चारों अवस्थाओं का वर्णन है।

११ वां पद—स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति के उदाहरण



चौपड़ बंध

चौपई

हौं गुन जीत सहौं सब की जु । हौं सनमान सयान तजौं जु ॥
हौं कन राखत यातन मे जु । हौ वनमे तजि जात हुतौं जु ॥

पढ़ने की विधि

चौपड़ के मध्यवर्त्ती 'हौं" अक्षर से प्रारंभ कर के दाहिनी, फिर बांई, फिर ऊपर की ओर पढ़ें ।

(१२)

संतो घर ही में घर न्यारा।
पिंड ब्रह्मंड तहा कछु नाहीं निरालम्ब निरधारा॥ (टेक)
दिवस न रैंनि सूर नहिं ससिहर अग्नि पवन नहि पानी।
धर आकाश तहा कछु नाहीं ता घर सुरति समानी॥ १॥
वेद पुरान शब्द नहिं पहुचै मनही मन में जाना।
उलटा पथी मीन का मारग सून्य हि सून्य पयाना॥ २॥
आदि न अन्त मध्य वहा नाहीं उतपति प्रलय न होई।
तीन हु गुन तें अगम अगोचर चौथा पद है सोई॥ ३॥
अलष निरंजन है अविनासी आपै आप अकेला।
दादूदास जाइ तहा कीया जीव ब्रह्म सौं मेला॥ ४॥

(१३)

हरि का निज घर कोइक पावै।
जापरि कृपा होइ सतगुरु की सो वही ठौर समावै॥ (टेक)
कोई नाभि कमल में सोधै कोई हृदय विचारै।
कोई कदली कुसम अष्टदल ताके मध्य निहारै॥ १॥
कोइ कंठ कोइ अग्र नासिका कोई भ्रूवस्थाना।
कोई लिलाट कोइ तालू भीतरि कोइ ब्रह्मंड समाना॥ २॥
सब कोइ वर्नन करैं देह कौ सूक्षम ठौर न सूझै।
पिंड ब्रह्मंड तहा कछु नाहीं उलटि आप में बूझै॥ ३॥

दिये हैं। अज्ञान अवस्था, मध्यावस्था, ज्ञानावस्था यों तीनों को सोने जागने और समाधि से बताया है।—"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी"...(गीता)।

१२ वां पद—धर=धरा, पृथ्वी। मीन का मारग=मछली उलटे जल चढती है।

काया सून्य तजै ता आगै आतम सून्य प्रकासै।
[1]परम सून्य सौ परचा होई तवहिं सकल भ्रम नासै॥ ४॥
पूरन ब्रह्म प्रकाश अखंडित वर्नन कैसैं होई।
दादूदास जाइ वा घर मैं जानैगा जन सोई॥ ५॥

(१४)

औधू एक जरी हम पाई।
पिंड ब्रह्मंड जहा तहा पसरी सद्गुरु मोहि वतई॥ (टेक)
सातौ धात मिलाइ एकठी तामैं रङ्ग निचोया।
अष्ट पहर की अग्नि लगाई पीत वरण तव जोया॥ १॥
चेला सकल मढी मैं आये कहै गुरू स्यौं वैंना।
घर घर भिष्या मागत फिरते कवहु न होतो चैंना॥ २॥
अवतौ वैठे करैं वोगरा चिंता गई हमारी।
कोई कलपना उपजै नाही सोवै पाव पसारी॥ ३॥
और करैं सो छिपतें डोलैं मेरै कछू न भायें।
सुन्दरदास कहत है वावा प्रगट ढोल वजायें॥ ४॥

(१५)

औधू पारा इहिं विधि मारौ।
ह्वै रसाइनी करहु रसाइन दुख दालिद्र निवारौ॥ (टेक)
सीसी सुमति चढाइ जुगति करि ब्रह्म अग्नि प्रजारौ।
ह्वै भसमन्त उडै नहिं कवहू ऐसी धवनी धारौ॥ १॥

---

१३ वां १४ वां पद—तीन शून्य कही हैं—(१) काया की। (२) आत्म-शून्य। (३) परम शून्य। इनसे परे पारब्रह्म है। इन दोनों पदों में अपना आभोग न देकर अपने गुरु का दिया है। इस पद में एक प्रकार की रसायन का वर्णन कर आत्म रसायन की सिद्धि से अभिप्राय रक्खा है काया के साथ धातों को

पलटै घात होइ सब कचन जीवन जडी विचारौ।
भागै रोग भूप अति लागै जागै भाग तुम्हारौ॥ २॥
और कलाप करहु काहे कौ क्रिया कर्म सब डारौ।
मिथ्या बूटी पौदि मरौ जिनि वृथा जन्म कत हारौ॥ ३॥
सद्गुरु भेद बतावै जबही तबही थिर ह्वै पारौ।
सुन्दरदास कहै संमुझावै बाजै प्रगट नगारौ॥ ४॥ १११।

(१) राग सिंधूडौ

दादू सूर सुभट दलथम्भण रोपि रह्यौ रन माहीं रे।
जाकी साषि सकल जग बोलै टेक टली कहुं नाहीं रे॥ (टक)
ऐसी मार करै बाणन की जिहिं लागै सो जाणैं रे।
माता पूत एकही जायौ वैरी बहुत बपाणैं रे॥ १॥
हाक सुणैं तैं हीयौ फाटै सनमुख कोइ न आवै रे।
जहा पडै तहा टूक टूक करि अति घमसाण मचावै रे॥ २॥
अग उघाडै बतरि अपाडै परदल पाडै सूरा रे।
रहै हजूरि राम कै आगे मुख परि बरपै नूरा रे॥ ३॥
काम धणीं कौ सबै संवार्‍यौ साहिब कै मन भायौ रे।
कछू एक जस गुरु दादू कौ सुन्दरदास सुनायौ रे॥ ४॥

तप से निर्मल कर दिया मानो स्वर्ण हो गई। बोगरा=बोगालना, जुगाली। अर्थात् आनद से भोजन करते और पचाते हैं।

१५ वां पद—इस पद में भी रसायन का ही दृष्टांत है। यहां पारे से चंचल मन वा वीर्य का प्रयोजन है। रसायन मे पारा अग्नि और जड़ी बूटियों से स्थिर होता है तब ही स्वर्ण होता है। मन भी जप तप वैराग्य की बूटी और ज्ञान अग्नि से बध कर थिर होता है। मिथ्या बूटी=झूठे मत मतांतर, वा झूठा सुख।

(राग सिंधूडी) १ ला पद—दादूजी का सूरातन वर्णन किया है। पाडै=मारै।

(२)

सोई सूरबीर सावंत सिरोमनि, रन मैं जाइ गलारै रे।
आप आपणा घर मैं बैठा गाल सबै कोई मारै रे॥ (टेक)
नागौ लडै पहरि केसरियौ सत वाढी सत भापै रे।
श्याम भरोसै संक न कोई और वोट नहिं रापै रे॥ १॥
ह्वै मरणीक आस तजि तनकी रोपि रहै रन माहीं रे।
दोनौ प्राणी जुडै जब सनमुख तब पाछा दे नाही रे॥ २॥
पीसै दांत पिसण कै ऊपरि कै ऊपरि हाथ गहै हथियारा रे।
नेजा धारी निरपि फौज मैं मारै मन सिरदारै रे॥ ३॥
जहां छूटै तीर झडाझडि बींचै तहा स्यावनौ आवै रे।
सुन्दर लटकौ करै स्याम कौं तवतौ सूर कहावै रे॥ ४॥

(३)

द्वै दल आइ जुडे धरणी पर बिच सिंधूडौ वाजै रे।
एक वोर कौं नृप विवेक चढि एक मोह नृप गाजै रे॥ (टेक)
प्रमथ काम रन माहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे।
महादेव सरिषा मैं जीत्या नर की कौंन चलावै रे॥ १॥
आइ विचार वोलियो वाणी मुख पर नीकैं डाट्यौ रे।
ज्ञान षडग ले तुरत काम कौं हाथ पकडि सिर काट्यौ रे॥ २॥
क्रोध आइ बोल्यौ रन मांहीं हौ सवहिन कौ काला रे।
देव दयंत मनुष पशु पंषी जरें हमारी ज्वाला रे॥ ३॥
षिमा आइकै हंसने लागी सीस चरन कौं नायौ रे।
चूक हमारी बकसहु स्वामी इतनैं क्रोध नसायौ रे॥ ४॥

---

२ रा पद—गाल मारना=अपनी बढ़ाई करना। वोट=सहारा, वचाव। अणी=सेना।

तबहिं लोभ रन आइ पचार्‌यौ मैं तौ सबही जीते रे।
जौ सुमेर घर भीतरि आवे तौ पेट सबन के रीते रे ॥ ५ ॥
इत संतोष आइ भयौ ठाढौ बोले बचन उदासा रे।
होनहार सो ह्वै है भाई कीयौ लोभ कौ नासा रे ॥ ६ ॥
महा लोभ कौं लागी चटपटी अति आतुर सौं आयौ रे।
मेरे जोधा सबही मारे ऐसौ कौंन कहायौ रे ॥ ७ ॥
ता पर राइ विवेक पधार्‌यौ कीनी बहुत लराई रे।
इततें उततें भई झड़ाझडि काहू सुद्धि न पाई रे ॥ ८ ॥
बहुत वार लग जूझे राजा राइ विवेक हंकार्‌यौ रे।
ज्ञान गदा की दई सीस में महा मोह कौं मार्‌यौ रे ॥ ९ ॥
फीटौ तिमिर भान तब ऊगौ अतर भयौ प्रकासा रे।
युग युग राज दियौ अविनासी गावै सुन्दरदासा रे ॥ १० ॥

(४)

तडफडै सूर नीसान घाई पडै, कोट की वोट सब छोडि चालै।
स्याम कै काम कौं लोट अरु पोट ह्वै, निकसि मैदान में चोट घालै (टेक)
जहा, कडकडै वीर गजराज हय हडहडै, घडहडै धरनि ब्रह्मंड गाजै।
झलहलै सार हथियार अति षडहडै, देपिता दूरि भकभूरि भाजै ॥१॥
जहा तुपक तरवारि अरु सेल टक टूक ह्वै, बांण की ताण चहुं फेर हुई।
गह्वर घमसांण में कह्वर धीरज धरै, हहरि भाजै नहीं सुभट सोई ॥२॥
पिसुन सब पेलि झडझेलि सनमुख लडै, मर्द कौं मारि करि गर्द मेलै।
पंच पचीस रिपु रीस करि निर्दलै, सीस भुइ मेल्हि को कमध षेलै ॥३ ॥

---

३ रा पद—गलार्‌यो=ललकारा। पचार्‌यो=प्रचारा, फैला। फीटो=फोटा पड़ा। नाश हो गया। हकारयो=हकाला, ललकारा।

अगम कौ गमि करै दृष्टि उलटो धरै, जीति संग्राम निज धाम आवै।
दास सुन्दर कहै मोज मोटी लहै, रीझि हरि राइ दरसन दिपावै ॥४॥

(५)

महासूर तिनकौ जस गाऊं जिनि हरि सौं लै लाई रे।
मन मैवासी कियौ आप वसि और अनीति उठाई रे॥ (टेक)
प्रथम सूर सतयुग मैं कहिये ध्रुव दृढ ध्यान लगायौ रे।
माया छल करि छलने आई डिग्यौ न वहुत डिगायौ रे॥ १ ॥
सनक सनन्दन नारद सूरा नौ योगेसुर न्यारा रे।
तीनि गुणा कौ त्यागि निरन्तर कीयौ ब्रह्म विचारा रे॥ २ ॥
ऋषभदेव नृप सूर सिरोमनि जाइ वस्यौ बन माहीं रे।
एक मेक ह्वै रह्यौ ब्रह्म सौं सुधि सरीर की नाहीं रे॥ ३ ॥
जन प्रहिलाद जोध जोरावर पिता दई वहु त्रासा रे।
राम नाम की टेक न छाडी प्रगट भयौ हरिदासा रे॥ ४ ॥
सूर बीर दत्तात्रय ऐसौ विचरत इच्छाचारी रे।
भयौ सुतन्त्र नहीं परतन्त्रा सकल उपाधि निवारी रे॥ ५ ॥

---

४ था पद—यह विचित्र आनद है कि स्वा० सु० दा० जी जहां वीररस की कविता करते हैं तो वहुत ओजभरी होती है, क्योंकि शांतिरस प्रधान महात्मा की रचना वीररस में इतनी उत्कृष्ठ काव्य रचना की कुशलता प्रदर्शित करते हैं। तड़फड़ै=युद्ध के लिए अधीर हो। नीसान=निशान सहित वाजा, रणवाद्य। घाई=नक्कारे का गोंजदार शब्द। कोट की वोट—अव किले से वाहर मैदान की लड़ाईको जाते हैं। किला छोड़ मैदान मे लड़ना अधिक शूरवीरता है। कडक्डै=शस्त्रों की आपस की टक्कर का शब्द वीर पुरुषों के तीव्र शब्दों से मिली हुई एक वीरता की ध्वनि। धडहडै=धरवि, धूजै। गाजै=वाजों के शब्दोंसे। टक=शरीर में घुस कर। कहर=क्रोध (और साथ ही धैर्य)। हहरि=हर्राटे भर्राटे से।

व्यास-पुत्र शुकदेव शुभट अति जनमत भयौ विरक्ता रे।
रम्भा मोहि सकी नहि ताकौं सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे ॥ ६ ॥
गोरखनाथ भरथरी सूरा कमधज गोपी चन्दा रे।
चरपट काणेरी चौरङ्गी लीन भये तजि द्वन्दा रे ॥ ७ ॥
रामानन्द कियौ सूरातन काशीपुरी मझारी रे।
लोग उपासक शिव के होते आनि भक्ति विस्तारी रे ॥ ८ ॥
नामदेव अरु रकावंका भयौ तिलोचन सूरा रे।
भक्ति करी भय छाडि जगत कौ बाजहि तिनके तूरा रे ॥ ९ ॥
कलियुग माहिं कियौ सूरातन दास कबीर निसंका रे।
ज्ञान अग्नि परजारि पलक में जीति लियौ गढ बंका रे ॥ १० ॥
जन रैदास साधि सूरातन विप्रनि मार मचाई रे।
सोझा पीपा सेन धना तिन जीती बहुत लराइ रे ॥ ११ ॥
अगद सुवन परम हरदासा ज्ञान गह्यौ हथियारा रे।
नानक कान्हा वेण महाभट भलौ बजायौ सारा रे ॥ १२ ॥
गुरु दादू प्रगटे नाभरि मे ऐसौ सूर न कोई रे।
शब्द बान लायौ जाके उर थकित भयौ मुनि सोई रे ॥ १३ ॥
आदि अन्ति कीयौ सूरातन युग युग साध अनेका रे।
सुन्दरदास मोज यह पावै दीजै परम विवेका रे ॥ १४ ॥११६।

(१) राग सोरठ

ऐसौ तैं, जूझ कियौ गढ घेरी।
कोई, जान न पायौ सेरी ॥ (टेक)
दल जोरि कियौ सब एका, गहि शील सन्तोष विवेका।

---

५ वा पद—मवासी=किलेवाले को। अनीति उठाई=जुल्म को मिटा दिया। चौरंगी, चरपट, काणेरी=जोगी नाथ प्रसिद्ध हुए हैं। (हठयोग प्रदीपिका उ० १।

गुरु ज्ञान सदाई आया, उन सूरातन उपजाया ॥ १ ॥
पहिलें करि नाव अवाजा, तब रोके दश दरवाजा।
गहि ब्रह्म अग्नि परजारी, जरि मुई पचीसो नारी ॥ २ ॥
वै पञ्च पयादा कोपै, तहा उठि विवेक पग रोपे।
पुनि ज्ञान भयौ परचण्डा, तिनि मारि किये सत पण्डा ॥ ३ ॥
वै काम क्रोध दोउ भाई, गये लोभ मोह पै धाई।
तुम बैठे कहा गँवारा, उनि मार्‍यौ सब परिवारा ॥ ४ ॥
जब चार्‍यों मिलि करि आये, तब सील सूर उठि धाये।
ता पीछै उठ्यौ सतोषा, तिनि कछू न राष्यौ धोषा ॥ ५ ॥
जब जूझि परे अगवानी, तब आये नृप अभिमानी।
उठि प्रान भंवाल गलारे, गहि राजा मांन पछारे ॥ ६ ॥
यह जीत्यौ षेत नरेसा, सो सुनियौ सेस महेसा।
घट भीतरि अनहद बाजे, तहा दादू दास विराजे ॥ ७ ॥
दत गोरष ज्यौ जस तेरा, यौ गावै सुन्दर चेरा।
इक दीन वचन सुनि लीजै, मोहि मौज दरस की दीजै ॥ ८ ॥

(२)

गु॰ भा॰ (ताल)

भाजे कांई रे भिडि भारथ साम्हौ सूरा सत जिणि हारै।
दुहौ पवाड सुजस ताहरौ कै मरसी कै मारै ॥ (टेक)

श्लो॰ ५-६-७) रामानद आदि भक्तों के नाम 'नाभाजी की भक्तमाल' में देखैं। और दादूजी आदिका जन्म लीला परचो और 'राघवदासजी की भक्तमाल' में आख्यान हैं।

(राग सारठ) १ ला पद—सेरी=छोटा रास्ता। (निकल कर न जा सका ऐसा घेरा लगाया)। परजारी=प्रज्ज्वलित की।

भोट नगारै सुनै सुभट जब सिंधूडौ सहनाई।
छोडि सनाह हुलसि करि आयौ फूल्यौ अंग न माई॥ १॥
झलहल सीर तरवारि बरछी देषि कादरैं काचा।
छूटं तीर तुपक अरु गोला घाव सहै मुख साचा॥ २॥
गाढा रोपि रहै रन माहै फिरि पाछौ जिणि आवै।
घोडौ घालि पिसुण सब पेलै तब तू सोभा पावै॥ ३॥
भला सूर सावन्त सराहै सो सूरातन कीजै।
सुन्दर सीस उतारि आपणौ स्याम काम कौ दीजै॥ ४॥

(३)

सोई औ गाढ रे रण रावत बाकौ, पाछा पाव न मेल्है।
साचे मतै स्याम रे आगे, सीस उतारया पेल्है॥ (टेक)
चढि चढि सूर चहु दिसि आया, हय हींसै गै गाजै।
घोजल ज्यों चमकं धाढाली, काहर कादरि भाजै॥ १॥
मोंह मिलि हूवा मोंह नहीं मोडे, होइ जाइ विकराला।
सागि सबाहि फेरि सिर ऊपरि, मारै मीर मुछाला॥ २॥
चूक नहीं चोट यों घालै मारैं मार सुणावैं।
करडी कमरि बाधि करि कमधज परकी फौज फिटावै॥ ३॥
खण्ड विहण्ड होइ पल माहीं करै न तन की लोभा।
सुन्दर मर त मुकती पहुंचै, जीवें त जग मे सोभा॥ ४॥

२ रा पद—पवाड=पॅवाडा=सुजस जो जोगी वरुवे गाते है। कादरै=कदराइल हो जाय, डरपोक।

३ रा पद—गै=गज, हाथी। मरंत=मरने से। जीवैंत=जीने से। सवाहि=यह 'सुवाहि' पाठ होने से ठीक अर्थ होगा। अर्थात् अच्छी तरह वाह करके।

(४)

जो कोइ सुनै गुरू की बानी, सो काहे कौ भरमै प्रांनी ॥ (टेक)
घट भीतरि सब दिषलावै वडभागी होइ सु पावै।
जौ शब्द माहिं मन राषै, सो राम रसाइन चापै ॥ १ ॥
घट भीतरि विष्णु महेसा, ब्रह्मादिक नारद सेसा।
घट भीतरि इन्द्र कुबेरा, घट भीतरि प्रगट सुमेरा ॥ २ ॥
घट भीतरि सूरज चदा घट भीतरि सात समन्दा।
घट भीतरि नो लप तारा, घट भीतरि सुरमरि धारा ॥ ३ ॥
घट भीतरि है रस भोगी, गोदावरि गोरप जोगी।
घट भीतरि सिद्धन मेला, घट भीतरि आप अकेला ॥ ४ ॥
घट भीतरि मथुरा काशी, घट भीतरि गृह वनवासी।
घट भीतरि तीरथ न्हाना, घट भीतरि आव न जाना ॥ ५ ॥
घट भीतरि नाचै गावै, घट भीतरि वेन वजावै।
घट भीतरि फाग वसन्ता, घट भोतरि कामिनि कन्ता ॥ ६ ॥
घट भीतरि स्वर्ग पताला, घट भीतरि है क्षय काला।
घट भीतरि युग युग जीवै, घट भीतरि अमृत पीवै ॥ ७ ॥
जब घट सौं परचा होई, तब काल न व्यापै कोई।
जन सुन्दर कहि संमुझावें, सतगुरु विन कोइ न पावै ॥ ८ ॥

(५)

मेरा मन राम नाम सौं लागा।
तातें भरम गया भै भागा ॥ (टेक)

---

४ था पद—'भ्रमै' को 'भरमै' पाठ छन्द सौन्दर्य के लिए लिखा है। इसके अर्थ की समझ दादूवाणी में 'कायावेली' का पद पढ़ने समझने से आ सकती है। वहां देखें और चन्द्रिकाप्रसादजी की उस पर टीका देखें।

आसा मनसा सब थिर कीनी, सत रज तम त्यागै तीनी।
पुनि हरप सोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ॥ १॥
नख शिख लौ देह पपारी, तब सुद्ध भई सब नारी।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकासा, किया सकल कर्म का नासा॥ २॥
इडा पिंगला उल्टी आई, सुपमन ब्रह्मण्ड चढ़ाई।
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब बिंद गगन मैं पैठा॥ ३॥
जहा शब्द अनाहद बाजै, तहा अन्तर जोति बिराजै।
कोई देपै देपनहारा, सो सुन्दर गुरू हमारा॥ ४॥

(६)

ऐसौ योग युगति जब होई।
तब काल न व्यापै कोई॥ (टेक)
धरि आसन पद्म रहता, सब काया कर्म दहंता।
तजि निद्रा छाडि अहारा, करि आपुहि आप विचारा॥ १॥
गहि बिंद गगन दिशि जाता, भपि पवन पियाला माता।
सुनि अनहद सींगी बाजै, धुनि माहि निरंजन गाजै॥ २॥
सो अवधू गुरु का पूरा, जिनि एक किया ससि सूरा।
अभि अतरि जोति जगावै, तहा उनमनि ताली लावै॥ ३॥
यह गंग जमुन बिचि पैठा, तहा परम पुरुप का मेला।
गुरु दादू दिया दिपाई, तहा सुंदर रह्या समाई॥ ४॥

---

५ वा पद—पपारी=धोई, स्नान कराई। नारी=नाड़ी (१०८ नाड़िया)। मूलचापि=मूलाधार चक्र को सिद्धासन दृढ़ करके सिद्ध कर लिया। बिन्द=वीर्य। गगन=मस्तिष्क, सहस्रार चक्र में।

६ ठा पद—गंग=पिंगला (दाहिने स्वर की) सूर्य नाड़ी। जमना=इडा (बाये स्वर की) चन्द्रनाड़ी। यथा—"गंगा जमना अन्तर वेद। सुरसति नीर बहै पर-सेद।" दादूवाणी पद ४०७।

(७)

हमारे साहु रमइया मोटा, हम ताके आहि वनौटा ॥ (टेक)
यह हाट दई जिनि काया, अपना करि जानि वैठाया* ।
पूंजी कौ अंत न पारा, हम बहुत करी भंडसारा ॥ १ ॥
लई वस्तु अमोलक सारी, सब छाडि विषै पलि पारी ।
भरि राष्यौ सबही भौना, कोई षाली रह्यौ न कौना ॥ २ ॥
जो गाहक लेनै आवै, मन मान्यौं सौदा पावै ।
देषै बहु भांति किराना, उठि जाइ न और दुकाना ॥ ३ ॥
समरथ की कोठी आये, तब कोठीवाल कहाये ।
वनिजै हरि नाव निवासा, यह वनिया सुंदरदासा ॥ ४ ॥

(८)

देषहु साह रमइया ऐसा, सो रहै अपरछन वेसा ॥ (टेक)
यहु हाट कियौ संसारा, तामैं विविधि भांति व्यौपारा ।
सब जीव सौदागर आया, जिनि वनज्या तैसा पाया ॥ १ ॥
किनहू वनिजी पलि पारी, किनहुं लइ लौंग सुपारी ।
किनहू लिये मूगा मोती, किनहू लइ काच की पोती ॥ २ ॥
किनहू लइ औषध मूरी, किनहू केसर कस्तूरी ।
किनहू लियौ बहुत अनाजा, किनहूं लियौ ल्हसण प्याजा ॥ ३ ॥

---

७ वां पद—वनौटा=वनाया हुआ वनिया जिसको बड़ा दूकानदार कुछ पूंजी देकर पृथक् दूकान पर बिठाकर साहूकार वना देता है । वनाया हुआ आदमी । प्रतिपालित ।

* "वैठाया" को 'बिठाया' पढ़ना ठीक होगा । भंडसार=बिगाड़ या भंडार की भरती । पलि षारी=खली निःसत्व पदार्थ । षारी=क्षार वा खारी नमक जिसको हीन समझते हैं । निवासा=भंडार भर-भर कर ।

ससनि लीयौ हरि हीरा, तिनस्यौं कीयौ हम सीरा।
दुख दालिद्र निकट न आवै, यौं सुन्दर बनिया गावै॥ ४॥

(६)

मोहि, सतगुरु कहि समुझाया हो।
परम पुरुष बिन और न परसौं, पीव निरंजन राया हो॥ (टेक)
सब ऊपरि सोई मेरा स्वामी, उसपरि कोई न बताया हो।
मनसा बाचा और कर्मना, वाही सौं मन लाया हो॥ १॥
घट धारी सौं प्रीति न मेरी, जो अवतार कहाया हो।
वै हम भइया बंध आप मैं, एकहि जननी जाया हो॥ २॥
ब्रह्मा विष्णु महेस बिचारा, उहां लग जान न पाया हो।
वाजी मांहि बीचि ही अटके, मोहि लिये सब माया हो॥ ३॥
तहा गये गोरक्ष भरथरी, जहां घाम नहिं छाया हो।
तहा कबीर गुरु दादू पहुंचे, सुन्दर उहिं दिशि धाया हो॥ ४॥

(१०)

मेरे, सतगुरु बड़े सयाने हो।
लोक वेद मरजाद उलँघिकें, गये गगन के थांने हो॥ (टेक)
अगम ठौर कै आसन बैठे, बेहद सौं मन माते हो।
साचि सिंगार किया उर अंतर, भेष भरम सब भाने हो॥ १॥

---

८ वां पद—अपरछन=अप्रच्छन्न, प्रगट। परन्तु यहां तो गुप्त का अर्थ है अर्थात् प्रच्छन्न। सीरा=साझा, सांझी। 'लियो' को 'लीयो' और 'कियो' को 'कीयो' बनाया गया।

९ वां पद—इसमें अवतारादि को भी शरीरधारी होने से माया के विकार कहे हैं। यही निर्गुण मत का चरम सिद्धान्त है।

तिमिर मिट्यौ जब ब्रह्म प्रकाशे, कैसें रहत छिपाने हो।
शिव विरंचि सनकादिक नारद, सेस नाग पुनि जाने हो ॥ २ ॥
योगी यती तपी संन्यासी, ये सब भरम भुलाने हो।
तीरथ ब्रत जप तप बहु करि करि, उरं उरें उरझाने हो ॥ ३ ॥
गोरप भरथर नाम कबीरा, सतनि माहिं प्र वाने हो।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, पहुंचैं जाइ ठिकाने हो ॥ ४ ॥

(११)

उस, सत गुरु की बलिहारी हो।
वचन काटि किये जिनि मुकता, अरु सब विपति निवारी हो ॥ (टेक)
बानी सुनत परम सुख पायौ, दुरमति गई हमारी हो।
भरम करम के ससं पोले, दिये कपाट उघारी हो ॥ १ ॥
माया ब्रह्म भेद समुझायौ, सो हम लियौ विचारी हो।
आदि पुरुप अभि अतरि रापे, डाइनि दूरि विडारी हो ॥ २ ॥
दया करी उनि सब सुख दाता, अबकें लिये उबारी हो।
भवसागर में बूडत काढे, ऐसें परउपगारी हो ॥ ३ ॥
गुरु दादू के चरण कवल परि, मेल्हौ सीस उतारी हो।
और कहा ले आगें रापे, सुन्दर भेट तुम्हारी हो ॥ ४ ॥

(१२)

सोई सत भला मोहि लागै हो।
राम निरजन सौं मन लावै, कनक कामिनी त्यागै हो ॥ (टेक)
तजि ससार उलटि नहिं आवै, जो पग धरै स आगै हो।
ज्ञान पडग ले सनमुख झूझै, फिरि पीछैं नहिं भागै हो ॥ १ ॥

---

१० वां पद—थाने=स्थान। वेहद=सीमा रहित। अनन्त। नाम=नामदेव।
११ वां पद—डाइनि=माया डाकिनी।

पंच तीन गुन और पचीसौं, ब्रह्म अग्नि मैं दागै हो।
सहज सुभाइ फिरै जन मुक्ता, ऐसैं जग मैं जागै हो॥ २॥
आसा तृष्णा करै न कबहौं, काहू पै नहिं मांगै हो।
कबहौं पंचा अमृत भोजन, कबहौं भाजी सागै हो॥ ३॥
अंतर-जामी नेंकु न बिसरे, बार बार चित धागै हो।
सुन्दरदास तास कौं बंदे, सून्य सुधा रस पागै हो॥ ४॥

(१३)

वै सन्त सकल सुखदाता हो।
जिनकै हृदै नाव निज निर्मल, प्रेम मगन रस माता हो॥ (टेक)
रोमंचित अरु गद गद बानी, पल पल पुलकति गाता हो।
सर्व भूत सौं दया निरन्तरि, सीतल बैंन सुहाता हो॥ १॥
दरसन करत ताप त्रय भागै, परसत पाप नसाता हो।
मौंन रहै बूझें तें बोलै, कहै ब्रह्म की बाता हो॥ २॥
कोई निंदै कोई बंदै, सम दृष्टी तत-ज्ञाता हो।
कोप न करै हरष नहिं मानै, परम पुरुष सौं राता हो॥ ३॥
जग मैं रहै जगत सौं न्यारे, ज्यौं जल पुरइनि पाता हो।
सुन्दरदास संत जन ऐसे, सिरजे आप बिधाता हो॥ ४॥

(१४)

भाई रे सतगुरु कहि समुझाया।
मोहि एक बिचार बताया॥ (टेक)

---

१२ वां पद—दागै=जलावै। भाजी=तरकारी। धागै=जोड़ै (जैसे तागे में पिरोकर वा सुई से सींकर)। पागै=मग्न हो, डूबै।

१३ वां पद—नाव निज=निज नाव, वा निर्मल निशान्त (निर्मल से सम्बन्ध रक्खें तो) पुरइनि-पाता=कमल का पत्ता।

धाये भूषे भूषे भूषे, जबलग नहीं सतोपा।
धाये धाये भूषे धाये, हरि भजि पायौ मोपा॥ १॥
बैठे चलते चलते चलते, जबलग मन थिर नाहीं।
बैठे बैठे चलते बैठे, जब समुझै हरि माहीं॥ २॥
निर्मल मैले मैले मैले, जबलग मनहिं विकारा।
निर्मल निर्मल मैले निर्मल, गलित भये गुन सारा॥ ३॥
उत्तम मध्यम मध्यम मध्यम, जबलग वस्तु न जानी।
उत्तम उत्तम मध्यम उत्तम, आतम दृष्टि पिछानी॥ ४॥
सांचा झूठा झूठा झूठा, जबलग आन पुकारं।
साचा साचा झूठा साचा, वाणी ब्रह्म उचारे॥ ५॥
पडित मूरप मूरप मूरप जबलग अहं न जाई।
पडित पडित मूरप पडित, दुविधा दूरि गमाई॥ ६॥
मुक्ता वध्या वध्या वध्या, जबलग तजी न आसा।
मुक्ता मुक्ता वध्या मुक्ता, सबतें भया उदासा॥ ७॥
जीत्या हास्या हास्या हास्या, जबलग है अज्ञाना।
जीत्या जीत्या हास्या जीत्या, सुन्दर ब्रह्म समाना॥ ८॥

(१५)

भाई रे प्रकट्या ज्ञान उजाला।
अहंकार भ्रम गयौ विलाई, सतगुरु किये निहाला॥ (टेक)
इहै ज्ञान गहि ब्रह्मा बोले कहिये आदि कुलाला।
इहै ज्ञान गहि सत गुन धरिकें विष्णु करें प्रतिपाला॥ १॥

---

१४ वां पद—धाये भूषे=धापे हुए वा तृप्त होकर भी भूखे के भूखे ही रहे यदि सन्ताप धन नहीं मिला तो। इस पद में इसी प्रकार शब्दार्थ योजना चातुर्य्य से किया है जिनको इसी तरह लगाया जावै।

इहै ज्ञान गहि शंकर गौरी प्रेम मग्न मति वाला।
इहै ज्ञान गहि शुक मुनि नारद बोलत बैन रसाला ॥ २ ॥
इहै ज्ञान गहि राम भजत है बैठे शेष पताला।
इहै ज्ञान गहि प्रगट जती भये ऐसे हनुमत वाला ॥ ३ ॥
इहै ज्ञान गहि जन प्रह्लादू बचे अग्नि की झाला।
इहै ज्ञान गहि ध्रू अविनासी टरत न काहू टाला ॥ ४ ॥
इहै ज्ञान गहि दत्त दिगम्बर, यहु न* लई मृगछाला।
इहै ज्ञान गहि गोरष जोगी, जीति लियौ जम काला ॥ ५ ॥
इहै ज्ञान गहि गये भरथरी केते और भुवाला।
इहै ज्ञान गहि गोपी चन्दहि छाड्यौ सब जंजाला ॥ ६ ॥
इहै ज्ञान गहि नाम कबीरा पीवै अंमृत प्याला।
इहै ज्ञान गहि सोझा पीपा जन रैदास कमाला ॥ ७ ॥
इहै ज्ञान गहि यों गुरुदादू चलि सन्तनि की चाला।
इहै ज्ञान पायौ जन सुन्दर जग तें भया निराला ॥ ८ ॥

(१६)

सब कोऊ भूलि रहे इहि बाजी।
आप आपुने अहंकार मैं पातिसाहि कहा पाजी ॥ (टेक)
पातिसाहि के विभौ बहुत बिधि षात मिठाई ताजी।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी भाजी ॥ १ ॥
पण्डित भूले बेद पाठ करि पढि कुरान कौं काजी।
वै पूरब दिशि करैं डण्डवत वै पच्छिम हि निवाजी ॥ २ ॥

---

* 'न' अक्षर से यह प्रयोजन है कि मृगछाला तक धारण नहीं की। और यहु का अर्थ इस कारण (इस ज्ञान की प्राप्ति से)।

१५ वा पद—भुवाला=भूपाल, राजा।

तीरथिया तीरथ कौं दौडे हज कों दौडें हाजी।
अन्तर गति कों पोजै नाहीं भ्रमणै ही सों राजी॥ ३॥
अपने अपने मद के माते लपें न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये जिनकै भई दुगाजी॥ ४॥१३२॥

(१) राग जैजैवन्त।

काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।
जासू तू कहत दूरि सोतो तेरे पास है॥ (टेक)
ऐसें तू विचारि देषि व्यापक है तोहि माहि।
दूध माहिं घृत जैसें फूलनि मैं बास है॥ १॥
बाहरि कू दौरें तेरे हाथ न परत कछु।
उलटि अपूठौ तेरौ तोही मैं प्रकास है॥ २॥
जाके रूपरंप कछु वरणि कह्यौ न जाइ।
अलप अमूरति अमर अविनास है॥ ३॥
सोहं सोहं वार वार होतई रहत नित्य।
याही मैं समुझि जो उठत तेरे स्वास है॥ ४॥
एकता विचारै जब सुन्दर ही स्वामी होइ।
दूसरौ विचारें तब सुन्दर ही दास है॥ ५॥

(२)

आपुकौ सभारें जब तू ही सुख सागर है।
आपकू विसारें तब तू ही दुख पाइ है॥ (टेक)

---

१६ वां पद—पाजी=छोटा आदमी। पयादा नोकर। निवाजी=नमाज पढते हैं। फूठी साजी=बिगड़ी हुई साझी वा मेल। द्वन्द्व, द्वैतभाव।

[राग जैजैवन्ती] १ ला पद—अनित्र=अन्यत्र, और तरफ।

तू ही अब आवं ठौर दूसरौ न भासै और।
तेरी ही चपलता तें दूसरौ दिषाइ है॥ १॥
यावं कानि सुनि भावे दाहिने पुकारि कहूं।
अबकै न चेत्यौ तो तू पीछै पछिताइ है॥ २॥
भावै आज भावै कल्पन्त बीतें होइ ज्ञान।
तबही तू अविनासी पद मैं समाइ है॥ ३॥
सुन्दर कहत सन्त मारग बतावें तोहि।
तेरी षुसी परै तहां तू ही चलि जाइ है॥ ४॥ १३४॥

(१) राग रामगरी

अवधू भेष देषि जिनि भूलै।
जबलग आतम दृष्टि न आई तबलग मिटै न सूलै॥ (टेक)
मुद्रा पहरि कहावत जोगी, युगति न दीसै हाया।
वह मारग कहु रह्यौ अनत ही, पहुंचै गोरषनाथा॥ १॥
लै संन्यास करै बहु तामस, लम्बी जटा बधावै।
दत्तदेव की रहनि न जानै, तत्त कहा तैं पावै॥ २॥
मूड मुण्डाइ तिलक सिर दीयौ, माला गरै झुलाई।
जौ सुमिरन कीनौ सब सन्तनि, सो तौ पबरि न पाई॥ ३॥
तहबन्ध बाधि कुलहा लीना, दम दम करै दिवाना।
महमद की करनी नहिं जानै, क्यौं पावै रहिमाना॥ ४॥
दरसन लियौ भली तुम कीनी, क्रोध करौ जिनि कोई।
सुन्दरदास कहै अभिअन्तरि, वस्तु विचारौ सोई॥ ५॥

पद १ ला—और २ रा—दोनों ही छन्द के अनुसार "सवैया" के अन्दर आने योग्य हैं।

[राग रामगरी] पद १ ला—इसमें ढोंगी साधुओं, जोगियों, फकीरों को कसणी

(२)

सन्त चले दिस ब्रह्म की तजि जग व्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं निंदै ससारा ॥ (टेक)
सन्त कहैं साची कथा मिथ्या नहिं वोलें।
जगत डिगावै आइकें तौ कबहू न डोलें ॥ १ ॥
जे जे कृत ससार के ते सन्तनि छाडे।
ताकौ जगत कहा करै पग आगै मांडे ॥ २ ॥
जे मरजादा वेद की ते सन्तनि मेटी।
जैसें गोपी कृष्ण कौ सब तजि करि भेटी ॥ ३ ॥
एक भरोसे राम कै कछु शक न आनैं।
जन सुन्दर साचै मतै जग की नहिं मानैं ॥ ४ ॥

(३)

सतगुरु शब्दहु जे चले तेई जन छूटे।
जग मरजादा मैं रहे ते महुकम लूटे ॥ (टेक)
कुल की मोटी सकला पग वाधे दोई।
गले तौक कर हथकरी क्यों निकसै कोई ॥ १ ॥
नाना विधि के वाधनै सब वाधे वेदा।
सूर वीर कोई निकसि है जो पावै भेदा ॥ २ ॥
वावा अरु दादा चले ते मारग पोटा।
सो व्यापार न कीजिये जिहिं आवै टोटा ॥ ३ ॥

लगाई है। ४ थे अन्तरे के पढने से पाया जाता है कि स्वामीजी अन्य मतों के आचार्यों का भी आदर करते थे। दरसन=वाना, भेष (जैसे 'षट् दरसन' में)।

२ रा पद—सीधे मारग=जिस मार्ग सन्त चलते हैं वह सीधा रास्ता है। मरजादा वेद की=कर्मकाण्ड यज्ञादिक।

पन्थ पुरातम कहत है सब चलता आया।
सुन्दर सो उलटा चले जिन सतगुरु पाया ॥ ४ ॥

(४)

यह सब जानि जग की पोट।
छाडि श्रीपति सरन साचौ गहै झूठी वोट ॥ (टेक)
दगाबाज प्रचण्ड लोभी कामना नहि छेह।
भूत आगै पूत मागै परैगी सिर षेह ॥ १ ॥
देव देवी सकल भ्रमि भ्रमि कहू न पूगो आस।
मानुषा तनु पाइ ऐसौ कियौ यौंही नास ॥ २ ॥
कष्ट करि करि स्वर्ग बछहि और पृथ्वी राज।
महा मूढ अज्ञान अपनौ करहि बहुत अकाज ॥ ३ ॥
सुख निधान सुजान समर्थ ताहि भजत न कोइ।
कहत सुन्दरदास ऐसैं काम कैसैं होइ ॥ ४ ॥

(५)

नटवट रच्यौ नटवै एक।
बहु प्रकार बनाइ बाजी किये रूप अनेक ॥ (टेक)
च्यारि षानी जीव तिनकी और औरैं जाति।
एक एक समान नाहीं करी ऐसी भाति ॥ १ ॥
देव भूत पिसाच राक्षस मनुष पशु अरु पंखि।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल गनै कौन असंषि ॥ २ ॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार।
भिन्न भिन्न हि युक्ति राषी भिन्न भिन्न बिहार ॥ ३ ॥

३ रा पद—महुकम=(अ०) मोहकम-मजबूत, गहरे, बहुत।
४ था पद—भूत=भूत प्रेत। देवताओं या भोमिया पीर के भाव भरते हैं वे।

भिन्न बानी सकल जानी एक एक न मेल।
कहत सुन्दर माहिं बैठा करै ऐसा षेल ॥ ४ ॥

(६)

यहु तन ना रहै भाई।
दिना दहू चहु माहिं सबको चल्यौ जग जाई। (टेक)
विष्णु ब्रह्मा शेष शंकर सो न थिर थाई।
देव दानव इन्द्र कते गये विनसाई ॥ १ ॥
कहत दश अवतार जग में औतरे आई।
काल तेऊ झपटि लीने बस नहीं काई ॥ २ ॥
कौरवा पांडवा रावन कुम्भकरनाई।
गरद वैसे भये जोधा पवरि नां पाई ॥ ३ ॥
घट धरे कोड थिर न दीसै रङ्क अरु राई।
दास सुन्दर जानि ऐसी राम ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

(७)

एक निरञ्जन नाम भजहु रे।
और सकल जंजाल तजहु रे ॥ (टेक)
योग यज्ञ तीरथ व्रत दाना, लोन विना ज्यों विजन नाना ॥ १ ॥
जप तप संजम साधन ऐसें, सकल सिंगार नाक विन जैसें ॥ २ ॥
हेमतुला बैठें कहा होई, नाम बराबरि धर्म न कोई ॥ ३ ॥
सुन्दर नाम सकल सिरताजा, नाम सकल साधन कौ राजा ॥ ४ ॥

---

५ वां पद—नटवट=नटबाजी का आडम्बर। सृष्टि का पसारा जो एक बाजीगरी सी है।

६ ठा पद—विनसाई=नष्ट होकर। कुम्भकरनाई=(अनुप्रासार्थ ऐसा रूप है) रावण का भाई। घट धरें=शरीरधारी।

(८)

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई।
तीन अवस्था में दिन बीतें, सो सुख कह्यौ न जाई ॥ (टेक)
*जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन, स्वप्नें ध्यान लै ल्यावें।
सुषुपति प्रेम मगन अंतिरगति, सकल प्रपंच भुलावें ॥ १ ॥
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई, सो भगवंत अनूप।
सो गुरु जिन उपदेश बतायो, सुन्दर तुरिय स्वरूपं ॥ २ ॥

(९)

तूही राम हूही राम वस्तु विचारें भ्रम द्वै नाम ॥ (टेक)
तू ही हू ही जबलग दोइ, तबलग तू ही हू ही होइ ॥ १ ॥
तू ही हूं ही सोहं दास, तू ही हूं ही वचन विलास ॥ २ ॥
तू ही हू ही जबलग कहै, तबलग तू ही हू ही रहै ॥ ३ ॥
तू ही हू ही जब मिट जाइ, सुन्दर ज्यौं को त्यौं ठहराइ ॥ ४ ॥१४३॥

(१) राग बसन्त

इनि योगी लीनी गुरु की साप।
नाम निरञ्जन मागै भीप ॥ (टेक)
कंथा पहरी पंचरङ्ग, ज्ञान विभूति लगाई अङ्ग।
मुद्रा गुरु को शब्द कान, ऐसौ भेप कियौ अवधू सुजान ॥ १ ॥
सींगी सुरति बजाई पूरि, वस्ती देखी बहुत दूरि।
जहा शब्द सुनें नगरी मझारि, तहा आसन करि बैठो विचारि ॥ २ ॥

---

८ वा पद—अन्तिरगति=अन्तरगति।

९ वा पद—इस पद में अद्वैत प्रतिपादन किया है। "तत्वमसि" (वह तू ही है) के अर्थ को दरसाया है।

अमृत कौ तहा आवै ग्रास, चेला चाटी रहै पास।
सब काहू सौ बाटि पाइ, तहा बिछुरि जमात कहू न जाइ ॥ ३ ॥
यह भोजन पावै वार वार, भरि भरि पेट करै अहार।
भागी भूप अघाइ प्रान, ऐसी सुन्दर नगरी सुख निधान ॥ ४ ॥

(२)

मेरे हिरदै लागौ शब्द बान, ताकि मारै सत गुरु सुजान ॥ (टेक)
यह दशौं दिशा मन करतौ दौड, देषत ही रहि गयौ ठौड।
चलि न सकै कहूं पेंड एक, देषौ माहि कलेजै भयौ छेक ॥ १ ॥
ऊपरि घाव न दीसै कोइ, भीतरि नख शिख लीयौ पोइ।
कोइ न जानै मेरी पीर, सो जानै जाकै लग्यौ तीर ॥ २ ॥
जीवत मृतक किये मारि, रोम रोम ऊठे पुकारि।
प्रेम मगन रस गलित गात, मोहि बिसरि गई सब और बात ॥ ३ ॥
गति मति पलटी पलट्यौ अग, पच पचीसनि एक संग।
उलटि समाने सून्य माहिं, अब सुन्दर कहुं अनत नाहिं ॥ ४ ॥

(३)

ऐसौ बाग कियौ हरि अलष राइ।
कछु अद्भुत रचना कही न जाइ ॥ (टेक)
यह पच तत्व कौ सघन बाग, मूल बिना तरु सरस लाग।
बहु विधि बिरवा रहे फूलि, जो देषै सो जाइ भूलि ॥ १ ॥

[राग वसन्त] १ ला पद—पचरग=पच ज्ञानेन्द्रियों को वस करना। अमृत=ज्ञानरूपी अमृत। अथवा योग के अनुसार माथे में कुण्डलिनी अमृत बिन्दु पीवै।

२ रा पद—सतगुरु (दादूदयाल) का उपदेश—भक्तिमय ज्ञान का—हृदय में ऐसा घुसा कि अहकार आदिक मिट कर अन्तरात्मा में प्रवृत्ति हो गई और निरन्तर ज्ञान ध्यान से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई।

यह बारा मास फलै सुफाल, तहा पत्ती बोलैं डाल डाल।
जब यह आवै ऋतु बसत, ये सब सुख पावैं सकल जत ॥ २ ॥
ताहि सींचत है प्रभु बार बार, पुनि पल पल माहिं करै संभार।
प्रभु सबही द्रुम को मर्म जान, तामैं कोइक वाके मनहिं मान ॥ ३ ॥
जो फलै न फूलै बाग माहिं, ऐसौ सत गुरु चन्दन और नाहि।
ताकी रंचक लागी आइ बास, तिन पलटि लियौ सुन्दर पलास ॥ ४ ॥

(४)

ऐसौ फागुन खेलै संत कोइ।
जामैं उतपति प्रलै जीव होई ॥ (टेक)

इनि मोह गुलाल लगायौ अङ्ग, पुनि लोभ अरगजा लियौ सग।
केसरि कुमति करी बनाइ, अरु माया कौ मद पियौ अघाई ॥ १ ॥
तहा मदल मदन बजावै भेरि, आसा अरु तृष्णा गावैं टेरि।
हाथनि मे लीने क्रोध बंस, इनि करि करि क्रीडा हत्यौ हंस ॥ २ ॥
जब खेलि माल्हि कैं चले न्हान, पुनि सोक सरोवर कियौ सनान।
संसै को तिलक दियौ लिलाट, गये आप आपकौं बारह बाट ॥ ३ ॥
इहै जानि तुरत हम छूटे भागि, यह सब जग देख्यौ जरत आगि।
अपने सिर की फिरि डारी पोट, जन सुन्दर पकरी हरि की वोट ॥ ४ ॥

---

३ रा पद—ससार को बाग की उपमा देकर उसमें सतगुरुरूपी चन्दन के वृक्ष से अन्य वृक्षों के चन्दन बनने की बात कही। पलास=छीला वृक्ष। निर्गन्ध अन्य वृक्ष (जो चन्दन की सुगन्ध से चन्दन हो जाते है) गुरु के वचनरूपी सुगन्ध से जिज्ञासु भी ज्ञानी हो गये वा हो जाते हैं।

४ था पद—मदल=मन्द-मन्द। अथवा मण्डल=डफ का घेरा। इस पद मे किसी भ्रष्ट दम्भी साधु का वर्णन है, जिसकी बुरी बातें देख स्वामीजी घबराए और ससार की असारता का पक्का प्रमाण मिला।

(५)

हम देषि बसंत कियौ विचार।
यह माया षेलै अति अपार॥ (टेक)
यहु छिन छिन मांहिं अनेक रङ्ग, पुनि कहुं बिछुरै कहु करै संग।
यहु गुन धरि बैठी कपट भाइ, यहु आपुहि जनमैं आपु षाइ॥ १॥
यहु कहुं कामिनि कहुं भई कन्त, यहु कहुं मारै कहू दयावंत।
यहु कहु जागै कहु रही सोइ, यहु कहू हसै कहु उठै रोइ॥ २॥
यहु कहु पाती कहु भई देव, पुनि कहुं युक्ति करि करै सेव।
यहु कहुं मालनि कहु भई फूल, यहु कहू सूक्ष्म कहू ह्वै है स्थूल॥ ३॥
यहु तीन लोक मैं रही पूरि, भागी कहा कोई जाइ दूरि।
जौ प्रगटै सुन्दर ज्ञान अङ्ग, तौ माया मृग जल रजु भुजंग॥ ४॥

(६)

तुम षेलहु फाग पियारे कन्त।
अब आयौ है फागुन ऋतु बसंत॥ (टेक)
घसि प्रेम प्रीति केसरि सुरङ्ग, यह ज्ञान गुलाल लगावै अङ्ग।
भरि सुमति पिचरकी अपनै हाथ, हम भरिहै तुमहिं त्रिलोकनाथ॥ १॥
तुम हमहिं भरहु करि अधिक प्यार, हम तुमहिं भरहिं प्रभु बार बार।
निसवासर षेल अखंड होइ, यह अद्भुत षेल लषै न कोइ॥ २॥
तहा शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुन्दभि ढोल मृदंग ताल।
सुख उपजै श्रवननि सुनत नाद, मन मगन होइ छूटै विषाद॥ ३॥
हम तुमहिं पकरि आजि हैं नैंन, सब हो हो हो हो कहै बैंन।
तुम छूट्यौ चाहत फगुवा देइ, यह सुन्दर नारि कछू न लेइ॥ ४॥

---

५ वां पद—मृगजल=मृगतृष्णा का पानी (भ्रममात्र वा उपाधिमात्र)।

६ ठा पद—धुनि दुन्दुभि ।=योग ध्यान वा समाधि में प्रथम अनेक शब्द होते हैं। देखो 'ज्ञानसमुद्र' में। अंजि है नैंन=ब्रह्म तो निरंजन है उसके नेत्रों में अंजन

(७)

देषौ, घट घट आतम राम निरन्तर पेलत सरस बसंत।

ऐसौ, ष्याली ष्याल कियौ है, कबहु न आवत अंत॥ (टेक)

चारि पानि विस्तार जगत यह, चौरासी लष जंत।

षेचर भूचर अरु जल चारी, बहु विधि सृष्टि रचन्त॥ १॥

धरती गगन पवन अरु पानी, अग्नि सदा धरतंत।

चन्द सूर तारागन सबही, देव यक्ष अगनन्त॥ २॥

ज्यौं समुद्र मैं फेन बुदबुदा, लहरि अनेक उठंत।

तरवर तत्व रहै एक रस, झरि झरि पत्र परन्त॥ ३॥

ज्यौं का त्यौंही पेल पसारा, बीत्यौ काल अनन्त।

सुन्दर ब्रह्म विलास अखंडित, जानत हैं सब संत॥ ४॥१५०॥

(१) राग गौंड

मेरा प्रीतम प्रान अधार कब घरि आइ है।

कहुं सो दिन ऐसा होइ दरस दिषाइ है॥ (टेक)

ये नैंन निहारत माग इक टग हेरहीं।

वाल्हा जैसैं चन्द चकोर दृष्टि न फेरहीं॥ १॥

देना वा फाग खेलना पराभक्ति की काष्ठा है। परम प्रेम का भाव है। कछु न लेइ=निष्काम भक्तिमय ज्ञान को छोड़ और कुछ नहीं चाहिए।

७ वा पद—वसन्त के रूपक के साथ सृष्टि का वर्णन करने यह प्रयोजन है कि वसन्त शब्द से सदा वसने वा व्यापक रहना और फिर वसन्त शब्द से वसन्त ऋतु का अर्थ लेने से पुष्प के खिलने और आनन्द बाहुल्य होने से भी है। ऐसा वर्णन कबीरजी आदिक महात्माओं ने भी किया है। तरवर तत्व ·····।—जैसे वृक्षों के पत्ते झड़ भी जाते हैं और फिर नये आ जाते हैं तब वृक्ष वैसा ही सरसब्ज हो जाता है, वैसे ही यह संसार स्वल्प परिवर्त्तन पाकर फिर वैसा ही रूप धारे रहता है।

यहु रसना करत पुकार पिव पिव प्यास है।
वाल्हा जैसें चातक लीन दीन उदास है ॥ २ ॥
ये श्रवन सुनन कौं वैंन धीरज ना धरैं।
वाल्हा हिरदै होइ न चैन कृपा प्रभु कब करैं ॥ ३ ॥
मेरै नख शिख तपति अपार दु ख कासौं कहौं।
जब सुन्दर आवें यार सब सुख तौ लहौं ॥ ४ ॥

(२)

मुझ वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरै विरह विवोग फिरौं वेहाल रे ॥ (टेक)
हौं निस दिन रहौं उदास तेरैं कारनैं।
मुझे विरह कसाई आइ लागा मारनें ॥ १ ॥
इस पंजर माहें पैठि विरह मरोरई।
जैसें वस्तर धोवी ऐंठि नीर निचोरई ॥ २ ॥
मैं का सनि करौं पुकार तुम विन पीव रे।
यहु विरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे ॥ ३ ॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास की।
वाल्हा तुमसौं मेरी आइ लगी है आस की ॥ ४ ॥

(३)

विरहनि है तुम दरस पियासी।
क्यौं न मिलौ मेरे पिय अविनासी ॥ (टेक)

[राग गौंड] १ ला पद—वाल्हा='वाल्हा' वा 'वाला' ऐसा शब्द गीतों में प्रत्येक अन्तरे में पादपूर्णार्थ स्त्रिया भी गाती है—'हांजी घाला'।

२ रा पद—लाल=प्यारा । लालन ।

येते दिन हौं काइ बिसारी, निस दिन झूरि मरत है नारी ॥ १ ॥
बिभचारनि हौं होती नाहीं, लै पतिव्रतहि रही मन माहीं ॥ २ ॥
तुम तौ बहुत त्रियन संग कीनौ, मैं तौ एक तुम्हहिं चित दीनौ ॥ ३ ॥
सुन्दरदास भई गति ऐसी, चातक मीन चकोर हि जैसी ॥ ४ ॥

(४)

लागी प्रीति पिया सौं सांची ।
अबहूं प्रेम मगन होइ नांची ॥ (टेक)
लोक बेद डर रह्यौ न कोई, कुल मरजाद कहे की खोई ॥ १ ॥
लाज छोडि सिर फरका डारा, अब किन हंसौ सकल संसारा ॥ २ ॥
भांवैं कोई करहु कसौटी, मेरे तनकी खोटी बोटी ॥ ३ ॥
सुन्दर जबलग संका रापै, तबलग प्रेम कहां ते चापै ॥ ४ ॥

(५)

आज दिवस धनि राम दुहाई ।
आये सन्त सकल सुखदाई ॥ (टेक)
मंगलचार भयौ आनन्दा, कमल खिलै ज्यौं देखै चन्दा ॥ १ ॥
भाव अधिक उपज्यौ जिय मेरै, तन मन धन नौछावर फेरै ॥ २ ॥
विनती जोरि करूं दोइ हाथा, बारम्बार नवांऊं माथा ॥ ३ ॥
मस्तक भाग उदै करि जाना, सुन्दर भेटे संत सयाना ॥ ४ ॥१५५॥

---

३ रा पद—काइ=काहे को । क्यों । झूरि=रो-रो कर । बिसूर-बिसूर कर ।

४ था पद—कहे की=(जंपुरी) कब के ही, बहुत समय की । फरका डारा=पल्ला वा घूंघट उतार डाला ।

५ वां पद—देखै चंदा=नील कमल चन्द्रमा की चांदनी से खिलते हैं । अथवा ऐसे खिलै जैसे पूर्ण चन्द्र होता है । मस्तक भाग उदै करि जाना=सतगुरु की प्राप्ति का होना सिर में लिखा था सिर पर सूर्य सा भाग्य का उदय हुआ । ऐसा जाना गया । सयाना=बुद्धिमान, ज्ञानी, सतगुरु ।

(१) राग नट

यह तौ एक अचम्भौ भारी।
करहु आप सिर देहु और कै, कैसी रीति तुम्हारी ॥ (टेक)
पच तत्व गुन तीन आनि कै, जुक्ति मिलाई सारी।
आपुन निर्विकार होइ बैठै, हमकौं किये विकारी ॥ १ ॥
जड की शक्ति कहा की स्वामी, देषहु दृष्टि निहारी।
हलन चलन चम्बक तैं दीसै, सुई न चलत विचारी ॥ २ ॥
माया मोह लगाई सबन कौ, मोहे नर अरु नारी।
ममता मच्छर अहकार की, पासि गरे मैं डारी ॥ ३ ॥
ठग विद्या नीकी जानत हौ, वडे चतुर व्यापारी।
हम कौं दोष न देहु गुसांई, सुन्दर कहत उघारी ॥ ४ ॥

(२)

बाजी कौंन रची मेरे प्यारे।
आपु गोपि ह्वै रहे गुसांई, जग सब ही तैं न्यारे ॥ (टेक)
ऐसौ चेटक कियौ चेटकी लोग भुलाये सारे।
नाना विधि के रङ्ग दिषावे, राते पीरे कारे ॥ १ ॥
पाष परेवा धूरि सु चावल, लुक अजन विस्तारे।
कोई जानि सकै नहिं तुमकौं, हुन्नर बहुत तुम्हारे ॥ २ ॥

[राग नट] १ ला पद—करहु आप । इस पद में ईश्वर के कर्त्ता और अकर्त्ता होने को सुन्दरता से दिखाया है। जड़माया केवल चेतन ब्रह्म के सकाश से सृष्टि रचना करती है। इस कारण वास्तव मे कर्तृत्व की शक्ति ब्रह्म ही में घटती है। परन्तु ईश्वर सिद्धांत में अकर्त्ता ही माना जाता है, निर्गुण निर्विकार होने से। यही तो विचित्रता है। व्यापारी—व्यापारी को भी ठग कहने से इन्द्रजाल का अभिप्राय है।

ब्रह्मादिक पुनि पार न पावै, मुनि जन पोजतु हारे।
साधक सिद्ध मौन गहि बैठे, पंडित कहा विचारे ॥ ३ ॥
अति अगाध अति अगम अगोचर, च्यारौं वेद पुकारे।
सुन्दर तेरी गति तू जानै, किनहु नहीं निरधारे ॥ ४ ॥

(३)

तेरी अगम गति गोपाल।
कौंन जानै यह कहा तैं कियौ ऐसौ प्याल॥ (टेक)
को कहत है करम करता, को कहत है काल।
को कहत है न को करता, सबै मारत गाल ॥ १ ॥
को कहत है ब्रह्म माया, है अनादि विसाल।
को कहत है सब सुभावै, स्वर्ग मृति पाताल ॥ २ ॥
जूवा जूवा मत वषानै जूई जूई चाल।
अति सबही कूदि थाके, मृग की सी फाल ॥ ३ ॥
वार पार कहू न दीसै, कहूं मूल न डाल।
देषि सुन्दर भये चक्रित, सब ठगे से लाल ॥ ४ ॥

(४)

देपहु, अकह प्रभू की वात।
एक वून्द उपाइ जल की, रची सातौं धात ॥ (टेक)

---

२ रा पद—पांप परेवा=पांख का पखेरू (परिंद) बना देना। धूरि चावल=मिट्टी के चांवल बना देना। ये सब बाजीगर खेल दिखाते हैं। लुक अंजन=मुरकी का काजल, जिससे आदमी गुप्त हो जाय ऐसा भी।

३ रा पद—न को कर्त्ता=अकर्त्ता। मारत गाल=बकने, जल्पना करते हैं। जूवा, जुदा,—भिन्न भिन्न। ठगे से लाल=बालक जो ठगा गया।

साजि नख सिख अति अनूपम, कियौ चेतनि गात।
जोनि द्वारै जनम पायौ, पुत्र जान्यौ मात ॥ १ ॥
पुष्टि नित प्रति होन लागौ, चलत पीवत पात।
वाल लीला रमत वहु विधि, सवन अंग सुहात ॥ २ ॥
वहुरि जोवन निरषि निज तन, कहीं ते न सँकात।
मन मनोरथ वहुत कीनें, छल छदम उतपात ॥ ३ ॥
जरा झंप्यौ सीस कप्यौ, तज्यौ सव संघात।
कहत सुन्दर मरन पायौ, जीव धौं कहा जात ॥ ४ ॥ १५६ ॥

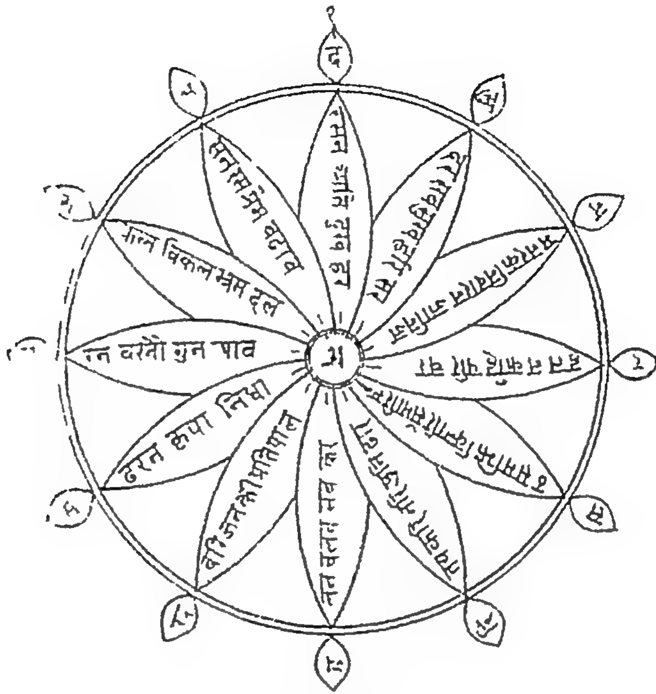
(१) राग सारंग

मेरौ पिय परदेश लुभानौ री।
जानत हौं अजहू नहि आये काहू सौं उरझानौ री ॥ (टेक)
ता दिन तें मोहि कल न परत है, जवतें कियौ पयानौ री।
भूप पियास नींद नहि आवै, चितवत होत विहानौ री ॥ १ ॥
विरह अग्नि मोहि अधिक जरावै, नेंननि मैं पहिचानौ री।
विन देषें हौं प्रान तजौंगी, यह तुम साची मानौरी ॥ २ ॥
वहुत दिनन की पथ निहारत, किनहु संदेस न आनौ री।
अव मोहि रह्यौ परत नहि सजनी, तन तें हंस उडानौ री ॥ ३ ॥
भई उदास फिरत हौ व्याकुल, छूटौ ठौर ठिकानौ री।
सुन्दर बिरहनि कौ दुख दीरघ, जो जानै सौ जानौ री ॥ ४ ॥

---

४ था पद—छदम=छद्म, कपट लीला।

[राग सारग] १ ला पद—उरझानौं=उलझा। विमला। रम गया। पयानौ=प्रयाण, गमन। विहानौ=वेहाल, व्यग्र। हंस=जीवरूपी पखेरू (उड़नेवाला है)।



कमल बन्ध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन रसन रस प्रेम बढावन ।
सकल विकल भ्रम दलन वरन बरनौ गुन पावन ॥
सुढरन कृपा निधान खबरि जन की प्रतिपालन ।
हलन चलन सब करन रितय करि भरि पुनि ढारन ॥
सठ समझि विचारि सभारि मन रहत न काहू परि चरन ।
नम नरक निवारन जानि जन सुन्दर सब सुख हरि सरन ॥

पढने की विधि

"दरसन" शब्द के 'दकार' पर १ का अङ्क है वहां से प्रारम्भ करके बाईं ओर की पखुडियों के चरणों को पढते जांय। अन्त का चरण 'सुंदर' वाली पंक्ति मे है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही मे है, अन्य मे नहीं है।

(२)

अंधे, सो दिन काहे भुलायौ रे।
या दिन गर्भे हुतौ ऊर्धे मुख, रक्त पीत लपटायौ रे ॥ (टेक)
बालपने कछु सुधि नहीं कीनी, मात पिता हुलरायौ रे।
खेलत खात गये दिन यौंही, माया मोह बंधायौ रे ॥ १ ॥
जोबन माहिं काम रस लुबधी, कामनि हाथ बिकायौ रे।
जैसें बाजीगर को बानरा, घर घर बार नचायौ रे ॥ २ ॥
तीजापन में कुटंब भयौ सब, अति अभिमान बढ़ायौ रे।
मेरी सरभरि करे न कोई, हौं बाबा कौ जायौ रे ॥ ३ ॥
बिरध भयौ सिर कंपन लागौ, मरने कौ दिन आयौ रे।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, कबहुं राम न गायौ रे ॥ ४ ॥

(३)

कौने भ्रम भूले अंधला।
अपना आप काटि कैं मूरख, आपुहि कारल रंधला ॥ (टेक)
मात पिता दारा सुत सम्पति, बहु विधि भाई बंधला।
अन्तकाल कोइ काम न आवै, फोकट फाकट धंधला ॥ १ ॥
गये बिलाइ देव अरु दाना, होते बहुतक मंधला।
तुम कहा गर्व गुमान करत हो, नख शिख लौं दुरगंधला ॥ २ ॥
या सुख मैं कछुं नाहिं भलाई, काल बिनासे कंधला।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, राम भजहु निरसंधला ॥ ३ ॥

---

२ रा पद—हुलरायौ=हालरा दिया, पलने में लटाया, हिलाया झुलाया। बार=द्वार पर, बाहर।

३ रा पद—रंधला=रंध गया, सीझ गया। 'ला' अक्षर प्रायः स्वार्थ प्रत्यय वा बहुत का बोधक है यह गुजराती भाषा का लटका दिखाता है। बंधला=बंधा। या

(४)

देषहु दुरमति या संसार की।
हरि सो हीरा छाडि हाथ तें वाधत मोट विकार की॥ (टेक)
नाना विधि के करम कमावत, पवरि नहीं सिर भार की।
झूठै सुख में भूलि रहे हैं, फूटी आपि गवार की॥ १॥
कोई षेती कोई वनजी लागे, कोई आस हथ्यार की।
अंध धंध में चहु दिशि धाये, सुधि विसरी करतार की॥ २॥
नरक जानि कैं मारग चाले, सुनि सुनि वात लवार की।
अपने हाथ गले में वाही, पासी माया जार की॥ ३॥
वारम्वार पुकार कहत हौं, सौं है सिरजनहार की।
सुन्दरदास विनस करि जैहै, देह छिनक में छार की॥ ४॥

(५)

या मैं कोऊ नहीं काहू कौ रे।
राम भजन करि लेहु वावरे, औसर काहे चूकौ रे॥ (टेक)
जिनसौं प्रीति करत है गाढी, सो मुख लावें लूकौ रे।
जारि वारि तन षेह करंगे, टेदे मूड ठरूकौ रे॥ १॥
जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूकौ रे।
एक दिना सब यौं ही जैहै, जैसैं सरवर सूकौ रे॥ २॥
अजहू वेगि संमुझि किन देषौ, यह संसार विभूकौ रे।
माया मोह छाडि करि बौरे, सरन गहौ हरिजू कौ रे॥ ३॥

बहुत भाई बन्धु। मधला=मन्दिरवाले। स्वर्ग वाले। कधला=केले के गोने की तरह वा कधर-गर्दनें तोड़कर।

४ था पद—दुरमति=दुर्मति=खोटी बुद्धि। उलटी समझ। लवार=झूठा उपदेशक वा गुरु। वाही=मारी, डाली। जार=जाल। सौं=सोगन्द, दुहाई।

प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकौं काहे न कूकौ रे।
सुन्दरदास कहै समुझावे, चेला है दादू कौ रे॥ ४॥

(६)

स्वामी पूरन ब्रह्म विराजहीं।
सदा प्रकाश रहे जिनके उर, भरम तिमिर सब भाजहीं॥ (टेक)
भाव भगति अरु प्रेम मगन अति, रोम रोम धुनि बाजहीं।
ज्ञान ध्यान सबही विधि पूरन, सकल भवन में गाजहीं॥ १॥
दीनदयाल परम सुखदाई, करत सबनि कौ काजहीं।
जिनकी महिमा जाइ न बरनी, फेरि सवारत साजहीं॥ २॥
अति अपार भवसागर तारत, हैकरि नाम जिहाजहीं।
अनाथनाथ प्रभु पार करत है, बाह गहे की लाजहीं॥ ३॥
किये प्रगट जगदीस जगत में, नाना भांति निवाजहीं।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, है सबके सिरताजहीं॥ ४॥

(७)

बलिहारी हूं उन संत की।
जिनके और झौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥ (टेक)
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देषि देषि वे मुदित होत हैं, लीला आप अनन्त की॥ १॥
जिन तें गोपि कहू कछु नाहीं, जानत आदि रु अन्त की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, रापत बात सिद्धन्त की॥ २॥

---

५ वां पद—या में=इस सृष्टि में। लूकौ=लूका फीका। ठरकौ=ठरका, कपाल क्रिया में नरिल से कपाल में ब्रह्मरध्र पर ठकोरा लगा कर माथा खोलना जिससे भेजे का दाह शीघ्र हो जाय। विम्भूका=चमका। कूकौ=पुकारो रटो।
७ वां पद—और झौर=अन्य झोड़, झगड़ा। वा उरझार, उलझन।

(८)

आये मेरे अलष पुरुष के प्यारे।

परम हंस अतिसै करि सोभित निर्मल दशा निहारे॥ (टेक)

देषत ही शीतलता उपजी मिलत सकल अघ जारे।

वचन सुनत भै भ्रम सब भागे, संसै सोक निवारे॥ १॥

चरणामृत लेत ही परम सुख, उपज्यौ आज हमारे।

शीत पाइकैं मुक्त भये हैं, काटे बन्धन सारे॥ २॥

महिमा अनंत कहां लग बरनौ, कहित कहित कहि हारे।

आप सरीपे किये तुरतही, सुन्दर पार उतारे॥ ३॥

(९)

सन्तनि जब गृह पाव धरे।

धन्य दिवस सोइ घरी महूरत, जा क्षण दृष्टि परे॥ (टेक)

अति आनन्द भयौ मन मेरै, बिगसत अंक भरे।

करि दण्डौत प्रदक्षिण दीनी, नखशिख अंग ठरे॥ १॥

बिनती बहुत करी तिन आगै, दीन वचन उचरे।

होइ प्रसन्न मन्दिर महिं आये, पावन धाम करे॥ २॥

चरण पपालि लियौ चरनौदिक, पूरब पाप गरे।

सुन्दर तिनकौ दरसन पावत, कारिज सकल सरे॥ ३॥

(१०)

करि मन उनि सन्तनि की सेवा।

जिनकै आंन भरोसा नाहीं, भजहिं निरंजन देवा॥ (टेक)

---

८ वां पद—शीत=महा प्रसाद।

९ वां पद—ठरे=ठड़े=दंडायमान हुए। पसरे।

सील सन्तोष सदा उर जिनकै, राम नाम के लेवा।
जीवन मुक्त फिरै जग महिया, उरझै की सुरझेवा॥ १॥
तिनके चरण कंवल कौ बंछत, गंगा जमुना रेवा।
सुन्दरदास उनहुं की संगति, मिलि हैं अलप अभेवा॥ २॥

(११)

राम निरञ्जन की बलिहारी।
रूप रेख कछु दृष्टि परै नहिं कौन सकै निरधारी॥ (टेक)
जाकौ कीयौ जगत नाना विधि यह माया विस्तारी।
तीकनि कोऊ कहै कहा कहि नहिं हलुका नहिं भारी॥ १॥
सब घट व्यापक अन्तरजामी चेतनि शक्ति तुम्हारी।
सुन्दर शक्ति काढि जब लीनी रूसि रहे नर नारी॥ २॥

(१२)

ऐसो यहु ज्ञान सरस गुरुदेव को, जाकै सुनत परम सुख होई।
सहज मिलै परब्रह्म कौ कष्ट कलेश न कोई॥ (टेक)
कछु संशय सोक रहै नहिं निकसि जाइ सब सालो।
ज्यों अंमृत के पीवतें अमर होइ ततकालो॥ १॥
सत संगति मिलि षेलिये जुग जुग फाग बसन्तो।
राम रसांइण पीजिये कबहुं न आवै अन्तो॥ २॥
अनहद बाजा बाजही अन्तहकरण मझारो।
कवल प्रफुल्लित होत है लागै रङ्ग अपारो॥ ३॥

---

१० वां पद—महिया=माही, अन्दर। रेवा=रेवा नदी, नर्मदा नदी। अभेवा=अखड, अद्वैत, भेद रहित।

११ वां पद—रूसि रहे···।-शक्तिहीन पुरुष को स्त्री पसन्द नहीं करती। और शक्ति रहित स्त्री को पुरुष नहीं चाहता। अर्थात् व्यर्थ निरर्थक निकम्मे हो गये।

भान उदै ज्यौ होतही अन्धकार मिटि जाये।
सुन्दर ज्ञान प्रकाशतें ब्रह्मानन्द समाये ॥ ४ ॥

(१३)

पहली हम होते छोकरा।
ब्रह्म बिचार बनिज हम कीयौ ताही तैं भये डोकरा ॥ (टेक)
भली वस्तु सचय करि रापो लेनें आवै लोकरा।
यह उधारि कौ सोदा नाहीं दीजे लीजे रोकरा ॥ १ ॥
जो कोइ गाहक लेत प्यार सौ ताकौ भागै सोकरा।
सुन्दर वस्तु सत्य यह यौंही और बात सब फोकरा ॥ २ ॥

(१४)

पहली हम होते छोहरा।
कौडो वेच पेट निठि भरते अबतौ हूये बोहरा ॥ (टेक)
दे इकोतरासई सबनि कौं ताही तैं भये सोहरा।
ऊचौ महल रच्यौ अविनाशी तज्यौ परायौ नौहरा ॥ १ ॥
हीरा लाल जवाहिर घर मैं मानिक मोती चौहरा।
कौंन बात की कमी हमारै भरि भरि राषै भौहरा ॥ २ ॥
आगै विपति सही बहुतेरी वै दिन काटे दोहरा।
सुन्दरदास आस सब पूगी मिलियौ राम मनोहरा ॥ ३ ॥

---

१३ वा पद—लोकरा=लोगबाग। लोक के पुरुष। सोकरा=शाक, दु.ख। फोकरा=तुच्छ (फोक घास जैसी रद्दी)।

१४ वा पद—इकोतरासई=एक रुपया सैंकड़ा पीछे व्याज। सोहरा=सुखी। नौहरा=मुख्य मकान के सम्बन्धी दूसरा मकान जिसमें पशु, घास आदि रक्खे जाते हैं। चौहरा=मोती की चौ बहुत कीमती। अथवा सुथरी पुई हुई चौसर मोतियों

(१) राग मलार

अब हम गये राम (जी) के सरनैं ।

वा बिन और नहीं कोइ समरथ, मेटै जामन मरनैं ॥ (टेक)

भटकत फिरे बहुत दिन ताईं कछू न पार उतरनैं ।

आन देव की सेवा करि करि, लागे बहुत हिंजरनैं ॥ १ ॥

काहू ऊपरि कियौ बहुत हठ, काहू ऊपर धरनैं ।

दीन दोष करम अपनै कौ, वै दिन यौं ही भरनैं ॥ २ ॥

औरनि की महिमा सुनि सुनि, चाले तीरथ फिरनैं ।

हम जान्यौं येई परमेश्वर, पायौ उनहु की निरनैं ॥ ३ ॥

बहुत कृपा कीनी तब सतगुरु आये कारजि करनैं ।

दियौ बताइ पुरुष वह एकै, सुन्दर का कहि बरनैं ॥ ४ ॥

(२)

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत ।

बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बेठि मलारहिं रागत ॥ (टेक)

राम नाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत ।

तन मन मांहि भई शीतलता गये विकार जुदागत ॥ १ ॥

जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशि दिन उठि उठि जागत ।

सुन्दरदास दयाल भये प्रभु, सोई दियौ जोई मांगत ॥ २ ॥

(३)

पिय मेरे वार कहा धौं लाई ।

ऋतु वसन्त मोहि वा विधि बीती, अब बरिषा ऋतु आई ॥ (टेक)

और जवाहरात की । चौलड़ी मोती की । चौगुनी । भौंहरा=तहखाना । गोदाम । दोहरा=दोरे रहकर दु खी होकर ।

[राग मलार] १ ला पद—जामन मरनैं=जन्म मरण, जन्मांतर । हिजरनैं=शोक करने, पछताने ।

बादल उमगि चले चहु दिशि तें, गरज सुनी नहिं जाई।
दामिनि दमक करेजा कम्पै, बून्द लगत दुखदाई॥ १॥
कारी रैंनि अन्धारी देषत, बारी वैस डराई।
जारी विरह पुकारी कोकिल, भारी आगि लगाई॥ २॥
दादुर मोर पपीहा पापी, लहत न पीर पराई।
ये सु जरे परि लौंन लगावत, क्यों जीऊं मेरी माई॥ ३॥
ऐसी विपति जानि प्रभु मेरी, जौ कहुं देहि दिषाई।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, मृतकहिं लेहु जिवाई॥ ४॥

(४)

हम पर पावस नृप चढि आयौ।
बादल हस्ती हवाई दामिनि, गरजि निसान बजायौ॥ (टेक)
पवन तुरङ्गम चलत चहु दिश, बून्द बान झर लायौ।
दादुर मोर पपीहा पाइक, मारै मार सुनायौ॥ १॥
दशहू दिशा आइ गढ घेर्यौ, विरहा अनल लगायौ।
जइये कहां भागि कैं सजनी, रजनी दुन्द उठायौ॥ २॥
को अब करै सहाइ हमारी, पिय परदेश हि छायौ।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, करिये कौंन उपायौ॥ ३॥

(५)

करम हिंडोलना झूलत सब संसार।
है हिंडोल अनादि कौ यह फिरत बारम्बार॥ (टेक)
दोइ षम्भ सुख दुख अडिग रोपे, भूमि माया माहिं।
मिथ्यात ममता कुमति कुदया, चारि डाडी आहिं॥

---

३ रा पद—बारी वैस=बाल अवस्था।

४ था पद—हवाई=गुब्बारा। पाइक=पैदल सिपाही।

पाप पटली पुन्य मरवा, अघो ऊरध जाहिं।
सत्व रज तम देहिं झोटा सूत्र पँचि झुलाहिं॥ १॥
तहा शब्द सपरश रूप रस मन, गन्ध वरु विस्तार।
तहा अति मनोरथ कुसम फूले, लोभ अलि गुंजार॥
चक्रवाक मोर चकोर चातक पिक ऋषीक उचार।
तरल तृष्णा वहत सरिता, मझा तीक्षण धार॥ २॥
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राख्यो, सदा करम हिंडोल।
सजि त्रिविधि रूप विकार भूपन, पहरि अगनि चोल॥
एक नृत्यत एक गावत, मिलि परस्पर लोल।
रति ताल मदन मृदग वाजत, दुन्दु दुन्दुभि ढोल॥ ३॥
यहि भाति सबही जगत झूलै, छ रुति वारह मास।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मैं, करत विविधि विलास॥
यौं झूलतें चिरकाल वीत्यौ, होत जनम विनास।
तिनि हारि कबहू नाहिं मानी, कहत सुन्दरदास॥ ४॥

(६)

ऐसो भाई ब्रह्माकाश समानं।
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड यह विशेपता जानं॥ (टेक)
दोऊ व्यापक अकल अपरमिति दोऊ सदा अखंड।
दोऊ लिपैं छिपैं कछु नाहीं पूरन सब ब्रह्मण्ड॥ १॥

---

५ वां पद—इस पदमें कर्म बन्धन को हिंडोले से रूपक बाधा है। इस प्रकार का वर्णन अन्य महात्माओं ने भी किया है। सूत्र=रस्सी। तीन गुण (तंतु वा तार) से बनी है। अलि=भौंरा। चक्रवाक=चकवा पक्षी। ऋषीक=ऋषि पुत्र। वा ऋष्यक=हिरन। (यह शब्द किस प्रयोजन से दिया गया है सो स्पष्ट नहीं होता है। स्यात् लेख दोष हो)। लोल=लटके से खेल करते हुए वा चचल। वा लालची। दुंदु=द्वद्व, द्वैत भाव। सुखदु खादि।

ब्रह्म मांहिं यह जगत देषियत ब्यौम मांहि घन यौहीं।
जगत अभ्र उपजैं अरु बिनसैं वैहैं ज्यौ के त्यौ हीं ॥ २ ॥
दोऊ अक्षय अरु अबिनाशी दृष्टि मुष्टि नहिं आवैं।
दोऊ नित्य निरतर कहिये यह उपमान बतावैं ॥ ३ ॥
यह तौ येक दिषाई है रुष, भ्रम मति भूलहु कोई।
सुन्दर कंचन तुलै लोह संग, तौ कहा सरभरि होई ॥ ४ ॥

(१) राग काफी

इन फाग सबनि कौ घर पौयौ, हो।
अहो हो, कहत पुकारि पुकारि ॥ (टेक)
सुनि सुनि लीला कृष्ण की हो, दूनौ उपज्यौ काम।
बूडे काली धार मैं हो, कतहू नहिं विश्राम ॥ १ ॥
पडित पैडौ मारियौ हो, कहि कहि ग्रन्थ पुरान।
सूतौ सर्प जगाइयौ हो, फिरि फिरि लागौ पान ॥ २ ॥
पहलैं आगि बरै हुती हो, पूला नाष्यौ आइ।
रोगी कौ रोगी मिलै तौ, व्याधि कहा तैं जाइ ॥ ३ ॥
माया ऐसी मोहनी हो, मोहे है सब कोइ।
ब्रह्मा विष्णु महेस की हो, घर घरनी भइ सोइ ॥ ४ ॥
चन्दवदन मृगलोचनी हो, कहत सकल ससार।
कामिनि बिष की बेलडी हो, नख शिख भरी विकार ॥ ५ ॥
देषत ही सब परत हैं हो, नरक कुड के माहिं।
या नारी के नेह सौं हो, वेगि रसातलि जाहिं ॥ ६ ॥

---

६ ठा पद—इसमें आकाश से ब्रह्म की तुलना की है। आकाश से ब्रह्म की सूक्ष्मता, व्यापकता आदि बताये हैं। "ख ब्रह्म" इस श्रुति वाक्य से (ख) आकाश को ब्रह्म से सादृश्य है।

नारी घट दीपग भयौ हो, ता मैं रूप प्रकाश।
आइ परे निकसे नहीं, करत सबनि कौ नाश ॥ ७ ॥
जरि जरि मुये पतंग ज्यौं हो, गये जन्म कौ खोइ।
सुन्दरदास कहा कहै हो, सत कहै सब कोइ ॥ ८ ॥

(२)

मेरे मीत सलौने साजना हो।
अहो तुम, काहे न दरसन देहु ॥ (टेक)
आयौ फाग सुहावनौ हो, सब कोई करत सिंगार।
मेरी छतिया दौं जरै हो कबहु न बुझत अगार ॥ १ ॥
अपन अपन घर घर कामनि, पेलत पिय की जोर।
देषि देषि सुख और सषिन कौ, कटत करेजा मोर ॥ २ ॥
चोवा चन्दन केसरि कुम कुम, उडत गुलाल अबीर।
हो तुम बिन मेरे प्रान पियारे, कैसे कें राषो धीर ॥ ३ ॥
बाजत चङ्ग उपंग पषावज, राइ गिरगिरी ढोल।
सुनि सुनि बिरहनि के मन महिया, सालत तब के बोल ॥ ४ ॥
बार बार मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल एक।
कहि जु गये ते बेगि मिलन की, बीते दिवस अनेक ॥ ५ ॥
तुम जिनि जानौ है बिभचारनि, हौं पतिवरता नारि।
और पुरुष भईया सब मेरे, यह तुम लेहु विचारि ॥ ६ ॥
सुरति कोकिला रसना चातक, पिव पिव करत बिहाइ।
नैन चकोर भये मेरे प्यारे, निश दिन निरषत जाइ ॥ ७ ॥
अब मोहि दोष कछू नहि लागै, सुनियौ दोऊ कान।
सुन्दर बिरहनि कहत पुकारै, तुरत तजौंगी प्रान ॥ ८ ॥

[राग काफी] १ ला पद—घर घरनी=पत्नी, स्त्री। २ रा पद—दौं=अग्नि।

(३)

मोहि फाग पिया विन दुख भयौ हो ।
अहो हौं कैसी करौं कत जाउ ॥ (टेक)
जब हौं देषौं उडत गुलाल हिं, केसरि की झकझोरि ।
तबहिं सु मेरै आगि लगत है, हियरे मैं उठत मरोरि ॥ १ ॥
जब हौ सुन्यौ झिंझ डफ बाजत, बीना ताल मृदग ।
तबहिं सु बिरह बान मोहि मारै, वेधत नख शिख अग ॥ २ ॥
कै हौ जाइ परौ गिरवर तैं, कैव कूप धस दैंव ।
कै हौं तलफि तलफि तन त्यागौं, कै सिर करवत लैंव ॥ ३ ॥
है कोउ पथिक* संदेस हमारौ, प्रीतम सौं कहै जाइ ।
सुन्दर बिरहनि प्रान तजत है, वेगि मिलहु किन आइ ॥ ४ ॥

(४)

रमइया मेरा साहिवा हो ।
अहो मैं सेवग पिजमतिगार ॥ (टेक)
पाव पलौटौं पंषा ढोलौ, निस दिन रहौ हजूरि ।
जौ फुरमावौ सो करि आऊ, कबहुं न भाजौं मैं दूरि ॥ १ ॥
जो पहिरावौ सोई पहिरौ, जो तुम देहु सु षाउ ।
द्वार तुम्हारौ कबहु न छाडौं अनत कहू नहिं जाउ ॥ २ ॥
तुम्हरे घरके पाले पोसे, तुमही लिये मुलाइ+ ।
ज्यौं जानै त्यौं राषि गुसाईं, उजर कियौ नहिं जाइ ॥ ३ ॥

जोर=जोड़, जोड़ी बनकर । राइ गिरगिरी=एक प्रकार की सारगी या बड़ा चिकारा । बोल=बाजा, दोष=आत्मघात का पाप ।

३ रा पद—झिंझ=झाँझ । दैंव=देवैं । लैंव=लेवौं । * मूललि० पु० मे 'पथक' पाठ है जो लेख दोष ही जानैं ।

औ रीझहु तौ इतनौ दीज्यौ, लेउ तुम्हारौ नाम।
और कछू अब मागत नाहीं, सुन्दरदास गुलाम॥ ४॥

(५)

पिय खेलहु फाग सुहावनौ हो।
अहो यह आयौ है फागुन मास॥ (टेक)
ज्ञान गुलाल करौ नाना विधि, तन मन केसरि घोरि।
चित चन्दन लै छिरकौं ललना, जौ न चलौ मुख मोरि॥ १॥
अनहद शब्द झाँझि डफ बाजै, ताल मृदंग उपंग।
सुमिति पिचक ले धाऊ ललना, भरहिं परस्पर अंग॥ २॥
उततैं तुम इततैं हम होइ करि, मांझ करहिं झकझोर।
देखें अबहि कवनकौ जीतै, बहुत करत तुम सोर॥ ३॥
हम हैं पंच पचीस सहेली, तुम जु अकेले राइ।
चहुं दिशातैं पकरि रापिहैं, कैसैं कै जाहु छुडाइ॥ ४॥
जोरावर तुम अधिक सुने हो, बहुतनि पै गये भागि।
तौ जानौं जौ अबहि छूटि हौ, लपटि रहौ गर लागि॥ ५॥
अबहिं सु मेरौ दाव बन्यौ है, गारी देत हौं तोहि।
और और त्रिय के संग राते, बिसरि गये कहा मोहि॥ ६॥

४ था पद—खिजमतिगार=(फा०) खिदमतगार=नोकर, सेवक। +'मुलाइ'=भुलाइ, बेला पुचकार कर बच्चों की तरह रक्खे। यह लेख दोष से भ का म लिखा गया ऐसा प्रतीत होता है, क्यों कि 'मुलाइ' का कुछ अर्थ नहीं होता है (?)। परंतु व्यापारियों की बोली में 'मुलाई करना' सोदा करना, मोल लेना देना करना कहा जाता है। इस पर से 'लिये मुलाइ' का अर्थ 'मोल लिये' ऐसा हो सकता है। यह अर्थ वा० रघुनाथप्रसादजी सिंहाणिया से हमे ज्ञात हुआ तदर्थ धन्यवाद। यही अर्थ उत्तम और संगत है। इस अर्थ को लेने से 'मुलाइ' पाठ

माइ न बाप कुटंब नहिं तुम्हरै, निगुसार्ये हो नाहु।
समय जानिकै हसि बोलत हौं, जिनि कछु जियहि रिसाहु॥ ७॥
फगुवा हमसु कछू नहिं लैहैं, तुमहि न दैहैं जान।
सुन्दर नारि छाडिहैं कैसैं, हो हो कत सुजान॥ ८॥

(६)

हरि आप अपरछन ह्वै रहे हो।
ताहि लिपै छिपै कछु नाहिं॥ (टेक)
ॐकार की आदि दै हौ और सकल ब्रह्मण्ड।
पेलत माया मोहनी हो सप्त दीप नौ षड॥ १॥
ब्रह्मा सावत्री मिले हो विष्णु लक्ष्मी सग।
शकर गौरि प्रसिद्ध है हो ये माया के रग॥ २॥
नाना विधि ह्वै विस्तरी हो पेलन लागी फाग।
ब्रह्म न काहू मिलन दे हो रोकि रही सब माग॥ ३॥
माया जडसु कहा करै हो प्रेरक औरै कोइ।
ज्यौं बाजीगर पूतली हो हाथ नचावै सोइ॥ ४॥
लोक चेष्टा करत हैं हो सूरज कै जु प्रकास।
ताहि कछू व्यापै नहीं हो हरप सोक दुख त्रास॥ ५॥

ठीक है और 'भुलाइ' बनाना आवश्यक नहीं रहता है। इस अर्थ की सहायता से 'शब्दसागर कोष' में 'मोलाई' शब्द मिल गया जिसका अर्थ माल पूछना वा वा तै करना है। (सं०)

५ वां पद—पिचक=पिचकारी। निगुसार्ये=बिन धणी गुसांई वाला। नाहु=नाह, नाथ। सुदर नारि=सुदरदास नाम की नारी। अथवा रूपवती नारी, स्त्री। जो तुम्हैं नहीं छोड़ैगी। अथवा ऐसी सुदरी नारी को फिर तुम क्यों छोड़ोगे अर्थात् सदा ही अपनी कर रक्खोगे।

अहंकार कौ धर्म है हो तबलग जीव प्रमांन।
अंधकार तब भागि है हो जब सु उदै होइ भान॥ ६॥
जीव सीव अंतर इहै हो देषहु प्रगट हि नैंन।
जर्ग ज्लनैं ऊपजै हो तरग बुद्बुदा फेंन॥ ७॥
परमारथ करि देषिये तौ है सब ब्रह्म विलास।
कहन सुनन कौं दूसरौ हो गावत सुन्दरदास॥ ८॥

(७)

बहुतक दिवस भये मेरे समरथ साईया।
कोऊ कागर हू न पठाइ सदेस सुनाईया॥ (टेक)
पथ निहारत जाइ उपाइ किये घने।
मोहि असन बसन न सुहाइ तजे सुख आपने॥ १॥
कल न परत पल एक नहीं जक जीयरा।
यह मकि गई सब देह भया मुख पीयरा॥ २॥
भूष न प्यास उदास फिरौं निस वासरा।
इन नैंन न आवत नींद नहीं कछु आसरा॥ ३॥
दूभर रैनि विहाइ रहौं क्यौं एकली।
मैं छाडे सकल सिंगार लई गलि मेषली॥ ४॥
चन्दन पौंरि तजीर भस्म लगाई है।
कछु तेल फुलेल न सीस जटा सु बढाई है॥ ५॥
जोगनि होइ रही जग मोहन कारनै।
तुम काहे न दरसन देहु करौं तन वारनै॥ ६॥

---

६ ठा पद—ऊँकार की आदि दै ।—"ओंकार थे ऊपजै । पहली कीया आपथैं उतपति ओंकार। ओंकार थैं ऊपजै पचतत्त आकार। . । (दादू वाणी। अग २२)।

मेरौ पून पता अब कौंन कहौं किन रावरे।
तेरी सूरति की वलि जाउं मेरे गृह आवरे॥ ७॥
सुन्दर विरहनि के पीव गहर न लाइये।
मोहि मिहरि मया करि देगि दरस दिषाइये॥ ८॥

(८)

तूही तूही तूही तूही तूही तूही सांई।
क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही दरस दिषाई॥ (टेक)
पीव पीव पीव पीव रसना पुकारै।
रटत रटत तोहि कवहू न हारैं॥ १॥
निस दिन नख शिख रोम रोम टेरैं।
पल पल छिन छिन नैंन मग हेरैं॥ २॥
सोचि सोचि ससकत सास उसासा।
धपि धपि उठत रगत अरु मासा॥ ३॥
वार वार सुन्दर विरहनी सुनावै।
हाइ हाइ हाइ तुम्ह मिहर न आवै॥ ४॥

(९)

पीव हमारा, मोहि पियारा,
कब देषौगी मेरा प्रान अधारा॥ (टेक)

---

७ वां पद—कागर=कागज़ (फा०)। गलि=गले में। सेपली=साधुओं के पहनने का छोटा चोकोरा वस्त्र जिसको बीच में से कटा या खुला रखकर गले मे डाल लेते हैं जिससे अग ढक जाय। तजीर=तज दी, और। अथवा तजीर=तजतेही तुरत। (भस्म लगाली)। गहर=गाढ़ी, कड़ापन।

८ वां पद—धपि धपि=जल कर, या धड़क २ कर।

जे सपी ईहे अदेसा, पायौ न सदेसा।
नाह तें चिरमि रहे परदेसा॥ १॥
ये सपि फिरौ उदासा, भूप न प्यासा।
कब पुरवेंगे मेरे मन की आसा॥ २॥
ये सपि विरह सतावै, नींद न आवै।
कठिन कठिन करि रैंनि विहावै॥ ३॥
जे सपि अजहु न आया, किन विरमाया।
सुन्दर विरहनि अति दुख पाया॥ ४॥

(१०)

आज तौ सुन्यौ है माई सदेसौ पिया को।
प्रफुलित भयौ मेरौ कवल हिया को॥ (टेक)
करोंगी सिंगार घसि चन्दन लगाऊ।
सेजरी सवारूं तहा फूलरे विछाऊ॥ १॥
मेरौ गृह आइ मोहिं देहिंगे सुहागा।
पेलोंगी परसपर वडे मेरे भागा॥ २॥
परम पुरुप मेरा पीव अविनासी।
देपोंगी नेंन भरि सव सुख रासी॥ ३॥
जन्म सुफल करि लेउंगी मैं लाहा।
सुन्दर विरहनि कें भयौ है उछाहा॥ ४॥

(११)

पूव तेरा नूर यारा पूव तेरे वाइकें।
काहे न निहाल करौ दरस दिपाइकें॥ (टेक)

---

९ वां पद—विहावै=निकलै, कटै।

१० वां पद—फूलरे=फूल (प्यार का शब्द फूलरे है।)। लाहा=लाभ।

तेरे काज चली हौ तौ पलक हसाइ कैं।
ढूढत फिरत पिय कहां रहे छाइकैं॥ १॥
इश्क लिया है मेरा तन मन ताइकैं।
कल न परत मुझ बिन देषें राइकैं॥ २॥
मिहरि करहु अब लेहु अंग लाइकैं।
निस दिन रहौ साईं नैंननि समाइकैं॥ ३॥
जानत तुम हि सब कहू क्या बनाइकें।
हिलि मिलि सुख दीजै सुंदर कौं आइकें॥ ४॥

(१२)

महबूब सलौनै मैं तुझ काज दिवाना।
आसिक कौं दीदार दै मेरा देषि दरद सुविहाना॥ (टेक)
इसक आगि अति परजली अब जारत तन मन प्राना।
निस दिन नींद न आवई इन नैंन तुम्हारौ ध्याना॥ १॥
यह दुनिया सब फीकी लगी अरु फीका जुमल जिहाना।
सुन्दर तेरे नूर कौ कब देषैगा रहिमाना॥ २॥

(१३)

सहज सुन्नि का पेला अभि अन्तरि मेला।
अबिगति नाथ निरंजना तहां आपै आप अकेला॥ (टेक)
यह मन तहा बिलमाइये गहि ज्ञान गुरू का चेला।
काल करम लागै नहीं तहा रहिये सदा सुहेला॥ १॥

---

११ वां पद—यारा=हे यार ! हे प्यारे !।

१२ वां पद—सुविहाना=हे सुबहान ! (अ०) हे ईश्वर !। जुमल=(अ०) जुमला, सारा। रहिमाना=हे रहमान (अ०) रहमतका करनेवाला, दीनदयाल परमात्मा।

परम जोति जहा जगमगै अरु शब्द अनाहद मेला।
मन मकल पहुंचै तहा जन सुन्दर वाही गैला ॥ २ ॥

(१४)

अलप निरजन थीरा कोई जानै वीरा।
कृत्तम का सब नाश है अजर अमर हरि हीरा ॥ (टेक)
सुन्नि सरोवर भरि रह्या तहा आपै निरमल नीरा ।
वार पार दीसै नहीं कहुं नाहीं तट न तीरा ॥ १ ॥
कछु रूप वरण जाके नहीं वह स्वेत स्याम नहि पीरा ।
ता साहिब कै वारनै यह सुन्दरदास फकीरा ॥२॥१६४॥

(१) राग ऐराक

लालन मेरा लाडिला तू मुझ बहुत पियारा ।
रापौं रे नैननि वाहिकै पलक न पोलौं किवारा ॥ (टेक)
सूरति रे तेरी पूव है नूर न वरन्या जाई ।
ताकै सब कोई सामुहा दिठि जिनि लागै माई ॥ १ ॥
वानी रे तेरी मोहिनी मोह्या सकल जिहाना ।
पीर पैकंवर औलिया ये सब भये है दिवाना ॥ २ ॥
मैं भी रे तेरी आसिकी तू महबूब रे सांई ।
वलि वलि तेरे नूर की तुझ परि घोलि गुसाई ॥ ३ ॥

---

१३ वा पद—अभिअतर=अभ्यतर=बहुत ही अदर, अतरात्मा में। मेला=समागम, ब्रह्म की प्राप्ति। सुहेला=आनद मे। सुखी।

१४ वा पद—थीरा=स्थिर वा अचल हृदय हो जाने पर वहा विराजमान हुआ। कृत्तम=कृत्रिम, वनावटी माया।

कीरति रे तेरी मैं सुनी तीन्यौ लोक मंझारा।
आया रे बन्दा बन्दगी सुन्दरदास विचारा ॥ ४ ॥

(२)

ढोलन रे मेरा भावता मिलि मुझ आइ सवेरा।
जिय तरसै दीदार कौ कब मुख देपो तेरा ॥ (टेक)
जोवन रे मेरा जात है ज्यौं अजुरी का पानी।
हौ तलफौ तुझ कारनै तैं मेरी एक न जानी ॥ १ ॥
अन्दरि रे साई मेरडै पैठा इसक दिवाना।
भाहि लगी इस पिंजरै जारत नख शिख प्राना ॥ २ ॥
निस दिन रे पन्थ निहारतें नैंना भये हैं उदासा।
कल न परत पल एक हू मुझ दरसन की प्यासा ॥ ३ ॥
अबहिन रे ऐसी बूझिये बात विचारहु येहा।
सुन्दर विरहनि यौं कहै वोर निवाहौ नेहा ॥ ४ ॥

(३)

प्रीतम रे मेरा एक तू और न दूजा कोई।
गुप्त भया किस कारनै काहे न परगट होई ॥ (टेक)
हृदै रे मेरै तू वसै रसना नाम तुम्हारा।
श्रवनहु तेरे गुन सुनौ नैंनहु पीव पियारा ॥ १ ॥
नख शिख रे तूही रमि रह्या रोम रोम घट सारै।
मन मनसा मैं तू वसै छिन छिन सुरति सभारै ॥ २ ॥

[राग ऐराक] १ ला पद—दिठि=नजर,बुरी दृष्टि। घोलि=घुल कर वारी जाऊ।
२ रा पद—मेरडै=(पं०) मेरे। भाहि=दाह, अग्नि। पिंजरै=शरीर में।
अवहि न =अवतक भी मेरी सुध नहीं ली। यह वात विचारने योग्य है, वड़ा अफसोस है।

व्यापक रे तीनौं लोक मैं जल थल अग्नि मझारी।
पवन अकाश जहा तहा सब मैं सिफति तुम्हारी ॥ ३ ॥
हम तुम रे अतरि क्यौं भया यह मोहि अचिरज आवै।
बार बार करि वीनती सुन्दरदास सुनावै ॥ ४ ॥

(४)

रामा रे सिरजनहार का सौ मैं निस दिन गाऊं।
करजोरें विनती करौं क्यौं ही जौ दरसन पाऊं ॥ (टेक)
उतपति रे साई तैं किया प्रथम हि वो ओंकारा।
तिसतें तीन्यौं गुन भये पीछैं पच पसारा ॥ १ ॥
तिनका रे यह औजूद है सो तैं महल बनाया।
नव दरवाजे साजि कैं दसवें कपाट लगाया ॥ २ ॥
आपन रे बैठा गोपि ह्वै व्यापक सब घट माहीं।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहीं ॥ ३ ॥
ऐसी रे तेरी साहिबी सो तू ही भल जानैं।
सिफति तुम्हारी साइया सुन्दरदास बपानैं ॥ ४ ॥१९८॥

(१) राग सकराभरन

मन कौन सौं जाइ अटक्यौ रे।
ऐसैं बंध्यौ छोरयौ न छूटै कैउक घरिया भटक्यौ रे ॥ (टेक)
जाही दिश तू भ्रमतौ ही आयौ ताही दिश कौं लटक्यौ रे ॥ १ ॥

---

३ रा पद—रसना=जिव्हा पर। सिफति=(अ०) सिफत=गुण। अतरि= अतर, फर्क, भेद।

४ था पद—रासा=यशगान। लड़ाई की ख्याति। दशवें=भृकुटी के मध्य तीसरा नेत्र। अथवा ब्रह्मरध्र।

भूलि रह्यौ विषया सुख माहीं याही तें निश दिन भटक्यौ रे ॥ २ ॥
गुरु साधन कौ कह्यौ न मानै बहु विधि करि उनि हटक्यौ रे ॥ ३ ॥
सुन्दर मंत्र न लागत कोई माया सापनि गटक्यौ रे ॥ ४ ॥

(२)

मन कौन सौं लगि भूल्यौ रे।
इन्द्रिनि के सुख देषत नीके जैसें सेंवरि फूल्यौ रे ॥ (टेक)
दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥
झूठी माया है कछु नाहीं मृग तृष्णा मैं भूल्यौ रे ॥ २ ॥
जित जित फिरै भटकतौ यौंही जसैं वायु वघूल्यौं रे ॥ ३ ॥
सुन्दर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर मैं डूल्यौ रे ॥ ४ ॥२००॥

(१)　　　　राग धनाश्री

आवौ मिलहु रे संत जना हो हो होरी।
सब मिलि पेलहु फाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥
राम नाम गुन गाइये रङ्ग हो हो होरी।
देषहु मोटे भाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥ (टेक)
काया कलश भराइये रङ्ग हो हो होरी।
प्रेम प्रीति घसि घोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥
सहज सील सत अरगजा रङ्ग हो हो होरी।
भाव भगति झकझोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥ १ ॥

[राग सकराभरन] १ ला पद—साधन=साधुओं। मंत्र=गारुडी मंत्र। गटक्यौ=खाया। काटा।

२ रा पद—सैंवरि=सैंमल का फूल निर्गंध होता है वैसे ही विषय भोग तुच्छ है।

ज्ञान गुलाल उडाइये रङ्ग हो हो होरी।
सुमति पिचक कर लेहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
भरहु परसपर आतमा रंग हो हो होरी।
हरि जस गारी देहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ २॥
शब्द अनाहद बाजहीं रङ्ग हो हो होरी।
बीना ताल मृदग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
रोम रोम सुख ऊपजै रङ्ग हो हो होरी।
पेल मच्यौ सत सग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ३॥
अमी महा रस पीजिये रङ्ग हो हो होरी।
पूरणब्रह्म विलास रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
मतिवाले सब साधवा रङ्ग हो हो होरी।
माते सुन्दरदास रगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ४॥

(२)

मींया हर्दम हर्दम रे अपने साईं को संभाल।
मुसलमान ईमान रापिलै करद हाथ तें डाल॥ (टेक)
सुनि यह सीप पुकार कहत हौं मिहरवानगी पाल।
सब अरवाहैं सिरजी साहिब किसकी काटत पाल॥ १॥
पांच सात मिलि पकै सहनक ह्वै बैठे बेहाल।
मुरदा षाइ भये तुम मोमिन कीया कहत हलाल॥ २॥
ये जु तुम्हारे काजी मुलना झूठे मारत गाल।
अपनै स्वारथ तुमहिं बतावैं उनकौ दोजग हाल॥ ३॥

[राग धनाश्री] १ ला पद—रगनि=बहुत से रसरग प्रेम भक्ति ज्ञान के हैं उनमें रग कर, मस्त होकर। भरहु परसपर आतमा=आत्मारूपी रग भरा जल पिचकारी मे भरो। मतिवाले=मतवाले, मस्त। अथवा सुमति धारण करनेवाले, बुद्धिमान, ज्ञानी।

इला इलाहि इलला की सब घट मैं बरत मसाल।
कलमा का तुम भेद न पाया फूटा करम कपाल॥ ४॥
यह तो महमद ना फुरमाया जो तुम पकरी चाल।
कीया पून तुम्हारी गरदनि ह्वै हैं बुरा हवाल॥ ५॥
मादर पिदर पिसर बिरादर झूठ मुलक सब माल।
इनमे काहे जरत दिवाने देषि अग्नि की झाल॥ ६॥
अजहू समझ तरस करि जिय मैं छाडि सकल जजाल।
करि दिल पाक पाक मैं मिलि है नियरै आवत काल॥ ७॥
साई सेती साटि मिलावै सोई पूछ दलाल।
सुन्दरदास अरस के ऊपरि रहै धनी कै नाळ॥ ८॥

(३)

हौं तौ तेरी हिकमति की कुरवान मौले साईं वे।
सकल जिहान किया पुनि न्यारा वह गति किनहू न पाई वे (टेक)
शेष मसाइक पीर अवलिया वहु बंदगी कराई वे।
कुदरति कौन कहै तू ऐसा हेरत गये हिराई वे॥ १॥

---

२ रा पद—हर्दम=(फा०) हर=प्रत्येक, दम=स्वास। स्वास स्वास में भगवान को याद कर। करद=छुरी। अरवाहै=(अ०) रूह (आत्मा) का बहुवचन। सब जीव। पकै सहनक=हडिया में मांस पकाया। मोमिन=(अ०) ईमानदार। हलाल=कलमा को पढ़कर मुसलमान बकरे या पशु को काटते हैं उसे हलाल करना कहते हैं। दोजग=दोजख=नरक (फा०)। इलाइला। मुसलमानों का कलमा नामक मत्र—"लाइलाहे लिल्लिा मोहम्मद रसूलिलाहे'। (नहीं है कोई पूजने योग्य सिवाय परमेश्वर के और मोहम्मद उसका पैगम्बर है, उसके हुक्मों को ससार में पहुचाने वाला हरकारा है)। किया पून=जो षून किया सो (तुम्हारी गर्दन पर है, अर्थात् इसका दंड भगवान तुम्हें देगा)। तरस=दया। साटि=मेल। अरस=आकाश, स्वर्ग। नाल=(पं०) पास।

सुर नर मुनि जन सिध अरु साधक शिव बिरंचि उन ताई वे।
उनमनि ध्यान रहत निस वासर वै भी कहत डराई वे ॥ २ ॥
अति हैरान भये सब कोई तेरी पनह रहाई वे।
मुझ गरीब की क्या गमि येती सुंदर बलि बलि जाई वे ॥ ३ ॥

(४)

साई तेरे बंदों की बलिहारी।
सुहबति रहै परम सुख उपजै बातैं कहत तुम्हारी ॥ (टेक)
चलतैं फिरतैं जागत सोवत दरदवद अति भारी।
दुनिया सौं फारिक ह्वै बैठे राह गही कछु न्यारी ॥ १ ॥
निर्मल ज्ञान ध्यान पुनि निर्मल निर्मल दृष्टि उघारी।
निर्मल नाव जपत निसवासर निर्मल गति मति मारी॥ २ ॥
अपना आप करत नहिं परगट ऐसैं बडे विचारी।
सुन्दरदास रहैं क्यों छाने जिनकै घट उजियारी ॥ ३ ॥

(५)

अहो हरि देहु दरस अरस परस तरसत मोहि जाई।
प्रान त्याग होन लाग मिलिहौ कब आई॥ (टेक)
फिरत हौ उदास वास आस एक तेरी।
निस वासर कल न परत देहु दादि मेरी ॥ १ ॥
अति बियोग लिये जोग भोग काहि भावै।
तुही तुही मन माहिं जपत और न कहि आवै ॥ २ ॥
तात मात बंधू सुत तजी लोक लाजा।
तुम बिना सुख और सकल मेरे किहिं काजा ॥ ३ ॥

---

३ रा पद—कुरबान=न्योछावर, बलिहारी। मौला=स्वामी। कुदरति=क्या कुदरत, क्या मजाल है किसी की। पनह=पनाह (फा०), शरण।

४ था पद—सुहबति=(अ०) सतसग। दरदवद=दर्दमद, विरह कातर।

प्रभु दयाल कहियत हौ सकल अँतरजामी।
काहे न सँभाल करहु सुन्दर के स्वांमी॥ ४॥

(६)

सजन सनेहिया छाइ रहे परदेश।
बालापन जोवन गयौ पडुर हूवा केस॥ (टेक)
मेरे मन मैं और थी तुम कछु ठानी और।
तुम करि हौ सोई सही मेरी झूठी दौर॥ १॥
मैं जान्यौ औसर भलौ पीय मिलहिंगे आइ।
तेरे कछु भायें नहीं तलफि तलफि जिय जाइ॥ २॥
मैं अबला अति ही दुखी तुम समर्थ सब बात।
जब सुदृष्टि करि देपिहौ तब मेरै कुसरात॥ ३॥
मै चातक पिय पिय करौ तुम जलधर जलदानि।
सुन्दर विरहनि यो कहैं प्यास बुझावौ आनि॥ ४॥

(७)

हरि निरमोहिया कहा रहे करि बास।
पहलैं प्रीति लगाइकैं अब क्यौं भये उदास॥ (टेक)
लाड लडाये बहुत ही हौंस पुजाई कोडि।
बनिजारा की आगि ज्यौं गये बलती छोडि॥ १॥
पलक घरी जुग जात है क्यू करि राषौ प्रान।
मैं जानौं संगही रहौं तुम यह तौरी तान॥ २॥

---

५ वां पद—प्रान त्याग हौंन लाग=प्राणों का त्याग होने लग गया है। देहु दाद=पुकार सुन। वास=भूका। कहियत=कहाये जाते हो।

६ ठा पद—पडुर=सफेद। (बुढ़ापा छा गया तब)। भायें=भावैं=परवाह। कुसरात=कुशलात, खैरसल्लाह, सुखीपना।

बीति गये दिन बहुत ही अतरजामी राइ।
कै तुम आवौ आपनें कै तुम लेहु बुलाइ ॥ ३ ॥
अबतौ ऐसो क्यौं बनें प्यारे प्रीतम लाल।
सुदर विरहनि यौं कहै दरसन देहु दयाल ॥ ४ ॥

(८)

हरि हम जाणिया, है हरि हम हीं माहिं।
जौ बाहर कौं देषिये, तो कछु दूजा नांहिं ॥ (टेक)
जौ हम इहा बैठे रहैं तौ वह नाहीं दूरि।
जौ शत जोजन जाइये तौ उंहऊ भरपूरि ॥ १ ॥
शेष नाग वैकुठ लौं जहा लगे ब्रह्म ड।
वह हरि उहऊते परै इहा परै नहिं पड ॥ २ ॥
यौही वेदन मैं कह्यौ यौही भाषहिं सत।
यौं जाणैं विन ह्वै नहीं जनम मरन कौ अत ॥ ३ ॥
जाकौ अनुभौ होइ है सोई जानै जान।
सुन्दर याही समुझि है याही आतम ज्ञान ॥ ४ ॥

(९)

ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्यौ ठहराइ।
और कछू न भयौ हुतौ भ्रम उपज्यौ थौ आइ ॥ (टेक)
ज्यौं अन्धियारो रैनि मैं कल्पि लियौ रजु व्याल।
जब नीकैं करि देषियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥

---

७ वां पद—कोडि=कोटि, बहुतसी। तौरी तांन=खतम काम कर दिया, जिराली ही ठानी। झटक कर मेरे ध्यान से निकल गये।

८ वा पद—उहऊ=वहां भी वही। पड=खड, टुकड़ा अर्थात् उसका विभाग नहीं वह अखण्ड है।

ज्यौं सुपनै नृप रंक ह्वै भूलि गयौ निज रूप।
जागि पर्‍यौ जब स्वप्न तें भयौ भूप कौ भूप॥ २॥
ज्यौं फिरतें फिरतौ दसै जगत सकल ही ताहि।
फिरत रह्यौ जब बैठिकैं तब कछु फिरत न आहि॥ ३॥
सुन्दर और न ह्वै गयौ भ्रम तें जान्यौं आन।
अब सुन्दर सुन्दर भयौ सुन्दर उपज्यौ ज्ञान॥ ४॥

(१०)

(सस्कृतमय)

दृश्यते वृक्ष एक अति चित्रं।
ऊर्द्ध मूलमधोमुख शाखा जंगम द्रुम श्रृणु मित्रं॥ (टेक)
चतुर्विंश तत्वभिर्निर्मितं वाच यस्य दलानि।
अन्योऽन्य वासनोद्भव तस्य तरो: कुसुमानि॥ १॥
सुख दु:खानि फलानि अनेकं नानास्वादन पूतं।
तत्रात्मा विहंगम तिष्ठति सुन्दर साक्षीभूतं॥ २॥

---

९ वां पद—आन=अन्य, दूसरा, आप से भिन्न, द्वैतभाव। सुन्दर भयौ= निज रूप प्राप्त हुआ। वा शुद्ध सच्चिदानन्द रूप की प्राप्ति हुई।

१० वां पद—सस्कृत भाषामय पद है। दृश्यते=दिखाई देता है। चित्र= विचित्र, अद्भुत। ऊर्द्धमूलम्=उसकी जड़ ऊपर को है। अधोमुखशाखा= डालियां नीचे की ओर हैं। वाच यस्य दलानि=(छदासि यस्य पर्णानि—गीता) वचन उसके पत्ते हैं। जगम द्रुम=चलता हुआ वृक्ष। श्रृणु मित्र=हे मित्र सुनो। चतुर्विंश तत्वभिर्निर्मित=चौबीस तत्वों से बना हुआ है। अन्योऽन्यवास-नोद्भव (मद्भुतानि वा)=नाना प्रकार की वासनाओं से उत्पन्न हुए। तस्य तरोः कुसुमानि=उस वृक्ष के पुष्प हैं। सुखदु:खानि फलानि=सुख दु:ख आदिक द्वंद्व उसके फल हैं। अनेक=अनेक। नानास्वादन पूत=नाना प्रकार के उन फलों में स्वाद भरे हैं (पूत=पूर्त)। तत्रात्मा विहंगम तिष्ठति=वहां आत्मारूपी पक्षी

(११)

(सस्कृतमय)

क गतन्निजपरविभ्रमभेदं ।
यन्नानात्वं दृश्यते पूर्वमधुना रूप ममेदं ॥ (टेक)
यथा शरीरे अग पृथग्नहि ज्ञानकर्मकरणानि ।
तथा अहं व्यापक परिपूर्ण' स चराचर सर्वाणि ॥ १ ॥
यथा सागरे भगवुद्बुदा उत्पद्यन्तेऽनंताः ।
तथा विश्वमयि अह विश्वमयि सुदर मध्याद्यंता. ॥ २ ॥

(१२)

(आरती)

आरती परब्रह्म की कीजै ।
और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥ टेक)
गगन मंडल मैं आरती साजी, शब्द अनाहद झालरि बाजी ॥ १ ॥
दीपक ज्ञान भया प्रकासा, सेवग ठाडे स्वामी पासा ॥ २ ॥

बैठा हुआ है । सुदर साक्षीभूत=सुदरदासजी कहते हैं कि, वह पक्षी साक्षीभूत होकर बैठा है । यह वृक्ष का रूपक इस शरीर पर घटाया गया है । इसका ही वर्णन गीता के अ० १५ । श्लो० १–३ मे है । वहां विश्ववृक्ष कहा है ।

११ वां पद—क्वगत=कहां गया । निजपरविभ्रमभेद=अपना पराया आप और दूसरा ऐसा भ्रम भरा भेद (द्वैतभाव) । यन्नानात्व दृश्यते पूर्वं=जो इस ब्रह्म ज्ञान से पहिले नानात्व भेद दिखाई देता था वह (मिट गया)—न रहकर, अधुनारूप ममेद=अब मेरा निज आत्मस्वरूप हो गया है । यथा ..करणानि=शरीर से उसके अग पृथक् नहीं और ज्ञान, कर्म और कारण पृथक नहीं वैसे ही—तथा सर्वाणि= वैसे ही मुझ व्यापक में सर्व चराचर व्यापते हैं । यथा ऽनता =समुद्र मे जैसे बुद्बुदे बनते बिगड़ते हैं । तथा . यन्ता=वैसे ही मैं विश्व में और विश्व मुझ में आदि मध्य और अत पाता है ।

अति उछाह अति मगल चारा, अति सुख विलसै वारंवारा ॥ ३ ॥
सुन्दर आरती सुन्दर देवा, सुन्दरदास करै तहा सेवा ॥ ४ ॥

(१३)

आरती कैसैं करौ गुसांई ।
तुमहीं व्यापि रहे सब ठाईं ॥ (टेक)
तुमहीं कुभ नीर तुम देवा, तुमही कहियत अलष अमेवा ॥ १ ॥
तुमहीं दीपक धूप अनूप, तुमही घटा नाद स्वरूपं ॥ २ ॥
तुमहीं पाती पहुप प्रकासा, तुमही ठाकुर तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमहीं जल थल पावक पौंना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौंना ॥ ४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित पद समाप्त सर्वपद संख्या २१३

---

१२ वां पद—[आरती] निर्गुण उपासना में यह परापूजा का विधान है जिसका एक अङ्ग आरती (आरात्तिक—नीराजन) भी है। मानसिक पूजा की विधि वेदांत के आचार्यों ने भी लिखी है। शकराचार्य आदि के रचे विधान प्रस्तुत हैं। आरती में घंटा, शंख, दीपक आदि की आवश्यकता होती है। दीपक के स्थानापन्न ज्ञानरूपी दीपक है। घटा, झालर आदि के शब्दों के स्थानापन्न अनाहत नाद है। अपरोक्षता का भाव है जिसमें सेव्य सेवक की एकता प्रदर्शित है। ब्रह्मानद की प्राप्ति ही अति उछाह है। इस आरती की सुदरता प्रत्येक अङ्ग में विद्यमान है इसही से सबही सुदर है। निर्गुण उपासक महात्माओं ने सबही ने आरतिया कहीं हैं। कबीरजी, नानकजी, रैदासजी, नामदेवजी, दादूजी और दादूजी के अन्य शिष्यों ने भी आरतियां कथन की हैं। तुलसीदासजी ने तो रामायणजी तक की आरती लिखी है, यद्यपि वे सगुण उपासक थे।

१३ वां पद—इस दूसरी आरती में तो परमात्मा (सेव्यदेव) को सर्वव्यापी कहकर आरती की प्रत्येक सोंज में बता दिया है। यह गहरा अद्वैत भाव है। यहां तो कोई रत्ती भर भी अवकाश नहीं रक्खा है। पूर्ण एकता और कैवल्य है ॥ इति ॥

॥+॥ पदों की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥+॥

फुटकर काव्य

अथ फुटकर काव्य

॥ अथ चौबोला ॥*

दोहा

पीपरदेसैं गवन करि वरवट गये रिसाइ।
परामपी मो रोवना साल रिदै नहिं जाइ ॥ १ ॥

---

* इन छदादिका क्रम कुछ तो (क) मूल पुस्तक से और कुछ (ख) खुली पुस्तक से और शेष क्रम की सगति से रखा गया है। (क) पुस्तक मे "चौबोला, गूढार्थ, "पद" की समाप्ति के आगे पाने २५४॥ से २५६ तक हैं।

छद १—(इन छदों में गूढ़ अर्थ के निमित्त शब्दो मे श्लेष प्राय रक्खा है और चार नाम प्रत्येक दोहे में से निकलते हैं। कही शब्दों को विच्छिन्न करने से, कहीं यतिभंग से, कहीं शब्द में न्यूनाधिक करने से अर्थ निकलता है।)—पी=पीव, प्रियतम। परदेसैं=दिसावर। दूसरा अर्थ—पीपरदा=पीपलदा एक कस्बा राज्य जयपुर में है। वरवट=वड़ का वृक्ष। दूसरा अर्थ गाव का नाम। रिसाइ= रूसकर, अप्रसन्न होकर। परा सपी=हे सखी ! पड़ गया। मो रोवना=मुझको रोना (विलाप करना)। दूसरा अर्थ—परास गाव का नाम। मोरो—मोर गांव का नाम, टोडे रायसिंह के पास जहा सुन्दरदास जी का एक स्थान भी है। साल-रिदै=साल, कसक, दु ख का खटका। रिदै=हृदय दिल मे। दूसरा अर्थ=साल-रदै—सालरदह=गांव का नाम।

वहे रावरे कौंन दिशि आव रापि मन मोर।
हररैं हररैं जिनि फिरहु करहु कृपा की कोर॥ २॥
जभी रीस तुम करत हौ सदा फरक दै जात।
अनारपनौं कौनैं वद्यौ करुणा नेंकु न गात॥ ३॥
मैंथी अपने माइ कै सगा मिल्या मोहि द्वार।
करौं जीव नौछावरी धना गई वलिहार॥ ४॥

छंद २—वहे रावरे=वहेडा (औषधि)। दूसरा अर्थ—रावरे=राज (आपके, प्यारे के (हाथी घोड़े लश्कर) किस दिशा (तरफ) वहे, गये। आंव रापि=आवला (औषधि)। दूसरा अर्थ—आवो मेरा मन रक्खो—अर्थात् दिशावर से पधार कर मेरे मन की शांति करो। हररैं=हरड़ै (औषधि)। दूसरा अर्थ—इधर उधर (मुझे छोड़ कर)। अध्यात्म में इन दोनों छदों का ब्रह्म सम्बन्ध मे अर्थ स्पष्ट ही है। भगवद्भक्ति के अभाव से वा आत्मध्यान के न होने से मन को महा क्लेश होता है। त्रिफला संकेत त्रिगुण का है। त्रिगुण में न फँसकर मन को परमात्मतत्व में लीन करने के निमित्त प्रार्थना है कि मुझ पर ऐसी कृपा करो कि चित्त विषयों में न जाय।

छंद ३—जभी=जवही। रीस=गुस्सा, रोस। सदा=हृदय, सर्वदा। आवाज़। फरक दै जात=फड़कने लग जाय। दूसरा अर्थ—जभीरी=झभीरी (फल)। सदा-फर=सदाफल, सीताफल (फल)। श्रीफल। धीस। अनारपनौं=अनाड़ीपन, चतुराई का न होना। करुणा=दया। दूसरा अर्थ—अनार (फल)। करुणा (फल)।

छद ४—मैं थी=मैं (अपनी) माँ के (मय के, पीहर) गई थी। दूसरा अर्थ—मेथी (साग)। सगा मिल्या=प्यारा मुझे मिल गया। दूसरा अर्थ=साग (शाक)। करौं जीव नौछावरी=मैं अपने प्राणों को (प्यारे पर) न्योछावर (अर्पण) कर दू। दूसरा अर्थ=कलौंजी, वा करोंदा। धना गई=धन (तन, मन धन) को वार फेर भगवदर्पण कर दिया। दूसरा अर्थ=धनिया (साग, मसाला)।

सूठिक चूकौ तू धनी पी परिहरि किम जाइ।
अज मौ इनि दीधौ विरह वचन सँभालौ आइ ॥ ५ ॥
चपा कदे न पाव मैं जुही तिहारं हेज।
जाही विधि तुम अब कहौ जाइ विछाऊं सेज ॥ ६ ॥
केत कीन मैं वीनती केव राखि हौं चित्त।
सेव तीनि विधि करत हौं कुज कली के मित्त ॥ ७ ॥

अध्यात्म में अर्थ निकल रहा है कि माइ, माया में मैं फँसा था। परन्तु भगवान तो मुझे गुरू के बताये द्वार (रास्ते) से प्राप्त हो गये। उन प्रियतम परमात्मा पर मेरे प्राणों को मिटा दू। धन्य धन्य मैं बलिहार जाऊ कि मेरा ऐसा भाग्य उदय हुआ, गुरू कृपा से। -

छद ५—सू (स्यू—गुजराती) ठिक (ठिगाकर) चूकौ (चूकते हो)। हे धनी तू ! हे पी (पीव-पीतम) ! तू हम दीनजनों को परिहरि (छिटका कर) किम (क्यों) जाइ=जाता है। हमारे अपराध से प्रभू ! आप हमें निराधार न छिटकाइये !। दूसरा अर्थ—सूठि=सुठि (औषधि)। चूकौ=चूका (खट्टा साग)। पीपरि=पीपल (औषधि)। अज (आज वा अब भी) मौ (मुझे) इनि (इन्होने, प्यारे ने) दीधौ (दिया)। वचन सँभालो आइ=मिलने के कौल करार को मेरे पास आकर निभावो। दूसरा अर्थ—अजमोइ=अजवाइन वा अज-मोद (औषधि) सँभालो=समालू (वातहर्त्ता औषधि)।

छद ६—चपा=१ चांपे, दबाये। जुही १—जो रही। हेज=प्रेम। २ चपा (सुगध वृक्ष फूल)। जुही २=जूही (सुगध वृक्ष गाछ फूल)। —जाही (वृक्ष विशेष), जाइ (जया कुसुम, चमेली) ये चार निकले।

छद ७—केत=कितनी। केतकी=केतकी (सुगध पौधा पुष्प)। केव=खेकर, निरतर। केवरा=केवड़ा (सुगध पौधा पुष्प)। सेव=सेवा। तीनि-विधि=त्रिविधि, तन, मन, धन वा मन बुद्धिचित्त से वा भक्ति ज्ञान वराग्य से। सेवती=सुगध पुष्प। कुजकली=कुंजगली। कुज=सुगध पुष्प। यों चार नाम निकले।

रत नहिं दोसै तोर चित्त मो तीषो मन आहि।
लालन यहु दुख बहुत है मानि कह्यौ मिलि चाहि ॥ ८ ॥
गौरी मेरौ पीव तजि पर्‌यौ कानरा बोल।
कैसैं होत कल्यान अब रूठौ नाह हिंडोल ॥ ९ ॥
सूहौ मुहि साई करी धना सीस सिरताज।
आशा पूरइ जीव की राम गरीब निवाज ॥ १० ॥
दुवा तिहारी लेखही कलमष रहे न कोइ।
काग दशा सब मिटि गई लेष कर्म यौ होइ ॥ ११ ॥

छद ८—रत=अनुरक्त। मो तीषो=मेरा तीव्र (मन) आहि=है। रतन=रत्न। मोती=मुक्ता, मोती। लालन—हे लालन, प्यारे, लाडले ! मानि कह्यौ=कहना मानू। लाल=लाल, रत्न। मानिक=माणिक्य। ये नाम निकले।

छन्द ९—गौरी मेरो —हे गौरी सखी ! मेरा पीतम मुझे तजि गया। कान में ऐसा असह्य बचन पड़ा, सुना। अब कुशल नहीं जब नाह (नाथ) हिंडोले पर से या हिंडोले की ऋतु में रूस गया। गौरी, कानड़ा, कल्याण, हिंडोल इन रागों के नाम निकलते हैं।

छन्द १०—सूहौ मुहि मेरे स्वामी ने मेरे सुहाती मेरे ऊपर कृपा करी। मैं धन्य हू सबका सिरताज हो गया मेरा सीस (भगवतचरणों में नत होकर) धन्य हुआ। आशा पूरइ . —भगवान दीनबन्धु हैं, इस क्षुद्र जीवन की आशा को पूर्ण कर दी। इसमें से सूहा (राग) धनासी (धनाश्री राग)। आशा (आसा राग)। पूरइ (पूरिवा, वा पूर्वी राग)। रामगरी (रामश्री राग) ये नाम निकलते हैं।

छन्द ११—दुवा तिहारी —दुवा=दुआ, शुभाशीस। कलमष=पाप। काग-दशा=कागले की सी अर्थात बुरी दशा, स्थिती। कर्म का लिखा, भाग्य का भोग। इसमें से—दुवाति (दवात स्याही की), कलम (लेखनी), कागद (कागज, पत्र), लेखक (लिखनेवाला) ये चार शब्द निकले।

मारू मन कौं पटकि कैं केदारा सू प्रीति।
नट बाजी भूलौं नहीं भैरव रापौं जीति॥ १२॥
बलकल वोढें का भयौ का बिलमाहिं रहाइ।
का समीर साधन किये लाहो नूर दिपाइ॥ १३॥
आगरा सु मम पीव है दिलि मैं और न कोइ।
पट नारी तातें भई राजमहल मैं सोइ॥ १४॥

छन्द १२—मारू मन ..—मन को मारु (एकाग्र कर लू)। के दारा सू—स्त्री से प्रेम क्यों किया? नटबाजी (नटकला, फुरती से कर्म फन्द से निकलने की कला), भैरव—भैरव समान बलवान मन को जीत कर, वश मे लाकर। इसमें से—मारू (राग), केदारा (राग), नट (नटनारायण राग), भैरव (भैरव राग), ये चार नाम निकले।

छन्द १३—बलकल —बलक्ल (वृक्ष की छाल, भोजपत्र का ओढन) वोढै (पहनने से)। बिल (गुफा, मठ) में घुस रहने से। समीर (पवन) के साधने (प्राणायाम प्रत्याहारादि करने से)। लाहो (लाभ, परम लाभ की प्राप्ति)—आत्म साक्षात्कार, नूर (तेज, प्रकाश) दिखाइ=दिखाई देने से, दर्शण ज्योतिस्वरुप के होने से। सच्चा फल मिल सकता है। उसकी प्राप्ति के बिना अन्य क्रियाए वृथा है। इसमें से बलख (बलख बुखारा नगर), काबिल (काबुल शहर), कासमीर=कश्मीर नगर। लाहोर (शहर)—ये चार नाम निकलते हैं। (नोट—लाही नूर में नू का लोप करना पड़ता है, वा नूर को नगर का बिकृतरुप मान लें)।

छन्द १४—आगरा —मेरा पीतम आ गया वा घर में आ गया है (गरां=घरां, घर में)। दिलि में=मेरे दिल मे वही बस रहा है अन्य कुछ नहीं है। मैं मेरे राजा (पति) के महल (स्थान) मे आनन्द मे रहती हू इससे पटनारी (मुख्य, प्यारी सुहागिनी—वा पटराणी) बन गई हू। भगवान् की अत्यन्त कृपापात्र बन गई अर्थात् मुझे ब्रह्म साक्षात्कार से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई है। इस दोहे में से—आगरा (शहर), दिली (दिल्ली शहर), पटना (शहर), राजमहल (बगाल

काशी लागा वहुत ही गया और ही वाट।
अजो ध्यान अब करत हौं तिरवेनी के घाट॥ १५॥
कुरुपेत कौनि दान तू हरिद्वार तव जाइ।
बदरी तासौं क्यौं रहै सुर सरीर मैं न्हाइ॥ १६॥
थरौ लीपि का कीजिये शिवहार हि पय पान।
वहर वलाइन समझई वौरी नैक न ज्ञान॥ १७॥

॥ इति चौवोला ॥ १ ॥

का शहर जिसे जयपुर के महाराज मानसिंहजी ने वहां की विजय करके आवाद किया था। जयपुर राज्य के परगने टोडे में भी एक राजमहल करवा बनास नदी पर सुन्दर वसा है।)—ये चार नाम निकले।

छन्द १५—काशी .—तू अन्य वाट (बुरे रास्ते, मार्ग) जाकर क्या तू शील व्रत (यति व्रत=ब्रह्मचर्य आदि उत्तम मार्ग में) प्रवृत्त क्यों नहीं हुआ ? अजो (अजू=तल्लीन) ध्यान अव करता हू। इडा पिंगला सुषुम्नारूपी नाडी नदियों के स्थान में साधनशील होकर। इस दोहे मे से चार नाम निकलते हैं—काशी, गया, अयोध्या, त्रिवेणी (प्रयाग) तीर्थ।

छद १६—कुरु पेत कौ —हे नदान मूर्ख ! तू कुरु=कर। पेत=क्षेत्र जो काया, उसको उत्तम कर्मों से शुद्ध कर ले। तव तू हरि (परमात्मा) के द्वार (धाम को) जायगा। ता (उस) प्रीतम ब्रह्म से तू क्यों वदला हुआ (वद्दिल वा वेदिल) रहता है ? सुर जो देवता उनका सा शरीर (काया) न्हाय (पाकर) भी। अथवा शरीर में सुर (स्वर) का साधनरूपी इडा पिंगला नदियों में (नाडियों के स्थानों में) साधनशील होकर भी।—इस दोहे में ये चार नाम निकलते हैं—कुरुक्षेत्र हरिद्वार, वदरीनाथ, सुरसरी (गगा)।

छद १७—थरौ लीपि .—थड़ा जो शरीर उसके शृंगार और लड़ाने से क्या प्रयोजन। इसको पालने से वैसाही फल है जैसा कि शिवहार=शिव के गले का हार, सर्प जो है उसको दूध पिलाना। "पय पान भुजगानां केवल विषवर्द्धनम्"। अथवा

॥ अथ गूढार्थ ॥

दोहा

शिव चाहत है आपनो विधि नीके करि धारि।
विष्णु इहै निशि दिन रटै व्याप न शील विचारि॥ १॥

थड़ा=चौका लीप पोतने की आवश्यकता (साधुओं और यतियों को) नहीं है, क्योंकि उनका कल्याणकारी अहार दूध है। बहर=बहिर बाहर के विषयादिक बलाए हैं, अनिष्टकारी हैं। हे बावली तुमको ज्ञान नहीं है। इस दोहे में से चार नाम निकलते हैं—थड़ौली (गांव का नाम), शिवदार (सिवार—राजावतों का ठिकाना), बहर—बहरगंवड़ा (गाव सवाई माधोपुर राज्य जयपुर में), बौरी—बौंली (कस्बा तहसील—राज्य जयपुर में)।

इति चौबोला की सुन्दरानन्दी टीका।

गूढार्थ—दोनों कविता प्रकरण "चौबोला गूढार्थ" एक ही शीर्षक में भी लेते हैं। पूर्व प्रकरण मे चार २ शब्द वा नाम निकलते हैं और उनके साथ दूसरे अर्थ भी। परन्तु इस उत्तार प्रकरण में इन दोहो मे ऐसा नहीं है। इस कारण इसको पृथक् रक्खा है। यह भी अन्तर्लापिका का एक भेद है। शब्दालंकार में अर्थालंकार की भी झलक है। अध्यात्म अर्थ स्पष्ट ही निकलता है।

१ म छंद - १ अर्थ—शिव=कल्याण। विधि=क्रिया, विधान, साधन, अभ्यास। विष्णु=(विसन) व्यसन। "विद्या व्यसनम् व्यसनम् हरिनाम केवलम् व्यसनम्"। अपने जीवन का उद्देश्य नित्य निरंतर रटना और ध्यान। २ अर्थ—शिव=महादेव। विधि=ब्रह्मा। विष्णु=विष्णु भगवान, नारायण। ये तीनों देव तीनों गुणों—तम, रज, सत—के सृष्टि क्रम में प्रधान स्वरूप माया विशिष्ट ब्रह्म के हैं। तीनों गुणो से अतीत वा परे होने को केवल शील (सत्कर्म) के विचारते रहने से ही इस अवस्था (तुरीया) में व्यापकता नहीं प्राप्त हो सकती है। अतर्मुखी होकर अंतरात्मा का साक्षात्कार ही व्यापकता दे सकता है।

वासुदेव हित छाडिकैं प्रद्युम्नहि मन दीन्ह।
अनिरुद्धहि कीयौ सदा सकर्षण नहिं कीन्ह॥ २॥
राम लक्ष्मन शत्रुघन भरत जानि करि प्रीति।
सीता शान्ति सदा रहै यह सन्तन की रीति॥ ३॥
हनूमान कू जानि कैं सुग्रीवहि रटि राम।
बालि कनक तौरै श्रवन अगद कौनैं काम॥ ४॥

२ रा छद—१ ला अर्थ—वासुदेव=परमात्मा। प्रद्युम्न=काम, विषयादि की कामना। अनिरुद्ध=बेरोक, स्वतन्त्र, यथेच्छ अनर्गल प्रवृत्ति से। सकर्षण=सयम, विषयादि से मन को खैंचना।—२ रा अर्थ—वासुदेव=श्रीकृष्ण। प्रद्युम्न=श्रीकृष्ण के पुत्र। अनिरुद्ध=श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के बेटे। सकर्षण=बलरामजी, श्रीकृष्ण के बड़े भाई। यॆ चारों पवित्र नाम एक साथ आये हैं। इनमें से उक्त प्रथम अर्थ निकलता है।

३ रा दोहा—पहिला अर्थ—शत्रुओं का—(काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का) घन (समूह) इस शरीर वा अन्त करण में भरत (भरता हुआ, अन्दर प्रवेश करता हुआ) जानकर, प्रीति (भक्ति, तल्लीनता) का लक्ष्य राम (परमात्मा) में सीता (पिरोने से, पूर्ण ओत प्रोत लगा देने से) शांति (परमानद उत्तम अवस्था) सदा रहती है वा रखते हैं। सतन (परमात्मा के प्यारे भक्त साधु जनों) की यही रीति (प्रक्रिया वा विधि) है।—दूसरा अर्थ—राम=रामचन्द्रजी। लक्ष्मन=रामचन्द्र के तीसरे छोटे भाई। शत्रुघन=रामचन्द्र के चौथे छोटे भाई। भरत=रामचन्द्र के दूसरे छोटे भाई। सीता=जानकीजी, रामचन्द्रजी की राणी। ये पाच नाम निकलते हैं, इनही द्वारा उक्त अर्थ भासमान होता है।

४—जानिके=यह जान करके, अथवा ज्ञान प्राप्त कर लेने की अवस्थामें मान (अभिमान, अहकार) को हनू (मारू अर्थात् आपामार गुणातीत हो जाऊं) और सुग्रीवहि (अच्छे गले वा रागसे अथवा सुघरता से) राम (परमात्मा) को निरन्तर रटि (भजता रहू)। वह अगद (आभूषण) कनक बालि (सोने की

जन सोइ जायगा दिल किया सुदर

चौकी वध

॥ चामर छन्द ॥ दरस ते उसका नाव दिल मे इस्क उपजै दरद ।
दरदवद पुकार करते होइ सब सो फरद ॥
दर फकीरी (मे) फिरत फाग्कि जानि सोई मरद ।
दर मजल सोइ जायगा दिल किया सुन्दर सरद ॥४॥

इसके पढने की विधि ।

चित्र काव्य के चित्र क मध्य मे 'द' अक्षर से प्रारभ करके 'तें' अक्षर को कूट तक पढ कर उसके आगे पार्श्व मे 'उसका' से लगाकर 'जैं' तक पढ कर अदर का 'दरद' शब्द पढ़ें । यो एक चरण प्रथम का हो गया । अब इसही मध्यस्थ 'द' से प्रारभ कर फिर उलटा 'दरद' शब्द को पढकर दूसरे पार्श्व मे के 'वंद' से 'सो' तक पढते हुए अदर के 'फरद' शब्द को पढ़ें । यहा दूसरा चरण हो चुका । फिर वैसे ही उस मध्य के 'द' से पार्श्व तीसरे के 'कीरी' आदि को पढते हुए कोने के 'ई' को पढ कर अदर के 'मरद' शब्द को पढ़ें । यो तीसरा चरण हो गया । अन्त मे फिर उसही मध्यवर्त्ती 'द' से पार्श्व चौथे के शब्दो को पढ़ते हुए 'सुन्दर सरद' पर अन्दर छन्द को समाप्त करैं । चौथा चरण हो गया ॥

त्यागी माया देवकी कियौ जसोमति हेत।
पिव अमी रस गोपिका कान्ह मिले कुरु पेत ॥ ५ ॥
राम राम रटिवौ करहु रामा रमा निवारि।
धमे धाम में प्रगट है काम काम कौ मारि ॥ ६ ॥

वाली कान मे पहनने की) किस काम की जिससे कान ही टूटने लग जाय। यहां शरीर और उसके विषयानन्द से अभिप्राय है, कि इस विषयलोलुपता का आनन्द वास्तव में आत्मा का परम शत्रु अहितकारी है। इससे उल्टी हानि होती है—अधोगति और नरक निवास हो जाता है। अतः त्यागने योग्य है।—दूसरा अर्थ—हनुमान, जानकी, सुग्रीव, वाली, अंगद—ये नाम निकलते हैं स्पष्ट ही जिनके अन्दर से उक्त अर्थ आता है।

५—[illegible] (परमात्मा) की माया (त्रिगुणात्मक प्रकृति) को त्यागो (जीत ली) और जसोमति (शुद्ध बुद्धि से) जैसा भी परमोत्कृष्ट हेत (प्रेम-पराभक्तिभाव) किया। गोपिका (अन्तरात्मा मे—भ्रमर गुफा मे छिपा) प्रेम (पराभक्ति) का अमीरस (अमृत—ब्रह्मानन्द) को पान करे, मग्न हो जाय। क्योंकि कुरुपेत (धर्म का [illegible]) पवित्र अन्त करण—मना हृदय जो है, उसमे कान्ह (कृष्ण-परमात्मा) मिले (प्राप्त हुए)। दूसरा अर्थ—इसमें माया (वसुदेव की कन्या), देवकी (वसुदेव की रानी, कृष्णजी की जननी)। जसोमति=यशोदा कृष्णजी को पालन करनेवाली माता। गोपिका। कान्ह। कुरुक्षेत्र। ये नाम स्पष्ट खुलते हैं। श्रीकृष्ण ने अपनी जननी देवकी को छोड़कर गोकुल वृन्दावन में जसोदाजी को माता जान प्रेम किया। वहां बसने से यह फल अधिक हुआ कि गोप गोपिकाओं को पराभक्ति मिली। वे प्रेम की धजा फहराई। कुरुखेत या प्रभासक्षेत्र में बिछुड़े कृष्ण फिर मिले।

६—अर्थ स्पष्ट ही है—रामनाम बारबार भजते रहो। रमा (लक्ष्मी, धनधाम) या लोभ को। रमा (स्त्री, कामिनी, काम) को निवारि (तजकर)। धाम धाम (घट घट) में परमात्मा की सत्ता चेतनरूप से अवभासित होती है। काम (कामदेव, विषय) और काम (कर्म) को मारि (निवृत्त) या त्याग कर।

गो पर गो चारत फिर्यौ गोरस पोयौ मन्द ।
गोरपनाथ न ह्वै सक्यौ गोबिन्द गह्यौ न चन्द ॥ ७ ॥
बार बार गणिवौ कियौ बार गई सब बीति ।
बार बार क्यौं फिरत है बार बार मन जीति ॥ ८ ॥
अर्क हि त्यागै जानि कैं चन्दन जाकै पास ।
ता राजा के सग है नभ में कियौ निवास ॥ ९ ॥

७—गो इद्रियों का चार (व्यवहार) ही करता रहा और भटकता फिरा । गोरस (ब्रह्मानन्द वा ज्ञान का आनन्द) खो दिया, हे मदबुद्धि मूर्ख ! । योग की क्रियांए करता रहा परन्तु श्रीगुरु गोरक्षनाथ की सी सिद्धिया प्राप्त नहीं कर सका । गोविंद (परत्मात्मा) की प्राप्ति भी नहीं हो सकी और न चन्द (चन्द्रमा की सी शीतलतामय शांति ही) पा सका । वा कोरी गायें ही चराता फिरा उनसे दुग्ध पाकर गोरस की प्राप्ति कर नहीं सका । गो (गाय को रख, पाल करके) रख कर भी उनका नाथ (स्वामी) अर्थात् गोपाल (भगवद्भक्त) नहीं हो सका । गो (इद्रिय) का विंद स्वामी मन गह्यौ (वश) में नहीं कर सका । और न चन्द (परमात्मारूपी सूर्य से प्रकाश पानेवाला जीवात्मा चांद) को ही ध्यान, योग वा भक्ति से परमात्मा मे (उसके चरणों में) गह्यौ (लीन कर सका) ।

८—वार बार (वारु वार, वेर वेर में) द्रव्य को मुद्राओं को गिण गिण कर, धन संग्रह किया । इसही में वार (समय, आयु) वीत गई । वार वार (द्वार द्वार, घर घर, मत मतांतरों में) क्यों भटकता है । मन को प्रत्येक समय निरतर वहिर्मुखता वा विषयों से निकाल कर अन्तर्मुख करके जोति (वशकर, एकाग्र करता रह) ।

९—जिसके पास चदन है वह पुरुष अर्क (आकड़े, मदार) को त्याग देता है । आत्मानन्दरूपी चन्दन के सामने विषयानन्द आकड़ा सदृश कटु है । जिस राजा (परमेश्वर) के सग (सामीप्य मोक्ष) प्राप्त किया जो नभ (गगन मडल-शून्य लोक-अनतता) में निवास कियो (प्रविष्ट है) सर्व व्यापक है । दूसरा अर्थ—

अग्नि बाण करि चौगुनें लक्षण एकहु नाहिं।
अनुड्वान सो जानिये संमुझि देषि मन माहिं॥ १०॥
मिश्री निद्रा पंडसुत चतु रक्षर त्रय नाम।
पीयें आयें अरु मिलें सुख ह्वै आठौ जाम॥ ११॥
ऋषी करण वसुदेव सुत इनके अर्थ हिं जानि।
तीन नाम तिनमैं प्रगट चतुरक्षर पहिचानि॥ १२॥
रामार्पण सब करत हैं कृष्णार्पण नहिं कोइ।
कृष्णार्पण कृष्ण हिं मिलै रामार्पण घर षोइ॥ १३॥
रामा षाइ रवि पुत्र की तर जो ह्वै पर नारि।
दास रहै सो दुःख मैं तीनौं उलटि बिचारि॥ १४॥

अर्क=सूर्य। चंद=चन्द्रमा। तारा=नक्षत्र। नभ=आकाश मंडल। ये शब्द ज्योतिष सम्बन्धी इसमें से निकलते हैं।—

१० वा दोहा-अग्नि=१ एक। बाण=पांच ५। १+५=६। ६ के चौगुने=२४ चौबीस। चौबीस लक्षण में से एक भी जिस पुरुष मे न हो, वह पुरुष अनुड्वान=बैल है, मूर्ख है।

११—मिश्री पिये (मीठा पोने से) निद्रा लिये (सर्वरोग हरी निद्रा, गहरी नींद से) पंडसुत=युधिष्ठिर=धर्म—धर्म मिले (धर्म की प्राप्ति से)। (इन चार २ अक्षर वाले शब्दों के अभिप्राय से सुख होवै।

१२—ऋषी=ज्ञानी। करण=दानी। वसुदेवसुत=कृष्ण=योगी।

१३—रामा=स्त्री (इससे स्थूल प्रेम-विषय वासना) के अर्थ सब (लौकिक) धन संग्रह करते हैं। स्त्री पुत्रादि में मोह कर सर्वस्व खोते हैं। परन्तु कृष्ण (परमात्मा) के अर्थ दानादि, ध्यान, ज्ञान नहीं करते। प्रथम से अनिष्ट, द्वितीय से इष्ट की प्राप्ति है।

१४—रमा का उलटा—मार। रविपुत्र=यम। तर का उलटा=रत, अनुरक्त, आसक्त। दास का उलटा सदा।

रसु सोई अमृत पिवै रन सोई जिह ज्ञान।
शुप सोई जौ बुद्धि विन तीनौ उलटे जान॥ १५॥
तारी वाजै कुभ ज्यौं पैरा गर्व गुमांन।
लैवौ मिथ्या राति दिन लाभ न होइ निदांन॥ १६॥
तरक बुराई बहुत विधि हैरिप माया जाल।
नरम होइ पल एक मैं करन जाइ तत्काल॥ १७॥
मरा मना भजिवौ करौ गरा षदो नहिं कोइ।
ईसो धूसा जानिये हूका पैलि न सोइ॥ १८॥
नयराना व्यापक सकल रकारानि सव ठौर।
वदेसुवा सव मैं वसै मीनानघ सिर मौर॥ १९॥
नाकरिये नहि मागते कछून लागत दाम।
रैमांनै जु त्रिषा वुझै पी पाणी विश्राम॥ २०॥

---

१५ वां दोहा—रसु का सुलटा—सुर, देवता। रन का सुलटा—नर, मनुष्य। शुप का सुलटा—पशु, मूर्ख।

१६ वां दोहा—तारी का सुलटा—रीता। पैरा का सुलटा—राखै। लैवौ का सुलटा—वौलै।

१७—तरक का सुलटा—करत। हैरिप का सुलटा, परि है। नरम का सुलटा, मरन है। करन का सुलटा, नरक।

१८—मरा मना का सुलटा—नाम राम—राम नाम। गराषदो का सुलटा—दोष राग=राग दोष। ईसो धूसा का सुलटा—साधू सोई। हूका पैलि का सुलटा—लिपै काहू—काहू (न) लिपै।

१९—नयराना का सुलटा—नारायण। रकारानि का सुलटा—निराकार। वदे सुवा का सुलटा—वासुदेव। मीनानघ का सुलटा—घननामी। जिसके वहुत नाम हों। अनत गुणवाला।

कर्म काटि न्यारा भया बीसौं बिस्वा संत।
रमैं रैनि दिन राम सौं जीवे ज्यौं भगवंत ॥ २१ ॥
नाम हृदै निश दिन सुनै मगन रहै सब जांम।
देषै पूरन ब्रह्म कौं वही एक विश्राम ॥ २२ ॥

॥ इति गूढार्थ ॥ २ ॥

॥ अथ आद्यक्षरी ॥❀

दोहा

स्वा ति बून्द चातक रटै, मी न नीर बिन छीन ॥
दा दू जीयौ रामहित, दू सर भाव न कीन ॥ १ ॥
स मदृष्टि सब आतमा, त्य क्त किये गुण देह ॥
क र्म काट आगै नहीं, रि दै विचार सु येह ॥ २ ॥

२०—२१—२२—दोहों में कोई विशेष टीकायोग्य गूढार्थ नहीं दिखाई देता है।

॥ इति गूढार्थ की सुन्दरानन्दी टीका ॥

❀ इन आठ दोहों में आठ अक्षरों का यह दोहा स्वा० सु० दा० जी ने इस ढंग से दिया है कि एक २ अक्षर, एक २ दोहे के पाद के आदि में आ गया है। चित्रकाव्य के भेदों में 'आद्यक्षरी' भी एक चतुराई होती है। यह अन्तर्लापिका का एक भेद है—("अलंकार मञ्जूषा" पृ० २१)—

दोहा यह है.—

स्वा—मी—दा—दू—स—त्य—क—रि। भ—जे—नि—र—ञ—न—ना—थ—॥
ति—न—ही—दी—या—आ—पु—ते। सुं—द—र—कै—सि—र—हा—थ—॥

१—चातक=पपीहा। मीन=मछली।

२—त्यक्त=छूटे। मिटे। काट=मैल।

भव जल राषे बूडते, जे आये उन पास ॥
निर्भै कीये पलक मैं, रंच न जम की त्रास ॥ ३ ॥
जन्म मरण तिनि के मिटे, नजरि परे जे कोई ॥
नाटक मैं नाचै नहीं, थकित भये थिर होइ ॥ ४ ॥
तिरत न लागी बार कछु, नवका दीयौ नाम ॥
हींन जाति हरि कौं मिलै दीरघ पायौ धांम ॥ ५ ॥
या मैं फेर न सार कछु आशा पूरइ आइ ॥
पुन्य पाप के फन्द तें, ते सब दिये छुडाइ ॥ ६ ॥
सूंन्य माहिं सूरय उदय दूश हूं दिशा प्रकाश ॥
रहै निरन्तर मग्न ह्वै, कैसौ जन्म विनाश ॥ ७ ॥
सिद्ध भये सब साधि कैं, रही न कोऊ शंक ॥
हारि जीत अब को करै, थपै और ई अंक ॥ ८ ॥

॥ इति आद्यक्षरी ॥ ३ ॥

५—दीरघ=बड़ा, विशाल ।

७—सून्य=शून्यावस्था । निर्वृत्ति का स्थान । सूरय=ब्रह्म का प्रकाश । कै=किये । सौ=सारे । वा अनेक ।

८—साधिकै=साधन करके । अभ्यास के बल से । हार जीत=जीवन जजाल का जूवा खेल । थपे=स्थापित हो गये, बण गये । अंक=हिसाव, लेख । कर्म रेखा ॥

॥ अथ आदि अंत अक्षर भेद ॥ ४ ॥

दोहा

येकाकी जेई भये । करी न कोई टेक ॥
येक ब्रह्म सौं मिलि गये । कमधज साधु अनेक ॥ १ ॥
दोऊ कुल तें ह्वै जुदो । इन कै संग न जाइ ॥
दोप छाडि पावै मुदो । इहां वहां सुख पाइ ॥ २ ॥
तीनौं पन मैं ह्वै जती । नख शिख पावै चैन ॥
तीक्ष्ण होइ महा मती । नर हरि देखै नैन ॥ ३ ॥

आद्यन्ताक्षरी में यह छन्द है—ये क ये क दो इ दो इ । ती न ती न चा रि चा रि । पा च पा च सा त सा त ।

(१) त्यागी, अकेला—"एकाकी यतचित्तात्मा" (गीता) टेक=हठ, तर्क वितर्क, वाद विवाद, संदेहादि । कमधज=कबधज—महावीर, शूरताधारी, जिन्होंने अपना सिर भक्ति ज्ञान में दे दिया और काम क्रोध लोभ मोह विषयादि से लड़े ।

(२) दोऊ कुल=हिन्दू और मुसलमान । अथवा स्त्री पुत्रादि सम्बन्धियों का कुल और विषय और इन्द्रियादि का कुल । मुदो=मुद्दआ (अ०)—असल मतलब, प्रधान अर्थ वा प्रयोजन (ज्ञान भक्ति वा ध्येय परमात्मतत्त्व की प्राप्ति) । इहां वहां=इस लोक में और परलोक में ।

(३) तीनौंपन=बालकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था । अर्थात् बालब्रह्मचारी और संयमी—जैसे कि सुन्दरदासजी स्वयम् थे । चैन पाने का उनका निजका अनुभव या सोही कहा है । मती=बुद्धि महा तीक्ष्ण (तेज, तीव्र) हो जैसे वे आप तेज़ अक़्ल के थे । नर हरि=नर (भक्त वा ज्ञानी जन) हरि (परमात्मा) को देखै—साक्षात् अनुभव करै । वा नर हरि=नृसिंह (भगवान) ।

चारि वेदकी सुनि रिचा । रिस आपनी निवारि ॥
चाहि छाडि ज्यौं ह्वै सचा । रिण सिर तें जु उतारि ॥ ४ ॥
पांवन नाम सदा जपां । चरन कवल चित्त राच ॥
पांनि ग्रहण कैसैं थपां । चमकि कहैं मुख साच ॥ ५ ॥
साध सग ऊची दसा । तम रज कौ ह्वै पात ॥
सार सुधा पावै उसा । तत दरसी कुशलात ॥ ६ ॥
आयौ ठाहर अवस आ । ठहरायौ दिठ पीठ ॥
आशा तृष्णा छाडि आ । ठवकि लियौ मन धीठ ॥ ७ ॥

---

(४)—रिचा=ऋचा, मंत्र । रिस=क्रोध, हठ । चाहि=कामना । सचा=निष्कपट, भगवान से सच्चा प्रेम । रिण=ऋण । तीन प्रकार के ऋणों (कर्जों) से ज्ञानी पुरुष उऋण होकर उतार देता है—पितृऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण ।

(५)—पांवन=पवित्र । जपां=जपते रहैं । राच=रचाकर, खूब लगा कर । पांनिग्रहण—पति परमेश्वर से स्त्री-पुरुष का सा गाढ प्रेम । कैसे थपां=स्थापन करें, जोड़ें । चमकि=सतर्क, सावधान होकर, ससार के धोखे से चमक कर । सदा सत्यव्रत धारण करैं ।

(६)—दसा=दशा, स्थिति, दर्जा, मंज़िल । तम रज=तमोगुण और रजोगुण का पात (गिराव) निवारण होकर सतोगुण (शांतिभाव) उत्पन्न हो वा पावै । उसा=वैसा जैसा कि हरेक आदमी को नहीं मिलता । अत्यन्त उत्कृष्ट । महान । ततदरसी=तत्वदर्शी, ज्ञानी । कुशलाल=शांति, कैवल्य की अवस्था । योगक्षेम ॥

(७)—चचल मन अष्टांग योग साधन से अपनी ठाहर (ठोर=स्थान, जगह, अन्तरात्मा में स्थित निश्चल) आही तो गया । दिठ पीठ=दृष्टि वा पृष्ट परसे, सन्मुख वा पीठ पीछे, अपरोक्ष वा परोक्ष । आ=आव, आव ऐसे ध्यान वा वचन के

घेरि पच पर्वत लघे । रिद्धि सिद्धि दी डारि ॥
भावी हरि रस सौं उमा । रिझये शिव शिवनारि ॥ ८ ॥

रापत काहे न वापुरा । मसकति करि कै माम ॥
नास करै मति आपना । मरद होइ तज काम ॥ ९ ॥

लेवै तो हरि नाम ले । हरि सौं करै सनेह ॥
देवं तौ उपदेश दे । हम जानत है येह ॥ १० ॥

तापस के काचा मता । तप करि जारत गात ॥
माल मुलक चाहै रमा । तरसत ही दिन जात ॥ ११ ॥

साधन से । ठवकि=रोक लिया । धीठ=ढीठ, धृष्ट ।

(८)—पच पर्वत=पाच इन्द्रियां या पचतत्व जीते । लघे=उलाग गये । रिद्धिसिद्धि=करामातें । "करामात कल्फ है" (दादूजी का वचन) ऐसा समझ छिटका दी । उमा=पार्वती, प्रकृति अपने प्रवृत्ति के स्वभाव को छोड़ निवृत्ति में लग गई । शिवनारि=पार्वती, माया । शिव=परमात्मा, परम पुरुष को प्रसन्न किया ॥

(९)—वापुरा=बेचारा, दीनजन । माम=अहकार । मसकति=मशक्कत (अ०) मेहनत, साधन, अभ्यास । आपना=आत्मा का । अज्ञान या कुकर्म से अपनी आत्मा का अकल्याण मत कर । मरद=मर्द (फा०) वीर होकर काम (कामनाओं) को त्याग दे ॥

(१०)—लेने देने का व्यवहार इतना ही उत्तम है कि लेने को हरि नाम है देने को सत्सग" । "साधुजन लेवोही करत हैं" । "साधुजन देवो ही करत हैं" । ये दोनों सवैया सु० दा० जी के ऐसे ही अर्थों को बताते हैं ।

(११)—जो तपस्वी तप करके कचा मता (मनसूबा) कर लेता है, तप से डिग जाता है, वह अपने शरीर को मानो वृथा ही जलाता गलाता है । जिसने ससार के धन, जन, राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना और लालसा मे तरसते ही जीवन गमाया । वह वृथा खोया ।

गेरत नग नर जग मगे । हरिनाक्षी अति प्रेह ॥
येक न जान्यौ जिनि किये । हठ सिर डारी पेह ॥ १२ ॥
जाप जपे बिन ह्वै सजा । गिरा अमी रस पागि ॥
भाव राषि सज्जन सभा । गिर परि चरनहु लागि ॥ १३ ॥
माधवजी भजि त्यागि मा । रस पी वारवार ॥
लाभ कौन यातें भला । रहै सुरति इकतार ॥ १४ ॥
जाल पसार्‍यौ है अजा । हद वेहद नहिं नाह ॥
राति दिवस आवै जरा । हरि भजि करि निर्वाह ॥ १५ ॥

---

(१२)—मृगनयनी स्त्री से अति प्रेम करके रति में अपने जोहर (वीर्य) का क्षय कर, जग मगे (जगत के मार्ग में—विषयानन्द में) अनुरक्त रह कर, एक अद्वैत परमात्मा को नहीं जाना । उन्होंने तो हठ कर अपने जीवन का धूल में मिला दिया ।

(१३)—रामनाम के जपे विना (पुनर्जन्म के भोगों का) दण्ड मिलता है । इस लिये जिह्वा (वाणी) से अमृत भरे नाम सकीर्त्तन में जुटजा । साधु सगति में श्रद्धा रख । उनके और भगवान के चरणो में पड़जा ।

(१४)—मा (लक्ष्मी, धनादि सम्पत्ति) त्याग कर भगवान को लागकर भजता रह । नामामृत सदा पीता रह । सुरति (भगवान में सची रति वा वृत्ति) एक तार से लगातार इकसार लगी रहने से वढ़कर और अच्छा लाभ कुछ भी ससार में नहीं है ।

(१५)—अजा—अजन्मा (माया) ने जीवों पर मोहजाल फैला रक्खा है जैसे शिकारी हिरन आदि को फासने को । शिकारी के जाल की तो कोई हद वा ओर-छोर भी होता है । परन्तु मायाजाल की कोई सीमा नहीं है और न इसके नाह (फदों वा बधनों) की कोई हद ही है । भगवान को भजकर इस फद से निकल कर जीवन को विता ॥

वास करत सब जग मुवा। रन बन चढे पहार॥
पाप कटै न बिना कृपा। रटि लै सिरजन हार॥ १६॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

॥ अथ मध्याक्षरी ॥

छप्पय

शंकर कर कहि कौंन ॥ पिनाक ॥
कौंन अंबुज रस रंगा ॥ भ्रमर ॥
अति निलज्ज कहि कौंन ॥ गनिका ॥
कौंन सुनि नाद हिं भगा ॥ कुरंग ॥

---

(१६)—संसार वा जगत जन्मता है मरता है और अपने बसने के अनेक उपाय करता है। अरण्य, बन वा पहाडों पर भी वास करता है वा एकांत वास करता है। परन्तु बिना भगवत्कृपा के पाप नहीं कट सकते। इस लिए बनानेवाले मालिक को भजता रह॥

आ ठ आ ठ घे रि घे रि मा रि। रा म ना म छे ह दे ह॥ ता त मा त गे ह ये ह। जा गि भा गि मा र ला र। जा ह रा ह वा र पा र॥ (१६ तक)॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

मध्याक्षरी—तीनों मध्याक्षरी छन्द अंतर्लापिका के भेद हैं, क्योंकि प्रश्नों के उत्तर छन्दों ही में दिये हैं। यही नियम है (देखो "प्रियाप्रकाश" पृ० ४११)

(१)—पिनाक=महादेवजी का धनुष। गनिका=वेश्या। कुरंग=हिरण—नाद (गाना) सुनकर स्तब्ध हो जाता है अथवा बुक्का सुनकर चमक जाता है। कुंजर=हाथी जो विषय-मद में करतबी हथणी को देख कर उस पर झपटता है और

काम अन्ध कहि कौन ॥ कुजर ॥
कौंन कै देषत डरिये ॥ पनग ॥
हरिजन त्यागत कौन ॥ क्लेश ॥
कौन पाये तें मरिये ॥ मोहुरो ॥
कहि कौंन धात जग मैं रवन ॥ कनक ॥
रसना कौ कौ देत वर ॥ सारदा ॥
अब सुन्दर द्वै पप त्यागि कै।
'नाम निरजन लेहु नर' ॥ १ ॥* (१) ॥
सब गुन युक्त सु कौन ॥ विचित्र ॥
कौंन सकुचें नहि देतैं ॥ उदार ॥
विष्णु पारषद् कौंन ॥ सुनद ॥
दूर दुख कौन तजे तें ॥ मदन ॥

खड्डे में जा पड़ता है। पनग=सर्प-विषधर काला सांप। कलेश=क्लेश। भगवत् की भक्ति वा ब्रह्म ध्यान के आनन्द मे उनको संसार का दुख नहीं गामता है। मोहुरो=ज़हरी मोहरा। रवन=(रमण) रम्य, सुन्दर। कनक=स्वर्ण, सोना। वर=वरदान सारदा=शारदा, सरस्वती। द्वै पष=दोनों पक्ष—हिन्दू और मुसलमान का। निरजन मतवाले दोनो से भिन्न हैं ॥—

* इसका उत्तर एक साधु पुरोहित श्री नारायणजी द्वारा प्राप्त हुआ सो यों हैं — "शकर करहि पिनाक भ्रमर अबुज रस रगा। अति निलज्ज गनिका सु कुरँग सुनि नादहि भगा ॥ कहिं कुजर (खजन) कामांध अनल (पनग) देखत ही डरिये। हरिजन त्याग कलेश बहुत (महरु) खाये ते मरिये। कनक धात जगमें रवन रसना को दे सरस बर। इनमे द्वै पष त्यागि के नाम निरजन लेहु नर ॥ १ ॥

(२)—विचित्र=चतुर अद्भुत प्रतिभा का। उदार=दानी। विष्णु पारषद=श्रीकृष्ण का सखा जिसका नाम सुनद था। मदन=कामदेव। अचेत=सावधानी जिसमें न हो, मूर्ख। पातग=पातक, पाप। वन्यज=वाणिज्य, व्यापार। मघवा=इन्द्र, मेघ, बादल।

समुझत नहीं सु कौन ॥ अचेत ॥
कौन हरि सुमिरत भागै ॥ पातग ॥
बनिक वृत्ति कहि कौन ॥ वन्यज ॥
कौन जल बर्षन लाग ॥ मघवा ॥
कहि कौन नृपनि तजि द्वन्द्व सब ॥ जनक ॥
सदा रहै मध्यस्थ मन ॥
यौं सुन्दर आपुहि जानि तू ।
'चिदानन्द चैतन्य घन' ॥ २ ॥

चौपई

पोवै कहा सूत के माहिं ॥ मनिका ॥
नारद सुनत चालै को नाहिं ॥ कुरंग ॥
भीम कवन के अंकुश गंजन ॥ कुंजर ॥
सो विदेह भजि भयौ निरंजन ॥ जनक ॥

जनक=विदेह जनकराजा जो सुख दुःख दोनों को जीत चुके थे और फिर राज्य करते थे और उदासीन (मध्यवर्ती) रहते थे। शुक को ज्ञान देने वाले। "उत्तर करण जु बाहिर बहिर्लापिका होय। अन्तर अन्तरलापिका यह जानत सब कोय"। (कवि प्रिया की टीका। प्रियाप्रकाश पृ० ८१०)

— इनमें से नि—र—ज—न—भ—ग—व—त—सु—न—दे—व—दा—दू—दा—स । यह निकलता है।

(१) — नाद=उत्तम गान सुनते ही हिरण खड़ा रह कर सुना करता है। शिकारी को मौका मिल जाता है। गंजन=मारनेवाला। वश करने वाला। विदेह=जिसको योगारूढता या ज्ञान की ऊंची गति मिल गई हो। राजा जनक कर्मत्यागी थे। राज करते हुये भी इतने ज्ञानी सिद्ध थे कि परमहंस शुकदेवजी ने भी उनसे ज्ञान सीखा था, जब पिता व्यासदेव ज्ञान दे परिपक्व तक उनको नहीं पहुँचा सके थे। —इनही आख्यायिका के संकेत स्वरूप मध्याक्षरों में 'शुक' मुनि का नाम

कौन नगर जहा उपजै लौंन॥ सांभर ॥
नदी नाथ सौ कहिये कौन ॥ सागर ॥
का ऊपर असवार चढन्त ॥ पवंग ॥
कहा कटै भजतें भगवन्त ॥ पातक ॥
दुखदाइक सो कहिये कौंन ॥ असुर ॥
गिर कैलाश कवन कौ भौन ॥ शकर ॥
पथी कौं का दीजै भेव ॥ सदेस ॥
कौन त्यागि चाले सुकदेव ॥ भवन ॥
कौ वन में गहि बैठे मौंन ॥ उदास ॥
हस्ती कै सिर शोभा कौन ॥ सिंदूर ॥
काके कीये कनक अवास ॥ सुदामा ॥
त्यागी कौन सु दादूदास ॥ ४ ॥ वासना ॥ ३ ॥

॥ इति मध्याक्षरी ॥ ५ ॥

दिया है। और इस में भगवत—निरजन—और दादूदास को साथ कहने से यही अभिप्राय है कि जैसे शुकदेव भगवत स्वरूप हो गये थे वैसे ही दादूजी ब्रह्मरूप हो गये थे। निरजन पथों में सिद्धान्त की यही विशेषता है कि भक्तिमय-ज्ञान द्वारा ही शीघ्र अद्वैत की सिद्धि प्राप्त होती है। शुकदेवजी से गौड़पादाचार्य—शकराचार्य—रामानन्द—कबीर—गोरख—नानक—दादूदयाल आदि सिद्ध महात्माओं द्वारा यह सिद्धांत जगत में व्यापक होकर लाखों का इसने निस्तारा किया।

३—इन चारों चौपई छन्दों में से जो उत्तर निकलता है वह छन्द के अदर न होने से अर्थात् बाहर रहने से वहिर्लापिका है। और मध्य में से उत्तर निकलता है—अर्थात् उत्तरों के शब्दों के आदि के और अन्त के अक्षर छोड़ दिये जाने से बीच के अक्षर उत्तर देते हैं।

॥ अथ चित्रकाव्य के बन्ध* ॥

(१) अथ छत्र बन्ध ।

छप्पय

सुनहु अङ्क की आदि दशाङ्क विधि सुत जेते ।
[illegible] भोजन पुनि जान स्वनौ सौगागहि जेते ॥
जलज नाभि दल बूझि हुई कै कचन वानी ।
निरखि भुवन पुनि कहौ रंश वय किनी वपानी ॥
जग [illegible] जु प्रगट पुरान क नंदन नरस कर पग गन ॥
[illegible] साधन कै सिर छत्र यह 'सुन्दर भजहु निरजन' ॥ १ ॥

---

* प्राचीन गुटके में ये १४ चित्रकाव्य चित्रों में दिये हैं, तथा उनमें से ७ के छंद भी पृथक् दिये हैं उनके नाम ये हैं—छत्रबंध, कमलबंध १, कमलबंध, २ चौकाबंध १, चौकीबंध २, खड्गबंध, गोमूत्रिकाबंध । मैंने 'चित्रकाव्य' ऐसा नाम यों रक्खा है कि ये छन्द चित्रों में भी आ सकते हैं। इसलिए इनको एकस्थानी भी कर दिया है, और यही क्रम खुले पत्रे की पुस्तक का है।

१—छत्रबंध— यह छप्पय अन्तर्लापिका की है। पदार्थों के प्रथम शब्दों के प्रथम अक्षरों से—'सु—द—र—भ—ज—हु—नि—र—ज—न'—यह पादार्ध निकलता है जो छन्द के अन्त में विद्यमान होने से अन्तर्लापिका हुई। इसकी व्याख्या दी जाती है—सुनहु अङ्क की=अङ्कों की आदि सुन्य (शून्य है) । अथवा अंकों की आदि एक १ है ऐसा सुना है। दशाङ्क =वा विधिसुत=सनकादिक ४ हैं—सनक, सनन्दन सनत्कुमार और सनातन। इनकी गिनती ४ है। और इनकी दशा सदा [illegible] बाल्यावस्था बनी रहती है और ये अमर हैं। ब्रह्मा के ये मानसपुत्र हैं। [illegible] आदि में उत्पन्न हुए थे।—इस भोजन=भोजन के पदार्थों के रस छह हैं=मीठा,

खट्टा, खारा, चरपरा, कड़ुवा, और कसेला। योगांग=आठ हैं—१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम ५ ध्यान ६ धारणा ७ प्रत्याहार, ८ समाधि। जलज नाभिदल= ब्रह्मा के कमल के (जिसमें वह प्रगटा) १० दल (पांखड़ियां) हैं। कंचन बानी=उत्तम सोने के १२ बानी कही जाती है। यह सोना "बारहबानी का" है, ऐसा कहते हैं। भुवन=लोक १४ हैं—७ स्वर्ग और ७ पाताल। (स्वर्ग ७—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक तपलोक, सत्यलोक। ७ पाताल—तल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।) रंभवय=रंभा इन्द्रकी अप्सरा का सदा १६ वर्ष की वय रहती है। पुराण=१८ प्रसिद्ध हैं (पद्म, विष्णु, वराह, वामन, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मांड ब्रह्मवैवर्त्त, १० भविष्य, भागवत, मार्कंडय, मत्स्य, नारद, स्कंद, कूर्म, लिंग, १८ गरुड़।) नंदन=पुत्र (जन्म लेत ही) के २० नख होते हैं। सब साधन के =यावन्मात्र भी जितने ज्ञान कर्म और भक्ति के साधन (प्रक्रिया—अभ्यास) मुक्ति वा ब्रह्मैक्य के लिए हैं उन सबका शिरमौर यह निरंजन निराकार शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म परमात्मा का भजन है। उसको भजना चाहिये। इस छप्पय के पदों के आधालियों में संख्याएं हैं—०—१—(२)—४—६—८—१०—१२—१४—१६—१८—२०। इसका यह अभिप्राय लिया जा सकता है कि शून्य में से क्रमश सब सृष्टि हुई। जो बीस तक संख्या ली गई इसका अर्थ यह माना जा सकता है कि निरंजन का भजन बीसों विस्वा (पूर्णतया) उत्तम और सब मे ऊंचा है, जिसके सच्चे साधन का प्रभाव वा फल अवश्य ही सुप्राप्य और सद्‌गति देनवाला है।—इस छप्पय का उत्तर वा संख्याओं का उल्लेख एक दूसरी छप्पय में चित्रकाव्य के चित्र मे दाहिनी तरफ को छत्र के नीचे दिया हुआ है। सुविधा के लिए यहा भी लिख देते हैं।—"सुन्यौं आदि एकहा, दसा सनकादिक एक। रस भाजन षट् कहैं, भनत अष्टांग विवेक॥ जलजनाभि दल दसम, हुई कलि बानी बारा। निरपि लोक दसत्तारि, रंभ षोडस व्रप प्यारा॥ जग मांहि पुरान सु अष्टदस, नंदन नख बीसहु गन। सब साधन के सिर छत्र यह, सुन्दर भजहु निरंजन" ॥ १ ॥ सब साधन का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि सर्व साधुओं (सन्त, महात्मा, योगी, भक्त आदिकों) के सिर पर छत्र है। निरंजन का भजन सबका रक्षक है। इसकी छत्रछाया में सब

(२) अथ कमल बंध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन, रसन रस प्रेम बढ़ावन ॥
सकल विकल भ्रम दलन बरन बरनौ गुन पावन ॥
सुंदरन कृपा निधान, पधरि जन की प्रतिपालन ॥
हलन चलन सब करन, रितय करि भरि पुनि ढारन ॥
सठ समझि विचारि सभारि मन, रहत न काहू परि मरन ॥
नम नरक निवारन जानि जन, सुंदर सब सुख हरि सरन ॥ २ ॥

उपासकों और ज्ञानी आदिकों की रक्षा और सिद्धि का योगक्षेम होता है। इस उत्तर की छप्पय की अर्धालियों के आद्यक्षरों से भी वही पादार्थ निकलता है—सु–न्द–र–म–ज–हु–नि–र–ज–न ॥ चतुरदासजी के लिखित चित्रकाव्य के चित्र मे इस ही प्रकार मूल छप्पय और उसके उत्तर की छप्पय आमने सामने दी हुई हैं। उत्तर की छप्पय उलटी लिखी हुई है। उलटी लिखने से ही उक्त अर्धाली स्पष्ट पढी जाती है और ऐसा न करते तो सुन्दर का सगत भी नहीं रहती ॥—यहां ही यह बात भी लिख देनी उचित है कि स्वामी चतुरदासजी ने जिस पानेपर छत्रबंध का चित्र लिखा है, उसी पर नीचे गोमूत्रिका के दोनों छन्दों को ऊपर नीचे लिखकर "गोमुत्रिका बंध जिहाज" नाम देकर जिहाज के आकार की चेष्टा की है। परन्तु ग्रन्थकार स्वामी सुन्दरदासजी ने "गोमूत्रिका बंध" ही नाम दिया है जहाज बंध का नाम नहीं दिया है। अतः हमने गोमूत्रिका के आकार ही चित्र मे लिखे हैं वा त्रिपदी बंध भी जो मूल प्राचीन गुटके में है। गोमूत्रिका बंध के छन्द से (१) त्रिपदी (२) चरणगुप्त (३) कपाटबंध (४) अग्निकुण्ड (५) अश्वगति बंध—"कविप्रिया", "चरण चन्द्रिका" आदिक ग्रन्थों मे बनने सम्भव लिखे मिलते हैं। परन्तु हम को जहाजबंध नहीं मिला। असम्भव यह भी नहीं है। चतुरदासजी ने भी किसी आधार अथवा प्रमाण ही से जहाजबंध बनाया होगा।—संपादक ॥

(२) कमल बन्ध १ ला—अर्थ स्पष्ट है। अंत्य पद में 'नम' शब्द नमस्कार

(३) कमल बंध

छप्पय

गगन धर्यौ जिनि अधर टरत मरजाद न सागर ॥
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिपि कागर ॥
टगत न धरनि सुमेर हठ हि गन यक्ष भयंकर ॥
रिदय न पावत तौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर ॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजत तोहि सुर असुर नर ॥
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि विश्वंभर ॥ ३ ॥

कर ऐसा अर्थ देता है। रसन रस=जिह्वा पर नाम के उच्चारण, वा भजन करने से प्रेमानन्द बढ़ाने वाला—हरि भगवान के चरणों का आश्रय है। विकल=बुद्धि की विकलता। दलन=नाशक। भ्रम=अज्ञान, द्वंद्व। पावन (पवित्र वा पवित्र करने वाले) हरि चरणों के गुणगण। वरन वरनौ=भांति-भांति के, वा अनंत प्रकार के हैं। अथवा वर जो श्रेष्ठजन (ब्रह्मादिक देव ऋषिमुनि भी इनका न=नहीं। वरनौ=वर्णन कर सकते हैं। सुढरन=बहुत (दीनजनों पर) दया से द्रवीभूत (जिनका हृदय पिघला सा) होता है। खबरि=दशा पर वा ज्ञात होते ही। प्रतिपालन=पालना करने वाले, दीनजनों की बुरी दशा में सहायक। हलन चलन=जड़ को चेतन (करने वाले—अर्थात् जीवत्व) के स्रष्टा। रितय=रीते को वा रीता करके। भरि ढारन=भरकर फिर हलका देनेवाला, रीता कर देने को समर्थ—"रीता भर भरया ढुलकाव"। नम=नमस्कार कर ॥

(३) कमलबंध २ रा—कागर=कागज, पत्र, पुस्तक। टगत न=नहीं डिगते, स्थिर हैं। हठहि=दूर हो जाते हैं। रिदय=हृदय। तौर=तेरा, अथवा ढग, भेद। मृत्यु=मृत्युलोक, पृथ्वी पर। अंत्य पाद की अन्वय यों होगी—विश्वंभर हरि को निकट में प्रगट जानि सुन्दरदास निर्भय (निडर) रत (अनुरक्त-तल्लीन) हुये (हो गये)।

(४) चौकी बंध

चामर

दरस तें उसका नाव दिल मे इसक उपजै दरद ॥
दरद वद पुकार करें होइ सबसौं फरद ॥
दर फकीरी मे फिरत फारिक जानि सोई मरद ॥
दर मजल सोई जाइगा दिल किया सुंदर सरद ॥ ४ ॥

(५) चौकी बंध।

चौपईया

या पासें आप रहै अविनाशी देखि विचारहु काया ॥
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहे मोटी माया ॥
या माटी माहैं हीरा निकस्या सतगुरु पोज लपाया ॥
या पाल लपेट्यौ सुंदर दीसै याही पासें पाया ॥ ५ ॥

(६) गोमूत्रिका बंध

दोहा

माया दुख को मूल है काया सुख नहिं लेश।
पाया विष मामूर है आया नखतहि केश ॥ ६ ॥

---

(४) चौकीबंध १ ला—दरसतें' उसके दर्शनों और नाम लेने से हृदय में प्रेम और विरह की वदना उत्पन्न होती है। दुरद वद=दर्द मंद विरह से दुःखी भक्तजन। फरद=(फा०) पृथक् त्यागी। फारिक (अ०)=त्यागी। मरद=(फा०) मर्द, पुरुषार्थी। सरद (फा०) सर्द, शांत।

(५) चौकीबंध २ रा—या पासें=इस देह (काया) धारी मनुष्य के पास (निकट=हृदय में) परमात्मा रहता है। मोहे=क्योंकि भगवान की माया मोह जाल फैला कर भुला देती है। माटी=काया जो मृत्तिका आदि से बनी है और मरने पर मिट्टी हो जाती है। हीरा=परमात्मा रूप अमूल्य रत्न। लपाया=बताया। पाल लपेट्या=यह शरीर 'चाम की पुतली' है।

(६) गोमूत्रिका बंध—इसकी भी व्याख्या "चित्र०" से दी जाती है।

गोजी गोजी नर निये विंदु पाल रह राम।
दक्ष विवेकी पाइ है चतुरक्षर विश्राम ॥ ७ ॥ ※

यथा गोमूत्रिका—गो=बैल, वृषभ चलते हुए मूतै और उसकी मूत्रधारा टेढी मेढी भूमि पर उघडै उसके आकार का लहरिया सा हो उसका चित्र वध—इसकी विधि "सूधी पंक्ति युगल लिखो तिर्यक बांचि सुजान। सूधे तिर्यक शब्द इक गोमूत्रिका प्रमान"। १५। (चित्र चंद्रिका ग्रन्थ पृ० ८८।)—(गोमूत्रिका के प्रमाण दोहे की व्याख्या)—दो पंक्तिया छन्द की सीधी लिखे। उन्हे पहिले सीधी रीति से पढ़िये। फिर दोनों पंक्तियों के अक्षरों को एक २ छोड़ कर पढिये ऊपर का पहिला तो नीचे का दूसरा। (ऊपर का दूसरा तो उसके साथ नीचे का तीसरा-इत्यादि) टेढ़ी रीति मे दोनों रीति से पढ़ने में जहा एक ही अक्षर निकलै वहीं 'गोमूत्रिका' बध होता है। यथा 'माया' और 'खाया' में दूसरा अक्षर-'या'-एक ही बुलाता है। ऊपर नीचे की पंक्तियों में यही बुलता है। इसको एक ही बेर लिखा जाय तब गोमत्रिका का आकार हो जाता है॥—अर्थ दोहे का—काया शरीर मे लेशमात्र भी (वास्त-विक—सात्विक) सुख नहीं है। विपयों का सुख परिणाम मे दु ख देता है। विषय सब माया के विकार मात्र हैं। मामूर=भरा हुआ—खूब भरपूर जन्म भर इन विपयों का विप खाया है। और अब शिषनख सफेद बाल भी आ गये। मरने चले परन्तु विषय नहीं घटे॥

※ ७ वें छद के अन्तिम चरण में पाठातर 'दक्ष' शब्द का 'चतुर' शब्द है।

(७) (गोमूत्रिका)—गो=इन्द्रिय। जी=जीव। इन्द्रियों के सुख को जीता जिस नर (पुरुष) ने नियै (नियत=निश्चय माना) कर निर्णय कर लिया, सो ठीक नहीं। विंदु (शरीर का वीर्य) पाल कर अर्थात् जितेन्द्रिय रह कर रह (रहै वा रटै) राम (भगवान को)। दक्ष=चतुर। विवेकी=ज्ञानी। चतुरक्षर=चार अक्षरों—गोविंदजी—में विश्राम=शांति वा सुख। चित्र में गोविंदजी निकलता है)।

(७) अथ चौपड बंध

चौपई

हाँ गुन जीत महो सबकी जु। हौं मनमान सयान तजौ जु॥
हौं कन खात गा तन मे जु। हौ वन मे तजि जात हुनौ जु॥ ८॥

(८) अथ जीनपोस बंध

छप्पय

सरस करत तन मन सरस। सरस नवनि करि अति सरस॥
सरस निरत भव जल सरस। सरस लगत हरि लह सरस॥ ९॥
सरस कथा सुनि अति सरस। सरस विचार उहै सरस।
सरस ध्यान धरिये सरस। सरस ज्ञान सुन्दर सरस॥१०॥

(यह छन्द चित्रकाव्य का ही है ग्रन्थ मे नहीं है।)

(९) अथ वृक्ष बंध

मनहर

गगन हो विटप विश्व ... ... भ्रम भूल है॥११॥

(यह छंद "मन के अंग" मे २३ वां छंद है।)

(१०) अथ वृक्ष बंध

दोहा

प्रगट विश्व यह वृक्ष है, मूला माया मूल।
महातत्व अहंकार करि, पीछे भया सथूल॥ १२॥

---

(८) (चौपड़ बंध)—हौं=न। गुन=माया के तीनों गुणों को। महौं=तितिक्षा रखता हूं। मनमान सयान=मान अपमान चतुराई (छल कपट आदिक)। कन=अन्न अहार। थोड़ा भोजन करता हूं॥

(९) (जीन पोशबंध)—सरस शब्द के अर्थ=(१) आनन्दमय (२) भक्ति-सहित (३) ताजा सदा रहनेवाला (४) रस सहित—"रसो वै सः"—रस ब्रह्म ही है। (५) काव्यादि में नवरस (६) भोजन मे षट्रस (७) सार वस्तु (८)

शाषा त्रिगुन त्रिधा भई, सत रज तम प्रसरत।
पच प्रशापा जानि यौं, उपशापा सु अनत ॥ १३ ॥
अवनि नीर पावक पवन, व्योम सहित मिलि पच ॥
इनही कौ विस्तार है, जे कछु सकल प्रपच ॥ १४ ॥
श्रोत्र तुचा दृग नासिका, जिह्वा है तिन माहिं ॥
ज्ञान सु इन्द्रिय पच ये, भिन्न-भिन्न वर्त्तांहिं ॥ १५ ॥
वाक्य पानि अरु चरन पुनि, गुदा उपस्थ जु नाम ॥
कर्म सु इन्द्रिय पच ये, अपने अपने काम ॥ १६ ॥
शब्द स्पर्श जु रूप रस, गध सहित मिलि पुष्ट ॥
मन बुद्धि चित्त अह तहा, अतहकरन चतुष्ट ॥ १७ ॥
इन चौवीस हु तत्व कौ, वृक्ष अनूपम एक ॥
सुख दुख ताके फल भये, नाना भाँति अनेक ॥ १८ ॥

स्वादिष्ट। (९) सुन्दरभाव और प्रेम पूर्वक। अत जहा जैसा अर्थ लगै वा इच्छित हो लगालें।

(१०) (वृक्ष वध २ रा)—देखो "ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखा ·" । (कठ-६।१३)=विश्व ससार। प्रगट=व्यक्तरूप, स्थूल होने से इन्द्रिय और ज्ञानगोचर। मूलामाया=प्रकृति साम्यावस्था मे। मल=जड़, आदि कारण। महातत्व=महत् तत्व। पीछे भया स्थल=पहिले सूक्ष्म था। फिर त्रिगुण सपर्क से वा विकृत होने से प्रकृति विश्वरूप में स्थूल हो गई। "अव्यक्ताद् व्यक्तय सर्वे" (गीता)। प्रसरत=प्रसार, विस्तार होकर महान् सृष्टि बन गई जो अनत अपरिमित है। पच प्रशाखा=(यहा स्वामीजी ने महत्तत्व और अहकार को दो मानकर और त्रिगुण मिलाकर) पांच प्रथम शाखा=स्कन्ध, डाले माने हैं। उपशाखा=प्रपच, पचीकरण की विधि से जानने योग्य। अवनि पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश= ५। नेत्र आदि पाच ज्ञानेन्द्रिया। शब्दादि=पांच तन्मात्राएं। वाक् आदिक=पांच कर्मेन्द्रियां। मन, बुद्धि, चित्त, अहकार=अतःकरण चतुष्टय। यों ५+५+५+५+४=२४ तत्व सांख्य में हैं।

तामें दो पक्ष बसहिं, सदा समीप रहाइ।
एक भषै फल वृक्ष के, एक कछू नहिं पाइ ॥ १९ ॥
जीवातम परमातमा, ये दो पक्षी जांन ॥
सुन्दर फल तरु के तजें, दोऊ एक समान्न ॥ २० ॥

(११) अथ नाग वध

मनहर

जनम सिरानौ जाइ ... नाग पासि परि है ॥ २१ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग में २९ वा छंद है।)

(१२) अथ हार वध

मनहर

जग मग पग तजि··· ·· धारिये ॥ २२ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अङ्ग मे ३० वा छंद है ॥)

(१३) अथ कंकण वध

दुमिला

हठ योग धरौ · दूरि करैं ॥ २३ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग मे ३२ वा छंद है ॥)

तामें - उस विश्वरूपी वृक्ष में दो पक्षी रहते हैं। (१) माया से उपहित चेतन जीव। और (२) माया से अलिप्त चेतन ब्रह्म। वृक्ष के (संसार के भोग रूपी) फलों को जीव पक्षी खाता है। जब फल खाना (संसार के भोग अर्थात् माया के विकार विषय स्वादों को) जीव पक्षी छोड़ दे, तो वही ब्रह्मस्वरूप हो जाय।—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया . " इत्यादि (मुंडक ३।१।)

⊛ प्राचीन गुटके में दोनों कंकणवधों के चित्र जो दिये हैं उनमें शब्द केवल वृत्त ही में हैं। चतुरदासजी के लिखे पत्रों में जो उनके चित्र हैं वे उक्त प्रकार से भी हैं और व्यूह प्रकार से भी।

(१४) अथ ककण बध

दुमिला

गुरु ज्ञान गहै ··· ·· ·· · राज करै ॥ २४ ॥

(यह छद 'उपदेश चितावनी' के अग में ३३ वा छद है ॥)

॥ इति चित्रकाव्य के बंध ॥ ६ ॥

❀॥ अथ 'कविता लक्षण' ॥

छप्पय

नख शिख शुद्ध कवित्त पढत अति नीकौ लगें ।
अग हीन जो पढै सुनत कविजन उठि भगें ॥
अक्षर घटि बढि होइ पुडावत नर ज्यौं चह्लै ।
मात घटै बढि कोइ मनौ मतवारौ ह्लै ॥
औढेर कांण सो तुक अमिल, अर्थहीन अधो यथा ॥
कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस बिन मृत कहि तथा ॥२५॥

अथ गण बिचार

छप्पय

माधोजी है मगण यहै है यगण कहिज्जें ।
रगण रामजी होइ सगण सगलै सु लहिज्जै ॥
तगण कहै तारक जरात सु जगण कहावै ।
भूधर भणिये भगण नगण सुनि निगम बतावै ॥
हरि नाम सहित जे उच्चरहिं, तिनकौ सुभगण अठ्ठ है ।
यह भेद जके जानै नहीं, सुन्दर ते नर सठ्ठ हैं ॥ २६ ॥

❀ यह नाम सपादक का दिया हुआ है ॥ सं० ॥ (२५) शुद्ध और सुन्दर कविता का लक्षण कितना अच्छा कहा है। औढेर=वहँगा औढेरिया । कांण=कांणाँ, एकाक्षी ।

(२६) अर्थ स्पष्ट । आठों गणों (म-य-र-स-त-ज-भ-न) के उदाहरण दिये हैं । देवता वर्णन मे अशुभ नहीं ।

गणों के देवता और फल

मनहर

* सब गुरु मन लघु आदि गल भय जानि,
सत इम अन्त लेहु मध्य जर मानिये।
भूमि नाक चन्द तोय वायु सो गगन सूर,
अगनि हु आठ यह देवता बषानिये॥
लक्ष्मन बुद्धि जस भय आयु भ्रमन स,
तरु वंशनाश रोग अर मुत्यु ठानिये।
अष्ट गन नाम अरु देवता समेत फल,
सुन्दर कहत या कवित्त मैं प्रमानिये॥ ३ ॥
* मगण नगण मित भगण यगण भृत्य,
सगण रगण शत्रु जन सम नित्य है।
मिलै दोइ मित सिद्धि मित भृत्य जय जानि,
मित सम मिलै कछु लक्षण कुछित्य हैं॥
मित अरु शत्रु मिलै दुख उतपन्न होइ,
मिलै भृत्य मित करै कारिज को सत्य है।

---

* यह तारे का चिन्ह जिन छन्दों पर है वे न तो प्राचीन गुटके (क) में न खुले पत्रे की पुस्तक (ख) मे किन्तु केवल चतुरदासजी के हाथ के लिखे हुए रंगीन चित्रों मे हैं जो पत्रे (ख) खुली पुस्तक के साथ सम्पादक को फतहपुर से मिले थे।—सम्पादक।

(१) मगण—SSS तीनों गुरु—पृथ्वी देवता। श्री (लक्ष्मी) फल। (२) नगण—।।। तीनों लघु—स्वर्ग देवता। बुद्धि फल। (३) भगण—S।।—आदि गुरु फिर दो लघु—चन्द्रमा देवता। यश फल। (४) यगण—।SS आदि मे लघु फिर दो गुरु। जल देवता। आयु फल। (५) सगण—।।S—पहिले दो लघु अन्त मे एक गुरु। वायु देवता। भ्रमण (विदेश गमन) फल।

दास दोइ नाश होइ भृत्य सम हानि सोइ,
सुन्दर भिरति रिपु हारि कोउ पत्य हैं ॥ ४ ॥
* सम मित साधारण समभृत्य तैं विपत्ति,
सम द्वै निफल सम रिपु शुद्ध होइ जू।
अरि मित शून्य फल शत्रु दास त्रियनाश,
रिपु सम मिलत हि हारि होत सोइ जू॥

---

(६) तगण—SSI—प्रथम दो गुरु अन्त मे एक लघु—आकाश देवता। शून्य (वगनाश) फल। (७) जगण—ISI—मध्य में गुरु आदि अन्त मे लघु। सूर्य देवता। रोग फल। (८) रगण—SIS मध्य में लघु और आदि अन्त में गुरु—अग्नि देवता। मृत्यु फल। नीचे के कोष्टकों में शुभ और अशुभ गणों को स्पष्ट लिखते हैं।

स०	शुभगण	गण रूप	देवता	फल	मित्रादिक
१	म गण	S S S	पृथ्वी	लक्ष्मी	मित्र
२	न गण	I I I	स्वर्ग	वृद्धि	मित्र
३	भ गण	S I I	चन्द्रमा	यश	दास
४	य गण	I S S	जल	आयु	दास
५	ज गण	I S I	सूर्य	रोग	सम
६	र गण	S I S	अग्नि	मृत्यु	शत्रु
७	स गण	I I S	वायु	भ्रमण	शत्रु
८	त गण	S S I	आकाश	शून्य	सम

अरि दोइ मिलें तहा प्रभु कों हरत वह,
सुगण विचारि धरि असुभ न पोइ जू।
ह झ ध र घ न प भ दग्ध अक्षर आठ,
सुन्दर कहत छन्द आदि देन जोइ जू ॥ (५) ॥

(४) (५) इन दोनों छंदों में गणों का संयुक्त शुभाशुभ फल दिया है। जिसको कोष्ठक द्वारा स्पष्ट दिखाते हैं।—

दो दो गण	संबंध	परस्पर का योग	योग का फल
मगण+नगण SSS+III	(आपस में दोनों) मित्र	१—मित्र+मित्र	१—सिद्धि
		२—मित्र+दास ...	२—जय
		३—मित्र+सम ...	३—हानि
		४—मित्र+शत्रु	४—दुःख
भगण+यगण SII+ISS	दास	१—दास + मित्र	१—कार्य सिद्धि
		२—दास + दास	२ नाश
		३—दास + सम ..	३—हानि
		४—दास + शत्रु ..	४—हार (पराजय)
जगण+तगण ISI+SSI	सम	१—सम + मित्र ..	१-साधारण (अल्प फल)
		२—सम + दास .	२—विपत्ति
		३—सम + सम ..	३—विफल
		४—सम + शत्रु ..	४—विरुद्ध
रगण+सगण SIS+IIS	शत्रु	१—शत्रु + मित्र	१—शून्य
		२—शत्रु + दास ...	२—क्रिया नाश
		३—शत्रु + सम	३—हार (पराजय)
		४—शत्रु + शत्रु	४ स्वामि नाश

* कक्का के वरन लघु बारा पडी माहि त्रिय,
सुरा मध्य पंच लघु अआदि समान है।
युत लघु पूरव दीरघ करै आ ई ऊ ॠ,
ॡ ए ऐ ओ औ अं अः सु दीरघ बपान है॥
दूषन चालीस और भूषन च्यारि सत,
पिंगल व्याकरण काव्य कोस सौं पिछान है।
जीतै पर सभा लपै बात पर मन हू की
सबही सराहै कवि सुन्दर कहान है॥ ६॥

सम=उदासीन। भृत्य=दास। कुछित्य=कुत्सित, बुरा। सुदर=मित्र (यहां यह अर्थ) उपत्य=उत्पत्ति। व्रुद्ध=विरोध। विरुद्ध। सोइजू=सोही। ऐसा ही निश्चय करके। प्रभु=स्वामी। असुभन=अशुभगणों को। षोईजू=खो दीजै। त्याग दो। आदि देन जोइ जू=आदि (प्रारम्भ में) देने के योग्य नहीं हैं। आदि में उनको न दीजे।

(६) कक्का=वर्णमाला के अकारांत (वा इकारांत उकारांत आदि) सब अक्षर लघु ही रहते हैं। बाराषडी=बारह स्वरों सहित वर्णों में से। त्रिय=तीन वर्ण आ-ई-ऊ वा इनसे सयुक्त अक्षर। सुरांमध्य=स्वरों (सोलहों) में से। पंच=अ-इ-उ-ऋ-ऌ। अ+आ-इ+ई-उ+ऊ-ऋ+ॠ-ऌ+ॡ-ये समान हैं। 'युत लघु पूरव दीरघ करै'=संयुक्तों के पहिलेवाले ("सयुक्ताद्य दीर्घं") दीर्घ (गुरु) हो जाते हैं। आ से अः तक ११ स्वर (भाषा में) और इनसे सयुक्त व्यञ्जन भी दीर्घ होते हैं (गुरु)। (श्रुतबोध। छद प्रभाकर। काव्य प्रभाकर)। "सयोगी को आदि जुत विंदु जु दीरघ होय। सोई गुरु, लघु और सब कहैं सयाने लोय" ॥ ३३॥ (कविप्रिया)।

दूषन चालीस—काव्य के दूषण अनेक हैं। "काव्य प्रकाशादि में शब्द दोष १६, वाक्यदोष २१, अर्थदोष २३, और रसदोष १०। सब ७० कहे हैं" (काव्य प्रभाकर। १० मयूख)। इसमें ३९ दोष गिनाये हैं। 'काव्य कल्पद्रुम' के प्रथम

सख्या वर्णन

गनपति रदन मही दिनेशचक्ररथ,
चन्द शुक्रनेत्र एक आतमा ही जानिले।
गजदन अयन नयन कर पाद पक्ष,
नदीतट नागजिह्वा द्विज दोइ मानिले॥
राम हरनयन अगनि क्रम वलि संध्या,
काल ताप जुर मूल पद्म तीन आनिले।
खानि वानी वरन आश्रम अजमुख वेद,
कूट जुग सेना मुक्तिफल च्यारि पानिले॥ ७॥

भाग रसमञ्जरी' मे १० दोप निरूपित किये हैं। ग्रन्थकार ने किसी मत से १० ... और भूषण चार शत—इससे काव्यगुण और अलङ्कारादि सव मिला ... प्रतीत होता है। सुन्दर स्वामी का पाडित्य अगाध था॥

(७) एक वाची सख्या के शब्द—गणेशजी के एक दांत ही है। मही=पृथ्वी। दिनेश=सूर्य के रथ के एक ही पहिया है। शुक्राचार्यजी के एक ही नेत्र है॥ दो के वाची—हाथी के दो दांत होते हैं। अयन दो=उत्तरायण, दक्षिणायन। पाद=पाव दो। पक्ष=शुक्र और कृष्ण, अथवा पक्षी के दो पांख। सांप के दो जीभ। द्विज=दो जन्म होते है॥ तीन के वाचक—राम=रामचद्र, परशुराम, वलराम। शिवजी के तीन नेत्र। अग्नितीन=वाडवाग्नि, दावाग्नि, जाठराग्नि। अथवा दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय। क्रम=विक्रम=पग (तन, मन, धन।) वलि=त्रिवली की तीन रेखा। सध्या तीन=प्रात, मध्यान्ह सायं। काल=भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्। ताप=तीन ताप, तापत्रय, (दैहिक, दैविक, आत्मिक। ज्वर=वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर। सूल=त्रिशूल के तीन कांटे। पद्म=पुष्कर का वाची शब्द वृद्ध पुष्कर, शुद्धवाय, ज्येष्टकुंड। और क्रम विधि के अर्थ में=१ वेदविधि, २ लोकविधि, ३ कुलविधि॥ चार वाची सख्या शब्द=खानि=चार स्थान वा योनिवर्ग—जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज। ४ वाणि=परा,

* सनकादि वारि निद्धि सप्रदा उपाइ अग,
 जोधार चरन दिशि च्यार अत करन है ॥
तत्व शर इन्द्री हरमुख पाडु वर्ग यज्ञ
 पित मात कन्या पाप वायु पच बरन है ॥
शासतर सपति करम दरशन रितु,
 रस राग अग यती पट सु तरन है।
धात दीप तुङ ऋषि वार हय परवत
 समुदर पुरी सात कहत धरन है॥ ८ ॥

पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। ४ वर्ण=ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्री, शूद्र। ४ आश्रम=ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास। अजमुख=ब्रह्माजी के चार मुंह। ४ वेद=ऋग्, यजु, साम, अथर्व। कूट=(इसका प्रयोग चार वाची का नहीं मिला, अत) चार अवस्थाए आत्मा सम्बन्धी—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, कूटस्थ (तुरीया)। वा चार नीतिया—साम, दाम, दण्ड, भेद। अथवा विष्णुचो चतुर्भुज हैं उनकी चार भुजा। वा कूट (कोना) चार कोने। जुग=युग चार है—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। सेना=चतुरगिणी=हाथी, घोड़े रथ, पैदल। मुक्ति चार=सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य। फल=चतुष्फल=चतुर्वग=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। पानिले=हाथ में ले, ग्रहण कर।

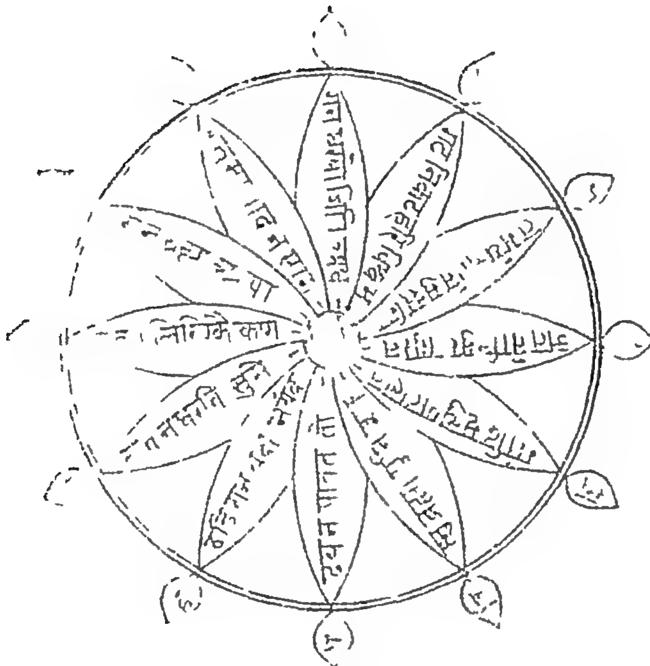
(८) सनकादि चार, ब्रह्मा के पुत्र=सनक, सनदन, सनत्कुमार, सनातन। वारि, निधि=इसका पता चार के अर्थ में नहीं लगा। न तो वारि ही चार के अर्थ में प्रयुक्त होता, न निधि शब्द ही। वारिनिधि=जलनिधि=समुद्र के अर्थ में लें तो वे भी सात है। निधि भी नौ हैं। हमें ग्रन्थ 'कविप्रिया" की टटोल से इसका शुद्ध पाठ 'वारण रद' हो सकता है मिला—ऐरावत के चार दांत होते हैं (प्रियाप्रकाश—पृ० २३०)। सप्रदा=सप्रदाय चार हैं—श्रीसम्प्रदाय, निम्बार्क, माध्व और वल्लभाचार्य। उपाइ=साम, दाम, दड भेद। अग=मस्तक, धड़, हाथ, पाव। जोधार (डि०) योद्धा चार प्रकार=गजारोही, अश्वारोही, रथारोही, पदाति (पैदल)।

चरन=चरण—छद के चार और चोपायों के चार पाद वा पांव। दिशा चार—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। अतःकरण चतुष्टय=मन, बुद्धि चित्त, अहंकार। पाच वाची सख्या—तत्व पाच=पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश। शर=कामदेव के पाच तीर। मोह, मस्त, शोष, विरह, अचेतन। पांच ज्ञानेन्द्रिया—आख, कान, नाक, जीभ खाल। हरमुख=महादेवजी के पाच मुख जिनसे वे पचमुख कहाते हैं। पाच पाडव=युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव। वर्ग=पाच वर्ग—कु चु टु तु पु—कवर्गादि पाच २ अक्षरों के (वर्णमाला मे) यज्ञ=पचमहायज्ञ—स्वाध्याय, अग्निहोत्र, अतिथिपूजन, पितृतर्पण, बलिवैश्वदेव। पाच पिता=जन्म देनेवाला, राजा, जीवदान देनेवाला, गुरु (दीक्षा वा विद्या देनेवाला) और ससुरा। पांच माता=जननी, गुरुपत्नी, राजा की राणी, सास, मित्रपत्नी। पांच कन्या=अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती, मदोदरी। पाप=ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरुपत्नी गमन और इनके साथ ससर्ग। वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। वग्न,=वर्णित। छह की—शास्त्र ६=चारों वेद, पुराण और धर्मशास्त्र (स्मृति)। ६ सपत्ति=सम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरति, समाधान। कर्म=छहकर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना। दर्शण=छह दर्शण—साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदात। ऋतु=छह ऋतु—वसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमत, शिशिर। रस=षट्रस—खट्टा, मीठा, खारा, कडुवा, चरपरा, कसैला। राग=छहराग—भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ (मलार)। अग= वेद के छह अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छद, ज्योतिष, निरुक्त। मति=(यह ईति का रूपांतर प्रतीत होता है)—छह इति ७ भी हैं। अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल, चूहादल, तोतादल, परतत्र (वा, ओला पड़ना)। और मति छह ६ ये हैं=लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, भैरव, दत्त और गोरख (नानकप्रकाश पू०) तरन=तृण—छहचारे—घास, कडव, पत्ते, पन्नी, तुस, दाणा॥ सात की—धातु=७ धातु—सोना, चादी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा। वा—(चर्म) रक्त, मास, मेद, हाड, चरबी, वीर्य। दीप=७ द्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मल, मेद (वा लक्ष) पुष्कर। तृन= ७—सात अन्न—जव, गेहू, चावल, मूग, अरहड, उड़द, चना। ७ ऋषी=कश्यप,

८-वसु अहि परवत योग अग व्याकरण,
लोकपाल दिगपाल सिद्धि आठ जग है।
षड निद्धि द्वार नाडी रस ग्रह योगेश्वर,
नाथ नन्द ऊपर नौगुण नव तग है॥
दिशा दोष अवतार धुनि नाभि पद्म मुद्रा,
वायु दश एकादश रुद्र हर लग है।
मास राशि सूर भक्त सकराति पथ पून्यू,
हृदय कवल बारा यम नेम पग है॥ ६॥

अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौत्तम, वशिष्ठ, यमदग्नि। ७ वार—रवि, सोम, मगल बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि। हय=सूर्य के सात घाड़। ७ पर्वत=सुमेरु, हिमालय, उदयाचल, विंध्याचल, लोकालोक, गधमादन, कैलास। ७ समुद्र=क्षीर, क्षार, दधि, मधु, घृत, सुरा, इक्षुरस। ७ पुरी=अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काची, द्वारिका, उज्जयनि। धरन=धरणी, पृथ्वी पर॥

(९) ८ की—वसु—८ वसु—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। अहि=७ सर्प—वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, शख, कुलिक, पद्म, महापद्म, अनन्त। ७ पर्वत=(ऊपर पर्वत गिनाये हैं। जो पर्वत शब्द से आठ लेते हैं व आगे लिखे पर्वत कहते हैं) हिमालय, मलयगिरि, महेन्द्र, सह्याद्रि, शुक्तिगिरि, ऋक्षपर्वत, विंध्याचल, पारियात्र पर्वत। योग—अष्टाग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि। अग=(अग ऊपर छह कह आये हैं। इसलिए यह अङ्ग शब्द योग शब्द के साथ समझें)। परन्तु शरीर के ८ अङ्ग साष्टांग कहने में जो आते हैं वे ये हैं—गोडे (पाव के), पाव, हाथ, पेट, शिर, वाणी, बुद्धि और दृष्टि। प्रमाण—"जानुभ्या च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यां मुरसा धिया। शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग ईरित"। ("आपटे की डिक्शनेरी" तथा 'वैष्णवमताब्जभास्कर")। व्याकरण=८ वैयाकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशि, कृष्ण, पिशली, शाकटायन, पाणिनी, अमर। ८ लोकपाल=इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत,



कमल बन्ध

छप्पय

गगन धर्यो जिनि अधर टरत मरजाद न सागर।
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिखि के कागर॥
टगत न धरनि सुमेर हठहि गन यक्ष भयंकर।
रिझय न पावत तौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजन तोहि सुर असुर नर।
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि विश्व भर॥

पढ़ने की विधि

"गगन शब्द के 'गकार' पर १ का अङ्क है—वहाँ से प्रारम्भ करके दाईं ओर की पखुड़ियों के चरणों को पढ़ते जाय। अन्त का चरण 'सुंदर' वाली पंक्ति में है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही में है, ग्रन्थ में नहीं है।

-* तेरा तरवर ताल तेरा द्वार कहै फिर
रसन बतावै तेरा ये भी बात सही सो।

वरुण, वायु, कुवेर, शकर। दिग्पाल=८ दिग्गज—ऐरावत, पुडरीक, वामन, कुमुद, अजन, पुष्पदत, सार्वभौम, सुप्रतीक। सिद्धि=अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। जग=जगत मे ॥ ९ की—खड=९ है—इला-वर्त्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्य। ९ निधि=पद्म, शख, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व। ९ नाडी=इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गधारी, पूषा, गजजिह्वा, प्रसाद, शनि, शखिनी। रस=काव्य मे ९ रस—शृगार, करुणा, वीर, भयानक, अद्भुत, हास्य, रौद्र, वीभत्स, शात। ९ ग्रह=सूर्य, चद्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, मगल, शनि, राहु, केतु। योगेश्वर=९ है—शुक्राचार्य, नारायण (श्रीकृष्ण), अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन। नाथ ९=गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणनाथ, गहिनीनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ (योगाङ्क)। ९ नद=मगध देश का राजा महानद और उसके ८ पुत्र, यो नवों को चाणक्य ने विष से मारा था। ९ गुण—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य। ऊ पर नौ—इस शब्द का कुछ सशोधन नहीं हो सका। यह लेखक दोष से किसी शब्द का अशुद्ध रूप है ॥ १० की सख्या—दश दिशाए प्रसिद्ध है। १० दोष=चोर, जुवारी, अज्ञ, कायर, गूगा, बहरा, अधा, पागला, नपुसक, कुरूप। १० अवतार=कच्छ, मच्छ, वामन, वराह, नृसिंह, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध, कल्की। श्रुनि, नासि, पद्म—ये दश की सख्या के वाची कैसे हैं इसका पता नहीं लगा। १० मुद्रा योग मे—महामुद्रा, महाबध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबध, जालधरबध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन (हठयोग प्रदीपिका मे)। १० वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनञ्जय। ११ रुद्र=अज आदिक ॥ १२ मास। १२ राशिए मेष आदिक। १२ आदित्य विवस्वान् आदिक। १२ भक्त प्रह्लाद आदिक। १२ सक्रातिए। १२ पथ=बारा घाट।

रतन भवन विद्या जम भट इन्द्री देव,
विषय कहीजै चौदा पद्रा तिथि कही सो ॥
सुर सिणगार उपचार कला पारषद,
वय रभा सोला सत्रा कोटि जल मही सो ।
समृत पुरान प्रवराम सेना भारत की,
भारहू अठारा वै अठारा ध्याइ लही सो ॥ १० ॥

---

(१०) १३ तरवर=कल्पवृक्षादि । तेरह वृक्षों का प्रमाण—'उदुम्बर वटप्लक्ष जम्बुद्वयमथार्ज्जुनम् । पिप्पलच कदवच पलाशलोध्रतिंद्रकम् । मधूक माम्रमर्ज्जंच वदर पद्मकेशरम्'। (गरुड़पुराण १९८ अ० । शब्दकल्पद्रुम से)। १३ ताल= तेरह बड़े सरोवर—मानसरोवर आदिक अथवा १३ तालें—चौताला, तिताला आदिक । १३ द्वार=देवद्वार, राजद्वार, इत्यादिक । तेरह रत्न=सूठ के गुण कथन में तेरह रत्न ऐसा बोलते हैं । रत्न पांच, नौ और १४ हैं ॥ १४ रत्न=लक्ष्मी कौस्तुभ मणि, रभा, सुरा, अमृत, विष, ऐरावत, शार्ङ्ग-धनुष, धन्वतरि, कामधेनु, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, सप्तमुखी अश्व । १४ भवन=७ तो लोक और ७ द्वीप मिल कर । १४ विद्याएं= ४ वेद+६ शास्त्र+१ मीमांसा+१ धर्मशास्त्र+१ न्याय+१ पुराण । १४ यम=धर्म-राज, यमराज, मृत्यु, अतक, वैवस्वत, नील, दध्न, काल, सर्वभूतक्षय, परमेष्ठी, वृकोदर, उदुम्बुर, चित्र और चित्रगुप्त । भट=१४ यमों के १४ भट । इन्द्रिय १४= ५ ज्ञानेन्द्रिय+५ कर्मेन्द्रिय+४ अतःकरण । देव=१४ इन्द्रियों के १४ देवता । विषय=१४ इन्द्रियों के १४ मुख्य विषय (शब्द, स्पर्श आदिक)। १५ तिथिएं= प्रसिद्ध हैं प्रतिपदा कृष्ण से अमावास्या तक अथवा प्रतिपदा शुक्ला से पूर्णिमा तक ॥ १६ सुर=स्वर वर्ण—अ से अः तक । १६ सिंणगार—शृङ्गार—शौच, उबटन, स्नान, केशबधन, अङ्गराग, अञ्जन, दन्तरजन, (मिस्सी), महदी, बीड़ी, वस्त्र, भूषण, सुगध, पुष्पमाला, तिलक, टीकी, ठोडी पर बैंदी । १६ उपचार=षोडशोपचार पूजन—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, गध, अक्षत, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, आरती, नमस्कार (वा दक्षिणा) १६ कला=चद्रमा की १६

* उगनीस और वात विस्वा नस्व मानुष के,
बीस चक्षु श्रुति भुजा रावन के सुनिया।
इक वीस स्वरग सु बाईसी सो पासा की,
क्षौहणी तेईस जरासंघ साथि गुनिया॥
च्यारि बीस अवतार च्यारि बीस तीर्थंकर,
च्यारि बीस तत्त्व पीर च्यारि बीस धुनिया।
एक तें चौबीस लग सख्या सज्ञा कही यह,
सुदर मिलावौ जति कवि पुनि पुनिया॥ ११ ॥*

कलाए—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनि, चन्द्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्रिय, प्रीति, अगदा, पूर्णा, पूर्णामृता। १६ पारषद=जय विजय आदिक भगवान के पार्षद। ८ सखा श्रीकृष्ण के और आठ सखा श्रीरामचन्द्र के। वयरमा=रमा अप्सरा की सदा १६ वर्ष की अवस्था रहती है। प्रवराम=१८ प्रधान प्रवर—आत्रेय, वशिष्ठ विश्वामित्र, भारद्वाज, यमदग्नि, आंगिरस, गौतम, काश्यप, च्यवन, भार्गव, पराशर, शक्ति, शांडिल्य, आप्नुवान, मरीचि, बार्हसपत्य, अगस्त्य, वत्सस। सेना भारत की=महाभारत मे १८ अक्षौहिणी थी—११ कौरवों की ७ पाडवों की। १८ भार वनस्पति के कहे जाते है। भगवद्गीता की १८ अध्याय हैं, स्मृतिया और पुराण भी १८ ही है। १८ स्मृतिया=मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, वशिष्ठ, हारीत, नारद, अत्रि, आपस्तम्ब, शातातप, सख, लिखित, व्यास, भारद्वाज, काश्यप, दक्ष, विष्णु, यम, बृहस्पति १८। १८ पुराण—विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कन्द, कूर्म, गरुड़।

* नोट—ये ९ कवित्त क्रम सख्या मे, सख्याओं सहित, इस विचार से नहीं दिखाये—अर्थात् इन पर ऊपर से चली आई हुई सख्या इस विचार से नहीं लगाई गई थी कि "पच विधानी" को ढूढकर लगावें। परन्तु पचविधानी हमें पृथक् कोई कहीं नहीं मिली। "भूलि गयो हरिनाम को तू सठ"… । इस कवित्त

पर "पचविधानी" ऐसा नाम लिखा हुआ ही चतुरदासजी के पत्रों आदि में मिला। परन्तु यह किसी भी अभिप्राय या अर्थ से पचविधानी नहीं कहा जा सकता है। 'सवया" ग्रन्थ के "कालचितावनी" के अङ्ग का यह ८ वां छद मात्र है।

(११) १९ उन्नीस पिण्डस्थान कहे जाते हैं (तिथ्यादित्व—शब्दकल्पद्रुम)। २० बिश्वा। बीस नख (नाखून) दोनों हाथों और दोनों पावों के। रावण के १० सिरों मे २० आंखें और २० ही कान और बीसही भुजा सुनी जाती है। २१ स्वर्गों के नाम नहीं मिले। २२ सेना वादशाह की वाईसी कहाती थी। २३ अक्षौहिणी मगध देश के राजा जरासध के पास थी जब वह मथुरापर चढ कर आया था। २४ अवतार=ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, वलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हस और हयग्रीव। २४ तीर्थंकर=जैनियों के २४ देवता—ऋषभदेव, अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चद्रप्रभ, सुवुधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी। २४ तत्त्व=प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पाच ज्ञानेन्द्रिया, पांच कर्मेन्द्रिया, मन, पांच तन्मात्राए, पांच महाभूत। (पुरुष इनसे भिन्न है)। २४ पीर=मुसलमानों के २४ पगम्बर=(अलेहिस्सलाम) आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माईल, ज़करिया, यहया, यूनुस, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईसा, मूसा, इलयास, हारू, यसआ, जिलकिफ़्ल, मुहम्मद साहिब। (इनके अतिरिक्त और बहुत से पैगम्बर हुए हैं। परन्तु यहां प्रधान २४ से प्रयोजन है।) 'पीर' शब्द गुरु (दीक्षा देनेवाले) का अर्थ देता है। इसलाम धर्म में 'खलीफा' और 'इमाम' वड़े धर्म-शिक्षक और शासक वहुतायत से हैं (खलीफा तो ४ ही प्रधान हैं जो मोहम्मद साहब के पास व पीछे हुए थे।)

७ मांगलिक छप्पै पंचक

अथ नव निधि के नाम

छप्पय

प्रथम पद्म निधि कहत द्वितिय पुनि महा पद्म सुनि।
तृतिय सपर्स नाम चतुर्थय मकर कहैं मुनि॥
पञ्चम कच्छप होइ षष्ट सो प्रगट मुकुन्द।
कुन्द सप्तम जानि अष्टम निल्ल भणिन्द॥
नवम पर्व्व कविजन कहत ये नव निधि के नाम है।
कहि सुन्दर सन्तन आदरहि ते वञ्छहि जु सकाम है॥ २७॥

अथ अष्ट सिद्धि के नाम

प्रथमहि अणिमा सिद्धि द्वितिय पुनि महिमा कहिये।
तृतीय सु लघिमा जानि चतुर्थी प्रापति लहिये॥
प्राकाशक पचमीं ईपिता षष्ठी जानहु।
अवसिता जु सप्तमी अष्टमी वसिता मानहु॥
ये अष्ट महा सिधि प्रगट ही ग्रन्थनि माहिं वषानिये।
हरि भक्तनि के आधीन है सुन्दर यों करि जानिये॥ २८॥

---

७ यह नाम सम्पादक ने दिया है।

(२७) निल्ल=नील। भणिन्द=कहते हैं। पर्व्व=खर्व।

(२८) अष्टसिद्धिएं—"अणिमा महिमा चव लघिमा प्राप्तिरेवच। प्राकाम्यन्तथेशित्वं वशित्वं च तथा परम॥ यत्र कामावसायित्व गुणानेता नवश्वरान्" ॥ (मार्कंडय पुराण) ये ही स्पष्ट "ब्रह्मवैवर्त्त पु०" में—"अणिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य महिमा तथा। ईशित्व च वशित्व च सर्वकामावसायिता॥ परन्तु 'अमरकोष' मे कामावसिता को न देकर गरिमा को दिया है—"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्व वशित्व चाष्टसिद्धय"॥

अथ सप्त वारो के नाम

प्रगट होइ आदित्य सोम जब हृदयें आवै।
मगल दशहू दिशा बुद्ध तब ही ठहरावै॥
बृहस्पति ब्रह्म स्वरूप शुक्र सब भाषत ऐसें।
थावर जगम मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसें॥
है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु विन कैसें लहैं।
यह बार हि बार बिचार करि सप्तवार सुन्दर कहै॥ २९॥

अथ वारह मास के नाम

कार्तिक काटै कर्म मार्गशिर गति यज्ञासा।
पोष मिल्यौ सतसग माघ सब छाडी आसा॥
फाल्गुन प्रफुलित अग चैत्र सब चिंता भागी।
वैशाषा अति फला जेष्ठ निर्मल मति जागी॥
आषाढ गयौ आनन्द अति श्रावण श्रवति अमी सदा।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जहि अश्विनि शाति सुन्दर तदा॥ ३०॥

अथ वारह राशि के नाम

छप्पय

मीन स्वाद सौं वध्यौ मेष मारन कौं आयौ।
वृष सूकौ ततकाल मिथुन करि काम वहायौ॥
कर्क रही उर माहिं सिंघ आवतौ न जान्यौ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल उडान्यौ॥

प्राकाशक=यह प्राकाम्य नाम की सिद्धि के स्थान में लिखा है। ईषिता=ईशित्व सिद्धि। अवसिता=कामावसिता सिद्धि। वसिता=वशित्व सिद्धि।

(२९) वारहिवार=वारम्बार, निरतर। मार्गशिर=मार्गशीर्ष, अगहन।

(३०) द्रवति=प्रेम में मग्न हो हृदय बहने लगै। अश्वनि=यहां निरतर, नित्य का अर्थ है=अ+श्व=कल जिसमें नहीं। और आश्विन मास का अर्थ तो है ही।

वृश्चिक विकार विप डंक लगि सुंदर धन मित न भयौ ।
परि मकर न छाड्यौ मूढमति कुंभ फूटि नर तन गयौ ॥ ३१ ॥

ज्ञान नरक

छप्पै एकादशी *

मन गयद् बलवंत तासके अंग दिपाऊं ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह चहु चरन सुनाऊं ॥
मद मच्छर है सीस सुंढि तृष्णा सु हुलावें ।
द्वन्द दसन है प्रगट कल्पना कान हुलावै ॥
पुनि दुविधा दृग देखत सदा पूछ प्रकृति पीछै फिरै ।
कहि सुन्दर अंकुश ज्ञान कै पीलवान गुरु वसि करै ॥ ३२ ॥

---

(३१) राशियों के नामो पर अक्षरों से अर्थान्तर दिखाने की चेष्टा है। वृष=वृक्ष। सूकौ=सूख गया। कर्क=करक, कसक। सिंघ—ध्वनि से, सींग। आवतौ=उगता हुआ क्रमशः निकला इससे ज्ञात नहीं हो सका। अकतूल=अक का अर्थ पाप (अघ), तूल रुई की तरह (जैसे पिदने मे धुनने से) उड़ गया था अकतूल=बादयान नाव का हवा भरने से नाव को चलता करता है। विकार=विषय का विप, बीछू के डङ्क समान। धन=ससार की सम्पत्ति। मकर=मक्र, फरेब, कपट, दम्भ। कुंभ=जैसे घड़ा फूट कर नाश होता है और फिर काम नहीं आता, वैसे यह मनुष्य शरीर मृत्यु पाकर किसी काम का नहीं रह जाता है। अतः जीतेजी ही भजन, ज्ञान, भक्ति करना।

* यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। ये सब ग्यारह छप्पय ज्ञान की पराकाष्ठा और वेदांत सिद्धांत से सराबोर हैं।

(३२) इस छप्पय मे मन को हाथी का सुंदर रूपक बाधा है। द्वन्द दसन है प्रकट हाथी के बाहर के दो दांत (दो तो) दीखने मात्र हैं, वैसे द्वैत या भेद भ्रम मात्र ही है।

पातिशाह रहमान हजूरी कीये वंदे।
और किये उमराव जिते अवतार कहिंदे ॥
अवलि दूम अरु सीम चिहारम पच हजारी।
उनकौ सूबा दिये किये जग मे अधिकारी ॥
वे वंदे निकट सदा रहैं पिजमतगार हजूर के।
कहि सुन्दर दूर पडे रहैं जे सूबाइत दूर के ॥ ३३ ॥
परब्रह्म पतिशाह ज्ञान कहिये सहजादौ।
सांख्य योग अरु भक्ति वडे उमराव अनादौ ॥
और क्रिया सव रीति जज्ञ जप तप व्रत जेते।
तीर्थ अटन स्नान दान यम नियम सुकेते ॥
ज्यौं व्याह समै अपने सुतहिं सहजादौ करि गाइयौ।
कहि सुन्दर सहजादौ उहै पातिशाह उर लाइयौ ॥ ३४ ॥
जाग्रत देह स्थूल सकल गुण वर्त्तत जामहि।
स्वप्न सु लिंग शरीर उहै विधि जानहु तामहिं ॥

---

(३३) पतिशाह=परमात्मा वादशाह—सर्वेश्वर सर्वनियता। रहमान (अ०)= अत्यत दयालु। दूम=दोयम (फा०) दो हजारी वा दूसरे दरजे के। सीम= (फा०) सोयम=तीसरे दरजे के। पजहजारी=पांच हज़ार के मनसवदार, वहुत वड़े दरजे के। वादशाह के दरवार और आमखास और मनसवदारी का रूपक भक्तों और ज्ञानियो को लेकर वांधा है।

(३४) सहजादा=शाहज़ादा—वादशाह का पुत्र। ज्ञानरूपी शाहज़ादा वादशाहरूपी ब्रह्म से प्रगट होता है। 'आत्मा वै पुत्र'— पुत्र है सो अपनी आत्मा ही है। 'ज्ञान ब्रह्म'—ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है। भावार्थ यह कि ईश्वर को पुत्र समान ज्ञान ही अत्यत प्यारा है। 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता) ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। जिसको परमात्मा ने अपने हृदय से लगाया—अपना समझा कृपा करके वही (भक्त वा ज्ञानी) पुत्र समान अपनाया गया। 'यमेवैष वृणुते'—

सुषुपति मैं सब लीन स्वप्न जाग्रत पुनि आवै।
तीनि अवस्था माहि भ्रमै सो जीव कहावै॥
साक्षातकार तुरिया विषै ईश्वर ताहि बखानिये।
तुरिया अतीत सो ब्रह्म है सुन्दर यौ करि जानियं॥ ३५॥

अत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि।
अस्थि मास अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि॥
शूद्र सु लिंग शरीर वासना बहु बिधि जामहि।
वश्य हु कारण देह सकल व्यापार सु तामहि॥
यह क्षत्री साक्षी आतमा तुरिय चढे पहिचानिये।
तुरिया अतीत ब्राह्मण वही सुन्दर ब्रह्म बखानियं॥ ३६॥

अहंकार चाडाल बहुत हिंसा को कर्त्ता।
मन को शूद्र सुभाव कर्म नाना विस्तर्त्ता॥
बुद्धि वैश्य यह होइ करै व्यापार जहा लौ।
चित्त सु क्षत्रिय जानि नृपति नहि लोक तहाँ लौं॥
यह ब्राह्मण साक्षी आतमा सदा शुद्ध निर्मल रहै।
तुरिया अतीत जानहु वही ब्रह्म रूप सुन्दर कहै॥ ३७॥

जिसको योग्य समझता है उसही को दरस दिखाता है। अर्थात् ज्ञान और पराभक्ति ही से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। (यमेवैष वृणुते तेन लभ्य · ”। कठ।२ या वल्ली।२२)

(३५) वेदात के अनुसार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चार ही अवस्था ए है। शुद्ध निर्गुण तुरीयातीत ब्रह्म को उक्त चारो से परे भिन्न ही स्वामीजी ने कहा है।

(३६) चार वर्ण और पाचवा अत्यज कहकर उक्त ५ अवस्थाओं को समझाने का रूपक बाधा है। तुरिय=घोडा अश्व कहकर सुन्दर श्लेष से अलङ्कार बनाया है।

(३७) अतःकरण चतुष्टय और पाचवें आत्मा को लेकर वही वर्णों का अलङ्कार बाधा है।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै।
दुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीकी बिधि करई।
चतुर्भूमि साक्षातकार सशय सब हरई॥
अब तासौ कहिये ब्रह्म बिदु बर बरियान बरिष्ठ हैं।
यह पच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहै॥ ३८॥
सुख दुख नींद अरूप जबहिं आवहिं तब जानें।
शीत हु उष्ण अरूप लगेतें सब पहिचानें॥
शब्द रु राग अरूप सुनेतें जानें जाहीं।
वायुहु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु माहीं॥
इहिं भाति अरूप अखड है सौ कैसें करि जानिये।
कहि सुन्दर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिये॥ ३९॥

---

(३८) साक्षात्कार तक चार। और फिर तीन भूमिका वर–वरियान–वरिष्ठ। और ज्ञान की ७ भूमिकाए योगवाशिष्ठानुसार "हठयोग प्रदीपिका" में आरभ में कही हैं जिनका कथन ऊपर भी अन्यत्र टीका में कर दिया गया है। वे ७ भूमिकाए हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थभाविनी और तुर्यगा। (हठयोग प्रदीपिका। उपदश १। श्लो० ३ की टीका और पादटीप।)। इनमें प्रथम ४ तो सम्प्रज्ञात समाधि की, और आगे की ३ (सातवीं तक) असम्प्रज्ञात समाधि की हैं।

(३९) सुखदुखादि स्थूल दृश्यमान तो नहीं है परन्तु अरूप और मनबुद्धि इन्द्रियों से (स्पर्शादि से) जाने जाते हैं। परन्तु आत्मा चेतन स्वरूप है तब भी इस प्रकार कैसे जाना जा सकता है ? अर्थात् योग के प्रकारों ही से साक्षात हो सकता है। जो ज्ञान की भूमिकाए दी है उनसे जो प्रक्रिया वेदात में दी है उससे भी।

एक सत्य परब्रह्म एकतें गनती गनिये।
दश दश आगे एक एक सौ ताईं भनिये॥
एकहिं को विस्तार एक को अंत न आवै।
आदि एक ही होइ अन्त एकहि ठहरावै॥
ज्यौं लूता तत पसारि कै बहुरि निगलि लूता रहे।
यौं सुन्दर एक अनेक ह्वै अन्त वेद एकै कहे॥ ४० ॥

अन्तहकरण अदृष्टि प्रमाता मापनिहारौ।
इन्द्रिय पच प्रमाण प्रगट गज ताहि विचारौ॥
पच विपय सु प्रमेय उहै कपरा गहि मापं।
इन तें गज यह भयौ प्रमा पुनि ताहि स्थापै॥
चत्वार विभाग प्रपच यह अज्ञान तें दिपान है।
कहि सुन्दर वस्तु विचार ते जगत विलै ह्वै जात है॥ ४१ ॥

अन्तहकरण चतुष्ट प्रमाता तोलत जानहु।
इन्द्रिय पच प्रमाण तराजू बाट बपानहु॥

(४०) जैसे परब्रह्म एक है उससे अनत सृष्टिए हैं। वैसे ही एक की सख्या से अनेक अनत गन्याए एक २ बढ़ाने से बनती हैं। और सख्याओ मे से एक २ घटाने से शेष एक रह जाता है। ऐसे ही सारी सृष्टि ईश्वर से निकली है और उसही मे समा जाती है। जैसे मकड़ी जाला पूर कर फिर अपने अन्दर समेट लेती है। यह दृष्टांत प्रायः वेदात मे सृष्टि और प्रलय के समझाने मे दिया गया है।

(४१) प्रमाता, प्रमाण प्रमर और प्रमेय—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—को बज्जाज, गज और कपड़े के दृष्टात से समझाया है। प्रमा=यथार्थ ज्ञान। स्मृति (याद) से प्रमा भिन्न है। प्रमा ज्ञान का करण ही प्रमाण कहाता है। प्रमा ज्ञान अज्ञाभित अर्थ को बताता है अर्थात् विषय करता है। प्रमा ज्ञान प्रमाता साक्षी चेतन के आश्रित है नही अतःकरण के आश्रित है। (देखे विचार सागर अङ्क १९८—२०१)। ये साभास ज्ञान होने से अविद्या (अज्ञान) कहा है।

तौलन लागै ताहि पच जे विषै प्रमेय।
तौलै तें ठहराइ प्रमाता ही कौ ज्ञेय॥
कहि सुन्दर वस्तु विचार तें कहां प्रमाता पाइये।
पुनि कहा प्रमाण प्रमेय है कहा प्रमा ठहराइये॥ ४२॥

(१२) अथ अन्तर्लापिका

छप्पय

(१)

लका मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर।
महीपाल गौपाल ब्याल पुनि धाइ गहै वर॥
मेघ आश धुनि प्यास नाश रुचि कंवल वास जहि।
वुद्ध तात हनु तात प्रगट जगतात जानि तिहिं॥
तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थ हि कहौ विचार करि।
चत्वार शब्द सुन्दर वदत 'रामदेव सारग हरि"॥ ४३॥

(२)

देह मध्य कहि कौंन कौन या अर्थ हि पावै।
इन्द्रिय नाथ सु कौंन कौन सब काहू भावै॥

---

(४२) यहां ताखडी बाट के उदाहरण वा दृष्टांत से वही विषय समझाया है। वस्तुविचार=वेदांत की प्रक्रिया से विचार करने से जो अचेतन है वह चेतन के प्रत्यक्ष में लुप्त हो जाता है।

(४३) इस अतर्लापिका में "१ राम—२ देव—३ सारग—४ हरि" यह चार शब्द निकलते है। पहिले चरण में १ रामचन्द्र २ परशुराम और वलराम निकलते हैं जो "राम" शब्द के अर्थ मे हैं। दूसरे में राजा, कृष्ण, जो देव के द्योतक वा पर्याय हैं। व्याल (सर्प) को पकड़ कर खाय सो मयूर (सारग) है। मेघ और पपीहा भौंरा और चातक भी सारग कहे जाते हैं। बुद्ध तात= बुध का बाप चन्द्रमा जो 'हरि' का पर्य्याय है। हनुतात=हनुमान का पिता पवन जो 'हरि' का पर्याय है। जगतात=भगवान 'हरि' हैं ही।

पाये उपजत कौन कौन के शत्रु न जनमैं।
उभय मिलन कहि कौन दुष्ट के कहा न तनमैं॥
अघ सुन्दर को पावन जगत कौन रहे पुनि व्यापि करि।
"प्रान जान मन मान सुख साधु संग हित नाम हरि" ॥ ४४ ॥

(३)

कापालिक मत कौन कौन त्रेता युग कर्मा
रवि सुत कहिये कौन कौन जैननि के धर्मा॥
त्यक्त सयंज्ञा कौन कौन सतनि मुख सोहै।
वचन प्रमान सु कौन कौन कतहू नहिं मोहै॥
कहि सुन्दर अंकुश कौन सिरि आन पकरि काले कह्यौ।
'योग यज्ञ यम नेम तजि नाम सत्य दृढ करि गह्यौ" ॥ ४५ ॥

---

(४४) देहमध्य='प्राण'। अर्थजाने='जान', ज्ञानी। इन्द्रियनाथ='मन'। सबको भावै='मान', सम्मान। मान पाये 'सुख' उपजै। साधु के 'शत्रु' नहीं होता। उभय मिलन='संग', मिलाप। दुष्ट के 'हित' (परहित, अच्छा चाहना वा प्रेम) नहीं। जगत को पावन (पवित्र) करनेवाला 'नाम' (भगवान का)। सर्वत्र व्यापक 'हरि' भगवान हैं। यों अत्य पाद के शब्द निकले।

(४५) कापालिक मत='योग' (कापालि शैवमत के जोगी जो मनुष्य का कपाल वा खोपड़ी रखते हैं और देवी के बलि चढाते हैं)। त्रेता का कर्म='यज्ञ'। रविसुत='यम'राज। जैन का धर्म=नेम नाथ। त्यक्तसयज्ञा=त्यागने के लिए शब्द='तजि' 'सयज्ञा'=सज्ञा का विकृत रूपांतर (यदि 'त्यक्त सुसज्ञा' पाठ हो तो अच्छा)। सतों के 'नाम' (भगवान का) सोहै। कतहू नहिं मोहै सो 'सत्य' है जो मोहसे डावाडोल नहीं होवै। अंकुश 'करि' (हाथी) के माथे में आन (लावै, दे)। किस शब्द को लेकर पकड़ने के अर्थ मे कहैं ?—'गह्यौ' शब्द को। यों अत्य पाद के शब्दों का अतर्लापिका में प्रयोग हुआ।

(१३) बहिर्लापिका

उत्तम जन्म सु कौन कौन बपु चित्रत कहिये।
ब्रह्मा पोज्यौ कवन कौन पय ऊपरि लहिये ॥
धनुप सधियत कौन कोन अक्षय तरु प्रागा।
दृग उन्मीलत कौन कौन पशु निपट अभागा ॥
अव दान कवन कर दीजिये कौन नाम शिव रसन धर।
कहि सुन्दर याकौ अर्थ यह "नमोनाथ सव सुखकर" ॥ ४६ ॥

(१४) अथ निमात छद

मनहर

जप तप करत धरत व्रत · ··· ·· लपत जन ॥ ४७ ॥

(इस छद के सव अक्षर अकारान्त हैं और यह 'सवैया' के 'चाणक के अग' मे २ रा छद है।

---

(४६) यह भी अन्तर्लापिका ही है। क्योंकि अर्थ छद मे से ही निकलता है। अन्त के र कार के साथ 'न-मो-ना-थ-स-व-सु-ख-क-र मिलाने से जो शब्द बनते हैं सोही अर्थ देते हैं। यथा उत्तम जन्म—'नर' का है। किसका वपु (शरीर) चित्रित है 'मोर' (मयूर) का—चदवे और रग हैं। ब्रह्मा ने क्या खोजा ?—'नार' (नारि=सावित्री)। पय (दूध) के ऊपर से क्या लेते हैं ? 'थर'–(मलाई)। धनुष में क्या साधा (लगा कर चलाया) जाता है ? 'सर' (शर=तीर)। प्राग (प्रयाग में अक्षय रोंख कौन है—'वर' (वड़—वटवृक्ष—अक्षयवट।)। उन्मीलित (खुले हुए—निद्रारहित) दृग (नेत्र) कौन हैं ?—देवता 'सुर' देवगण को निद्रा नहीं आती वे सदा जाग्रत ही रहते हैं। इसीसे उनका नाम 'अस्वप्न' भी है। यथा—'आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धस' (अमरकोश ।१।१।८)। निपट अभागा पशु—'खर' (गधा) है। दान किससे देते हैं ?—'कर' (हाथ) से। 'सुख' शब्द वोलने में यहा 'सुक्ख' वुलैगा, परन्तु लिखने में ख (केवल) से ही रहैगा, नहीं तो सुख, खर ये दोनों शब्द विकृत हो जायगे।

(१५) अथ निगड बध

छप्पय

(१)

अधर लगे जिनि कहत वर्ण कहि कौन आदि कौ।
सब ही तें उत्कृष्ट कहा कहिये अनादि कौ॥
कौन बात सो आहि सकल ससार हि भावै।
घटि वढ़ि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै॥
कहि सत मिलि उपज कहा दृढ करि गहिये कौन कहि।
अब मनसा वाचा कर्मना "सुन्दर भजि परमानन्दहि"॥ ४८॥

(२)

प्रथम वर्ण महि अर्थ तीनि नीकी विधि जानहु।
द्वितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि सोऊ पहिचानहु॥
त्रितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि ता मध्य कहिज्जे।
चतुर्वर्ण मिलि अर्थ तीनि तिनि कौं सु लहिज्जे॥

---

(४८) निगड=बेड़ी, जजीर। इस छप्पय के अन्दर "परमानद हि" वाक्य मे जो शब्द निकलते हैं वा अक्षर काम मे लिये जाते है वे गुथे हुए से हैं। इससे इसे निगडबन्ध कहा है। प—पकार अक्षर पवर्ग का आदि का (पहिला) वर्ण (अक्षर) है। पवर्ग के पाचो अक्षर होठ मिलने से बुलते हैं। औष्ठ्य है। पर=उत्कृष्ट। अनादि परमात्मा। परमा=शोभा सब को भाती है। परमान=प्रमाण (सबूत) देने से बात पक्की होती है। परमानद=सत मिलने से परमानद प्राप्त होता है। परमानदहि=(हि—इति निश्चयेन) परमानन्द ही को निश्चय करके दृढ (दृढता—मजबूती से) गहि=नाम पकड़ो वा ग्रहण करो। भजि=प्राप्ति के अर्थ चितवन, ध्यान करते रहो।

"कविप्रिया" मे केशवदासजी ने इसे "व्यस्त समस्तोत्तर" नाम दिया है (१६ प्रभाव। ५२।)

पुनि त्यौं पचम षष्टम सप्तम अष्टम नवम सुनहु पछू।
कहि सुन्दर याकौ अर्थ यह "करन देत काहू कछू" ॥ ४६ ॥

(४९) प्रथम वर्ण 'क'—इसके तीन अर्थ=जल, अग्नि, सुख। 'कर'—इसके तीन अर्थ=हाथ, किरण (सूर्य वा चांद की), हाथी की सूड़। 'करन'—इसके तीन अर्थ=राजा करण (महादानी), इन्द्रिय, देह। 'करन दे'—इसके तीन अर्थ=(१) करने दे (काम आदिक को), (२) जकात (कर) न दे (मत दे) (३) करन दे—कर्ण (कान) दे—उपदेश गुरु वाक्य मे। 'करन देत'—इसके तीन अर्थ (१) करन (करण राजा) देता है। (२) (सूर्य वा चन्द्रमा) कर (किरणें) देते हैं। (३) कर (अपना हाथ) पतिव्रता स्त्री (दूसरे पुरुष को) नहीं देती है—अनन्य भक्त दूसरे को नहीं भजता है। 'करन देत का'— इसके भी तीन अर्थ—(१) क्या करने देता है?—अर्थात् कम करने से क्या रोकता है?। (२) करन (करण राजा) क्या देता है? अर्थात् सोना देता है। (३) करन (करण—कान) देता है (लगाता है—गुरु शास्त्र के वचन में) क्या? (पूछता है कि) क्या सुनता है ध्यान देकर?—गुरु का उपदेश सुनता है। 'करन देत काहू'—इसही प्रकार तीन अर्थ हो सकते हैं। 'करन देत काहू कछु'—इसके भी 'कछु' का प्रयोग करने से तीन अर्थ हो सकते हैं। छह सात अक्षरों—अर्थात् क-र-न-दे-त-का-हू—तक अर्थ यथाव चलते हैं। आगे क—छ्—के लगाने से कोई विशेष अर्थों की योजना सम्भव प्रतीत नहीं होती।

इस छप्पय पर फतहपुर के महत स्वामी श्री गगारामजी के दिये सग्रह मे, एक पाना टीका का मिला। उसकी आवश्यक सशोधन के साथ, अविकल नकल यहां दे देते हैं कि जिससे उस प्राचीन टीका की रक्षा हो और पाठकों को विशेष प्रकाश मिलै। "शीत ऊष्न दुख कर सु कहा चहै विषयी पशु नरु। शवद विषै पुनि धर सु कहै जग जन शिप गुरु॥ पुनि सुर ताको ध्यान तासु जस सुनि कहै कहा सुनि। अदत, दया, पतिव्रत, अग सो देत न गुनि॥ मन, मुनि, हरिजन देत अङ्ग का तन की दशा जे तन पछू। अब याको अर्थ जु येह है 'करन देत काहू कछू' ।१। दोहा। कै सुख, कै जल, कै अनिल, कै सर, कै पुनि काम। क कचन

सौं प्रीति तजि, अरु भजिये हरिनाम ।२। कर गज पुष्कर, हस्त कर, कर जगात कर दान। कर विषया तजि हरि भजो जो प्रभु अमी समान ।३। करण कहावै रवितनय, करण कहावै कान। करण नाव चरन इन्द्रियन करणधार भगवान ।४। क—जल, अग्नि, सुख—क कहिये जल जाकू तो शीत लागै। क कहिये अग्नि जाको काम लागै। क कहिये सुख सो भजन सों लागै। क कहिये काम जासों विषय के अन्त में दुख होइ। कर जो विषयो सो कर भोग कर कहा चहै? विषयों को ।१। नृप जो राजा कर भोग कहा चहै? हासिल चहै, नाम चहै जगात ।२। सुर जो देवता कर भोग कहा चहै? पूजा चहै ।३। करन जो कान भोग कहा चहै? शब्द को चहै।१।—करन जो शिश्ना इन्द्रिय भोग कहा चहै? विषय चहै।२। करण राजा कहा चहै? पुन्य कियो चहै।३।—अब गुरु के पास तीन जिग्यासी (जिज्ञासु) आये तिनको समुचय से उपदेश गुरु ने यह दियो कि "तुम करन दो"—। सो उन तीनो ने अपने २ आशय के अनुसार अर्थ किया। (१) प्रथम जगतन (ससारी) ने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम (हाथों से) दान दे। (२) जन जो साधुजन- उसने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम कान दे शास्त्र श्रवण में। (३) अरु शिष्य ने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम अपनी इन्द्रियों को (बाहर से रोक कर) हरि के ध्यान में दे। सो आगे तीनों ने ये ही किया—(१) जगतन ने तो दान दिया। (२) अरु साधु ने शास्त्र श्रवण किया। (३) अरु शिष्य ने हरि-ध्यान किया ॥५॥—अब मुनिजन जीवन को निषेध करते हैं—कर दान दियौ तो का? कुछ नही कियौ। १ चौपाई०। पावन निमत्त०। 'करन'—श्रवन कियौ तो का? कुछ नहीं कियौ। और 'करन दे' ध्यान धरयो तो का? कुछ नहीं कियौ ॥६॥ 'कर न देत'—या का ऐसा अर्थ होता है—काहू सम किसी पुरुष को कर से दान नही देता है। कर हाथ करि के दयावान पुरुष किसी जीव मात्र को चोट नहीं देता। 'कान देन काहू'—पतिव्रता काहू (अन्य पुरुष) को हाथ नहीं देती। स्पर्श नहीं करती) है ॥७॥ 'करन देत काहूक'—मन वांछित मे अपने वृत्ति देत ।१। 'करन देत काहूक'—मुनि अपनी इन्द्रियों को हरिध्यान मे देत (लगाते हैं) ।२। 'करन देत काहूक'—

(१६) अथ सिंघावलोकनी

सज्ञा कौंन अखंड कौंन हरि सेवा लावे।
कठ विराजें कौन कौंन नर सग कहावै॥
गुनहगार का पाइ कहा चाहै सब कोई।
कपि कै गल में कहा कहा दु हुवनि मिलि होई॥

हरि आपकी भक्ति काहू को (जात पांत पूछे नहि कोइ। हरिकों भजे सो हरि का होइ।) कोई भी हरि को भजे उसे ही देत (दे देता है)। ३।८। 'करन देत काहू व छू'— तन जो पिछला जन्म काहू को कछू—विपर्जं—(उलटी) क्रिया न देत—नहीं देता है वा होने देता है—(सब कुछ प्रारब्ध कर्मानुसार होता रहता है विपरीत नहीं होता है। शरीर अपने भाग भोगता है।)।१। 'करन देत काहू कछ्'—साधु काहू को कुछ दड नहीं देता है।२। 'करन देत काहू कछू'—(मुनिजन) इन्द्रियों को विषयों में तनिक भी नहीं जाने देते हैं।३।—॥९॥ दूजो अर्थ—सिद्धान्त अवस्था में करन जो इन्द्रियां निरहकार हुई थकी—कैसे ही वरतो—प्रारब्ध की प्रेरी थकी—ज्ञानी के बाधा नहीं। जीवन्मुक्त हुवा वरतै। "ज्ञानी कर्म करे नाना विध "। इत्यादि अब मुनिजन जीवों का साधन को निषध करते हैं—अरे दान दिया तो का ?—कुछ नहीं। चौबोला छद—"पावन हेत देह जो दांनां। जीवन कीमति कसकस दाना॥ हस्ती हाड करि रोंहें दांनां। सुदर सत मिले नहिं दांनां ॥१॥ श्रवन करयौ तो कहा ? कामना करिकें—कुछ नहीं। श्रवण करयो (अरु) धारणा नहीं करी तो कहा ? कुछ नहीं।२। ध्यान धरयो तो कहा ? कुछ नहीं। (क्योंकि)। दोहा। "ध्यान धरे का होत है, (जे) मनका मैल न जाइ॥ बगमी मीनी का ध्यान धरि, पशू विचारे खाइ" ॥३॥ (इति निगड-बध को अर्थ सक्षेप सों समाप्त)॥

नोट—इस प्रकार के अर्थों का पाना (पत्र) हमको उक्त सग्रह में प्राप्त हुआ सो यहां लिखा गया। दु ख तो इस बात का है कि न जाने ऐसे कितने पत्रों तथा ग्रन्थों का उन महाप्रज्ञ स्वामी सु० दा० जी का था जो शिष्यादि की असावधानी और काल के प्रभाव से नष्ट हो गया॥

अब सुन्दर पथिक कहा कहै मुक्त क्षेत्र का नाम है।
कहि हर रिपु हजरति थान को "सदा मारसी काम" है ॥ ५० ॥

(१७) अथ प्रतिलोम अनुलोम

काठ माहिं का देत कहा प्रीतम कौं कीजै ॥
पाव चढन सौं कहा कहा धनुष हि सधीजै ॥
कापर है असवार वचन का प्रत्यक्ष कहावै।
पान करैं सो कहा कहा सुनि अति सुख पावै ॥
अब कहा दढावै जैनमत का बिरहनि उर लगि बकी।
कहि सुन्दर प्रति अनुलोम है "यह रस कथा दयालकी" ॥ ५१ ॥

(१८) अथ दीर्घाक्षरी

मनहर

"झूठे हाथी झूठे घोरा ·· ·· प्रानी है" ॥ ५२ ॥
(इस छंद में सब अक्षर गुरु अर्थात् दीर्घ है, और यह छंद 'सवैया' के 'काल चितावनी के अंग' का २५ वां छंद है।)

(१९) ज्ञान प्रश्नोत्तर चौकड़ी

प्रथम होइ जिज्ञास महि दृढ करि बैरागा।
बाहिर भीतरि सकल कर मन वच क्रम त्यागा ॥
सद्गुरु सरनैं जाइ कहै प्रभु मेरै चिन्ता।
जन्म मरन बहु काल भ्रमत नहिं आवै अन्ता ॥
क्यूं छूटौं आवागवन तें मेरैं यह चिन्ता भई।
अब आयौ हौं तुम्हरै सरन तुम सद्गुरु करुणामई ॥ ५३ ॥

---

७ यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। स०। इसके चारों छंदों में वेदांत का सार सरल सुंदर वाक्यों में कूट २ कर भर दिया है। १-२-३-४ इन चारों छंदों में वेदांत की प्रक्रिया अति ही संक्षेप में स्वामीजी ने कृपा करके कही

देष्यौ अति जिज्ञास शुद्ध हृदये लय लीना।
सद्गुरु भये प्रसन्न ज्ञान वासौं कहि दीना॥
जन्म मरन नहिं तोहि वहुरि सुख दु ख न दोऊ।
काल कर्म नहि तोहि द्वन्द्व परसै नहिं कोऊ॥
अव तत्वमसीति विचारि शिष सामवेद भाषै स्वय।
कहि सुन्दर सशय दूरि करि तू है ब्रह्म निरामय॥ ५४॥

आतम ब्रह्म अखड निरन्तर है अनादि कौ।
जन्म मरन कौ सोच करै नर वृथा वादि कौ॥
स्वप्नै गयौ प्रदश वहुरि आयौ घर माहीं।
जव जाग्यौ घर माहि गयौ आयौ कहु नाहीं॥
यहु भ्रमहो को भ्रम ऊपनौ भ्रम सव स्वप्न समान है।
कहि सुन्दर ताको भ्रम गयौ जाकै निश्चय ज्ञान है॥ ५५॥

प्रष्णोत्तर

पूछत शिष्य प्रसग पूछि शका मति आनै।
तुम कहियत हौ कौन मूढ तू मोहि न जानै॥
किहि विधि जानौ तुमहिं दह क कृत माँत दपै।
तौ प्रभु देषौ कहा ज्ञान करि आशय पेष॥
गुरु कहौ ज्ञान ज्यौं मैं सुनौ सुनि करि निश्चय आनि है।
अव मैं प्रभु उर निश्चय कियौ तो सुन्दर कौं जानि है॥ ५६॥

है। अधिकारी हुए विना तो शिष्य नहीं हो सकता। और योग्य सद्गुरु मिले विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकता है। इसका एक प्रसग है—एसा कहते हैं कि सुदरदासजी के कुछ वेदांत के सवैये एक ज्ञान के पिपासावाले मनुष्य ने सुने तो वह तुरत विरक्त हो गया। और ब्रह्म प्राप्ति के निमित्त मग्न हुआ सुदरदासजी को ढूढ़ता हुआ उनके पास फतहपुर आया, पजाव के लाहोर शहर से चल कर। यहाँ फतहपुर मे स्वामीजी की अत्यन्त उच्च अवस्था ज्ञान की और उनके शुद्ध आचरा

(२०) काया कुंडलिया -

काया गढ को गव थौ अहंकार बलबंड।
ता ले अपने बसि कियौ आतम बुद्धि प्रचंड॥
आतम बुद्धि प्रचण्ड खंड नव फेरि दुहाई।
मन इन्द्रिय गुण रत आपने निकट बुलाई॥
सब सो ऐसें कह्यौ बसो तुम हमरी छाया।
सुन्दर यौ गढ लियौ विपम होतो गढ काया॥ ५७॥

विचार ... उनका शिष्य हो गया और बहुत काल समीप रह कर ज्ञानमय भक्ति के आनन्द के रस को पान करता हुआ पंजाब की तरफ विचर गया। उन्ही बात की भूमिका पर यह रचना स्वामीजी की की हुई हो तो मानने योग्य है और ऐसा ही प्रतीत होता है। ऐसी प्रक्रिया और साधना वेदांत ग्रन्थों मे बहुत उत्तम और विस्तार से लिखी हुई है और वेदांत के जिज्ञासु पुरुष उस प्रणाली से ज्ञान प्राप्त करके अद्वैत सिद्धि को पाते हैं—भगवान और गुरु कृपा के प्रताप से। वेदांत का 'प्रस्थानत्रयी"—वेदात की "लघुत्रयी"। गोरखनाथजी—स्वामीजी—दादूजी श्यामचरणदासजी आदि महात्माओं की वाणियां, सद्गुरु और सत्संग।

ॐ कुंडलिया के पहिले 'काया' शब्द संपादक का लगाया हुआ है क्योंकि इस कुंडलिया में काया का वर्णन है।

(५७) (कुंडलिया) बलबंड=निजबल के घमंड मे मदमत्त। आतमबुद्धि= आत्मज्ञान—ब्रह्मज्ञान। खंड नव=इस शरीर में सकल सृष्टि सूक्ष्मरूप से मानी है। और यह नवद्वारका महानगर है। दुहाई=डोंडी राजा के हुक्म की। रत= रइयत, प्रजा। छाया=छत्रछाया, आधीनता में। विपम=दुर्घट, दुर्गम, कठिनता से प्राप्त होनेवाला। अहंकाररूपी राजा को ब्रह्मानन्द राजा ने जीत कर काया गढ को अपने आधीन कर लिया। अहंकार पर विजय पाते ही मन और इन्द्रियां तथा विपयादि भी आधीन हो गये।

(२१) अथ संस्कृत श्लोकाः

छंद शादूर्लविक्रीडितं

माधुर्योत्तर-सुन्दरा मम गिरा गोविन्दसम्बन्धिनीम् ।
यो नित्यं श्रवणं करोति सतत स मानवो मोदते ॥
न्यूनाधिक्य विलोक्य पण्डितजनो दोष च दूरी कुरु ।
मे चापल्यसुबालबुद्धि कथित जानाति नारायण. ॥१॥
पृथ्वीवारिचतेजवायुगगन शब्दादि तन्मात्रकम् ।
वाह्याभ्यन्तरज्ञानकर्मकरणैर्नाना हि यद्दृश्यते ॥
तत्सर्वं श्रुतिवाक्यजालकथितं अन्ते च मायामृषा ।
एक ब्रह्म विराजते च सतत आनन्दसच्चिन्मयम् ॥२॥

श्लोक १—माधुर्योत्तर=अत्यन्त मधुर। माधुर्यगुण जिसमें अत्यधिक हो। गिरा=बाणी, रचना। मोदते=मोद में भरता है। प्रसन्न हो जाता है। चापल्य=चपलता। भावार्थ=मेरी बाणी (रचना) भगवत्सबन्ध की (शांतरस-प्रधान) है। जो अत्यन्त ही मीठी है और सुदर है। जो पुरुष इसे नित्य ही सुनता है वह आनन्द (ब्रह्मानन्द) पाता है। पडित जन इसमें कमी वेशी को देखकर जो कुछ दाप दीखै उसे दूर कर लें—सुधार लें। मेरी तो यह वालबुद्धि और चपलता से की हुई वा कही हुई रचना है। इस वात को ईश्वर ही जानता है (अर्थात् मैंने ता परमात्मतत्व सम्बन्धी बाणी कही है। इसको भगवान परमात्मा जानता है कि कैसी वनी। बुरीभली सव उसको अर्पण है। अथवा मुझे लोग बड़ा महात्मा और कवि भले ही मानें, वास्तव में भगवान के सामने मेरी यह केवल वाललीला और अविनय मात्र है। जिसके लिए भगवान क्षमा करेंगे।)

श्लोक २—पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा और आकाश पांच तत्व, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध पांच तन्मात्राए, वाहर भीतर ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्त करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहकार) तथा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों (हस्त, पाद,

छंद अनुष्टुप्

अहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेति निश्चयम्।
ज्ञाता ज्ञेय भवेदेक द्विधा भावविवर्जितम्॥ ३॥
अहं विख्यात चैतन्य देहो नाहं जडात्मकम्।
जडाजडो न सम्बन्धो देहातीत निरामयम्॥ ४॥

छंद भुजंगप्रयात

न वेदो न तन्त्र न दीक्षा न मन्त्रं, न शिक्षा न शिष्यो न आयुर्न यन्त्र।
न माता न ताता न बन्धुर्न गोत्रं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते विचित्रम्॥ ५॥

वाक्, उपस्थ और मेढ़) से जो स्थूल सूक्ष्म रूपों में नाना पदार्थ और कर्म दिखाई देते वा ज्ञात होते हैं, ये सब सुनने और कहने के जाल मात्र हैं, नाम रूपात्मक जगत् मात्र का सारा ही मिथ्या झूठी माया ही है। वस्तुत एक ब्रह्म सत्-चित-आनन्द स्वरूप ही विराजता है वा सर्वोत्कृष्ट परमपवित्र सर्वशुद्ध ही सच्चा है और कुछ नहीं है।

श्लोक ३—निश्चय यही है कि मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मेरी आत्मा ब्रह्म है। ज्ञाता (जाननेवाला) और ज्ञेय (जो जाना जाय विषय पदार्थ) वे दोनों एक ही है, भिन्न नहीं हैं, दिव्यज्ञान होने की दशा में व एक ही हो जाते हैं। और द्विधाभाव—द्वैत—ब्रह्म और माया—मैं और तू—ज्ञाता और ज्ञेय—ऐसा द्वैतभाव मिट जाता है।

श्लोक ४—मैं (आत्मा) विख्यात चेतनस्वरूप (ब्रह्म) हूं। जड़ात्मक देह (स्थूल) नहीं हूं—अर्थात् देह में आत्मा का अध्यास करना अज्ञान है। जड़ के साथ चेतन का सत्य सम्बन्ध नहीं है—अर्थात् जो जड़ है सो चेतन नहीं, और चेतन है सो जड़ नहीं। वस्तुत जड़ सब मिथ्या भ्रम है—जो कुछ है सो चेतन वा उसकी सत्ता ही है—क्योंकि वह चेतन निरामय (निर्लेप—निरंजन) सापेक्ष देह (जड़) से भिन्न है। देखो ब्रह्मसूत्र पर शंकर भाष्य का उपोद्घात—"युष्मदस्मद्…"।

श्लोक ५—जो न वेद है, न तंत्रशास्त्र है, न दीक्षा (गुरुमंत्र) है न मंत्र

छद अनुष्ठुप्

ब्र ई जी च त्रिधा प्रोक्तं चि मा अ वै त्रिधास्तथा।
चि ब्र मा ई अजिज्ञातु सत्सा स सा ससाश्रिता ॥ ६ ॥

(२२) अथ देशाटन के सवैया *

इन्दव छन्द

लोग मलीन परे चरफीन दया करि हीन लै जीव सघारत।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य रु सूद्रर चारुहि वर्ण के मछ वघारत ॥

है, न शिक्षा है, न शिष्य है, न आयु (काल) है, न यन्त्र (ज्ञान और कर्म की सामग्री) है। न माता है, न पिता है, न बन्धु है, न गोत्र है। उस अद्भुत ज्ञानातीत (परमात्मा) को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ (सुंदरदासजी ने अन्यत्र भी ऐसा वर्णन किया है।)।

श्लोक ६—ब्र=ब्रह्म। ई=ईश्वर। जी=जीव। ये तीनों त्रिधा पृथक् २ कहे हैं। चि=चित्। मा=माया। अ=अविद्या। ये भी त्रिधा पृथक् २ तीन कहे हैं। परन्तु इन छहों (ब्रह्म-ईश्वर-जीव-चित्-माया और अविद्या) को यथार्थ तत्वत तत्वज्ञान से जानने के लिए (सत्सा) सच्छास्त्रों (स) सत्सग (सा) साधुजनों (स) सत्य (सा) साम्य [अर्थात् समदर्शीभाव— "शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिन" (गीता)] वा साधन अथवा (स) समता (उक्त ही) को आश्रित करें। अर्थात् उनको ठीक २ जानने के निमित्त इन साधनों का अवलम्वन करना पड़ता है। इनके विना दिव्य वा सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥

इन श्लोकों में बहुत उत्तम पदार्थ भरे हैं। परन्तु स्थानाभाव से बिस्तार से व्याख्या नहीं दी जा सकती है। विद्वान आप प्रयास करकै विशेष विवरण ढूढ़ निकालैं ॥ इति ॥

फारो है अग सिंदूर की माग सु सपनि राड दुरे दृग फारत।
ताहितें जानि कही जन सुन्दर पूरब देस न सत पधारत ॥ १ ॥
दया नहि लेस क छील के भेप क ऊभमें कमन राड कुलच्छन।
राथत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन ॥
बंठिये पाम तौ आवत बाम सु सुन्दरदास तजौ न ततच्छन।
लोग कठोर फिरं जंसं ढोर सु सत सिधार करें कहा दच्छन ॥ २ ॥
बात तहा की सुनी श्रवनों हम रीति पछाह की दूरितें जानी।
बोलि धिकार लगं नहि नींकी अमाडे तुसाडे करैं पतरानी ॥
काहु की छौति न मानत कोउ जी भट्ठी रोटी क पुहदा पानी।
सुन्दरदास करे कहा जाइके मग तें होइ जु बुद्धि की हानी ॥ ३ ॥
हिक लाहोरदा नीर भी उत्तम हिक लाहोरदा बाग सिराहे।
हिक लाहोरदा चीर भी उत्तम हिक लाहोरदा मेवा सिराहे ॥

---

९. इन सवैयों का नाम 'दशों दिशा के दोहे' भी लिखा देखा गया। परन्तु यह नाम ठीक नहीं। जो नाम ऊपर दिया वही समीचीन और सगत है। स्वामी सुन्दरदासजी ने देशाटन बहुत किया था और अपने अनुभव का लेशमात्र मनोरजक चमत्कृत भावों से, अपने शिष्यों के ज्ञान वा मोद के अर्थ, इन दश सवैयों में कहा है। यदि वे अपने भ्रमण का सारा वृत्तान्त भलीभांति लिखते तो सबको बहुत लाभ होता। और कुछ पत्र इस सम्बन्ध के थे भी वे नष्ट हो गये या अप्राप्त हैं। [illegible] इन सवैयों में (१) पूर्व देश (२) दक्षिण देश (३) पजाब (४) लाहौर (५) गुजरात (६) मारवाड़ (७) मालवा (८) कुरसाना (९) फतहपुर (१०) उत्तर देश—इतनों के नाम आये हैं। लाहौर, माल्वा, कुरसाना, और उत्तर देश की प्रशसा की है। अन्य देश अप्रिय लगे थे। (१) [illegible] [illegible] मल त्यागते हैं पाय जल में ही। मछ बघारत=मछली का पका कर खाते हैं। सिन्दूर की माग=पूर्व में स्त्रिया प्रायः सिंदूर की माग (सीमत) सौभाग्य चिन्ह का लगाती हैं। (२) बास=दुर्गंध। ततच्छन=तत्क्षण, तुरत।

(३) अमाडे=हमारा। तुसाडे=तुम्हारा। पतरानो=पजाब में स्त्री अधिक हैं। भट्ठी=तन्दूर की (बनी रोटी)। पुहदा=कुए का (निकला पानी) यह वर्णन सुन्दरदासजी की प्रथम यात्रा का है जब वे पजाब में गये थे।

मानि लिये अनहकरण जे इन्द्रिनि के भोग ।
सुन्दर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौं रोग ॥ ३ ॥
वैद हमारे रामजी औषधि हू है राम ।
सुन्दर यहै उपाइ अब सुमिरन आठौं जाम ॥ ४ ॥
सात बरस सौ मैं घटै इतने दिन की देह ।
सुन्दर आतम अमर है देह पेह की पेह ॥ ५ ॥
सुन्दर ससै को नहीं वडो महोन्छव येह ।
आतम परमातम मिले रहौ कि बिनसौ देह ॥ ६ ॥

॥ इति फुटकर काव्य सग्रह समाप्त ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्वामी सुदरदास विरचित समस्त सुदर ग्रथावली सम्पूर्णम् ॥

॥ शुभम् ॥

परन्तु यह देह (स्थूल, जड) कर्मफल सस्कारों के वल रूपी वायु से सूखे पत्ते की तरह जन्मान्तर प्राप्त करती रहती है। आत्मा निर्विकार है। देह विकारवान् है। जे इन्द्रिन के भोग ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के जितने भी सुख दु खादिमय भोग है व अत करण तक ही प्रभाव डालते हैं, आत्मा में उनका कोई ससग मात्र भी नहीं होता। आत्मा अलिप्त है। जो रोग है सो इस शरीर ही मे है, आत्मा में नहीं है। सुदरदासजी वर्षीयान् ९३ वर्ष के थे—निर्बलता का ही रोग था। य्येह=मिट्टी, मृतिका। को नहीं=कोई नहीं, कुछ नहीं। आतम परमातम मिले, महात्मा सुदरदासजी जीवन्मुक्त थे। उनको ब्रह्मानद मिल चुका था ॥ इति ॥

"फुटकर काव्य सग्रह" की छद सख्या सब इस प्रकार है—चौबोला=१७+ गूढार्थ=२२+आद्यक्षरी से मध्याक्षरी तक=३०+चित्रकाव्य के १९+कविता और गणागण के=८+सख्या वर्णन से बारह राशि के छदतक=१०+छप्पय एकादशी से अत समय की साखीतक=४४। यों १८९ छद है।

॥ इति श्री सुन्दरग्रन्थावली की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥ ५॥

ॐ तत्सत्

फारो है अग सिंदूर की माग सु सपनि राड वुरे दृग फारत।
ताहितें जानि कही जन सुन्दर पूरब देस न संत पधारत ॥ १ ॥
दया नहिं लेस रु लील के भेप रु ऊभसै केसन राड कुलच्छन।
राधत प्याज विगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन ॥
वैठिये पास तौ आवत वास सु सुंदरदास तजौ न ततच्छन।
लोग कठोर फिरै जैसें ढोर सु संत सिधार करैं कहा दच्छन ॥ २ ॥
थान तहा की सुनी श्रवनों हम रीति पछाह की दूरितें जानी।
बोलि विकार लगें नहिं नींकी असाडे तुसाडे करै पतरानी ॥
काहु की छौति न मानत कोउ जी भट्ठी रोटी रु पूहदा पानी।
सुंदरदास करै कहा जाइकें संग तें होइ जु वुद्धि की हानी ॥ ३ ॥
हिक लाहोरदा नीर भी उत्तम हिक लाहोरदा बाग सिराहे।
हिक लाहोरदा चीर भी उत्तम हिक लाहोरदा मेवा सिराहे ॥

---

* इन सवैयों का नाम 'दशों दिशा के दोहे' भी लिखा देखा गया। परन्तु यह नाम ठीक नहीं। जो नाम ऊपर दिया वही समीचीन और संगत है। स्वामी सुंदरदासजी ने देशाटन बहुत किया था और अपने अनुभव का लेशमात्र मनोरंजक चमत्कृत भाषा में, अपने शिष्यों के ज्ञान वा मोद के अर्थ, इन दश सवैयों में कहा है। यदि वे अपने भ्रमण का सारा वृत्तान्त भलीभांति लिखते तो सबको बहुत लाभ होता। और कुछ पत्रे इस सम्बन्ध के थे भी वे नष्ट हो गये वा अप्राप्त हैं। ऐसा महंत गंगारामजी से ज्ञात हुआ था। इन सवैयों में (१) पूर्व देश (२) दक्षिण देश (३) पंजाब (४) लाहौर (५) गुजरात (६) मारवाड़ (७) मालवा (८) फुरसाना (९) फतहपुर (१०) उत्तर देश—इतनों के नाम आये हैं। लाहोर, मालवा, कुरसाना, और उत्तर देश की प्रशंसा की है। अन्य देश अप्रिय लगे थे। (१) फारे चरफीन=गाड़े २ मल त्याग तें हैं, प्राय जल में ही। मछ बघारत=मछलो का पका कर खाते हैं। सिंदूर की माग=पूर्व में स्त्रिया प्राय सिंदूर की माग (सीमंत) सौभाग्य चिन्ह की लगाती हैं। (२) वास=दुर्गंध। ततच्छन=तत्क्षण, तुरत।

(३) असाडे=हमारा। तुसाडे=तुम्हारा। पतरानो=पंजाब में स्त्री अधिक हैं। भट्ठी=तन्दूर की (बनी रोटी)। पूहदा=कुए का (निकला पानी) यह वर्णन सुंदरदासजी की प्रथम यात्रा का है जब वे पंजाब में गये थे।

मानि लिये अनहकरण जे इन्द्रिनि के भोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौ रोग ॥ ३ ॥
वैद हमारै रामजी औषधि हू है राम।
सुन्दर यहै उपाइ अब सुमिरन आठौं जाम ॥ ४ ॥
सात बरस सौ मैं घटे इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है देह षेह की षेह ॥ ५ ॥
सुन्दर समै को नहीं बडो महोत्छव येह।
आतम परमातम मिले रहौ कि बिनसौ देह ॥ ६ ॥

॥ इति फुटकर काव्य सग्रह समाप्त ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्वामी सुदरदास विरचित समस्त सुदर ग्रथावली सम्पूर्णम् ॥

॥ शुभम् ॥

परन्तु यह देह (स्थूल, जड़) कर्मफल सस्कारों के बल रूपी वायु से सूखे पत्त की तरह जन्मान्तर प्राप्त करती रहती है। आत्मा निर्विकार है। देह विकारवान् है। जे इन्द्रिन के भोग ज्ञानेन्द्रिया और कर्मेन्द्रियों के जितने भी सुख दु खादिमय भोग हैं व अत करण तक ही प्रभाव डालते ह, आत्मा मे उनका कोई ससग मात्र भी नही होता। आत्मा अलिप्त है। जो रोग है सो इस शरीर ही मे है, आत्मा में नहीं है। सुदरदासजी वयोवृद्ध ९३ वर्ष के थे—निर्बलता का ही रोग था। षेह=मिट्टी, मृतिका। को नहीं=कोई नहीं, कुछ नहीं। आतम परमातम मिले, महात्मा सुदरदासजी जीवन्मुक्त थे। उनको ब्रह्मानद मिल चुका था ॥ इति ॥

"फुटकर काव्य सग्रह" की छद सख्या सब इस प्रकार है—चौबोला=१७+ गूढार्थ=२२+आद्यक्षरी से मध्याक्षरी तक=३०+चित्रकाव्य के १९+कविता और गणागण के=८+सख्या वर्णन से बारह राशि के छदतक=१०+छप्पय एकादशी से अत समय की साखीतक=४४। यों १८९ छद हैं।

॥ इति श्री सुन्दरग्रन्थावली की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ।-॥

ॐ तत्सत्





पुस्तकं भैंट लगाने के लिये लगाई गई
द० महंत गंगाराम

महंत गंगारामजी की मुहर

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता ।

परिशिष्ट

"सवैया" ग्रन्थ के छंदों की अनुक्रमणिका

[संकेत—जिन पर उलटी सुलटी कामा लगी हैं वे प्रायः अंत्यपादार्ध हैं ।]



शुद्धिपत्र

(३) सवैया (सुन्दर विलास)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८५		२	कोउ	कौ
३८७		८	शोभत	शोभित
३८६		१	आपिर	अपिर
३६६		५	चरनू	चरमू
३६६		१६	हु	हू
४००		- ४	आपुनि	आपुनी
४०१	टीका	२	हृत	दृत
४०३	मूल	३	तोनौ	तीनौं
४०४		८	दोगज	दोजग
४११		३	ऐसौंहि	ऐसैंहि
४१२		४	अषने	अपने
४१२		१७	मेरौ	मेरै
४१३		१४	धस्यौ	धस्यौ
४१८		७	विकम	विकर्म
४२४		३	अघ है	अवै है
४२५		१०	दूध	दूध
४३१		४	जतक	जेतक
४३४		५	ताकों नाह	ताकौं नहिं
४३४	टीका	१	(१२)	(११)